हरियाणा का सन्त-साहित्य

लेखक

डॉ० सूरज भान

प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग

नेकीराम शर्मा राजकीय महाविद्यालय, रोहतक

हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़

© हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़-1986

प्रथम संस्करण : 1986

प्रतियाँ : 550

मूल्य : पचपन रुपये (Rs. 55.00)

मुद्रक :

मित्तल प्रिण्टर्स, के-13, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

प्रस्तावना

हरियाणा का लोक एवं सन्त साहित्य बहुत समृद्ध है। इसमें भारतीय संस्कृति का सहज रूप स्पष्ट दिखाई पड़ता है। यह प्रदेश सन्तों एवं भक्तों की साधना स्थली रही है। सन्त साहित्य की दृष्टि से हरियाणा की धरती का अपना विशेष महत्त्व है। प्रस्तुत पुस्तक में हरियाणा के सन्त साहित्य पर व्यापक प्रकाश डाला गया है। पुस्तक में पहली बार हरियाणा के अज्ञात 62 सन्त कवियों और उनकी कृतियों का परिचय भी दिया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक तीन खण्डों में विभाजित है। प्रथम खण्ड प्रस्तावना के रूप में है जिसमें हरियाणा प्रदेश का परिचय दिया गया है। दूसरा खण्ड पुस्तक की विषय वस्तु से सम्बन्धित है। इसमें सन्त साहित्य के ज्ञात तथा अज्ञात कवियों के साहित्य का विवेचनात्मक परिचय दिया गया है। पंथों का क्रम उनके साहित्यिक गुण एवं मात्रा की उत्कृष्टता को दृष्टि में रखते हुए रखा गया है। तीसरा खण्ड तत्त्व-चिन्तन से सम्बन्धित है। इस खण्ड में हरियाणवी सन्तों की भक्ति, ब्रह्म, जीव, जगत् एवं माया सम्बन्धी विचारों का उल्लेख किया गया है। सन्तों से सम्बन्धित भ्रान्त तथ्यों के निराकरण का प्रयास भी पुस्तक में किया गया है। विषय का प्रतिपादन सहज एवं सरल भाषा शैली में हुआ है।

प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन हरियाणा की कला, संस्कृति, इतिहास, साहित्य तथा लोक साहित्य सम्बन्धी शोध प्रबन्धों का प्रकाशन योजना के अन्तर्गत किया गया है। आशा है सन्त साहित्य के शोधकर्त्ता एवं सुधी समीक्षक पुस्तक का स्वागत करेंगे।

शिक्षामन्त्री हरियाणा सरकार एवं
अध्यक्ष, हरियाणा साहित्य अकादमी

निदेशक
हरियाणा साहित्य अकादमी

भूमिका

हरियाणा का सन्त-साहित्य मेरे शोध का विषय है। विषय आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सुझाया था और निर्देशन डा० राजदेवसिंह ने किया है।

पिछले चालीस-पचास वर्षों में हिन्दी में सन्त-साहित्य पर पर्याप्त मात्रा में अनुसन्धान कार्य हुए हैं और आज भी हो रहे हैं। इन अनुसन्धान कार्यों का मूल्यांकन करते हुए सन्त-साहित्य के मूर्धन्य विद्वान् आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने 'उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा' के परिवर्द्धित और संशोधित संस्करण की प्रस्तावना में लिखा था कि "भारतीय विश्वविद्यालयों में जो अनुसन्धान कार्य इस ओर हो रहा है उसमें कुछ अधिक सजगता हो सकती है। वहाँ पर लिखे गए ऐसे सभी प्रबन्ध प्रकाशित नहीं हो सके हैं। किन्तु उनके शीर्षकों की जो सूची हमें देखने को मिलती है उससे पता चलता है कि वहाँ अभी तक या तो दार्शनिक, सामाजिक वा सांस्कृतिक—जैसी विभिन्न पृष्ठभूमियों के अनुसार अध्ययन किया गया है और कभी-कभी बाहरी प्रभाव तक ढूँढ़े गए हैं अथवा पूरे सन्त साहित्य व कुछ विशिष्ट सन्तों की रचनाओं में निहित मत व साधना का परिचय दिलाने, उनकी भाषादि का वास्तविक स्वरूप निर्धारित करने तथा बहुधा तुलनात्मक अध्ययन उपस्थित कर देने का भी यत्न किया गया है। ये सभी बातें अपने ढंग से महत्त्वपूर्ण कही जा सकती हैं और इनकी आवश्यकता भी अपनी जगहों पर कम नहीं हो सकती। परन्तु इनका अधिकांश हमें केवल सैद्धान्तिक व निरा शास्त्रीय सा ही लगता है। इनमें कदाचित उन कतिपय ठोस व्यावहारिक बातों की ओर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया गया जान पड़ता है जो किसी एक सन्त-साहित्य का गम्भीर अध्ययन और अनुशीलन करने वाले व्यक्ति की दृष्टि में कहीं अधिक महत्त्व की ठहरती है। तदनुसार आवश्यकता है कि सर्वप्रथम संतों द्वारा रचित विशिष्ट ग्रंथों का वैज्ञानिक ढंग से सम्पादन कर उन्हें उनके मौलिक रूपों में

प्रकाशित किया जाए जो किसी पाठानुसन्धान के आधार पर असम्भव नही कहा जा सकता। ऐसे कई ग्रन्थ अभी तक साम्प्रदायिक मनोवृत्ति वाले सज्जनों के यहाँ उनकी विचित्र भावनाओं के कारण सुन्दर वेष्ठानों में 'सुरक्षित' पड़े हुए उनकी पूजन-पद्धति के काम आ रहे हैं। उनके प्रकाश में न आने के कारण तथा बहुधा उनकी अशुद्ध प्रतिलिपियों के आधार पर अनेक प्रकार की भ्राँतियों को प्रश्रय मिल रहा है। इसी प्रकार कम-से-कम प्रमुख संतों के जीवन-वृत्तों का यथासाध्य पता लगाकर उन्हें सुव्यवस्थित रूप देना तथा इसके द्वारा उनके व्यक्तित्व का वास्तविक रूप सबके सामने लाना है जिससे उनकी 'रहनी' का परिचय मिल सके···।"[1]

प्रस्तुत उद्धरण में संत-साहित्य सम्बन्धी अनुसन्धान कार्यों की जिन दो बड़ी कमियों की ओर आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने आज से बाईस वर्ष पहले संकेत किया था वे आज भी ज्यों-की-त्यों बनी हुई हैं। शोधकों और शोध-निर्देशकों का ध्यान उनकी ओर नहीं जा सका है। परिणामतः न तो सन्त-साहित्य के मौलिक ग्रन्थों की खोज करके उन्हें सम्पादित और प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है और न अद्यावधि ज्ञात सन्तों के अतिरिक्त जो बहुत-सारे सन्त कवि हो गए हैं उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का प्रामाणिक विवरण ही संग्रह किया जा सकता है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी की तरह मेरे निर्देशक डा० राजदेव सिंह ने भी इस कमी को अनुभव किया है। सन्त-परम्परा का सन्धान करते हुए उन्होंने एक जगह लिखा भी है कि "खेद है कि 'उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा' के प्रकाशन के पश्चाद्वर्ती गत दो दशकों में सन्त-साहित्य पर प्रभूत अनुसन्धान कार्य हुए हैं और छोटी-छोटी बातों पर लम्बे-लम्बे विवाद खड़े किए गए हैं लेकिन सन्त-साहित्य के अनुपलब्ध ग्रन्थों और उन ग्रन्थों के रचयिता सन्त-कवियों के जीवनेतिहास को प्रकाश में लाने का प्रयत्न नहीं के बराबर ही किया गया है।"[2] प्रस्तुत प्रबन्ध में इसी दिशा में अनुसन्धान करने का प्रयास किया गया है।

सन्त-साहित्य के हिसाब से हरियाणा की धरती बड़ी ही उर्वर और समृद्ध है। हरियाणा का सन्त-समाज और हरियाणा का सन्त-साहित्य दोनों बहुत विशाल हैं। शोधकों और शोधनिर्देशकों का ध्यान इस ओर न जाने का परिणाम यह हुआ है कि बृहत्तर हिन्दी-भाषी समाज और हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों को इस प्रदेश के श्रेष्ठ सन्त-कवियों और उनकी कृतियों का पता ही नहीं है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में हरियाणा प्रदेश में इधर-उधर बिखरी पड़ी सन्त-साहित्य की बहुमूल्य मौलिक सामग्री को तथा उनके रचयिता सन्त-कवियों के जीवनवृत्त

---

1. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा, परिवर्द्धित एवं संशोधित-संस्करण, सम्वत् 2021, प्रस्तावना पृ० 5-6।
2. डा० राजदेव सिंह, सन्त-साहित्य : पुनर्मूल्यांकन, 1973, पृ० 22।

को प्रकाश में लाने का व्यवस्थित प्रयास किया गया है। प्रस्तुत शोधप्रबन्ध की यह बड़ी उपलब्धि है कि इसमें हरियाणा के 62 अज्ञात सन्त-कवियों, और उनकी कृतियों का पहली वार व्यवस्थित परिचय दिया जा रहा है।

इससे पहले हरियाणा संत-साहित्य के क्षेत्र में विद्वानों का कार्य शून्यवत् ही रहा है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी जी ने 'उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा' में इस प्रदेश के केवल चार-पाँच सन्तों (गरीबदास, निश्चलदास, वीरभान, जोगीदास तथा डेढ़राज) का ही उल्लेख किया है। डा० विष्णुदत्त राकेश ने समता-पंथ के प्रवर्तक श्री मंगतराम को इस शृंखला में जोड़ने का सराहनीय प्रयास किया है।[1] इसके अतिरिक्त सन्त गरीबदास तथा निश्चलदास को लेकर ही एक-दो विद्वानों ने कार्य किया है। जहाँ तक हरियाणा के मौलिक सन्त-साहित्य को खोजने का प्रश्न है अब तक इधर के किसी विद्वान् ने कोई ठोस प्रयास नहीं किया है। इस चिर-उपेक्षित एवं अपेक्षित क्षेत्र में प्रस्तुत प्रबन्ध को अद्यावधि प्रथम एवं एकमात्र प्रयास कहा जा सकता है। जैसा कि पीछे कहा गया है प्रस्तुत प्रबन्ध में पहली बार 62 सन्तों एवं उनकी वाणी का परिचय दिया जा रहा है और इस प्रकार हरियाणवी-क्षेत्र की एक लम्बी समृद्ध साहित्य-परम्परा का परिचय विद्वत-जगत् के सामने प्रस्तुत करके उस अभाव को मिटाने का प्रयास किया गया है जो इस क्षेत्र के साहित्यिक दृष्टि से पिछड़ेपन के लिए शूलवत कसकता रहा है। यह सन्तोष और प्रसन्नता का विषय है कि इतनी सारी मौलिक सामग्री की ओर शिक्षित वर्ग का ध्यान पहली बार आकृष्ट होगा। इससे अनुसंधान के क्षेत्र में मौलिक शोधकार्य की बड़ी संभावनाओं का द्वार भी उद्घाटित होगा। और सबसे अधिक गौरव, हर्ष एवं उपयोगिता की बात तो यह होगी कि जिन 'हरि-जनों' ने इस रण-क्षेत्र, के जन-मानस को गाढ़े समय में अपने सारल्य, आतिथ्य एवं श्रमधर्म के प्रति सचेत एवं संसक्त रखा—उनकी जीवन्त, पीयूष-रूपा 'बार्णी' का परिचय पाने में यह प्रयास सहायक होगा। आज के विशृंखल दिग्भ्रांत समाज के लिए साहित्य की उपयोगिता और भी अधिक है। आत्मानुशासन एवं प्रामाणिक अनुभूति से प्रस्तुत इस साहित्य में नैतिकता और आचारनिष्ठा कूट-कूट कर भरी हुई है।

अद्यावधि ज्ञात अथवा अल्पज्ञात सन्तों से सम्बन्धित भ्रान्त तथ्यों का निराकरण तथा अज्ञात सन्तों और उनकी वाणी का परिचय देना प्रस्तुत प्रबन्ध का उद्देश्य है। 'गरीब-पंथ' में अब तक केवल गरीबदास का ही नाम लिया जाता रहा है। गरीबदास के पुत्र एवं महान् सन्त जैतराम जी की 'वाणी' एवं उनका जीवन-परिचय यहाँ पहली बार दिया जा रहा है। इसी प्रकार 'नितानन्दी परम्परा' एवं

---

1. उत्तर भारत के निर्गुणपंथ साहित्य का इतिहास, डा० विष्णुदत्त राकेश, 1975, इलाहाबाद।

सन्त नितानन्द सम्बन्धी जानकारी भी एक दम नई है। 'घीसा-पंथ' और इनकी परम्परा में आने वालों में सन्त घीसाराम, जीतादास, ईशरदास एवं द्योतराम जी का परिचय भी अब तक शिक्षित वर्ग के लिए अज्ञात ही है। दादूपंथ में आने वाले हरियाणवी सन्तों—बनवारीदास, हरिदास तथा हरदास का परिचय भी यहाँ पहली बार दिया जा रहा है। कबीर की परम्परा में पड़ने वाले सन्त हरदेदास, रामरतन, दूलमदास (भीषम जी), गिरधारी दास, सेवादास इत्यादि भी हरियाणवी सन्त-साहित्य के जगमगाते नक्षत्र हैं। जो अब तक अज्ञात ही थे। साध-सम्प्रदाय सम्बन्धी कुछ भ्रान्त तथ्यों का निराकरण भी यहाँ पहली बार किया गया है। चरणदासी परम्परा के सन्त श्री रामरूप जी, जोगजीत जी, जुगतानन्द, सिद्धराम इत्यादि की समृद्ध वाणी का परिचय भी इस प्रबन्ध की एक उपलब्धि है। शिक्षित वर्ग अब तक 'वेनामी' सन्तों तथा उनके साहित्य से भी अपरिचित रहा है। यहाँ विस्तार से इस अज्ञात पंथ और इसके उपलब्ध साहित्य का परिचय पहली बार दिया रहा है। इसी प्रकार समता-पंथ तथा इसका साहित्य भी संत-साहित्य के अध्येताओं के लिए एक सुखद उपलब्धि माना जाएगा। राधा-स्वामी-सत्संग से सम्बन्धित श्रीराम सिंह 'अरमान', संत ताराचन्द, पं० द्वारका दास आदि का परिचय भी नया है। परमानन्दी परम्परा के प्रवर्तक परमानन्द जी तथा इसके शिष्यों का साहित्य एवं परिचय भी एकदम नया है। 'सच्चा सौदा' सम्बन्धी पहली बार दी जाने वाली जानकारी भी हरियाणा-सन्त-साहित्य की महत्त्वपूर्ण खोज ही समझनी चाहिए। इसके अतिरिक्त और भी कई सन्तों एवं उनके साहित्य का परिचय पहली बार इस शोध-प्रबन्ध में दिया गया है।[1]

इस कार्य को सम्पन्न करने में अपने किस्म की अनेक बाधाओं से भी दो-चार होना पड़ा है। कई महन्तों एवं गद्दीधारियों के कच्छप-धर्मी निरपेक्ष भाव से कई बार बड़ा निराश होना पड़ा। एक बात जो बड़ी पीड़क रही है—वह यह कि एक ही पंथ के साधक अथवा महन्त अपने निकटस्थ ठिकानों का परिचय देने में भी आनाकानी करते पाए गए। अतः एक ही मार्ग से होकर कई-कई बार जाना पड़ा है। सबसे बड़ी बाधा इन महन्तों से इनके पास 'सुरक्षित' सामग्री प्राप्त करने की

---

1. ध्यानदास (नितानन्दी); प्रेमदास, रामकिशनदास, अचलदास (घीसापंथी); दुर्गादास, सूरजदास, शीतलदास, माधोदास (कबीरपंथी); अनाथदास; चतुरदास (दादूपंथी); ज्ञानानन्द, मोहनदास (चरणदासी); कक्कड़जी, बेनामी जी, गोपालदास (बेनामी); निहाली बाई, रूपचन्द चौहान (राधास्वामी); सुधानन्द, मोहरसिंह, मगनानन्द, रामानन्द (परमानन्दी) मस्ताना जी, सतनामसिंह जी (सच्चा सौदा); चेतनदास (उदासी)।

रही है। कई गद्दियों पर तो 'सुरक्षित' ग्रंथों को हाथ तक नहीं लगाने दिया गया, दूर से ही दर्शन करवाए गए। कहीं-कहीं हाथ-पैर धुलवाकर, अण्डे-माँस तथा धूम्रपान इत्यादि का सेवन न करने का प्रमाण प्राप्त न करने पर ही 'बाणी' को स्पर्श करने दिया गया। ऐसी मनोवृत्ति वाले महंतों एवं 'स्वामियों' से सामग्री का प्राप्त करना कितना दुष्कर रहा होगा, सहज अनुमेय है। बाधाएँ केवल पंथिकों या महन्तों से जूझने की ही रही हों, सो बात नहीं है। राजकीय सेवा में अपेक्षित अवकाश पाने की भी बड़ी बाधा थी। फिर इन सैंकड़ों गद्दियों-ठिकानों की बार-बार यात्रा भी कष्टद एवं व्यय-साध्य रही है। पर सुख यही है कि अपनी यायावरी वृत्ति के कारण इस सारी खोज यात्रा में मैंने आनन्द भी कम नहीं पाया है। कई शिक्षित महंतों एवं साधकों का आत्मीय व्यवहार तो एक स्थायी सुखद स्मृति बन गया है। इस सन्दर्भ कई 'पहुँचे हुए' साधकों के दर्शन मेरी व्यक्तिगत आत्मिक उपलब्धि हैं जिससे मेरा अन्तर बड़ी सीमा तक प्रभावित हुआ है। साधु-संगति मेरे इस कार्य को सम्पन्न करने में बड़ी सहायक सिद्ध हुई है, जिसका संयोग और सुयोग मुझे बचपन से मिला है।

शोध-प्रबन्ध को तीन खण्डों में विभाजित किया गया है। प्रथम खण्ड प्रास्ताविक हैं जिसमें दो अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में हरियाणा प्रदेश का परिचय सन्तों के कृतित्व के मूल्यांकन के लिए उपयोगी एवं अनिवार्य समझा गया। दूसरा अध्याय विषय-प्रवेश है जिसे विषय सम्बन्धी भूमिका के रूप में रखा गया है। दूसरा खण्ड ही मेरे अनुसन्धान कार्य का प्रमुख एवं महत्वपूर्ण भाग है। इसमें ऊपर बताए गए बहुत सारे अज्ञात नवीन पंथों का परिचय दिया गया है। इसी के साथ गरीबपंथ, कबीरपंथ, दादूपंथ, चरणदासी पंथ, साथ पंथ, इत्यादि पूर्व परिचित पंथों के अन्तर्गत हरियाणा में पाए जाने वाले नवोपलब्ध सन्तों एवं उनके साहित्य का परिचय दिया गया है। प्रत्येक पंथ के अन्त में तत्सम्बन्धी उपलब्ध मौलिक साहित्य की सूची भी दे दी गई है। प्रबन्ध में पंथों का क्रम उनके साहित्यिक गुण एवं मात्रा की उत्कृष्टता को दृष्टि में रखते हुए रखा गया है। इसमें दृष्टि मेरी है, अतः मत-भिन्नता के लिए स्थान है। तीसरा खण्ड—तत्त्वचिन्तन—है, जिसमें हरियाणवी सन्तों की भक्ति, ब्रह्म, जीव, जगत् एवं माया सम्बन्धी धारणा के व्याज से कुछ सन्तों की 'बाणी' का परिचय देने का उपक्रम है। अन्त में सहायक ग्रंथ सूची दी गई है।

इस कार्य की सम्पन्नता गुरुवर डा० राजदेव सिंह के कुशल निर्देशन एवं अपार सद्भावना का प्रतिफलन है। श्रीमती राजदेव सिंह (देवी जी) का ममत्व एवं स्नेह मेरे लिए बड़े सम्बल रहे हैं। सामग्री एकत्रित करने में महंत समन्दरदास (नाहरी) तथा महन्त सुरतन दास (बनियानी--माडोंघी) ने विशेष सहायता की है। हृदय से इनके प्रति कृतज्ञ हूं। कर्नल टीकाराम धनखड़, चौधरी सूरत सिंह, श्री भीमसिंह

'मौर' तथा श्री तोखाराम जी ने इस खोज कार्य में मार्गदर्शन करके—इस दुष्कर कार्य को सहज किया है। मेरे लिए ये सभी श्रद्धेय हैं। डा० पूर्णचन्द शर्मा, श्री चन्द्रप्रकाश, श्री राममेहर सिंह राठी तथा श्री श्रवण कुमार सेठी—प्राध्यापक बन्धुओं ने समय-समय पर अपने विचार-विमर्श से लाभान्वित किया है। प्रबन्ध के सुचारू टंकण के लिए भाई बजाज बधाई के पात्र हैं। मैं उन सभी विद्वानों का आभारी हूँ जिनकी कृतियों से लाभान्वित हुआ हूँ।

अन्त में उन सभी के लिए आभार एवं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जो प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से इस कार्य में सहायक रहे हैं।

सूरजभान

अनुक्रम

अध्याय		पृष्ठ
प्रस्तावना		(v)
भूमिका		(vii)

प्रथम-खण्ड

प्रास्ताविक

1.	हरियाणा : इतिहास, भूगोल एवं संस्कृति	3
2.	सन्त, सन्तमत और हरियाणा के सन्त सम्प्रदाय	19

द्वितीय-खण्ड

हरियाणा के विभिन्न सन्त-सम्प्रदाय

1.	सन्त गरीबदास और उनका गरीब पंथ	47
2.	हरियाणा का घीसा पंथ	74
3.	हरियाणा का नितानन्दी पंथ	97
4.	हरियाणा का चरणदासी पंथ	116
5.	हरियाणा का कबीर पंथ	134
6.	हरियाणा का दादू पंथ	155
7.	हरियाणा का समता पंथ	176
8.	हरियाणा का राधा स्वामी पंथ	196
9.	हरियाणा का साध सम्प्रदाय	213
10.	हरियाणा का वेनामी पंथ	227

11. हरियाणा का परमानन्दी पंथ 249
12. हरियाणा के धर्म के सम्प्रदाय 262

तृतीय-खण्ड

तत्त्व-चिन्तन

1. हरियाणवी सन्तों की भक्ति का स्वरूप 287
2. हरियाणवी सन्तों की ब्रह्म-कल्पना 304
3. हरियाणवी सन्तों की माया सम्बन्धी धारणा 313
4. हरियाणवी सन्तों की जीव, जगत् सम्बन्धी धारणा 322

परिशिष्ट

सहायक ग्रन्थ-सूची 333

प्रथम खण्ड

प्रास्ताविक

प्रथम अध्याय : हरियाणा—भौगोलिक परिवेश, ऐतिहासिक परम्परा, जातियाँ, धर्म, दर्शन, सांस्कृतिक परिवेश, आदि।

द्वितीय अध्याय : सन्त और संतमत, हरियाणा में संतमत के उद्भव और विकास की परिस्थितियां, बाधक और साधक तत्त्व।

ध्याय : 1

हरियाणा : इतिहास, भूगोल एवं संस्कृति

मेरे शोध-विषय का शीर्षक है—'हरियाणा का सन्त-साहित्य'। हरियाणा हिन्दी-भाषी क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण अंग है। हिन्दी के सन्त-साहित्य में हरियाणा के संत गरीबदास का बड़ा सम्मान है। हिन्दी सन्त-साहित्य-सम्बन्धी ग्रंथों में दो-एक अन्य हरयिाणवी सन्तों का उल्लेख भी मिलता है, लेकिन अब भी बृहत्तर हिन्दी भाषी समाज को यह पता नहीं है कि हरियाणा का सन्त-समाज और हरियाणा का सन्त-साहित्य दोनों बड़े विशाल हैं। हरियाणा के हर गाँव में कोई-न-कोई संत-समाज अवश्य मिलेगा। ज्ञानी, कर्मकाण्डी, शास्त्रवेत्ता यहाँ खोजने पर मिलते हैं लेकिन सन्तों को यहाँ खोजना नहीं पड़ता। सन्तों के हिसाब से भारत की यह बड़ी उर्वर भूमि है। हरियाणा के सन्त-साहित्य को समझने के लिए इस भूमि के भौगोलिक परिवेश, इसके इतिहास और इसकी संस्कृति को समझना अनिवार्य है। कृतित्व के मूल्यांकन के लिए देश और काल—दोनों की समान उपयोगिता होती है।

हरियाणा : इतिहास

हरियाणा या हरयाणा ? हरियाणा को लेकर उठने वाला सबसे पहला विवाद यह है कि इसे हरियाणा कहना ठीक है या हरयाणा। कुछ लोग इसे हरियाणा कहना ठीक मानते हैं तो कुछ दूसरे लोग इसे हरयाणा कहना संगत समझते हैं। 'हरियाणा' शब्द को मान्यता देने वालों में श्री जगदेव सिंह सिद्धान्ती तथा आचार्य भगवान देव जी प्रमुख हैं। भगवान शिव तथा उनके पुत्र कार्तिकेय की लोकप्रियता को देखते हुए तथा ऋग्वेद के 8वें मण्डल के 25वें सूक्त के, 22वें मन्त्र में 'रजत'

हरयाणा के प्रयोग को लेकर ही उपर्युक्त विद्वानों का आग्रह है कि इस प्रदेश का शुद्ध एवं प्राचीनतम नाम 'हरयाणा' है। 'हरियाणा' शब्द को परम्परा प्राप्त एवं शुद्ध प्रयोग बताने वाले विद्वान अपने पक्ष में कई तर्क देते हैं। उनका कहना है कि—

(क) 'हरियाणा' तथा 'हरयाणा' का अन्तर लोकवाणी तथा संभ्रान्त साहित्य का अन्तर है।

(ख) मध्यकालीन उत्तर भारत में फारसी लिपि के प्रसार के कारण हिन्दी शब्दावली के ह्रस्व 'इ' तथा 'उ' की मात्राएं सुरक्षित न रह सकीं।

(ग) प्रदेश के रूप में संवत् 1189 में जैन कवि श्रीधर ने 'पार्श्वनाथ चरित्र' में 'हरियाणए देसे असंख गामे' तथा संवत् 1384-85 के तुगलककालीन शिलालेख में स्पष्ट रूप से 'हरियाणा' को 'स्वर्ण सान्निभः देश' कहा गया है।

(घ) स्कन्द पुराण में कुरुक्षेत्र को हरिक्षेत्र कहा गया है, इससे इस प्रदेश का नाम हरियाणा ही उचित बैठता है।

(ङ) बाबू बालमुकुन्द गुप्त अपने को 'हरियाने' के ही लिखते थे तथा महाबीर प्रसाद द्विवेदी जी 'हरियाना' ही लिखते थे।

ऐसा मानने वालों में प्रमुख पं० किशोरीदास वाजपेयी, डा० रामप्रकाश तथा प्रतापसिंह गुप्त हैं। मैं भी इन विद्वानों के मत के समर्थन में इतना और जोड़ दूं कि संत गरीबदास तथा संत जैतरामदास की वाणी में 'हरियाना' ही आया है।[1] संत साहित्य का अनुसंधाता होने के कारण और हिन्दी भाषी प्रदेश में प्रचलित होने के कारण मैंने 'हरियाणा' को ही स्वीकार किया है। पं० श्रीराम शर्मा ने 'हरियाणा का इतिहास'[2] नामक पुस्तक में कृष्णवाचक 'हरि' तथा वन बोधक अरण्य शब्दों के संयोग से हरियाणा की व्युत्पत्ति इस प्रकार मानी है—

हरिअरण्य > हरयारण्य > हरियाणा।

डा० विष्णुदत्त भारद्वाज 'हरि' को विष्णु तथा सूर्य का पर्याय मानकर हरियाणा की सार्थकता सिद्ध करते हैं। उनका विचार है कि हरियाणा वैदिक काल में सूर्योपासक क्षेत्र रहा है और यह पौराणिक काल में चतुर्भुज विष्णु का उपासना क्षेत्र बन गया। अनन्त काल से कुरुक्षेत्र में जो मेला लगता है, वह सूर्य-ग्रहण पर ही लगता है। इसके अतिरिक्त कुरुक्षेत्र में विभिन्न तीर्थों पर सूर्य-कुण्डों की विद्यमानता इस बात की पुष्टि करती है कि यह क्षेत्र सूर्योपासक क्षेत्र था।[3]

महापंडित राहुल सांकृत्यायन का सुझाव है कि 'हरियाणा' शब्द 'हरिधान्यक

---

1. ग्रं० सा०, जैतरात जी की वाणी, पृ० 345
2. पं० श्रीराम शर्मा, हरियाणा का इतिहास; (1974), पृ० 3-4
3. हरियाणा संवाद, नवम्बर, 1972, पृ० 45

से हरिहानक > हरिआनन्द > हरिआनअ > हरिआन > हरियान > हरियाना आदि प्रक्रिया से अपभ्रंश की चक्की में पड़कर बना है।[1] श्री राजाराम शास्त्री 'आर्याणा' शब्द को हरियाणा शब्द का पूर्वरूप मानते हैं। उनके अनुसार 'आर्य+आना' से 'आर्याणा' तथा हरियाणा शब्द का निर्माण हुआ है।[2] डा० नानकचन्द शर्मा 'आर्याणक' से हरियाणा की निष्पत्ति मानते हैं।[3] डा० हरीराम गुप्त के विचार में भी हरियाणा 'आर्याणा' शब्द का अपभ्रंश रूप है। उनका कहना है कि जिस प्रकार राजपूतों के निवास स्थान को राजपूताना, भाटियों की भूमि को भटियाना, तथा लोधियों की बस्ती को लुधियाना नाम दिया गया, उसी आधार पर आर्यों की जन्मभूमि को आर्याणा, अरियाणा, हरियाणा, नाम दिया गया है।[4]

डा० बुद्धप्रकाश[5] एवं श्री वासुदेवशरण अग्रवाल[6] 'आभीरयाण' शब्द से 'हरियाणा' की उत्पत्ति मानते हैं। उनके विचार में यहां आभीरों (वर्तमान अहीरों) का आधिपत्य था, अतः इस प्रदेश का नाम हरियाणा पड़ गया।

कुछ विद्वानों की धारणा है कि महाराजा हरिश्चन्द्र ने अयोध्या से निर्वासित होकर इस प्रदेश को आबाद किया। अतः उनके नाम पर ही इस भू-भाग को हरियाणा कहा जाने लगा।[7] एक अन्य मान्यता के अनुसार 'हरि' परशुराम का सूचक है अर्थात् हरति प्राणानिति हरिः और यान का अर्थ है स्थान या एकत्रित करना। अतः परशुराम द्वारा क्षत्रिय-संहार का स्थल होने के कारण इसे 'हरियाणा' के नाम से जाना जाने लगा।[8]

डा० पूर्णचन्द्र शर्मा ने इस प्रदेश के हरा-भरा होने के कारण एवं महाभारत तथा पुराणों में इससे सम्बद्ध अनेक वनों का उल्लेख होने के आधार पर इसकी संज्ञा की सार्थकता सिद्ध की है। उनका कथन है कि हमारे विचार में हरियाणा प्रदेश के नामकरण का प्रमुख आधार इसकी हरी-भरी वनस्पतियां हैं। चर्चित हरिबाणक, हरिधान्यक, हरियानक, हरिधान्य, बहुधान्यक एवं हर्यारण्य आदि सभी शब्द भी यही सुझाते हैं। इस प्रदेश का वन प्राचुर्य तथा इनकी हर्षक हरि-

---

1. डा० शंकरलाल यादव, हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, पृ० 59
2. श्री पूर्णचन्द शर्मा, हरियाणा की लोकधर्मी नाट्य-परम्परा,
3. हरियाणवी भाषा का उद्गम तथा विकास, पृ० 5
4. हरियाणा शोध-पत्रिका, नवम्बर, 1966, पृ० 21
5. हरियाणा स्टडीज इन हिस्ट्री एंड कल्चर, पृ० 43
6. हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, पृ० 59
7. सैटलमैंट रिपोर्ट, हिसार डिस्ट्रिक्ट (1863-64), पृ० 15
8. वही,

याली ही इसके नामकरण का पुष्ट एवं परीक्षित आधार है।[1]

तर्कों से सहमति अथवा असहमति हो सकती है। मेरी भी है, लेकिन हरयाणा की अपेक्षा हरियाणा मुझे अधिक संगत लगता है।

हरियाणा : भूगोल

हरियाणा राज्य प्रथम नवम्बर, 1966 से एक स्वतंत्र इकाई के रूप में अस्तित्व में आया। इससे पहले हरियाणा प्राचीन काल से एक सांस्कृतिक इकाई अधिक तथा प्रशासनिक इकाई कम रहा है। आधुनिक हरियाणा 27.3° से 31.9° उत्तर अक्षांश तथा 74.5° से 77.6° पूर्व देशान्तर के मध्य स्थित है। इसके पूर्व में उत्तर प्रदेश तथा दिल्ली, उत्तर और उत्तर पश्चिम में पंजाब, उत्तर पूर्व में हिमाचल प्रदेश तथा दक्षिण और दक्षिण पश्चिम में राजस्थान स्थित है। जहां तक हरियाणा की वर्तमान प्रशासनिक सीमाओं का सवाल है उनके निर्धारण का आधार राजनीतिक है। लेकिन हरियाणा की सांस्कृतिक सीमाएं वर्तमान प्रशासनिक सीमाओं वाले हरियाणा से काफ़ी बड़ी हैं। किसी भी प्रदेश की संस्कृति को उसकी राजनैतिक सीमाओं में नहीं बांधा जा सकता। इस कठिनाई को अपने अनुसंधान कार्य के सन्दर्भ में मैंने भी अनुभव किया है।

मनु ने मनुस्मृति में 'ब्रह्मावर्त' देश की सरस्वती तथा दृषद्वती नदियों के बीच स्थित माना है।[2] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार पूर्वी पंजाब की सबसे बड़ी भौगोलिक इकाई कुरु जनपद थी। कुरुराष्ट्र, कुरुक्षेत्र तथा कुरु जांगल नाम वाले तीन इलाके सरस्वती, यमुना तथा गंगा के बीच पड़ते थे। गंगा यमुना के बीच में मेरठ कमिश्नरी इलाका का असली कुरुराष्ट्र था तथा इसकी राजधानी हस्तिनपुर (हस्तिनापुर) थी।[3] 'अखण्ड-प्रकाश' के एक श्लोक में हरियाणा की सीमाएं बतलाते हुए कहा गया है कि पूर्व में हवेलीपालम तथा कुसंभ (कोहन ग्राम-पटियाला) जिसके पश्चिम में है—यह भू-भाग हरिबाणक देश है।[4] राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार श्री पृथ्वीसिंह जी, शेखावटी, अलवर तथा मेवात को हरियाणा का अभिन्न अंग मानते हैं।[5] श्री जगदेव सिंह सिद्धान्ती हरियाणा की उत्तरी सीमा सतलुज नहीं, पूर्व में हिमालय की तराई से बरेली तक, दक्षिण में चम्बल नदी की घाटियां तथा पश्चिम में गंगानगर से ग्वालियर तक मानते हैं।[6] प्रो० शेरसिंह भी

---

1. हरियाणा की लोकधर्मी नाट्य-परम्परा,
2. हरियाणा स्टडीज इन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, डा० के० सी० यादव, पृ० 6
3. पाणिनि कालीन भारत, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० 70
4. हरियाणा संवाद (संस्कृति विशेषांक), पृ० 45
5. हमारा राजस्थान, पृथ्वीसिंह, पृ० 95-96
6. वीरभूमि हरियाणा, आ० भगवान देव, पृ० 88

इसी मत के समर्थक हैं। डा० जगदेवसिंह दिल्ली प्रशासन तथा वर्तमान हरियाणा के बहुत से भाग को भाषाई तथा सांस्कृतिक दृष्टि से एक ही मानते हैं।[1] हरियाणा के प्रसिद्ध संत जेतरामदास जी ने आज से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व कहा था—

दिली मंडल देस बषानौं हरियाना कहलावै।
बागड़ जमना मध्य बिचाले सुखदाई मन भावे॥
ब्रज और घाघर मध्य हरियाना समझ विचारो भाई।
हरियाना आनन्द मन भाया जहां दूध दही सुखदाई॥[2]

मेरठ क्षेत्र तो सदियों से हरियाणा की सर्वखाप पंचायत का केन्द्र रहा है। श्री जैतरामजी द्वारा, वर्णित सीमाएं हरियाणा प्रदेश को एक सांस्कृतिक इकाई के रूप में काफी बड़ी सीमा तक ठीक-ठीक रेखांकित करती हैं। अतः हम अपने प्रयोजन के लिए हरियाणे की सीमाएं इस प्रकार मानेंगे—वर्तमान हरियाणा राज्य, मेरठ के आसपास का क्षेत्र, दिल्ली प्रशासन तथा राजस्थान के भरतपुर, अलवर तथा गंगा-नगर के ज़िले। हरियाणा के संत साहित्य के सम्यक् आकलन के लिए हरियाणा से लगने वाले पंजाब, दिल्ली, उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान के इलाकों को भी एक इकाई मानना संगत है। भले ही ये वर्तमान राजनैतिक सीमाओं में नहीं आते।

हरियाणा प्रदेश की कुछ ऐसी विशिष्ट प्राकृतिक स्थिति है कि गर्मी और सर्दी दोनों ही का चरम स्वरूप यहां देखा जाता है। जुलाई और अगस्त मास यहां मान-सूनी वर्षा के होते हैं। दिसम्बर-जनवरी में यहां महावट (माघ के महीने में होने वाली वर्षा) होती है जो असाढ़ी फसल के लिए अत्युत्तम गुणकारी है। कभी-कभी यहां मौसम की अकृपा के कारण सूखे का प्रकोप भी सहन करना पड़ता है। वैसे प्रकृति नटी अपने परिवर्तित परिवेश का जलवा छहों ऋतुओं में दिखाती रहती है। खादर, बांगर और बागड़ के रूप में यहां कई प्रकार की मिट्टी मिलती है जिसके परिणामस्वरूप नाना रूप गुणात्मक कृषि उत्पाद यहां इस बहुधान्यक भूमि से प्राप्त होते हैं। यहां के गेहूं और कई प्रकार के चावलों का विशद वर्णन 'हर्ष चरितम्' में बाणभट्ट द्वारा किया गया है। सभी खाद्यान्न दालें तथा फल इत्यादि प्रचुर मात्रा में यहां पैदा किए जाते हैं। दूध दही देने वाली गऊ तथा भैंस तो यहां के प्रसिद्धि प्राप्त पशु हैं। देश भर में हरियाणवी नस्ल के बैलों की प्रतिष्ठा और गुणवत्ता अप्रतिम है। वन्य पशु, जीव-जन्तु तथा पक्षियों के लिए भी यह भूमि अभय शरण स्थली रही है। किन्तु अब जनवृद्धि होने तथा वनों का पूर्ण अभाव होने के कारण बहुत सारे वन्य पशु-पक्षी लुप्त प्रायः हो गए हैं। मोर यहां का ज़माने से प्रसिद्ध पक्षी है। कृषि यहां के लोगों का प्रमुख व्यवसाय है। आधुनिक कृषि उपकरणों तथा सिंचाई

---

1. हरियाणा : एक भाषाई और सांस्कृतिक इकाई, जगदेवसिंह, पृ० 1
2. ग्रंथसाहिब, श्री जैतराम जी, पृ० 395

सुविधाओं को प्राप्त कर हरियाणा फिर से अपने 'हरिधान्यक' बहुधान्यक स्वरूप को प्राप्त कर चुका है।

हरियाणा : संस्कृति

हरियाणा की ऐतिहासिकता को लेकर विद्वानों में मतभेद है। कोई-कोई विद्वान (आचार्य भगवानदेव) तो करोड़ों वर्ष,[1] कोई लाखों वर्ष[2] और कोई-कोई 50-60 हजार वर्ष[3] हरियाणे की प्राचीनता का दावा करते हैं। अब तक की शोध एवं उत्खनन से यही सिद्ध हो पाया है कि हरयाणा में गुड़गांव जिला की अरावली पहाड़ियों में 2 लाख वर्ष पूर्व मानव रह रहा था। वह अत्यन्त सादा, गुहावासी तथा वल्कल-धारी था।[4] इसके पश्चात् हमें पूर्व हड़प्पा तथा हड़प्पा कालीन संस्कृति के प्रमाण सरस्वती तथा दृषद्वती नदियों के पुराने कांठों की खुदाई से प्राप्त हुए हैं। बाणवली ज़िला हिसार की खुदाई से एक पूरी बस्ती मिली है जिसका कालस्थापन 2700 ई० पू० से 2500 ई० पू० तक किया गया है। यहाँ गेहूँ, चना, चावल तथा खजूर के अवशेष प्राप्त हुए हैं। घरों में स्नानागार की व्यवस्था के चिह्न भी हैं।[5] राखी गढ़ी (हिसार), मीताथल (भिवानी), फतेहाबाद तथा रोहतक के निकट खोखराकोट तथा अस्थलबोहर की खुदाई से भी प्राक्हड़प्पाकालीन तथा यौधेय-कालीन हरियाणा की स्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।[6]

हरियाणा वैदिक सभ्यता की जन्भूमि है। कीथ और हापकिंस महोदय के विचार से वेदों की रचना सरस्वती के तटों पर ही हुई।[7] इन वैदिक जनों में भरतों, पुरुओं, पांचालों का तथा कुरुओं का नाम अधिक प्रसिद्ध है। इनमें भी विशेषकर कुरुओं के पूर्वज कुरु अपनी कर्मठता, नीति निपुणता तथा वीरता के लिए प्रसिद्ध हैं। इनकी राजधानी कुरुक्षेत्र थी। इन्होंने कृषि व्यवसाय की अधिक वृद्धि की। कुरू ने यमुना पार करके गंगा तक के प्रदेश को जीत लिया था। वामन पुराण में इसका विस्तृत वर्णन है। महाभारतकाल तक यह प्रदेश खूब समृद्ध रहा। महाभारत तो हरियाणा के इतिहास का अविस्मरणीय तथा प्रामाणिक अध्याय है ही।

महाभारत काल के पश्चात् जो छोटे-छोटे जन यहां बन गए थे वे प्रदेश की व्यवस्था नहीं कर सके। ई० पूर्व चौथी शताब्दी में यहां चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन हो गया था। उस समय की घटानाएं तो प्रायः प्रामाणिक और प्रचुर मात्रा में देशी

1, 2, 3 डा० के० सी० यादव, कु० वि० वि० स्मारिका, 1977, पृ० 2

4. वही, पृ० 2

5. श्री जगतपति, सा० हि० हरियाणा विशेषांक (नवम्बर, 1976), पृ० 17

6. वही, पृ० 18

7. डा० हरिअनन्त फड़के, स्मारिका, पृ० 72

तथा विदेशी इतिहासों में प्राप्त हैं। 233 ई० पू० में मौर्य वंश का पतन होने पर हरियाणा पर यहां के यौधेय, अर्जुनीय, अग्रोदक तथा कुविन्द गणों का आधिपत्य हो गया। यौधेयकालीन हरियाणा का बड़ा मनोहारी वर्णन सोमदेव सूरी कृत 'यशस्तिलकम्' में प्राप्त होता है जिसका समय 929 ई० से 959 ई० तक बतलाया जाता है।[1]

मौर्य काल की समाप्ति पर यहां के गणों को बैक्टेरियन, ग्रीक, पार्थियन, तथा कुषाण आततायियों का सामना करना पड़ा। कुषाणकालीन स्तम्भों, शिला-लेखों, तथा मुद्राओं से तत्कालीन हरियाणा पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।[2] 325 ई० के आसपास हरियाणा गुप्त राज्य का अंग बन गया। इससे सम्बन्धित गुप्तकालीन साक्ष्य भी प्रचुर मात्रा में प्राप्त हैं गुप्तों के पश्चात् यहां वर्द्धमान वंश का आधिपत्य हो गया जो हर्ष वर्द्धन तक चलता रहा। 'हर्ष चरितम्' में बाणभट्ट ने हरियाणा का बड़ा चित्ताकर्षक वर्णन एक समृद्ध प्रदेश के रूप में किया है।[3] इसके पश्चात् यहां तोमर वंश का शासन रहा जिसकी राजधानी दिल्ली थी। यहीं से हरियाणा का ही नहीं थोड़े से दक्षिण को छोड़कर समूचे राष्ट्र का भाग्य निर्णय विदेशियों के हाथ रहा है। सुल्तान युग, मुगलकाल तथा अंग्रेजी शासन तक व्याप्त सहस्र वर्षों की दासता का इतिहास सर्वविदित है।

हरियाणा के प्रसिद्ध नगर अपने आप में एक बहुत लम्बा और प्रामाणिक इतिहास लिए हुए हैं। इनमें प्रमुख ये हैं जिनका धर्मग्रंथों तथा प्राचीन साहित्य में विवरण मिलता हैं—कुरुक्षेत्र, महित्थम् (महम), रोहितकम् (रोहतक), अग्रोदक (अग्रोहा), शैरिशक (सिरसा), असन्धिवत (असंध), जयन्ती (जींद), युगन्धरा (जगाधरी) कपिस्थल (कैथल), पृथुदक (पहेवा), कर्दनाल (करनाल), पाणीप्रस्थ (पानीपत), सरस्वती नगर (फतेहबाद), कपिलतीर्थ (कलायत), पद्मनाभ, (पबनावा), श्रोणीप्रस्थ (सोनीपत), रोनी (रोड़ी, हिसार), सुध्न (सुघ), कालकूट (कालका), गौड़पुर, गौड़ग्राम (गुड़गांव) आदि। इन सभी नगरों का इतिहास इनके आसपास किए गए उत्खनन कार्य से प्राप्त मुद्राओं, मूर्त्तियों तथा शिलालेखों में सुरक्षित है।[4] आचार्य भगवानदेव जी के प्रशंसनीय प्रयासों से गुरुकुल झज्जर में एक संग्रहालय स्थापित किया गया है। यहां पर संग्रहीत हजारों प्राचीन मुद्राएं तथा मुद्रांक, हस्तलिखित लेख तथा सर्वखाप पंचायत संबंधी हजारों वर्ष पुराना रिकार्ड हरियाणा के इतिहास को एक नवीन तथा प्रामाणिक रूप प्रदान कर सकता है।

---

1. आचार्य भगवानदेव, वीरभूमि हरियाणा, पृ० 126
2. श्री जगत्पति, सा० हि० हरियाणा विशेषांक, पृ० 18-19
3. धर्मयुग, हरियाणा विशेषांक, पृ० 18
4. आचार्य भगवान देव, हरयाणा के प्राचीन मुद्रांक

जातियाँ

देश से अन्य राज्यों की भांति हरियाणा में भी अनेक जातियां मिलती हैं। 'छत्तीस जात साझला'—यहां एक लोकोक्ति प्रचलित है। हरियाणा में ऐसी कोई भी संस्था अथवा स्थान जो सभी जातियों के काम आती हो, उसे 'छत्तीस जात साझला' कहते हैं। इस छत्तीस का अर्थ हैं अनेकशः। इस अर्थ की पुष्टि संत गरीब दास जी की बाणी से भी होती है। ग्रंथ साहिब (गरीबदास जी की बाणी) में पृष्ठ 451 पर 'अथ कौम छत्तीस का ग्रंथ' सम्बन्धी 49 साखियां हैं।[1] इसमें गरीबदास जी ने जातियों का लाक्षणिक तथा उपदेशात्मक विवरण दिया है। उन्होंने 90 के करीब जातियां गिनवाई हैं। लगता है धार्मिक विश्वास के आधार पर, तथा गुण-कर्म के आधार पर गरीबदार जी ने कुछ अधिक जातियां गिनवा दी हैं। गुण-कर्म के आधार पर उपदेश देने के लिए गिनाई गई जातियों को निकाल देने पर भी 'छत्तीस कोम' बच ही जाती हैं, जो इस प्रकार हैं—जाट, अहीर, बनिया, रहनारी, कायम, खतरी, धोबी, नाई, तेली, कोली, जूलहा, गूजर, सुनार, माली, छीपी, झींवर, सिक्का, खाती, चमार, बादी, चूहड़ा, सांसी, बाबरी, ओड, बजाज, कलाल डूम, भाट, मींणा, मनियार, कसाई, सैयद, पठान, ब्राह्मण, बैरागी इत्यादि। सो इस प्रकार हरियाणवी समाज बहुरंगी तथा बहुवर्णी है। विवाह सजातीय होते हैं किन्तु सगोत्रीय नहीं। ओड, डूम, शेख तथा कसाई इत्यातु कुछ मुस्लिम जातियां विभाजन के समय पाकिस्तान चली गई हैं। यह विवरण महाराज गरीबदास जी की बाणी के आधार पर दिया गया है जो लगभग 225 वर्ष पहले का है।

धर्म तथा दर्शन

भारतीय धर्म तथा दर्शन के इतिहास में हरियाणा प्रदेश का विशिष्ट तथा महत्वपूर्ण स्थान है। वैदिक ऋचाओं की सृष्टि इसी प्रदेश में सरस्वती के तटों पर हुई। गीता का उद्घोष इसी धर्मक्षेत्र में भगवान श्रीकृष्ण द्वारा किया गया। आस्तिक तथा नास्तिक दर्शनों का प्रणयन इसी भूमि पर हुआ। शैव, शाश्वत तथा वैष्णव भक्तों की लीलाभूमि रही है। बौद्ध तथा जैन धर्म भी यहां पल्लवित-पुष्पित हुए हैं। सिद्धों और नाथों के अखाड़े और मठ भी यहां बहुत हैं। संतों का यहां सर्वाधिक बोलबाला है। हरियाणा के मठ, मन्दिर देवालय, शिवालय, समाधियां, इत्यादि यहां की धर्म तथा दर्शन की थाती के सबल प्रमाण हैं।

हार्पकिंस तथा कीथ महोदय के विचार से ऋगवेद की रचना सरस्वती के तटवर्ती प्रदेशों में ही हुई।[2] वैदिक वाङ्मय—संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों तथा

---

1. ग्रंथ साहिब, गरीबदास जी की बाणी, 1964, पृ० 451
2. डा० हरिअनन्त फड़के, स्मारिका, पृ० 72

उपनिषदों का प्रणयन भी यहीं सरस्वती तट पर हुआ। जो वेदों, ब्राह्मणों और उपनिषदों की सुदीर्घ चिन्तन प्रणाली का फल है, उस गीता का उपदेश इसी हरियाणा भूमि के धर्म क्षेत्र कुरुक्षेत्र में ही दिया गया।[1] वैदिक ऋषि-मुनियों के अनेक आश्रमाविशेष आज भी यहां विद्यमान हैं। च्यवनऋषि का आश्रम ढोसी की पहाड़ी में स्थित है। दुर्वासा ऋषि दूबलधन में तपस्या करते थे। कपिल मुनि यहां कलायत में ही निवास करते थे। वशिष्ठ तथा व्यास की जन्म तथा कर्म भूमि होने का श्रेय इसी हरियाणा को है। शैव परम्परा का परिचय तो यहाँ के गांव-गांव में स्थिति शिवालय देते ही हैं। शिव यहां के सर्वप्रिय देवता है। इसी कारण कई विद्वान् 'हर-याण' से ही हरयाणा की व्युत्पत्ति मानते हैं। स्थाणीश्वर का शिव-मन्दिर तथा रोहतक का गौकरण शिवालय देश के प्राचीनतम शिवालय हैं।[2] शक्त मत के अवशेष देवी-पूजा के रूप में अब भी विद्यमान हैं। कहते हैं कि शिव पुत्र कार्तिकेय की राजधानी रोहतक ही थी। कुरुक्षेत्र में अशोक स्तूप तथा अस्थलबोहर के निकट पाई जाने वाली मूर्तियाँ यह सिद्ध करती है यहां बौध धर्म भी लोकप्रिय रहा है।[3] सिद्धों और नाथों को तो हरियाणा अखाड़ा रहा है। पेहवा बारहपंथी नाथों का बड़ा अखाड़ा है। अस्थल बोहर में सिद्ध चौरंगी नाथ की समाधि है। आगे चलकर वही अस्थलबोहर पागलपंथी और आई पंथों नाथों का बड़ा मठ बना मठ बना जिसे सिद्ध मस्तनाथ जी ने फिर से प्रसिद्ध किया।[4] मस्तनाथ जी की शिष्य परम्परा में बाबा तोतानाथ, मेघनाथ, मोहरनाथ, चेतनाथ, पूर्णनाथ तथा श्रेयोनाथ हैं। महंत श्रेयोनाथ ने लोक कल्याणार्थ एक सामान्य तथा नेत्र चिकित्सालय खुलवा रखा है। आयुर्वेदिक कालिज भी महंतजी का कीर्तिस्तम्भ है। हरियाणा में नाथपंथियों के सैंकड़ों प्रसिद्ध मठ हैं, जिनमें से प्रमुख हैं—बोहर, खोत, उचाना, खरक, पेहवा, क्योड़क, सांघोल, नाहरी, बालंद, भम्भेवा, बलंबा, मोखरा, खिलाना, धनौरी इत्यादि।[5] मध्यकालीन धर्मसाधना में सगुणोपालक भक्तों का अपना विशिष्ट स्थान है। ब्रजमण्डल जो भगवान कृष्ण की लीलाभूमि है इस हरियाणा का अपना ही एक भाग रहा है। यहां के कृष्णभक्त भी किसी से कम नहीं है। अकेले सूरदास ही कृष्णभक्तों में नाम लेने के लिए पर्याप्त है। इनकी जन्म-भूमि गुड़गांवा जिला में ही है। हरियाणा के धार्मिक इतिहास में सूफी सम्प्रदाय

---

1. डॉ० हरिअनन्त फड़के, स्मारिका, पृ० 91
2. श्री देवीशंकर प्रभाकर, हरियाणा : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 40
3. जगत्पति, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, हरियाणा विशेषांक, नवम्बर, 76, पृ० 18-19
4. हजारीप्रसाद द्विवेदी, नाथ सम्प्रदाय, पृ० 187
5. योगी शंकरनाथ, अस्थल बोहर का इतिहास, वृ० 2027 सम्वत्।

का भी विशेष योगदान है। यहां सूफी मत का चिश्ती सम्प्रदाय ही प्रमुख रहा है। फरीदुद्दीन मसूद गंजशहर (1126-1265 ई०) जो शेख फरीद के नाम से प्रसिद्ध है, और जिनकी लोकप्रियता तथा धार्मिक क्षेत्र की महनीयता इसी से सिद्ध हो जाती है कि इनके 134 पद गुरुग्रंथ साहिब में संकलित हैं।[1] शरफुद्दीन बू अली कलंदर जिनका पानीपत में मकबरा है एक बहुत बड़े सूफी साधक हुए हैं जिन्होंने पानीपत के आस-पास के बहुत से हिन्दुओं को अपने प्रभाव में मुसलमान बना लिया था। शाह अमानुल्लाह एक और प्रसिद्ध सूफी साधक हुए हैं। गुलाम जीलानी रोहतकी भी एक महत्वपूर्ण सूफी फकीर हुए हैं जिनपर वेदान्त दर्शन तथा वैष्णव भक्तों का बड़ा प्रभाव पड़ा था।[2]

हरियाणा की धर्म-दर्शन सम्बन्धी चर्चा सन्तों के अभाव में एकांगी ही रहेगी। जिस धर्म, मत एवं सम्प्रदाय से यहां का जन-मानस आज भी अत्यधिक प्रभावित है वह यहां उद्भूत एवं पल्लवित होने वाली संत-परम्परा है। हरियाणवी जनमानस को मानवीय मूल्यों के प्रति सचेतन करने, जीवन के प्रति आस्था जगाने तथा श्रमधर्म को लोक में प्रतिष्ठित करने में निश्चय ही संतों का महत् योगदान है। संतों में सबसे पहला नाम कबीर के गुरुभाई धन्ना जाट का आता है। इनके चार पद गुरु ग्रंथ साहब में भी संकलित हैं। जाट खेतिहार होने से तथा प्रत्येक हरियाणवी संत द्वारा समादृत होने से अनुमान तो यही होता है कि ये इसी हरियाणा भूमि के रहे होंगे। किन्तु इनका जन्म राजस्थान के धुआन गांव में सन् 1415 ई० में हुआ बतलाते हैं।[3] दादूदयाल और उनके शिष्यों—संत बनवारीदास, निश्चल-दास तथा हरिदास इत्यादि का भी यहां बड़ा प्रभाव रहा है। इनके सैंकड़ों द्वारे हैं किन्तु रतिया, किड़हौली तथा राणीला इनके प्रमुख ठिकाने हैं। उदादास जी द्वारा प्रवर्तित साध-सम्प्रदाय भी यहां पर्याप्त प्रभावशाली रहा है। कबीरपंथी संतों में यहां कई बड़े उच्चकोटि के सन्त हुए हैं। सर्वाधिक प्रभावशाली हरियाणवी सन्त गरीबदास जी तो कबीर का ही अवतार माने जाते हैं हालांकि इनके नाम पर गरीब पन्थ अलग से बन गया है। चरणदासी संतों के भी यहां बीसों मन्दिर हैं। उदासी अवधूत भी यहां किसी से पीछे नहीं रहे। सिक्खों के अनेक सम्प्रदायों—जैसे नामधारी, निर्मले तथा निरंकारी इत्यादि के गुरुद्वारे यहां हर बड़े नगर तथा कस्बे में मिल जाएंगे। राधास्वामी सम्प्रदाय भी यहां काफी सक्रिय है। बेनामी साधुओं का भी यहां अपना एक अलग ही प्रभाव क्षेत्र है। घीसा पन्थ किसी से पीछे नहीं है, इनका प्रभाव क्षेत्र भी काफी विस्तृत है। खेकड़ा तथा नाहरी इनके बड़े

---

1. डा० मनमोहन सहगल, गुरु ग्रंथ साहब : एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण, पृ० 23
2. डा० साधुराम शारदा, हरियाणा साहित्य विशेषांक, सप्त सिन्धु, पृ० 86
3. डा० मनमोहन सहगल, गुरु ग्रंथ साहिब : एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण, पृ० 28

ठिकाने हैं। परमानन्दी भी अपनी तरह से प्रचाररत हैं। नांगी पंथी तथा नितानन्दी भी अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। आगे इन सन्त सम्प्रदायों के सम्बन्ध में विस्तार से बातें करने का पर्याप्त अवसर हमें मिलेगा। यहां इनके नामोल्लेख का केवल इतना ही तात्पर्य है कि संतों के अनेक सम्प्रदाय अपनी लोकप्रियता तथा उपयोगिता का सबल प्रमाण इस धरती पर देते रहे हैं और आज भी दे रहे हैं, वैसे तो हर मत या धर्म का कुछ न कुछ प्रभाव यहां मिल ही जाएगा किन्तु हरियाणवी लोकचित पर साम्राज्य संतों का ही है। आर्य समाज—जो अर्ध-धार्मिक संस्था है—यहां संतों से दूसरे नम्बर पर काफी लोकप्रिय है। गुरुकुल प्रणाली को फिर से जीवित करना तथा सामान्य जनता से अंधविश्वासों एवं रूढ़ियों को समाप्त करने का बहुत बड़ा काम आर्यसमाज ने ही सम्पन्न किया है।

सांस्कृतिक परिवेश

यहां संस्कृति को परिभाषित तथा स्वरूप विवेचन न करके केवल इतना ही कहना काफी है कि जीवन के नाना पक्ष मिलकर सांस्कृतिक परिवेश का निर्माण करते हैं। मोटे तौर पर भौगोलिक परिवेश, इतिहास, धर्मदर्शन, लोकरूढ़ियां, संस्कार, लोकरीति, कला, विश्वास और नैतिकता आदि संस्कृत के निर्णायक तत्व हैं। हरियाणा के सांस्कृतिक परिवेश को समझने के लिए इनको संक्षेप में समझ लेना आवश्यक है। इस प्रदेश के ऐतिहासिक, भौगोलिक परिवेश तथा धर्म-दर्शन का परिचय संक्षेप में पीछे दिया जा चुका है। यहां सांस्कृतिक परिवेश में हरियाणा के लोकजीवन का आकलन कर लेना आवश्यक है।

श्री जैतराम जी महाराज की बाणी में एक पद 'हरियाने की मेहमा' नाम से आया है। इस पद में जेतराम जी ने हरियाणवी लोकमानस एवं लोक जीवन का सार रूप में दिग्दर्शन कराया है। संत लोक संस्कृति के प्रबुद्ध वैतालिक हैं। लोक-जीवन के भुक्तभोगी एवं सूक्ष्म पारखी होने के नाते संतों का साक्ष्य अधिक प्रामाणिक समझा जाना चाहिए। इनके साक्ष्य लोकजीवन की हो तरह बड़े सहज और सटीक होते हैं। महाराज जेतराम जी के साक्ष्य का आधार लेकर हरियाणा के सांस्कृतिक परिवेश को रेखांकित करने में सुविधा होगी।

'हरियाना आन्नद मन भाया जहां दूध दही सुखदाई।'
'दूध दही मन मान्या होई कोई जन विरला खाली।'[1]

आहार-व्यवहार

हरियाणवी लोग बहुलांश में निरामिष भोजी हैं। दूध और इससे बनने वाले

---

1. ग्रन्थ साहिब, श्री सदगुरु जैतराम जी की बाणी, पृ० 395

पदार्थ ही यहां लोकप्रिय हैं। आहार में सादगी बरती जाती है दाल, रोटी, दलिया खिचड़ी, (गास), राबड़ी, खेतों में उगने वाले चौलाई, कोंधरा, पवाड़ तथा बथुआ का तीमण एवं रायता बड़े प्रिय खाद्य हैं। सब्जियों में चने तथा सरसों का साग भी महत्वपूर्ण है। गेहूं, जौ, चना, बाजरा, ज्वार इत्यादि प्रमुख खाद्यान्न हैं। हलवा-खीर को भोजन में बड़ा ऊंचा स्थान प्राप्त है। किन्तु दूध, दही, छाछ, मक्खन तथा घी समयानुसार भोजन के अपरिहार्य अंग हैं। दूध दही की यहां प्रचुरता है। कोई ही दरिद्र इन पौष्टिक पदार्थों से विहीन मिलेगा। अब ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लड़-खड़ाने से लोग दूध बेचकर आजीविका का जुगाड़ करते देखे जाते हैं। फिर भी इस प्रदेश में देश के शेष भागों की अपेक्षा दूध-दही का बाहुल्य है।

आहार और व्यवहार का चोली-दामन का सम्बन्ध है। प्रसिद्ध है कि 'जैसा खाएं अन्न वैसा होज्या मन्न'। तथा 'जैसा पीवे पाणी वैसी बोले बाणी' आहार का आचरण पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। यहां का लोकाहार सादा एवं सात्विक होने से लोक व्यवहार भी सादा और सात्विक है। श्री जेतराम जी की बाणी में भी आया है—

'जीव हिंसा जहां नाहीं कराही, मदिरा भषै न कोई।
भगति रीति सबही व्योहारा, बिघन करें नहीं कोई॥[1]

× × ×

ऐसा है हरियाना दीपं कन्या हतै न कोई।
भगति रीत सब ही व्यौहारा कुटिल करम सब खोई॥
कुटचलनी त्रिया कोई नाही मरजाद रूप व्यौहारा॥[2]

लोक व्यवहार में अहिंसा का पालन कड़ाई से किया जाता हैं। मदिरा-पान निषिद्ध प्राय है। यहां कन्या-वध नहीं किया जाता जब कि 200 साल पहले तक हरियाणा के पड़ौसी राज्य राजस्थान में कन्या को जन्मते ही मार दिया जाता था। लोकव्यवहार में भक्तिमार्गीय विधि निषेध सा ही विधान है। अधिकांश जनता बड़ी सरल चित्त और निरीह है। स्त्रियां पातिव्रत धर्म का पालन करती हैं। स्त्री-पुरुष, दोनों का ही व्यवहार बड़ा मर्यादित एवं लोकानुशासित है।

'राम नाम सुमरन मन मान्या कर में शस्त्र डंडा।'

× × ×

अतिसुन्दर नीकी नर काया, सब के मुख पर लाली।'[3]

---

1. ग्रन्थ साहिब, श्री सदगुरु जैतराम जी की वाणी, पृ० 395
2. वही, पृ० 395
3. जैतराम जी की बाणी, पृ० 395

लोक-छवि

सादा एवं सात्विक आहार-व्यवहार, मन से आस्तिक, तन से सुडौल एवं बलिष्ठ, ऊर्जादीप्त मुखमण्डल, चमरौधा जूता, धोती, कुरता एवं पगड़ी धारण किए तथा हाथ में लाठी लिए हुए जो छवि सी बनती है वह हरियाणा की टिपिकल लोकछवि है। देश के किसी भी प्रदेश के लोग इतने सुडौल एवं शक्तिशाली नहीं हैं।[1] आर्यों के शारीरिक लक्षण हरियाणा निवासियों में आज तक सुरक्षित हैं स्त्री-पुरुष दोनों ही अपने शारीरिक गठन, सौन्दर्य और शक्ति के लिए प्रसिद्ध हैं। निश्चय ही हरियाणा-निवासी अपनी वेष-भूषा एवं डीलडौल के कारण विरल हैं।

लोक-व्यवसाय

वामन पुराण में राजा कुरु के सोने का हल जोतने का आख्यान आया है। महाराज जैतराम जी ने भी लिखा है कि—'खेती बनज करें मन मान्या, कहीं न भटका खावैं।[2] कृषि तथा व्यापार ही यहां का प्रमुख व्यवसाय रहा है। बाद में तो यहां के युवकों ने सेवा में भी बड़ा नाम कमाया है। समय के साथ-साथ कृषि पर निर्भरता कम होती जा रही है तथा अन्य सेवाओं का आश्रय लिया जा रहा है। 'उत्तम खेती, मध्य बान, अधम चाकरी भीख निदान' के अनुसार यहां भी कृषि कर्म को ही श्रेष्ठ और नौकरी को हीन माना गया है।

लोक-संस्कार

हरियाणवी समाज में तीन संस्कारों को बहुत प्रमुखता दी जाती है—जन्म, विवाह और मृत्यु। पुत्र-जन्म तथा विवाह के अवसर पर निर्धन से निर्धन भी, ऋण लेकर ही सही, अपने इष्ट मित्रों, सगे-सम्बन्धियों आदि के लिए भोज इत्यादि की व्यवस्था करता है। मृत्यु को भी एक बड़ी चीज माना जाता है। यह तो महा संस्कार है और अन्तिम भी।

'गया परयाग पिंड भरावै, पितरों कारण जाई,
गंगा जमना फूल जो डारे, गरड़ बचावै आई।।[3]

मृत्यु के तीसरे दिन कुछ अस्थियां (फूल) चुन ली जाती हैं तथा यमुना अथवा गंगा में प्रवाहित की जाती हैं जिससे कि विदा लेने वाले की आत्मा को शान्ति प्राप्त हो जाए। गया तथा प्रयाग में से किसी एक तीर्थ पर जाकर 'पिंड भराया जाता' है

---

1. दूध बिलोवैं चाकी पिस्सें घर की बड़ी बडेरी।
   हरियाणे के वीर शूरमा रण में दाहड़ै केहरी।
2. जैतराम जी की बाणी, पृ० 395
3. वही, पृ० 398

या 'पिंड दान' किया जाता है जिससे मृत को सद्गति प्राप्त हो जाए। मृत के घर में 'गरुड पुराण' का पाठ करवाया जाता है ताकि जाने वाले के प्रति परिवार-जनों की मोहासक्ति कम हो जाए तथा वे आघात को सहज ही झेल जाएं।

तीर्थ-व्रत

'गंगा जमना भाव पिछानै, लोहागार पोहकर को जाई।[1]

हरियाण निवासी गंगा-यमुना के प्रति बड़े आस्थावान हैं। गंगा और यमुना में स्नान करके अपने को अहोभाग्य मानते हैं। गंगा स्नान के पश्चात् हर तीर्थ करने वाला वापसी पर गंगा जल लाता है जिसका प्रयोग जन्म, विवाह तथा मृत्यु आदि संस्कारों के अवसर पर किया जाता है। मरने वाले के मुंह में दो बूंद गंगा-जल पड़ जाए, बस गति हो गई गंगा तथा यमुना के प्रति यहां के लोगों की आस्था अति की सीमा तक है। यहां के लोग लोहागर (शायद गढ़ मुक्तेश्वर) तथा पुष्कर तीर्थ को भी बहुत महत्व देते हैं। होई का व्रत, करवा चौथ इत्यादि स्त्रियों के व्रत हैं। एकादशी, शिवरात्रि, जन्माष्टमी तथा अमावस्या इत्यादि के व्रतों का अनुष्ठान भी यहां किया जाता है ताकि गृहस्थी सुचारु रूप से चलती रहे। श्राद्ध-पक्ष में अपने मृत पूर्वजों के प्रति श्राद्ध-दर्शाने के लिए ब्रह्म-भोज की व्यवस्था की जाती है।

अति जाजुल करम नहीं कोई करें सो बहु पछिताना,
तातैं करम कोई जन करि हैं और कहें क्यों कीन्हा,
जाकू सब मिलकर समझावे फिर संकल्प भर दीन्हा।।[2]

लोक-नीति

ग्रामीण समाज में आपसदारी, भाई-चारा, बड़ो के प्रति सम्मान आदि ऐसी कुछ चीजे हैं जो लोकनीति अथवा नियन्त्रण का काम करती हैं। असल में तो कोई लोकनिषिद्ध कर्म करता ही नहीं है। और यदि किसी से कोई हेय कर्म बन भी गया तो वह पश्चाताप करता है। औरों का ऐसा भय कि आसपास बड़े छोटे क्या कहेंगे, यहां का लोक जीवन में नियमित-संयमित रहता है समाज-निन्दा का बड़ा भय होता है। यदि कोई बड़ा अपराध किसी से हो जाए तो बड़े बूढ़े पंचायत के रूप में मिल-बैठकर अपराधी से फिर ऐसा न करने का संकल्प करवा लेते हैं। ग्राम स्तर की समस्याओं का निराकरण ग्राम पंचायतें करती हैं। खाप स्तर की सामाजिक समस्याओं का निराकरण खाप पंचायतें करती हैं तथा प्रदेश के महत्व की सामाजिक, आर्थिक नतिक समस्याओं का निराकरण सर्वखाप पंचायत द्वारा किया जाता

---

1. जैतराम जी की बाणी, पृ० 395
2. वही, पृ० 395

है। प्राचीन काल से हरियाणा में सर्वखाप पंचायत तथा स्थानीय पंचायतों का बहुत बड़ा महत्व रहा है। विभिन्न कालों के सर्वखाप द्वारा लिए गए निर्णयों का राजाओं, सम्राटों, तक ने सम्मान किया है। गुरुकुल झज्जर में पुरातत्व संग्रहालय में सर्वखाप पंचायत का पिछली कई शताब्दियों का रिकार्ड सुरक्षित है।

किसी भी समाज में आचारित मूल्य उसके सारे परिवेश के मूल्यों के समुच्चय होते हैं। हरियाणा भूमि कृषिप्रधान है। कृषक किसी भी देश अथवा समाज से सम्बन्ध रखता हो, उसमें साहाप्य, सहानुभूति, सत्य, अहिंसा, अचौर्य इत्यादि स्वभावतः ही होते हैं। और फिर हरियाणा तो धर्मभूमि ही है, अतः इसमें इन सभी आदर्शों के अतिरिक्त आस्तिकता, सेवा-भाव तथा दान-दाक्षिण्य इत्यादि अतिरिक्त मूल्य भी विद्यमान हैं। इन सभी आदर्शों की साक्षीय यहां का सरल-हृदय, उदार-चेता कृषक अपने दैनन्दिन आचरण के द्वारा देता हुआ देखा जा सकता है। संत की गवाही भी है :--

'जीव हिंसा जहां नाही कराहीं, मदिरा भषै न कोई'।
तीर्थव्रत करें सब प्रानी, चोरी जारी खंडा।
'बिन अस्नान न भोजन पावैं, सहज मते सुखदाई'।
'अपने अपने हीले मांही, करम लिखा सब पावैं'।1—इत्यादि।

लोकानुरंजन

यहां के मेले, पर्व-त्यौहार, सांग, कृष्णलीला एवं रामलीला, भजन, आल्हा, जोगियों के किस्से तथा विभिन्न संस्कारों के अवसरों पर किए जाने वाले आयोजन तथा गीत एवं लोकधर्मी नाट्य रूप लोकानुरंजन के प्रमुख तथा प्रभूत साधन हैं। ग्रामीण समाज में मनोरंजन के उक्त साधन सहज-सुलभ तथा सस्ते हैं जिनमें उनकी सरलता, नर्म चटुल हास-परिहास की प्रवृत्ति तथा प्रत्युत्पन्नमतित्व के दर्शन होते हैं। लोकानुरंजन की नाट्यधर्मी अनेक विधाओं का विवेचन मेरे आत्मीय मित्र डा० पूर्णचन्द्र शर्मा ने अपने शोध-प्रबन्ध—'हरियाणा की लोकधर्मी नाट्य-परम्परा' में बड़े सुन्दर ढंग से किया है। जैतराम जी के अनुसार—

'कथा-कीर्तन नावन ध्यावन गीता पाठ कराहीं,
श्रवण सुनैं भागवत सब लीला राम-राम मुख गांहीं।।'[2]

---

1. जैतराम जी की बाणी, पृ० 395
2. वही, पृ० 395

लोकधर्म

हरियाणा के लोकमानस में सन्तों के प्रति अगाध श्रद्धा है। यहां के लोगों का विश्वास है कि सन्तों का सम्पर्क और उनकी सेवा से सहज ही स्वर्ग की प्राप्ति हो जाती है। एक लोक-प्रचलित पद में इस तथ्य का उद्‌घाटन इस प्रकार किया गया है—

मात-पिता और सन्त गुरु की करणी सेवा चाहिए।
इन चारों के चरण पूज के सुर्ग लोक मैं जाइए।।

संत जैतराम की वाणी में भी सन्त-सान्निध्य को गंगा-यमुना के स्नान की भान्ति शुभ फलदायक माना गया है—

अनजल भोजन मन के भाये, भगति रीति सहनांना,
संत समागम सेवा करिही, गंगा जमना न्हाना।।'[1]

आदिकाल में ब्रह्मावर्त का जो सारस्वत प्रदेश (हरियाणा) वेद ऋचाओं से अनुगुंजित था वही 'हरियाणा देस' आज संत समागम (संत संगति या सतसंग) में गाए जाने वाले संतों के पदों और साखियों से गमकता रहता है। अपने अनुसंधान के दौरान मुझे हरियाणा के पूर्व से पश्चिमी तथा उत्तर से दक्षिण के एक-एक गांव को देखने का अवसर मिला है। हर कहीं सन्तों का बोल-बाला है। वैसे यहां के जन मानस को संत मत अब तक के सभी धर्म मतों से अधिक अनुकूल लगता है। सन्तों की समाधियों, गद्दियों, तथा ठिकानों पर तो पाक्षिक, मासिक, तथा वार्षिक सत्संग होते ही हैं, इसके अतिरिक्त प्रायः हर गांव में रात्रिकालीन अवकाश में या फुर्सत के दिन संतों की वाणियों का गायन तथा पाठ होता है। इकतारे पर सत्संगी भाई पदों-शब्दों को बड़े श्रद्धासिक्त भाव से गाते हैं। सन्तों की सहज साधना तथा लोकोपकारी स्वभाव ही इनकी लोकप्रियता का बड़ा कारण है। मेरे विचार से तो यदि आज हरियाणा का कोई लोक धर्म है तो वह संतमत ही है। इसका सर्वांग विवेचन करने का आगे अवसर आएगा।

---

1. जैतराम जी की बाणी, पृ० 395

अध्याय 2

संत, संतमत और हरियाणा के संत सम्प्रदाय

संत

'संत' शब्द का प्रयोग प्रायः बुद्धिमान, पवित्रात्मा, सज्जन, परोपकारी, सदाचारी आदि के अर्थ में किया जाता है। कभी-कभी इसे भक्त, साधु एवं महात्मा जैसे शब्दों का भी पर्याय मान लिया जाता है।[1] जहां तक इस शब्द की व्युत्पत्ति का प्रश्न है, कुछ लोग इसे शांत शब्द का रूपान्तर मानते हैं तो कुछ अन्य लोग इसे 'संति' वा 'संत्य' का विकृत रूप मानते हैं।[2] हिन्दी की आधुनिक पारिभाषिक मर्यादा को ध्यान में रखकर विचार करने वाले संत शब्द में अंग्रेज़ी के 'सेन्ट' शब्द की अर्थछाया का भी स्पष्ट अनुभव करते हैं।[3]

'संत' शब्द की व्युत्पत्ति, अर्थ तथा प्रयोग को समझने-समझाने का प्रयास संत-साहित्य पर काम करने वाले प्रायः सभी विद्वानों ने किया है। अर्थ वैज्ञानिक आधारों पर 'संत' शब्द के अर्थ और प्रयोग को समझाने का व्यवस्थित और सुन्दर प्रयास डा० राजदेव सिंह ने—'शब्द और अर्थ : संत-साहित्य के सन्दर्भ में'; 'संतों का भक्तियोग; 'संत साहित्य : पुनर्मूल्यांकन'—आदि कृतियों में किया है। हिन्दी में संत शब्द के प्रयोग की समीक्षा करते हुए उन्होंने 'संत' के दो तरह के अर्थों का उल्लेख किया है—संत का परम्परास्वीकृत सही अर्थ और संत का प्रचलित अर्थ। उनका कहना है कि—'जहां तक संत शब्द के सही अर्थ का सवाल है ऋग्वेद से

---

1. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० 4
2. वही, पृ० 4-5
3. डा० राजदेव सिंह, संतों की सहज साधना, पृ० 21

लेकर आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के साहित्य तक इस पर कोई विवाद नहीं है। कोशग्रंथों में 'संत' शब्द को लेकर कोई विवाद नहीं मिलता।..... लेकिन इस बात को मानना पड़ेगा कि बीसवीं शताब्दी में, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली में जब 'संत' शब्द को स्वीकार किया गया, उस समय इस शब्द के दो अर्थ वर्तमान थे—एक इसका सही अर्थ और दूसरा इसका प्रचलित अर्थ। संत शब्द की पारिभाषिक मर्यादा को समझने के लिए इन सही और प्रचलित अर्थों को समझना आवश्यक है।'[1]

ऋग्वेद[2] और तैत्तिरीय उपनिषद्[3] में इसका प्रयोग 'एक' एवं अद्वितीय परम-तत्व के लिए किया गया है। महाभारत में इसका प्रयोग सदाचारी के लिए किया गया है।[4] भागवत में यह पवित्रात्मा के लिए प्रयुक्त हुआ है।[5] भर्तृहरि ने 'संत' शब्द को परोपकारी के अर्थ में प्रयुक्त किया है।[6] कालिदास 'संत' को बुद्धिमान एवं सद्-सद्विवेकशील का समशील मानते हैं।[7] अपभ्रंश के 'पाहुड़ दोहों' में 'परमतत्व' के अर्थ में इसका प्रयोग हुआ है। मध्यकालीन भक्ति-साहित्य में इसका प्रयोग सबसे अधिक हुआ है। कबीर का कहना है—'निरवैरी निहकामता साई सेती नेह, विरवया सौं न्यारा रहे संतनि कौ अंग एह।'[8] संत गरीबदास संत को 'सांई सरीखे संत हैं यामे मीन न मेख' मानते हैं।[9] महाराज जैतराम 'संत सरीखे संत हैं और न दूजा कोई' तथा 'सबद हमारा रूप है थावर जंगम मांहीं'[10] मानने हैं। संत नितानंद की मान्यता है कि—'जहां संत जन पग धरें बसें आप करतार', 'नितानंद जहां संत जन, तहां आप भगवन्त।'[11] संत हरदे दास संत को—'संत मिले साहिब मिले, अन्तर नाहीं कोय' जलती बलती आत्मा, सीतल तबही होय'[12] के रूप में समझते हैं प्रायः सभी संतों की 'संत' के विषय में ऐसी ही गवाही है।

---

1. डा० राजदेव सिंह, संतों की सहज साधना, पृ० 21
2. ऋग्वेद-10,114,5
3. तै० उ० 2, 6, 1
4. आचार लक्षणोधर्मः सन्तश्चचचारलक्षणः।—महाभारत
5. भागवत-1,19,8
6. सन्तः स्वयं परहिते विहितानियोगः।
7. मालविकाग्निमित्रम्, अंक 1
8. क० ग्रं० ति०, पृ० 156,
9. गरीबदास जी की बाणी, पृ० 87 (वे० प्रेस प्रयाग)।
10. जैतराम जी की बानी, पृ० 174, 252
11. सत्य सिद्धान्त प्रकाश, पृ० 225
12. हृदय प्रकाश, पृ० 231

संत शब्द की ऐसी ही अर्थ-स्थिति सगुण भक्ति के साहित्य में भी है। संत को लेकर सर्वाधिक व्यवस्थित, विशद, एवं मौलिक चर्चा गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में की है। गोस्वामी जी संत को कोमलचित्त और कारुणिक मानते हैं। सरल स्वभाव, भ्रमर की तरह गुणग्राही, हंस की तरह विवेकशील, परोपकारी, रामभक्त तथा विप्रपदस्नेही कहा है।[1] स्पष्ट है कि निर्गुण भक्ति का साहित्य हो या सगुण भक्ति का, संत शब्द सर्वत्र अपनी पूर्ववर्ती अर्थ-परम्परा की सम्पूर्ण संगति में प्रयुक्त हुआ है। हिन्दी आलोचना को छोड़कर शेष समस्त आधुनिक हिन्दी वाङ्मय में आज भी यह शब्द अपने परम्पराप्राप्त उदात्त अर्थ में ही प्रयुक्त होता है। कोशग्रंथों में यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि इस शब्द के सही अर्थ को लेकर कभी कोई विवाद नहीं रहा। लेकिन संत शब्द के प्रचलित अर्थ को लेकर विवाद रहा है और इस विवाद का इतिहास काफी पुराना है।[2]

संत शब्द : प्रचलित अर्थ

'रामचरितमानस' में जो लक्षण 'कलिमहिमा' में गोस्वामी तुलसीदास ने तथाकथित संतों के बताए हैं, वे निश्चित रूप से कबीरादि निर्गुण भक्तों को दृष्टि में रखकर ही लिखे हैं। गोस्वामी जी इस बात से बहुत दुःखी थे कि जनता जिन्हें संत कहती हैं वे संत-लक्षणों से एकदम विहीन हैं। 'रामचरितमानस' के उत्तरकांड से लगता है कि इस तथाकथित नीची जातियों में पैदा हुए निर्गुणमार्गी तथा सगुण-विरोधी संतों को संत की पदवी से अपदस्थ करने के लिए सगुणवादी गोस्वामी जी ने नए सिरे से संत लक्षण निर्धारित करने की आवश्यकता अनुभव की थी। उनके अनुसार 'विप्रपद नेह' दाशरथी राम की पारब्रह्मता में विश्वास, रामकथा में अनुराग, पुराणों और वेदों में विश्वास आदि संत के अनिवार्य लक्षण हैं।[3] उनके मत से दाशरथी राम की भगवत्ता पर सन्देह करने वाले, वेद-पुराण की अवमानना करने वाले, विप्र-निंदक अपने ही ज्ञान को सर्वोपरि समझने वाले, विभिन्न नीच जातियों में उत्पन्न हुए लोग संत नहीं हो सकते। वस्तुतः वे पाखण्डी, दम्भी और अहंकारी हैं। इन्हें संत तो क्या मानना गोस्वामी जी इनके दर्शनों को भी पाप समझते थे। बड़ी मजेदार बात है कि गोस्वामी जी ने जिनको असन्त घोषित किया था हिन्दी में आजकल उन्हीं को असली संत माना जाता है। नीची जाति में उत्पन्न, दाशरथी राम की भगवत्ता में अविश्वास करने वाले, ब्राह्मण, वेद-पुराण की अवमानना करने वाले, निर्गुण ब्रह्म के समर्थक तथा राम-कथा के विरोधी कबीर तथा उन जैसे अन्य

---

1. डा० राजदेव सिंह, संतों की सहज साधना, पृ० 27-34
2. वही, पृ० 31
3. वही, पृ० 35-36

संत एवं साधकों को ही संत कहने का प्रचलन हो गया है। डा० राजदेव सिंह के शब्दों में—मानस के साक्ष्य और आधुनिक हिन्दी आलोचना के प्रचलन को देखने से स्पष्ट होता है कि सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी में नीची जातियों में उत्पन्न होने वाले, ब्राह्मण, वेद और दाशरथी राम के प्रति अनास्थाशील जिन भक्तों को जनता संत कहती थी और गोस्वामी जी ने जिन्हें निरा गँवारू, ज्ञानाभिमानी, मूढ़ और पाखण्डी कहकर अस्वीकार किया था, उन्नीसवीं शताब्दी में संत उनका विशेषण न रहकर संज्ञा बन गया। लेकिन अधुना प्रचलित अर्थ में रूढ़ और साम्प्रदायिक यह बहुत बाद में चलकर हुआ। इसका यह रूढ़ एवं सम्प्रदाय-सूचक अर्थ बीसवीं शताब्दी में हिंदी आलोचना और अनुसंधान की प्रगति के साथ विकसित हुआ है।[1]

संत शब्द : पारिभाषिक अर्थ

'संत' शब्द के सही और प्रचलित अर्थों को जान लेने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि आधुनिक हिन्दी आलोचना में जो पारिभाषिक मर्यादा संत शब्द के साथ जुड़ गई है वह एक दम नई है।[2]

कबीर आदि के लिए संत शब्द का प्रयोग क्यों हुआ इसके सम्बन्ध में यह अनुमान लगाया जाता है कि संत शब्द का प्रयोग किसी समय विशेष रूप से केवल उन भक्तों के लिए ही होने लगा था जो विट्ठल या वारकरी सम्प्रदाय के प्रधान प्रचारक थे और जिनकी साधना निर्गुण भक्ति के आधार पर चलती थी। .....संत शब्द इनके लिए प्रायः रूढ़ सा हो गया था और कदाचित् अनेक बातों में उन्हीं के समान होने के कारण उत्तरी भारत के कबीर साहब तथा अन्य ऐसे लोगों का भी वही नामकरण हो गया।'[3]

डा० राजदेव सिंह का कहना है कि हिन्दी में बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों तक 'संत' और 'भक्त' शब्द सदैव एक जैसे अर्थ में प्रयुक्त होते रहे हैं। संपूर्ण मध्यकालीन साहित्य में इन दोनों शब्दों को पर्यायवाची के रूप में ही प्रयुक्त किया है। यहां तक के नाभादास-कृत भक्तकाल में भी इन शब्दों में कोई अन्तर नहीं किया गया है। प्रश्न उठता है कि पिछले पचास वर्षों में ऐसा क्या घटित हो गया जिससे कि संत और भक्त में अन्तर करना आवश्यक हो गया ? और 'संत' शब्द की पूर्ववर्ती उदात्त परम्परा को नकार कर इसे निर्गुण भक्त के अर्थ में ही क्यों सीमित कर दिया गया ?[4]

---

1. डा० राजदेव सिंह, संतों की सहज साधना, पृ० 37
2. वही, पृ० 37
3. उत्तरी भारत की संत परम्परा, प्रथम संस्करण, पृ० 7
4. संत साहित्य की भूमिका, डा० राजदेव सिंह

संत और भक्त में अंतर करने का क्रम उस समय बड़ी तेजी से शुरू हुआ था जब कुछ विशिष्ट योरुपियन पण्डितों ने मध्यकालीन भारतीय भक्ति आन्दोलन को ईसाइयत की देन सिद्ध करना चाहा था। डा० ग्रियर्सन का कहना था कि भक्ति मद्रास प्रान्त में आकर बस गए नेस्टोरियन प्रदेश के ईसाइयों से ग्रहण की गई है।[1] उन्होंने अन्यत्र कहा है कि यह भक्ति का आन्दोलन, जो उन सब आन्दोलनों से कहीं विशाल है जिन्हें भारतवर्ष ने कभी देखा है—यहां तक कि जो बौद्ध-धर्म के आन्दोलन से भी विशाल है, वह भारतवर्ष की अपनी चीज़ नहीं है, क्योंकि कोई हिन्दू नहीं जानता कि यह कहां से आई? उनकी दृष्टि में भारतवर्ष के अन्य धार्मिक आन्दोलनों से भक्ति का आन्दोलन इस अर्थ में विशिष्ट है कि यह ज्ञान का विषय न होकर रस का विषय है। उनके मत से पन्द्रहवीं शताब्दी में उठने वाले इस आन्दोलन द्वारा हम साधना और प्रेमोल्लास के देश में आते हैं और ऐसी आत्माओं का साक्षात्कार करते हैं जो काशी में दिग्गज पण्डितों की जाति की नहीं है बल्कि जिनका सम्बन्ध मध्ययुग के योरुपियन रहस्यवादी बर्नर्ड आफ क्लेयरवक्स टामस ए केम्पिस, एक हर्ट और संत थेरिसा से है।[2] विल्सन और केई आदि ने भी ऐसा ही मत प्रकट किया है। योरुपियन विद्वानों की इस धारणा को लेकर जो वाद विवाद हुआ उसका निष्कर्ष यह निकला कि 'संत' निर्गुण ब्रह्म का उपासक होता है और 'भक्त' सगुण ब्रह्म का। इसी दौरान कबीर, दादू, एवं रैदास आदि संतों का साहित्य प्रकाश में आया और कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ, आचार्य क्षितिमोहन सेन, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि विद्वानों ने इन संतों पर आधिकारिक समीक्षाग्रंथ लिखे। अब यह बात स्पष्ट हो गई कि सूर, तुलसी आदि सगुण भक्तों से कबीरादि के आचार व्यवहार और वक्तव्य भिन्न हैं तथा निर्गुण सत्ता के प्रति प्रेम निवेदन करने वाले ईसाई संतों से कबीर आदि में पर्याप्त समानताएं हैं।[3] स्वभावतः कबीर आदि संतों को तुलसी आदि भक्तों से भिन्न सिद्ध करके 'संत' और 'भक्ति' रूढ़ तथा पारिभाषिक शब्द बना दिए गए। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि 'संत' शब्द आजकल अपनी पूर्ववर्ती उदात्त अर्थ मर्यादा से विछिन्न होकर ऐसे ज्ञानी भक्तों की पारिभाषिक (और साम्प्रदायिक) संज्ञा बन गया है जो नीची जातियों में उत्पन्न हुए हैं, ब्राह्मण, वेद और सगुण ब्रह्म में आस्था नहीं रखते, जाति-पांति के बन्धनों को अस्वीकार करते हैं और आदि संत कबीर, कबीर के किसी अनुयायी या कबीर जैसी कथनी-करनी वाले किसी भक्त को अपना गुरु

1. जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी, (1907), पृ० 313
2. इंसाइक्लोपीडिया आफ रिलिजन ऐण्ड एथिक्स, जिल्द 2, पृ० 1909 का हिन्दी रूपान्तर
3. डा० राजदेव सिंह, संतों की सहज साधना, पृ० 40

मानते हैं तथा उनके मत, रीति-नीति, आचार-व्यवहार एवं साधना की सीधी परम्परा में पड़ते हैं।[1]

सन्त मत

संत मत के सम्बन्ध में डा० सम्पूर्णानन्द का विचार है कि यह पद्धति निरन्तर वैदिक युग से चली आ रही है—विभिन्न युगों में इसे विभिन्न नामों से जाना जाता रहा है, वेदों तथा उपनिषदों की 'उद्गीथ विद्या', प्रणव अथवा नादानुसंधान विद्या, आजकल अपने पुराने नाम से नहीं जानी जाती, कबीर तथा उनके बाद आने वाले संत मत के आचार्यों ने इसका प्रचार 'सुरत' शब्द योग के नाम से किया है।[2] वैदिक काल से उपासना का यह क्रम आजकल यथावत् चला आ रहा है, और ऐसा विश्वास करना चाहिए कि और सब वैदिक उपासना विद्याओं का लोप हो जाए, परन्तु यह विद्या यथावत् जीवित रहेगी। शब्दों के हेर-फेर हो सकते हैं, परन्तु जब तक कुछ भी मनुष्य ऐसे बचे रहेंगे जिनकी प्रवृति योग की ओर होगी—तब तक यह विद्या भी चलती रहेगी—'ओंकार रूपी धनुष पर आत्मारूपी तीर चढ़ाकर ब्रह्मरूपी लक्ष्य की ओर प्रमाद छोड़कर उस तीर को चलाना चाहिए। जिस प्रकार अच्छी तरह से चलाया हुआ तीर लक्ष्य में प्रवेश करके अदृष्ट और तन्मय हो जाता है और तादात्म्य को प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार इस अभ्यास से आत्मा को ब्रह्म से तादात्म्य प्राप्त हो जाता है।' यही सुरत शब्द योग का रहस्य है और वेद में वर्णित सभी विद्याओं में यही विद्या श्रेष्ठ है। मोक्ष का इससे सुन्दर और अचूक कोई दूसरा उपाय नहीं है।'[3]

संत साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का कहना है कि 'संतों द्वारा निर्दिष्ट की गई इस 'नाम स्मरण' या 'सुमिरन' की साधना को उनके पारिभाषिक शब्दों में 'सुरत-शब्द-योग' का भी नाम दिया गया मिलता है। 'सुरत' हमारी मूलवृत्ति है, जो 'शब्द' अर्थात् हमारे शरीर में उठने वाले अनाहतनाद से बराबर जुड़ी रहा करती है और इस प्रकार उसके साथ तदाकारता ग्रहण किए रहने के कारण, इसके ऊपर किसी दूसरे रंग के चढ़ने का कभी कोई संयोग ही नहीं आ पाता।'[4]

---

1. डा० राजदेव सिंह, संतों की सहज साधना, पृ० 41
2. कल्याण, उपासनांक, पृ० 44
3. कल्याण, उपासनांक, वेदोक्त उपासना सुरत-शब्द-योग, डा० सम्पूर्णानन्द, पृ० 46
4. हिन्दी साहित्य कोश, प्र० सं० 2015, पृ० 789 पर परशुराम जी की टिप्पणी

विद्वान् अपने बुद्धि वैभव से केवल इस पद्धति की ओर संकेत मात्र करके रह जाते हैं। ठीक भी हैं। यह पद्धति साधना तथा अनुभूति सापेक्ष है। केवल 'कागद की लेखी' के आधार पर ही नहीं 'आंखिन देखी' के आधार पर कुछ साधक संतों की गवाही इसे समझने के लिए आवश्यक है। महाराज गरीबदास जी की साक्षी है—

गरीब चार पदारथ एक कर, सुरति निरति मन पौन।
असल फकीरी जोग यौह, गगन मंडल को गौन॥[1]

महाराज जैतराम जी भी कुछ ऐसी ही गवाही देते हैं—

सुरत निरत मन पवन को, कर अपने इकतार।
सुन्न गगन में गवन कर, झीना मकर तार॥[2]

संत हरदेदास का संकेत कुछ इस प्रकार है :

सुरति निरत के अंतरे, त्रिबैनी के तीर।
सतगुरु साई मिलत हैं, जाका नामा कबीर॥[3]

तुलसी साहब का भी इसी प्रकार का कहना है कि—

सुरत शब्द के भेद बिन होय ने पूरन काम।

संत शिवदयाल जो राधास्वामी जी के नाम से प्रसिद्ध हैं, 'संत मारग' का संकेत इन्हीं शब्दों में करते हैं : 'सुरत शब्द के मारग चलो, सत शब्द से चढ़ कर मिलो।"

सुरत-शब्द-योग पद्धति विषयक प्रायः प्रत्येक संत की गवाही ऐसे ही शब्दों में मिलती है। इस साधना पद्धति में सुरत (सुरति), निरत (निरति) तथा शब्द पारिभाषिक एवं महत्वपूर्ण शब्द हैं। सतसाहित्य के मर्म को समझने के लिए इनकी जानकारी अनिवार्य है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डा० बड़थ्वाल, डा० धर्मवीर भारती एवं डा० राजदेवसिंह प्रभृति विद्वानों ने इनको समझने-समझाने का बड़े प्रभावशाली ढंग से तथा विस्तार से प्रयास किया है। यहां केवल समझने के प्रयोजन से विस्तार में न जाकर डा० भारती द्वारा उद्धृत गोरख मछिन्द्र संवाद के उद्धरण से काम चल जाएगा। संवाद इस प्रकार हैं—

गोरष : स्वामी कौण सो सवद कौंण सो सुरति
कौन सो बंध कौन सो निरति।
दुबध्या मेटे कैसे रहे। सतगुरु होइ सों बूझया कहै।

---

1. ग्रंथ साहिब, गरीबदास जी की बाणी, सं० 2051, पृ० 23
2. मारगसार, बचन जैतराम, पृ० 832
3. हृदय प्रकाश, भगति भेद बानी, पृ० 183

मछिन्द्र : अवधू सबद अनाहद सुरति सो चित्त,
निरति निरालंभ लागै बंध,
दुबध्या मेट सहज में रहै। ऐसा विचार मछिन्द्र कहै।[1]

नाथों और संतों की पारिभाषिक शब्दावली में अन्तर नहीं है, 'साधना पद्धति में भले ही अन्तर हो। उपर्युक्त संवाद से 'सुरति', 'निरति' तथा 'शब्द' की स्थिति काफी स्पष्ट हो जाती है। अतः सुरति को चित्त, निरति को सुरति की आत्यंतिक स्थिति अथवा उसका सूक्ष्म रूप, निरालंभ (निरालंब) की स्थिति तथा शब्द को उस अनाहत (अनहद) नाद का ध्वनि के रूप में समझना चाहिए जो आज्ञाचक्र अथवा त्रिकुटी से निरन्तर उठता रहता है। संत शिवदयाल राधास्वामी सुरति को जीवात्मा तथा शब्द को सतपुरुष के रूप में ले लेते हैं। महर्षि शिवव्रतलाल जी निरति को सुरति का निर्णायक स्वरूप समझते हैं जो सुरति की यात्रा में पड़ने वाले विभिन्न स्थानों का परिचय देती चलती है। एक और साधक ने निरति को सुरति की 'आंख' अथवा दृष्टि कहकर समझाया है। जो हो सुरति, निरति, शब्द इत्यादि के बौद्धिक अनुभव के बाद भी संत साहित्य के अध्येता को कुछ समझ नहीं पड़ेगा। समझने की चीज है भी नहीं। यह बुद्धि का नहीं अनुभूति का विषय है। अतः कुछ संत साधकों के अनुभूत विवरण को देखना आवश्यक है। जिससे इन संतों के थोड़ा और निकट होने में सहायता मिलेगी और विषय की कुछ नीरसता भी कम होगी।

संतमत की कुंजी

सबसे पहली और अनिवार्य शर्त इस संत-मत-पद्धति में यह है किसी देहधारी जिन्दा गुरु की शरण ली जाए जो इस मार्ग अथवा साधना-पद्धति का जानने वाला हो। केवल बाणी अथवा पोथी पढ़कर और समझकर ही कोई इस पद्धति का लाभ नहीं ले सकता। इसमें गुरु की मध्यस्थता आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। कृपालु होने पर गुरु शिष्य को 'नाम' अथवा 'उपदेश' देकर अपने मत में दीक्षित कर लेता है। तत्पश्चात् गुरु द्वारा निर्दिष्ट विधि से दैनन्दिन अभ्यास करने पर मार्ग में साधक की गति निरन्तर बढ़ती रहती है। परमार्थ लाभ के लिए, आत्म साक्षात्कार के लिए सतलोक या सतधाम प्राप्ति के लिए, सत्पुरुष (परमपुरुष) अथवा अपने साहिब से तादात्म्य के लिए साधक को अपनी निष्ठा, गुरुकृपा तथा अपने अभ्यास पर निर्भर करना पड़ता है। कोई भी साधक 'नाम दान' अथवा 'उपदेश' विधि को प्रकट करने का जोखिम उठाने को तैयार नहीं होता। यदि इस गुप्त भेद को कोई प्रकट कर दे तो उसकी साधना स्खलित हो जाती है, उसे गुरु-कोप का भाजन बनना

---

1. डा० धर्मवीर भारती, सिद्ध-साहित्य, पृ० 410 से उद्धृत।

पड़ता है और साधक परिणामतः पथभ्रष्ट हो जाता है। चूंकि इस कुंजी के बिना संत साहित्य को समझना कठिन है और वास्ता संत-साहित्य से ही है तो कठिनाई छोटी नहीं थी। एक साधक ने कुछ भेद से इस रहस्य को बुद्धि गम्य बनाने की कृपा की। उन्हीं शब्दों में स्पष्टीकरण कुछ इस प्रकार है—कि सारा खेल 'आंख और मन' का है। गुरु द्वारा दिए गए नाम का भीतर ही भीतर जाप करते हुए आंखों को पलटकर भौंहों के मध्य ध्यान लगाना पड़ता है। ध्यान की गहनता के साथ-साथ नाद सुनाई देने लगता है। इस स्थिति में मन स्वयमेव बाहरी विषयों से उपरत हो जाता है क्योंकि उसका सम्पर्क नाद (शब्द-अनाहत या अनहत शब्द) से हो जाने पर अधिक रस तथा सुख शांति की प्राप्ति होती है। इसके साथ-साथ साधक को कुछ-कुछ 'म्यासने' लगता है, दृष्टि सूक्ष्म होती जाती है और अन्तर-स्थित लोकों के दर्शन होने लगते हैं और अन्त में साधक की सुरति अपने स्वामी से एकमेक हो जाती है। इस मार्ग को बिहंगम मार्ग इसलिए कहते हैं कि सुरति पक्षी की तरह अपनी इस यात्रा पर निरन्तर गतिमान रहती है। आंखों को भीतर की ओर पलटने से यह यात्रा 'पच्छम-वाह' कहलाती है। पश्चिम द्वार सुई से भी सूक्ष्म त्रिकुटी में स्थित छिद्र है, जिसमें से होकर सुरति आगे बेकनाल (सुषुम्ना नाड़ी जो ऊपर नीचे टेढ़ी सी है) से होती हुई अपनी यात्रा सम्पन्न करती है। सुरति की यह आन्तरिक यात्रा शब्द के सहारे से ही ऊर्ध्वगति प्राप्त करती करती जो शब्द स्रोत या शब्द स्वरूप है, उस ब्रह्म तक चलती रहती है। इस प्रकार गुरु निर्दिष्ट विधि से साधक सहज ही इस भवसागर को तर जाता है और सुरत हंसिनी मानसरोवर रूपी सतलोक में निरन्तर मोती चुगा करती है। साधक प्रत्यक्षतः सब कुछ करते हुए भी भीतर से 'उन्मन' रहते हैं। जल में कमलवत उनका व्यवहार होता है।

'संतमत' को डा० मनमोहन सहगल ने 'गृहस्थियों का धर्म' कहा है।[1] संतमत सत्संग से मानव मात्र जागतिक प्रपंच में रहता-रमता हुआ भी लोकोत्तर आनन्द ले सकता है। संतों ने जिस आनन्दानुभूति का वर्णन इतना जमकर किया है वह हम सभी सामान्य जनों के लिए सुलभ हो सकती है। बातें थोड़ी जानने और राह लगने की है। आदमी का चश्मा ही बदल जाता है। यह संसार जो हमें कंटकाकीर्ण और दुस्तर प्रतीत होता है, उस लीला पुरुष की रंगशाला लगने लगता है और समझ झरोखे बैठकर हर आमोखास बड़े सहज भाव से इसका मुजरा ले सकता है। ये सारे ही संत प्रायः सांसारिक दृष्टि से अभावग्रस्त परिस्थितियों में जीवनयापन करते रहे हैं। किन्तु अपनी 'रहनी' और 'करनी' से चेतना की जिन ऊंचाइयों को इन्होंने प्राप्त किया है वहाँ न किसी अभाव का रोना है, न कोई भय है। यहाँ तक कि मृत्यु तक नहीं, न क्लेश है न कलह। वहाँ तो आनन्द के पारावार में, ब्रह्म

---

1. डा० मनमोहन सहगल, संतकाव्य का दार्शनिक विश्लेषण, पृ० ख (प्राक्कथन)

की छौल में गोते लगते रहते हैं आठों याम। इनके तन-मन का कण-कण ब्रह्म रूपी महारस से भीगता रहता है। संत नितानंद जी का कहना कि—

सोई जन मस्ताना, मस्ताना जिन पाया पद निर्वाना।
मगन होय चढ़ गए गगन में, अधर धार धर ध्याना।
लगन लाभ बिसराय विश्व को अनहद शब्द छिपाना।।
मानसरोवर मथ्या जुगत कर मन उनमन ठहराना।
मोती मुक्त उज्जल अनुभव की करें हंस अस्नाना।।
लक्ष कला से चन्द्र प्रकाशा सहस्र कला ले भाना।
जगमग लगी महल के भीतर देखे दरश दीवाना।।
परम शून्य में परचा हुआ चेतन चरण समाना।
निर्गुण सेज तेज की नगरी दे आगत अस्थाना।।
वर्षे पदम दामनी दमकें हर हीरों का खाना।
गम से दूर अगम से आगे अद्भुत अजब ठिकाना।।
खिल गया कमल नवल बर पाया नित प्रति अमृत पाना।
अमर कंद भव बंध न व्यापे जिस घट भरम भगाना।।
पाँच पच्चीस पुरी तज भाजी जीत लिया मैदाना।
नितानन्द महबूब गुमानी, अब निश्चय कर जाना।।[1]

बाबा दूलनदास के नाम-सरूर की भी थोड़ी बानगी ले लें—

पलकों आगै भरा ताल न्हावैगा कोई सूरमा।
इसी ताल में जो कोई न्हावै मिल जावेंगे नूर में।।
लोक लाज की शंका न करै देह मिलो चाहे धूर में।
मरना पहले मर गया जाय मिलें हजूर में।।
आठ पहर भीना रहै, सतगुरु नाम सरूर में।
दूलनदास कहै नीड़े भजले के लेवैगा दूर में।।[2]

और अधिक उदाहरण न देकर इतना ही कहना पर्याप्त है कि संतों की यह मस्ती और सरूर कोई अप्राप्य अथवा दुर्लभ वस्तु नहीं है। संतों के आगमन का प्रयोजन भी यही है कि जो वस्तु देवदुर्लभ थी उसको उन्होंने अपनी सहज-सरल 'जुगती' से सर्वसुलभ कर दिया। हेला दे दे जगा रहे हैं कि 'शब्द सरूपी घट-घट बोले, प्रगट देख नहीं वह ओहले'[3] वह परदे में नहीं हैं और दूर भी नहीं है।

---

1. सत्य सिद्धान्त प्रकाश, पृ० 460
2. जैतराम जी की बाणी, कबीर-चित्र के नीचे, पृ० 500
3. वही।

संतमत : बाधक और साधक तत्व

जो बातें इस 'शब्द सरूपी घट-घट बोलने' वाले के साक्षात्कार में सहायक हैं, वे 'साधक' हैं तथा जो तत्व इस ऐक्य में विघ्न डालते हैं उन्हें 'बाधक' तत्व कहा जाता है। संत साहित्य की मूल संवेदना—जीव-पीव, आत्म-परमात्म अथवा 'सुरति' शब्द का मेला है। इस कार्य में परम साधक तत्व 'गुरु' है। गुरु उस निर्गुण ब्रह्म का सगुण स्वरूप है। गुरु की भक्ति युक्ति के दाता हैं। जिनके सिर पर गुरु का हाथ है। उनका काल भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता। इस दुस्तर भवसागर से पार पाने के लिए गुरु-शरण अनिवार्य है। गुरु को जिसने अपना शीश दे दिया वह धन्य है। सतगुरु के सन्देश के सहारे ही 'निज' महल' में प्रवेश सम्भव है।[1] गुरु की क्षमता अपार है। वह खाक को नूर कर सकता है, सामान्य काठ को चन्दन बना सकता है, और कहाँ तक कहें उनकी चरण-शरण गहो और पार हो जाओ।[2] किन्तु थोड़ी सावधानी यहाँ भी अपेक्षित है। संसार में कामी, क्रोधी, लालची गुरु बहुत मिल जाएँगे। इनसे कुछ बात बनने की नहीं। गुरु वही जिसकी दुकान में पूरमपूर सौदा हो। वही उस जीव के 'दिलद्दर' दूर कर सकता है।'[3] गुरु की महिमा अकूत एवं अकथनीय है। वह तो गोविन्द से बड़े हैं—

नितानन्द गोबिन्द से, सतगुरु हैं अधिकार।
गोबिन्द बान्ध्या जीवड़ा, गुरु छुड़ावनहार ।।[4]

केवल गुरु प्राप्ति से ही काम नहीं चलेगा। बात तो गुरु उपदिष्ट नाम के 'सुमरन' से बनेगी। नाम-सुमरन का सन्तमत में बड़ा महत्व है। इस नाम-जप से ही दिव्य-दृष्टि प्राप्त होती है। नाम जाप भी आभ्यांतरिक होना चाहिए। श्वास-प्रवास जाप निरन्तर चलता रहना चाहिए। इसी नाम-जाप प्रताप से जीवन-मुक्ति लाभ प्राप्त होता है।[5] सभी प्राणी रात दिन 'काम, क्रोध की अग्नि में जल रहे हैं। केवल राम नाम के सहारे ही यहां शीतलता प्राप्त हो सकती। और फिर जिनके सिर पर निरन्तर मृत्यु मंडरा रही है उन्हें आराम कैसा? उन्हें तो प्रभुनाम का आश्रय हीं अनिवार्य रूप से चाहिए। केवल नाम से ही मृत्यु-भय से मुक्ति मिल सकती है।[6] इस देव-दुर्लभ देह को प्राप्त कर यदि भगवत्-भजन नहीं किया तो क्या किया? समय रहते जो सचेत होकर भजन नहीं करेगा तो मिट्टी ही तो हो

---

1. सत्य सिद्धान्त प्रकाश, पृ० 4, 38
2. वही पृ० 9,93-94
3. वही, पृ० 11, 113, 14
4. वही, पृ० 7, 73
5. वही, पृ० 16, 3-6
6. वही, पृ० 17, 12-15

रहेगा। बिना भगवन्त-भजन के यह मानव शरीर निरर्थक है। उस अन्तिम पथ-यात्रा का पाथेय भजन ही तो है। केवल भजन-सौदे से ही जीवन की हानि-लाभ आंकी जाएगा। तो समय रहते 'नाम-नफा' कर लेने में प्रमाद नहीं करना चाहिए।[1] भजन सुमरण भी वही सार्थक है कि जिसे भजा जाए उससे तद्रूप हो जाए। भजन का सौदा नकद है। अरे ओ भोले ! सांसारिक सुख-साधनों के पीछे क्यों दीवाना बना बदहवास फिरता है। ये दुनियावी ऋद्धि-सिद्धियां तो राम-नाम के पीछे-पीछे लगी ऐसी ही फिरती हैं, जैसे सूर्य के पीछे किरणें। सो किसलिए दुनिया की खाक छानी जाए ? निर्भ्रान्त हो भजन करो। इस 'एक ही के साधे सब सध जाएंगे।"[2]

सौदा सेंत का नहीं है। केवल भजन अथवा नाम सुमरण से ही वह अल-बेला प्रीतम प्रसन्न होने वाला नहीं। 'विरहा' (विरह) को भी साथ लेना पड़ेगा। साधक विरह-रोगी बनकर तिल-तिल उसकी याद में जलता हुआ इस रक्त-मांस का अर्घ्य चढ़ाएगा तभी कुछ बात सधेगी।[3] इस पीव के प्रेम में काया-तम्बूरे का रोम-रोम तार बनकर झंकृत होने लग जाता है, बिरहिन पीली पड़ जाती है, तन-मन झुलस रहा है, बड़े आर्त्त-भाव से 'ऋतुबन्ती बाम'—सी उत्कंठिता बराबर 'दरस आस' में नैनों से नीर बहा रही है। अब तो यह प्रेम-पीर असह्य हो गई है। ओ निष्ठुर प्रेमी ! और कब तक तड़पाओगे ?[4] विरहानल में तपकर काया कंचन बन गई, सभी विकार दग्ध हो गए। विरह-वियोग तो वेश्या को भी सताता है। इस विरह के साथ पातिव्रत-धर्म का निर्वाह भी अनिवार्य शर्त है। तभी वह अलबेला प्रेमी इधर ध्यान करेगा। उसे एकान्त और एकनिष्ठ प्रेम ही अभीष्ट है। पतिव्रता वही है जो केवल अपने 'धनी' के ध्यान में ही आठ पहर गलतान रहती हो। किसी अन्य का विचार जिसके मन में एक पल भी नहीं आता।[5] साधक को एक निष्ठ होकर उस प्रभु के 'प्रेम-प्रसाद' की इच्छा करनी चाहिए—

"पावे टूक प्रशाद का, आवें पूँछ हिलाय,
गल में डोरी प्रेम की, खसम निरंजन राय।"[6]

यह सब कुछ तभी सार्थक है, जब 'मन' साथ हो। यदि यह मन मंगल साथ नहीं लिया तो सारा साज व्यर्थ हो जाएगा। यदि मन को बहला-फुसलाकर ठीक राह पर लगा दिया जाए तो साधक की बाट सहज सरल हो जाएगी—

---

1. सत्य सिद्धान्त प्रकाश, पृ० 19, 34
2. वही, पृ० 22-33, 77
3. वही, पृ० 31; 18
4. वही, पृ० 32-33 ; 27, 31, 41
5. वही, पृ० 93 ; 35
6. वही पृ० 94 ; 47

६२६५

'मन ही देवी देवता, मन ही भूत प्रेत।
मन ही हर हो जात है, जो भजे सुचेत।।[1]
मन ही औघड़ भरतरी, मन ही गोरखनाथ।
नितानंद मन ब्रह्म है, करो जुगत से हाथ।।[2]
मन मृतक मन अमर है, मन ही आवै जाय।
मन ही हर बेमुख करै, मन ही हर हो जाय।''[3]

जब तक हरि रस से इस मन को निमज्जित नहीं कर दिया जाएगा तब तक इसका भरोसा नहीं।[4] मन को सीधी राह लगाने में सबसे अधिक सहायता 'सत्संग' से मिलती है। सत्संग का बड़ा प्रभाव है। कुटिल-खल-कामी, बक-ध्यानी भी सत्संग के प्रभाव से विवेकी हंस बन जाता है।[5] साध-सन्तों की संगति सी फलदायी वस्तु और है नहीं। सत्संगति के आगे बैकुण्ठ, शिवपुरी, विधिपुर तथा इन्द्रपुर इत्यादि सब तुच्छ हैं।[6] गोबिन्द की बड़ी कृपा से सत्संग सुलभ होता है। और ज्यादा क्या कहा जाए—

'नितानन्द सत संग है, भवसागर की नाव।
और न मारग मुक्ति का, कोटिक करो उपाव'।।[7]

इसके साथ-साथ 'साच' का पालन भी साधक के लिए अपेक्षित है, क्योंकि—

नितानन्द घर दूर है, चढ़ो सत्य की नाव।
झूठा कोई न तिरै, भवसागर दरियाव।।[8]

उस परम पुरुष की सामर्थ्य पर 'दृढ़ विश्वास' होना आवश्यक है। व्यर्थ की जक-तक छोड़ उस पूर्ण धनी पर भरोसा रखें—

'साचा साहिब एक है, सबको पूर्ण हार।
पल में जग पोषै भरै, ऐसा पुरुष अपार।।'[9]

'धीरज' अर्थात् धैर्य भी साधक के लिए एक बड़ा गुण है। धैर्य का फल मीठा होता है क्योंकि—

---

1. सत्य सिद्धान्त प्रकाश, पृ० 128 ; 7
2. वही, पृ० 134 ; 77
3. वही, पृ० 135 ; 93
4. वही, पृ० 142 ; 160
5. वही, पृ० 206 ; 1
6. वही, पृ० 208 ; 15
7. वहीं, पृ० 209 ; 33
8. वही, पृ० 193 ; 26
9. वही, पृ० 241 ; 10

'नितानन्द हर याद कर, धीरज धर-धर चाल ।
अवनासी नेड़े रहै, पल में करें निहाल ।।'[1]

यदि 'साच' धीरज और विश्वासादि गुणों से सम्पन्न साधक 'दीनता' अथवा नम्रता से विहीन है तो—

हल्के-हल्के तिर गए, बड़े-बड़े गए डूब ।
चढ़े चरण रज होयकर, नितानन्द महबूबा ।।[2] साखी गवाह है ।

ऐसा साधक जो 'जीवत मृतक' हो गया है जिसने जीवित रहते हुए ही मृत्यु को धारण कर लिया है वह सच्चा साधक है । अतः आवश्यक है कि साधक निष्काम होकर इस जगमेले में 'साक्षी भाव' से व्यवहार करे ।

जीवन्त मृतक होयकर, सभ से रहै उदास ।
साहब उनके संग रहे, कै साहब के पास ।।[3]

जीवित-मृत होने वाला ही अमर भी हो सकता है, मुक्त हो सकता है । किन्तु इस अवस्था तक पहुँचने से पहले साधक को एक विकट किन्तु सूक्ष्म संग्राम में सच्चे 'शूरबीर' की तरह विजयी होना लाजमी है । यह दुस्तर संग्राम है स्वाभाविक विकारों का । बड़े विचित्र बहुरूपिए शत्रुओं (काम-क्रोधादि) से साधक को जूझना पड़ता है । यह रात-दिन का निरन्तर युद्ध है, वैरी घात लगाए बैठे रहते हैं और ज्ञान एवं भक्ति का खड्ग लिए साधक शूर खेत में अड़े रहते हैं ।[4] और अन्त में मैदान मारकर अपने साहब के हजूर में हाजिर होते हैं । सच्चे शूर अपने प्रिय से कभी नमक-हराम नहीं बनते—

नितानन्द नहीं होइए, हर से नमक हराम ।
लड़ना विषम विकार से, मिलो महल मुक्काम ।।[5]

इन भक्तशूरों अथवा साधकों के रास्ते में अनेक बाधाएं आती हैं । भगत-जगत का सनातन वैर है । अब इन बाधक तत्वों का अवलोकन करते हैं । सबसे प्रबल बाधा साधक के लिए 'मन' है । साधक को दीदार चाहिए, मन को माया ; साधक को अपना महबूब चाहिए किन्तु मन को तन का सुख चाहिए ।[6] यह मन निरन्तर आठों पहर जग में, भग में तथा द्रव्य में बिलसता रहता है, मान-अभिमान

---

1. सत्य सिद्धान्त प्रकाश, पृ० 246 ; 27
2. वही, पृ० 143 ; 5
3. वही, पृ० 303 ;6
4. वही, पृ० 299 ; 44
5. वही, पृ० 302 ; 125
6. वही, पृ० 128 ; 9, 10

का प्याला लिए हुए हैं।[1] यही सुखदाता है तो यही दुखदायी भी है। यही सुर है, यही असुर है। साखी जोग-जुगती इसी मन में बसती है, सभी ऋद्धि-सिद्धि का दाता भी यही मन है।[2] यह बड़ा बलवान है। इससे कोई पार नहीं पा सकता। साधक को चाहिए कि इसे सत्संग और हरिभक्ति से धीरे-धीरे फेरकर प्रभु चरणों में लगा दे।[3]

मन को किसी प्रकार समझा-बुझा लिया जाए पर इस माया का क्या किया जाए ? इस नटनी ने तो नाना वेष धारण कर सारे संसार को लूट लिया है। कोई इससे छूट नहीं पाया।[4] रामभजन करने नहीं देती। सत्संग से इसका बैर है। बड़ी बटमार है। बगल में फन्दा और हाथ में लड्डू लिए फिरती है। सभी प्राणी इसके फन्दे में फंसे हैं।[5] यह सृष्टि ही माया की है—

माया से काया भई, काया से सब भोग।
भोगों से सभ को लग्या, जन्म-मरण का रोग॥[6]

सिद्ध, साधक, ऋषि-मुनि सभी को इसने पटक दिया है। कोई बिरला हरि-जन ही इससे उबर पाता है।[7] इस मोहिनी ने कनक और कामिनी का रूप धर-कर जग को लूट लिया है। इसके प्रपंच को कोई समझ ही नहीं पाता।[8] यह खांड और मिश्री-सी खाने में तो बड़ी मीठी लगती है किन्तु इसके प्रभाव बड़े मारक हैं। चौदह भुवन में इसी की ठकुराई है। सारी सृष्टि में इसी का एकछत्र साम्राज्य है। सारी पृथ्वी तथा आकाश इसके प्रभाव से थर्राते हैं। सुर, नर, असुर, मुनि, तथा गुनी सभी इसके पैरों में पड़ते हैं।[9] इसके दो रूप हैं। एक मोटी (स्थूल) तथा दूसरी झीनी (सूक्ष्म)। यदि कोई मोटी से बच भी गया तो झीनी पटक लेती है।[10] केवल कोई हरिजन सन्त शरण लग के इससे पार पा सकता है, क्योंकि सन्तों के दरबार में यह दासी के समान हाथ बाँधे खड़ी रहती है।[11]

---

1. सत्यसिद्धान्त प्रकाश, पृ० 129 ; 16
2. वही, पृ० 136 ; 18, 19
3. वही, पृ० 143 ; 172
4. वही, पृ० 148 ; 1
5. वही, पृ० 150 ; 11
6. वही, पृ० 151; 19
7. वही, पृ० 151 ; 121, 122
8. वही, पृ० 151 ; 26
9. वही, पृ० 159 ; 114
10. वही, पृ० 160 ; 121
11. वही, पृ० 164 ; 169

साधक, सावधान ! यह नारी (कामिनी) नागिन बड़ी विषैली है जो भीतर से डसती है। इसने तीनों लोक ग्रस लिए हैं।[1] जिसके दर्शन से साँप भी अन्धा हो जाता है उसके साथ रहने वाले की भला क्या गति होगी ?[2] तीनों लोक भग नदी में बहे जा रहे हैं। भग में डूबने वाले का केवल नरक ही ठिकाना है।[3] नर-भैंसा काम-कसाई के द्वार पर हलाल होने के लिए बंधा हुआ है। सिर पर बंधी तलवार का मूढ़ को भान नहीं।[4] भलाई इसी में है कि इस 'रुधिर, माँस और हाड़ वाली तिया को, जिसके नख से शिख तक मैल ही मैल है, धता बताई जाए।[5] इसकी वास्तविकता यह है—

नवौं द्वार में गन्दगी, खाल बाल सरवंग।
मैल मूत्र विष की भरी, आर्न जान तज संग।।[6]

इस भांडणी की सूरत बड़ी विकराल है। सारे जग को इसने खा लिया है। इसकी कलमुँही कुँडली ने सभी को पराजित कर लिया है। यह साक्षात् काल स्वरूपिणी है। राम भजो, साहब रक्षा करेंगे।[7]

'कुसंगति' से भी बड़ा अकाज होता है। जो कुसंग में पड़ जाते हैं उनका सर्वस्व नष्ट हो जाता है। कुसंग की मार को इन शब्दों से समझा जा सकता है—

बस कुसंग कैसी कुशल, जहाँ न हर की प्रीत।
चौरासी को चले गए, सुन-सुन जग के गीत।।[8]

कपटी चित्त में मुरारी का निवास नहीं हो सकता। अपने अन्तःकरण को साफ सुथरा रखना बहुत आवश्यक है। जिनकी कथनी और करनी में अन्तर है, जो बाहर कुछ और भीतर कुछ हैं, उनको तो भगवान क्षमा नहीं करता।[9] जिसके चित्त में मैल हो उसे 'चिदानन्द' क्यों मिलें—

---

1. सत्यसिद्धान्त प्रकाश, पृ० 173 ; 5
2. वही, पृ० 174 ; 10
3. वही, पृ० 187 ; 159
4. वही, पृ० 187 ; 161
5. वही, पृ० 185 ; 129
6. वही, पृ० 185 ; 130
7. वही, पृ० 188 ; 163
8. वही, पृ० 205 ; 19
9. वही, पृ० 275 ; 5

'चित्त कपटी के चित्त में बँधे रैन-दिन मैल ।
चिदानन्द सों क्यों मिलै माहं भरे बद फैल ।।'[1]

काजी ! मांसाहार के लिए साहब ने कब हुक्म दिया ? उसके बनाए जीवों को मारते तुझे दया नहीं आई ? तेरा बुरा हाल होगा ।[2] जैसा अपना शरीर है वैसा ही सबका है । फिर अपने स्वाद के लिए किसी जीव की हत्या क्यों की जाए ।[3] मांसाहार करने वाले के लिए इतना ही संकेत पर्याप्त है—

प्राणाघात प्राणी करै-जीभ स्वाद के काज ।
भरवै बिराणी देह को, यही नरक का साज ।।
दया न उपजी जीव की, भख्या पराया माँस ।
सो नर रहसी नरक में, जब लग धरणि अकास ।।[4]

'कृतघ्न' होना बड़ा पाप है :—

निर्गुण कदे ना गुण कहै, जो गुण कीजै लाख ।
यथा जवासा मेंह की, कदे ना गावै साख ।।[5]

'निगुरापन' अथवा 'मनसुखता' से भी साधक को सावधान रहना आवश्यक है । भूलकर भी एक पल के लिए गुरु की सीख की अवहेलना करना तथा अपने मन के अनुसार चलना बड़ा भारी पड़ता है :—

निगुरा करम कुसंग में, खुसी रहे दिन रैन ।
अन्त समय पछतावहीं, सुन सत गुरु के बैन ।।
मन मरदी के आसरै, निगुरा जहाँ तहाँ जाए ।
सन्तो संग राजी नहीं, मान बड़ाई चाह ।।[6]

सन्तमत : उद्भव और विकास की परिस्थितियाँ

सन्तमत नाथपन्थ का उत्तराधिकारी है । पिछले अध्याय में हरियाणा की धार्मिक; दार्शनिक पृष्ठभूमि का अवलोकन करते हुए सारतः संकेत कर आए हैं कि सन्तमत भारतीय धर्मसाधना की अनेक परम्पराओं से पुष्ट सिद्धों और नाथों की आधारभूमि पर सहज ढंग से विकसित हुआ ।

---

1. सत्य सिद्धान्त प्रकाश, पृ० 277 ; 27
2. वही, पृ० 308 ; 3
3. वही, पृ० 308 ; 9
4. वही, पृ० 311 ; 39, 41
5. वही, पृ० 328 ; 1
6. हृदय प्रकाश, पृ० 227; 26, 28

सामान्य परिस्थितियाँ

हरियाणा शताब्दियों से पंजाब का ही एक अंग रहा है और पंजाब आक्रान्ताओं के लिए भारत का प्रवेश द्वार रहा है। प्राचीन काल से पंजाब भारत के लिए एक रक्षक प्रहरी का काम करता आ रहा था। कितने ही आक्रान्ता पंजाबी वीरों से परास्त होकर वापिस लौटते रहे। किन्तु मुसलमानों को रोकने में पंजाब असफल रहा। सन् 712 ई० में मुहम्मद-बिन-कासिम ने राजा दाहर को पराजित कर मुलतान को अपना सैनिक केन्द्र बनाया। 964 ई० से महमूद गजनवी ने भारत पर आक्रमण आरम्भ कर दिए। लगभग 1000 ई० में गजनवी का सारे पंजाब पर अधिकार हो चुका था। सन् 1193 ई० में मुहम्मद गौरी, पृथ्वीराज चौहान को बन्दी बनाकर ले गया था। लगभग 1198 ई० में तैमूर का नृशंस हत्याकाण्ड पंजाब और देहली ने देखा। तत्पश्चात् सैयद वंश ने पंजाब और देहली पर अपना अधिकार कर लिया। बहलोल लोधी ने सैयद वंश को अपदस्थ कर दिल्ली का शासन सम्भाल लिया। लोधी मुस्लिम पठान थे। इनका व्यवहार हिन्दू-मुस्लिम दोनों के लिए ही असह्य था। सिकन्दर तथा इब्राहिम लोधी की कट्टरता से हिन्दू संत्रस्त थे। मुस्लिम इनकी कठोरता से दुःखी थे। दौलतखाँ लोधी तथा राणा साँगा ने गुप्त रूप से इनकी कट्टरता तथा कठोरता से विवश होकर मुगलों को आमन्त्रित किया।[1] फलतः 1521 ई० में बाबर ने पंजाब पर धावा बोल दिया। पंजाब के सैयदपुर कस्बे को बाबर के सैनिकों ने जलाकर राख कर दिया, निवासी मृत्यु के घाट उतारे गए, स्त्रियों से बलात्कार किया गया और जो कुछ बचे उन्हें बेगारियों के रूप में बन्दी बना लिया। गुरुनानक भी इनमें से एक थे।[2] सन् 1526 ई० में बाबर ने पानीपत के मैदान में इब्राहिम को मार कर दिल्ली पर अधिकार कर लिया।

पंजाब प्रदेश की हिन्दू जनता मुगलों के अत्याचारों से त्राहि-त्राहि कर उठी। गुरुवाणी के अन्तःसाक्ष्य के आधार पर उस समय की परिस्थिति कुछ इस प्रकार थी—"घोर कलियुग के प्रभाव में शासक कसाई बन बैठे हैं, रक्षक ही भक्षक बन गए हैं। उनमें धर्म नाम की कोई चीज शेष नहीं रह गई है। चारों ओर असत् का प्रचार है, सत्य की ज्योत्स्ना कहीं दिखाई नहीं देती। ऐसी अव्यवस्था देखकर नानक व्याकुल हो रहे हैं। अधर्म के अन्धेरे में मार्ग नहीं मिल रहा है। समूची जनता अहम् के मद से पीड़ित है, पथभ्रष्ट है।[3] बादशाह अत्याचारी है, अधिकारी कुत्तों

---

1. डा० मनमोहन सहगल, गुरु ग्रन्थ साहब : एक साँस्कृतिक सर्वेक्षण, पृ० 3-4
2. वही, पृ० 4
3. वही, पृ० 5

की तरह जनता का रक्त पी रहे हैं, कर्मचारी उनके नाखून हैं जो निर्धन-निर्दोष जनता पर आघात करते हैं। और बचा-खुचा माल भी हड़प जाते हैं।[1] वर्तमान काल में सभी पतित हो गए हैं। 'यथा राजा तथा प्रजा' की कहावत को चरितार्थ करते हुए राज्य कर्मचारी स्वयं छल-कपट और मिथ्या व्यवहार द्वारा प्रजा का अहित कर रहे हैं। उनका आचरण, वचन और आदर्श सब मिथ्या हैं वे धर्म भुला बैठे हैं। उनके लिए सदाचार, लज्जा और प्रेम का अस्तित्व ही शेष नहीं रहा।[2] तत्कालीन परिस्थितियों का बड़ा लोमहर्षक चित्रण गुरुवाणी में प्राप्त होता है। उन दिनों किसी का भविष्य सुरक्षित नहीं था। चतुर्दिक अशान्ति, अराजकता, अव्यवस्था और अनैतिकता का बोलबाला था। आज एक राज्य स्थापित होता था और कोई नहीं जानता था कि कल वर्तमान शासक का निकटतम सहायक और विश्वासपात्र ही उसकी पीठ में छुरा घोंपकर स्वयं शासक बन बैठेगा। जब शासकों और सरदारों का यह हाल था तो बेचारी प्रजा की क्या गति होती? स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध सब गाजर-मूली की तरह कट रहे थे। ऐसे में भला नानक जैसे कोमल चित्त, पर-दुःख-कातर महात्मा का हृदय अपने परम रक्षक अकाल पुरुष से भी क्षोभ प्रकट करे तो क्या आश्चर्य! वे कहते हैं कि...'हे सति पुरुष! तू तो सबका समान रक्षक है। क्या तू भी निरपराध जनता की दुर्दशा पर बे-दर्द बना रह सकता है? शक्तिशाली सशक्त को ही मारे तो मुझे कोई शिकायत नहीं, परन्तु हे प्रभु। जब शक्तिवान सिंह निर्दोष गऊओं के रेवड़पर आक्रमण कर दे, तो उनके स्वामी को पूछना (ललकारना) ही पड़ता है।[3]

भाई गुरदास की वाणी में भी तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण इन शब्दों में मिलता है—कलियुग के अधिकारीगण लोभी हैं। राजागण स्वयं पाप करते हैं, रक्षक-भक्षक बन बैठे हैं। प्रजा अज्ञानान्ध है, झूठ-सत्य का कोई अन्तर नहीं रहा। शिष्य गुरुओं का सम्मान नहीं करते, बल्कि गुरु शिष्यों के घर चक्कर लगाते फिरते हैं। न्यायाधीश घूसखोर हैं। वे किसी का अधिकार घूस खाकर किसी और को दे देते हैं। स्त्री-पुरुष लोभार्थ कहीं भी आते-जाते हैं। सब ओर पाप का साम्राज्य है।[4] ऐसी अव्यवस्थित स्थिति में मुगल शासकों ने पंजाब की राजनीति को कुछ सुधारने का प्रयास तो किया परन्तु साम्प्रदायिक संकीर्णता सदा ही आड़े आई। समाज स्पष्ट रूप से दो वर्गों में विभाजित था हिन्दू वर्ग और मुस्लिम वर्ग। जहां हिन्दू के लिए मृत्यु, विपन्नता, उत्पीड़न, विषमता और अपमान था, वहां मुसलमान के लिए जीवन, सम्पन्नता, भोगविलास और सम्मान था। जनता जीवन के लोभ में

---

1. डा० मनमोहन सहगल, गुरु ग्रन्थ साहिब : एक साँस्कृतिक सर्वेक्षण, पृ० 5
2. वही, पृ० 5
3. वही, पृ० 8
4. भाई गुरदास, वार 1, पौड़ी 30

मुसलमान बनने पर बाध्य थी। हिन्दू जनता के लिए यह बड़ा संकट-काल था। इस समय हिन्दू जनता पर दुहरा संकट था—एक तो विधर्मी शासकों का उत्पीड़न दूसरे ब्राह्मण वर्ग द्वारा छोटी समझी जाने वाली जाति के प्रति अनादर तथा अवहेलना का भाव। ऐसे ही सन्धि तथा संकटकाल का जिक्र आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इन शब्दों में किया है :····"हिन्दू धर्म इन आश्रमभ्रष्ट (छोटी जातियाँ जो सिद्धों-नाथों के प्रभाव में आ चुकी थी) गृहस्थों का सम्मान तो करता ही न था उल्टे उन्हें तिरस्कार की दृष्टि से देखता था। ये आश्रमभ्रष्ट गृहस्थ न तो हिन्दू थे—क्योंकि वे किसी हिन्दू मत या आचार के कायल न थे,—और न मुसलमान —क्योंकि इन्होंने इस्लामी धर्म मत को स्वीकार नहीं किया था। कुछ काल के इस्लामी संसर्ग के बाद ये लोग मुसलमानी धर्म-मत की ओर झुकने लगे पर इनके संस्कार बहुत दिनों तक बने रहे। जब वे इसी प्रक्रिया में से गुजर रहे थे उसी समय कबीर का आविर्भाव हुआ था।"[1]

कबीर के अन्तःसाक्ष्य के आधार पर उस समय की धार्मिक परिस्थिति का भी थोड़ा अवलोकन कर लें। उन दिनों हिन्दुओं में पौराणिक मत प्रबल था। परन्तु यह साधारण गृहस्थों का धर्म था। देश में और भी नाना भाँति की साधनाएँ प्रचलित थीं। कोई वेद पाठी था तो कोई उदासी, कोई मदिरा के सेवन को ही चरम साधना मानता था, तो कोई तन्त्र-मन्त्र औषधिादि की करामात से ही सिद्ध बना फिरता था, कोई सिद्ध था, कोई तीर्थव्रती था और कोई धूम्रपान से शरीर को काला बना रहा था। सब थे पर कोई राम नाम में लीन नहीं था। सद्गुरु की कृपा से कबीरदास को यह महामन्त्र मिल गया था।[2] उस समय मुनि थे, पीर थे, दिगम्बर थे, योगी थे, जंगम थे, ब्राह्मण थे, सन्यासी थे, पर सभी माया के चक्कर में पड़े हुए थे।[3] इस प्रकार राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक रूप से हिन्दुओं के लिए यह बड़ा संकट का समय था।

इस्लाम के आने से जो संकट की स्थिति पैदा हो गई थी, उसने भी भारतीय समाज को झकझोर दिया था और क्षुब्ध कर दिया था। आचार्य द्विवेदी के शब्दों में—"जिस युग में कबीर आविर्भूत हुए थे उससे कुछ ही पूर्व भारत वर्ष के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना घट चुकी थी। यह घटना इस्लाम जैसे सुसंगठित सम्प्रदाय का आगमन था। इस घटना ने भारतीय धर्ममत और समाज-व्यवस्था को बुरी तरह से झकझोर दिया था। उसकी अपरिवर्तनीय समझी जाने वाली जाति व्यवस्था को पहली बार जबर्दस्त ठोकर लगी थी। सारा भारतीय वातावरण सन्क्षुब्ध था। बहुत

---

1. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ० 174
2. कबीर, पृ० 128, क० ग्रं० पद 386
3. वही, पृ० 128, क० ग्रं० पद 187

से पण्डितजन इस संक्षोभ का कारण खोजने में व्यस्त थे और अपने-अपने ढंग से भारतीय समाज और धर्ममत को सम्भालने का प्रयत्न कर रहे थे।[1]

अब तक हमने सन्तमत की आविर्भावकालीन परिस्थितियों का स्थूल रूप में परिचय ही दिया है। भारतीय जनता को सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक रूप में जिस अभूतपूर्व स्थिति का सामना करना पड़ रहा था, वह केवल मुसलमानों और इस्लाम के आगमन के कारण ही पैदा नहीं हुई थी। उसके पीछे एक लम्बी ऐतिहासिक प्रक्रिया काम कर रही थी। इन परिस्थितियों को ठीक से समझने के लिए उन ऐतिहासिक कारणों अथवा समाजशास्त्रीय प्रक्रिया को समझना आवश्यक है। इस अन्तःसलिला ऐतिहासिक प्रक्रिया को डा० राजदेव सिंह ने बड़े सुन्दर ढंग से अपनी पुस्तक "कबीर : आधुनिक सन्दर्भ में" रूपायित किया है। उन्हीं के शब्दों में—"कबीर जब पैदा हुए थे, उससे बहुत पहले से सामन्ती समाज का ढाँचा ढीला पड़ने लगा था, वर्णव्यवस्था शिथिल हो रही थी। परम्परागत आस्था-विश्वास निरर्थक सिद्ध हो रहे थे। सामन्ती समाज व्यवस्था में जब व्यापार का प्रसार होता है, तब पूँजीवादी उत्पादन-पद्धति के लिए मार्ग प्रशस्त होता है। पूँजीवादी उत्पादन पद्धति में वस्तुओं का उत्पादन खाने-खर्चने के लिए नहीं होता, बल्कि क्रय-विक्रय योग्य माल तैयार करने के लिए होता है। सामन्ती समाज-व्यवस्था में व्यापार का विकास स्वभावतः पूँजीवादी उत्पादन-पद्धति के लिए जमीन तैयार करता है।"

"समाजशास्त्रीय दृष्टि से कबीर के जीवन-काल में भारतीय समाज मूल्य-मूढ़ता की स्थिति में था। सामन्ती समाज-व्यवस्था अपनी सार्थकता खोती जा रही थी और व्यापार के सहारे पूँजीवादी व्यवस्था स्वरूप ग्रहण करने लगी थी। सामन्ती समाज में सम्पत्ति का स्वामी भूस्वामी वर्ग होता है। संस्कृति और शिक्षा का काम पुरोहित वर्ग के हाथ में रहता है। समाज के शेष सदस्य खेती, कारीगरी आदि के द्वारा उच्च वर्गों की सेवा करते हैं। चार वर्णों वाली व्यवस्था संसार के प्रत्येक सामन्ती समाज की विशेषता है। भारतीय सामन्ती समाज चाहे वह इस्लाम के प्रति आस्थाशील हो या हिन्दुत्व के प्रति या किसी और के प्रति, इस चातुर्वर्ण व्यवस्था को अनिवार्य रूप से स्वीकार करता रहा है। मुगल बादशाहों ने व्यापार के विकास के द्वारा इस सामन्ती व्यवस्था की जड़ों को हिला दिया था। यद्यपि यह जानबूझ कर नहीं हुआ था, अनजाने में ही होता था, लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है। जो है वह रहता ही है।"[2]

विद्वानों का मत है कि मुसलमानों के कारण भारतीय जातीय-व्यवस्था को काफी धक्का लगा था, क्योंकि मुसलमान जिस "मज़हब" में विश्वास रखते थे,

---

1. कबीर, पृ० 170
2. डॉ० राजदेव सिंह, आधुनिक कबीर, पृ० 14-15

उसमें जाति के लिए कोई स्थान नहीं था। भारतीय समाज नाना जातियों का सम्मिश्रण था। एक जाति का एक व्यक्ति दूसरी जाति में नहीं बदल सकता। परन्तु मज़हब इसके ठीक उल्टा है। वह व्यक्ति को समूह का अँग बना देता है। भारतीय समाज जातिगत विशेषता रखकर व्यक्तिगत धर्मसाधना का पक्षपाती था इस्लाम जातिगत विशेषता को लोप करके समूहगत धर्म साधना का प्रचारक था।"[1]

आचार्य द्विवेदी के उक्त कथन की समीक्षा करते हुए डा० सिंह ने आगे कहा है कि—"इस सम्बन्ध में इतना याद रखना चाहिए कि चातुर्वर्ण व्यवस्था हिन्दू धर्म में जितनी व्यापक है उतनी अन्यत्र चाहे न हो, लेकिन यह वर्णव्यवस्था हिन्दुओं तक ही सीमित नहीं थी। चातुर्वर्ण व्यवस्था संसार के हर सामन्ती समाज की विशेषता है और इसीलिए हिन्दू सामन्ती समाज की तरह ही, उतने व्यापक रूप में न सही, यह चातुर्वर्ण व्यवस्था मुसलमानी सामन्ती समाज में भी स्वीकृत थी। कबीर जिस जुलाहा जाति में लालित-पालित हुए थे, वह मुसलमानी समाज की सबसे नीची जाति थी और शेख़ इसमें ऊँचे स्थान के अधिकारी थे। अतः ऊपर-ऊपर से देखने पर लग सकता है कि भारतीय वर्णव्यवस्था को मुसलमानों ने उसी तरह इस्लाम के प्रचारार्थ तोड़ा था, जैसे वे मन्दिर और मूर्त्तियाँ तोड़ा करते थे, लेकिन समाज वैज्ञानिक दृष्टि से यह बात असंगत है।"[2]

अपनी बात को और स्पष्ट करते हुए डा० सिंह लिखते हैं—"वर्णव्यवस्था वस्तुतः समाज-व्यवस्था का अंग है। सामन्ती समाज व्यवस्था में वर्णव्यवस्था अनिवार्य और आवश्यक होती है और पूँजीवादी समाज व्यवस्था से निरर्थक और अनावश्यक। अतः भारतीय इतिहास की तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी में वर्णव्यवस्था को अगर भारी धक्का लगा था तो उसका कारण इस्लाम धर्म नहीं था। उसका कारण थी पूँजीवादी समाज व्यवस्था, जो उक्त शताब्दियों में मुगल बादशाहों की व्यापार वृद्धि के कारण धीरे-धीरे अस्तित्व में आने लगी थी और कबीर के स्थितिकाल तक पहुंचकर बहुत कुछ निरर्थक और बेमानी हो चुकी थी।"[3]

पूँजीवादी समाज व्यवस्था का और ब्योरा तथा परिणामों को विवेचित करते हुए डा० राजदेव सिंह आगे लिखते हैं—"अतः इसमें सन्देह नहीं कि मुसलमानों के कारण जाति व्यवस्था को करारी चोट लगी थी, लेकिन इस चोट का धक्के का कारण मज़हब नहीं व्यापार था। सामन्ती समाज की जातिव्यवस्था पूँजीवादी समाज-व्यवस्था के लिए उपयोगी तो रह ही नहीं जाती, उल्टे बाधक सिद्ध होती

---

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ० 172
2. डॉ० राजदेव सिंह, आधुनिक कबीर, पृ० 16
3. वही, पृ० 16

है। व्यापार के प्रसार के साथ-साथ लोग अपने खानदानी पेशे छोड़कर नए पेशे अपनाने लगते हैं। चूँकि व्यापार के लिए माल तैयार करना हर किसान का काम नहीं होता, अतः सुनार, लुहार, बढ़ई, बुनकर आदि के नए-नए पेशे पूँजीवादी व्यवस्था में स्वभावतः बन जाते हैं। समाज की आवश्यकताएँ पूरी करने के अलावा यह वर्ण व्यापार की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए भी उत्पादन करता है। इस बात के प्रमाण हैं कि बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी में सामन्ती समाज का ढाँचा ढीला पड़ने लगा था। वर्णव्यवस्था शिथिल हो रही थी और लोग अपने खानदानी पेशे छोड़कर नए पेशे अपनाने लगे थे। गुजरात में दिल्ली के बादशाह के खिलाफ विद्रोह की अगुआई करने वाला तगी जाति का चमार था। अकबर का मुकाबला करने वाला हेमू बनिया था। अकबर का चित्रकार जसवन्तसिंह कहार था। कबीर जुलाहे थे, रैदास चमार थे, और सेना नाई थे। गोस्वामी जी ने मानस में नए पन्थों की कल्पना करने वाले, वर्णाश्रम व्यवस्था को अस्वीकार करने वाले और अपने को ब्राह्मणों से श्रेष्ठ बताने वाले जिन तेली-कुम्हारादि वर्णों-धर्मों में उत्पन्न कलियुगी सन्तों को भला-बुरा कहा है, वे तत्कालीन वर्णव्यवस्था के टूटने का अच्छा प्रमाण उपस्थित करते हैं और सिद्ध करते हैं कि संस्कृति पर अब ब्राह्मण-पुरोहितों का इजारा टूट रहा था। व्यापार के विकास के साथ सामन्ती समाज व्यवस्था जर्जर होती जा रही थी।"[1]

इसी पूँजीवादी व्यवस्था की व्यापार वृत्ति के कारण 'कौमी बाजार' अस्तित्व में आए जिनके परिणामस्वरूप एक 'कौमी' भाषा का जन्म हुआ जिसे 'हिन्दी' कहते हैं। और कबीर इस कौमी भाषा—हिन्दी के सबसे पहले और बड़े कवि माने जाते हैं। उपर्युक्त विवेचन से यह साफ और सहज परिणाम निकलता है कि पूँजीवादी व्यवस्था के परिणामस्वरूप जिस स्वाभाविक प्रक्रिया से वर्णव्यवस्था में शिथिलता आई और इसी से एक कौमी भाषा (हिन्दी) का भी जन्म हो गया, तो ऐसे ही संतमत को भी इतिहास देवता का सहज एवं स्वाभाविक परिणाम स्वीकारने में क्या आपत्ति है ? जिस प्रकार समाज से, भाषा से ब्राह्मणों का इजारा उठ गया, उसी प्रकार धर्म के क्षेत्र में भी अब 'हरि को भजै सो हरि का होई' वाली स्थिति भी स्वाभाविक प्रक्रिया का परिणाम ही मानी जानी चाहिए न कि किसी इस्लाम इत्यादि की प्रतिक्रिया। इसका सबल प्रमाण है कबीर आदि सन्तों द्वारा हिन्दू-मुसलमानों दोनों के ही मिथ्याचारों एवं बाह्याचारों का निष्पक्ष तथा सरोष प्रत्याख्यान। कबीर ने जब भी किसी की रीति-नीति का प्रत्याख्यान किया किसी हिन्दू अथवा मुसलमान के किसी मतवाद से प्रेरित होकर नहीं, बल्कि शुद्ध मानवीय दृष्टि से। उनकी दृष्टि में मात्र मानव होता था, न कोई हिन्दू होता था और न कोई

---

1. डॉ० राजदेव सिंह, आधुनिक कबीर, पृ० 17

मुसलमान। कबीर का मत (संतमत) शुद्ध मानवीय धर्म था जिसकी भूमि समाज-शास्त्रीय प्रक्रिया से यहां तक आते-आते तैयार हो गई थी और जिसमें बीजवपन कबीर ने किया।

संतमत का आविर्भाव भी काल-देवता का एक सहज एवं स्वाभाविक स्फुरण है, इस्लाम का प्रतिवाद करने की प्रतिक्रिया नहीं। यहां तक आते-आते समय की यह आवश्यकता हो गई थी कि धर्म का भी एक सर्वमान्य, सर्वहितकारी, भेद-भाव रहित सहज ग्राह्य स्वरूप होना चाहिए। इस आवश्यकता की पूर्ति संतमत के आविर्भाव से हुई। धर्मक्षेत्र में नाना साधनाओं और सम्प्रदायों में जो विकृतियाँ आ गई थीं, उन सभी से रहित संतमत एक शुद्ध मानवीय धर्म के रूप में प्रकट हुआ जिसे विश्वधर्म की संज्ञा दी जाए तो भी कोई अत्युक्ति नहीं होगी। भले ही नामदेव इत्यादि कबीर से पहले हुए हों, किन्तु एकाधिक कारणों से 'आदि संत' कबीर को ही माना जाता है और यहीं से संतमत की धारा, कबीर, नानक, दादू, रैदास, मीरा इत्यादि संतों से सम्बन्धित बड़े वेग से बह निकली जो भारतीय जनजीवन को सदियों से आप्लावित करती आ रही है। हरियाणे में भी संतमत के उद्भव की परिस्थितियां इनसे भिन्न नहीं समझनी चाहिएँ।

हरियाणा में संतमत का विकास

हरियाणा में संतमत के प्रवर्त्तक के रूप में गुरुनानक देव जी को ही मानना चाहिए। गुरुनानक के बाद होने वाले सभी सिक्ख गुरुओं की लीलास्थली, यह हरियाणाभूमि रही है। सभी बड़े-बड़े नगरों—कुरुक्षेत्र, सिरसा, तथा रोहतक आदि में प्राचीन गुरुद्वारे इस बात के प्रमाण हैं। 'उदासी' सम्प्रदाय के भी उत्तरी हरियाणा में प्राचीन अखाड़े हैं। जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि सिक्खों के साथ-साथ इन उदासीन अवधूतों का भी यहां काफी प्रभाव रहा है। इसके बाद तो विभिन्न संत सम्प्रदायों की यहां बाढ़-सी ही आ गई।

दादूदयाल जी के शिष्य बनवारीदास रतिया (ज़िला हिसार) के निवासी थे जिन्होंने कई स्थानों पर दादूद्वारों की स्थापना की। इसी परम्परा में आगे चलकर संत निश्चलदास बड़े विद्वान् साधु हुए। इसी परम्परा में हरिदास जी भी बड़े ऊँचे संत हुए हैं जिनका प्रमुख ठिकाना राणीला (दादरी) था। चरणदासी सम्प्रदाय का भी यहाँ काफी प्रभाव रहा है। सर्वखाप पंचायत के रिकार्ड में तो चरणदास तथा उनकी दोनों शिष्याएँ—सहजोबाई तथा दयाबाई—इसी हरियाणा की सीमा में पड़ने वाले डेहरा नामक गांव में पैदा हुए थे। हरियाणा में इनके बीसियों ठिकाने (गद्दियाँ) हैं।

सत्रहवीं शताब्दी में नारनौल के पास ही 'साध' सम्प्रदाय के प्रवर्तक उदादास तथा वीरभान जी का प्रकट होना बताया जाता है। इनका प्रभावक्षेत्र भी काफी

विस्तृत है। इन्हीं के आसपास नांगी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक संत ढेउराज हुए जिनका प्रचारक्षेत्र गुड़गाँव तथा नारनौल रहा। दक्षिणी-पश्चिमी हरियाणा के राजस्थान से लगने वाले क्षेत्र में संत जम्मेश्वर द्वारा प्रवर्तित विश्नोई सम्प्रदाय का भी बड़ा प्रभाव है। हिसार तथा सिरसा में जाँमेश्वर जी के बड़े मन्दिर हैं। बेनामी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक संत कक्कड़ साहब तथा बेनामी जी भी उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में बड़े प्रभावशाली संत हुए हैं। हरियाणा के अतिरिक्त इनके राजस्थान में भी दस बारह बाड़े हैं।

संवत् 1774 में संत गरीबदास का आविर्भाव रोहतक जिले के छुड़ाणी गाँव में हुआ। संत गरीबदास हरियाणा के सबसे प्रसिद्ध संत हैं। इनके पुत्र संत जैतराम जी हुए हैं जो अपने पिता के समान ही बड़े प्रसिद्ध संत हुए हैं। गरीबदासी सम्प्रदाय को इन्होंने हरियाणा से बाहर पंजाब तक प्रसिद्ध किया। छुड़ाणी धाम के वार्षिक मेले पर हजारों पंजाबी सिक्ख गरीबदास जी की समाधि पर श्रद्धा सुमन अर्पित करने आते हैं। जैतराम जी की समाधि नूरमहल (पंजाब) में ही है। महाराज गरीबदास को कबीर साहिब का ही अवतार माना जाता है। इनके समकालीन महाराज नितानंद जी भी बड़े प्रसिद्ध संत हुए हैं। इनको नितानंदी भैरव का प्रवर्त्तक माना जाता है। इनकी बड़ी गद्दी माज़रा ग्राम ज़िला रोहतक में है। इनकी वाणी हरियाणा भर में सर्वाधिक लोकप्रिय हैं।

हरियाणा की सीमा के निकट ही स्थित उत्तर प्रदेश के खेकड़ा ग्राम में संवत् 1860 में महाराज घीसा साहब का जन्म हुआ। इनके द्वारा प्रवर्तित घीसा-सम्प्रदाय इधर हरियाणा में ही ज्यादा फला-फूला है। इस परम्परा में पड़ने वाले संत जीतादास, नेकीदास, ईशरदास तथा द्योताराम जी आदि प्रसिद्ध संत हुए हैं। नाहरी में नेकीदास जी की बड़ी गद्दी है। आजकल समंदरदास जी सत्संग-प्रचार कार्य को सुचारु रूप से चला रहे हैं। राधास्वामी सम्प्रदाय का भी हरियाणा में काफी बोलबाला है। इस सम्प्रदाय में कई प्रसिद्ध संत हुए हैं जिनमें परमानंददास, रामसिंह 'अरमान' तथा संत ताराचन्द जी प्रमुख हैं। 'मस्ताना जी' द्वारा चलाया हुआ 'सच्चा-सौदा' आजकल संत सतनामदास जी की देखरेख में खूब प्रसार पा रहा है। सिरसा में 'सच्चे सौदे' का बहुत बड़ा सत्संग संस्थान बन रहा है। जगाधरी में मंगतराम जी का समता सम्प्रदाय काफी लोकप्रिय है। मेवात में संत सादुल्ला बड़े प्रसिद्ध संत हुए हैं।

कबीरपंथी संत महाराज इन्दराज जी की शिष्य परम्परा में भी कई प्रसिद्ध संत हुए हैं। संत हरदेदास बादली वाले, जो लाला जी के नाम से प्रसिद्ध थे, बड़े ऊंचे संत थे। इनकी शिष्य परम्परा में संत खूबीदास, संत दूलनदास, संत रतनदास जी बड़े प्रभावशाली संत हुए हैं। हरियाणा में संतमत का विकास संक्षिप्त रूप में यही है। इसके विस्तार में जाने का आगे अवसर आएगा।

खण्ड-२

हरियाणा के विभिन्न संत-सम्प्रदाय

प्रथम अध्याय : संत गरीबदास और उनका गरीबपंथ
द्वितीय अध्याय : हरियाणा का घीसा पंथ
तृतीय अध्याय : हरियाणा का नितानन्दी पंथ
चतुर्थ अध्याय : हरियाणा का चरणदास पंथ
पंचम अध्याय : हरियाणा का कबीर-पंथ
षष्ठ अध्याय : हरियाणा का दादू पंथ
सप्तम अध्याय : हरियाणा का समता पंथ
अष्टम् अध्याय : हरियाणा का राधास्वामी पंथ
नवम् अध्याय : हरियाणा का साध-सम्प्रदाय
दशम् अध्याय : हरियाणा का बेनामी पंथ
एकादश अध्याय : हरियाणा का परमानन्दी पंथ
द्वादश अध्याय : हरियाणा का सिक्ख धर्म तथा अन्य संत सम्प्रदाय

अध्याय 1

संत गरीबदास और उनका गरीब पंथ

हरियाणा के संत-साहित्य में गरीबपंथ और इसके प्रवर्त्तक संत गरीबदास का महत्वपूर्ण स्थान है। उत्तरी भारत की संत परम्परा में हरियाणा के जिन दो-चार संतों का नाम लिया जाता है[1] उनमें संत गरीबदास सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। शेखफरीद, नामदेव कबीर से चली आ रही निर्गुण परम्परा में गरीबदास तथा उनकी बाणी का महत्व अक्षुण्ण है। जहाँ तक हरियाणा सन्त परम्परा का सम्बन्ध है इनका स्थान सर्वोपरि है।

गरीबदास नाम से उत्तरी भारतीय सन्त परम्परा में चार सन्त हुए हैं। सूचनाओं के अभाव में कुछ विद्वानों ने नाम साम्य के कारण इन गरीबदास नामक सन्तों से सम्बन्धित तथ्यों को एक दूसरे के साथ भ्रमवश सम्बद्ध कर दिया है। मध्यकालीन सन्तों के विषय में तथ्यों की अल्प जानकारी के कारण विद्वानों के सामने ठीक-ठीक सूचनाएं देने की कठिनाई बराबर बनी रही है। प्रथम गरीबदास (1631 सं०) दादू जी के पुत्र एवं शिष्य हुए हैं जो दादू के पश्चात् गुरु गद्दी के अधिकारी बने। दूसरे गरीबदास (1774-1835) छुड़ानी ज़िला रोहतक वाले हुए हैं। तीसरे गरीबदास (?) कोई पंजाब में हुए हैं जिन्होंने हिन्दू-मुस्लिम धर्म-साधनाओं को समन्वित करने का प्रयास किया।[2] चौथे गरीबदास (सं० 1949)

---

1. 'उत्तरी भारत की सन्त परम्परा' में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने गरीबदास; निश्चलदास, सन्त डेढ़राज और वीरभान का उल्लेख किया है। दे० क्रमशः पृ० 728, 516, 787, 472
2. डा० के० सी० गुप्ता, श्री गरीबदास, 1976, पृ० 28

बावरी पंथ में मंसादास के शिष्य हुए हैं।[1]

गरीबपंथ के प्रवर्त्तक सन्त गरीबदास (छुड़ानी वाले) का जन्म एक जाट परिवार में छुड़ानी गाँव जिला रोहतक में सन् 1717 ई० में हुआ और इनकी मृत्यु 1778 ई० में हुई। कहा जाता है कि कबीर ने इनको स्वप्न में दीक्षा दी थी। गरीबदास गृहस्थ थे तथा उनकी गद्दी के महन्त भी गृहस्थ हैं। डा० मोहनसिंह का गरीबदास जी के विषय में कहना है कि ज़िला रोहतक वाले गरीबदास (1774-1780 ई०) जो दादू सम्प्रदाय के गरीबपंथ के प्रवर्त्तक हैं, वे भक्त कवियों में राजयोग को मान्यता देने वाले अन्तिम कवि थे जिनका जनभाषा शैली पर असाधारण अधिकार था, गुलाम फ़रीद की तरह—और जिनका अन्य भारतीय भाषाओं का ज्ञान किसी भी अन्य मध्यकालीन कवि से अधिक था और इस प्रकार इन्हें हम शाह क़यामुद्दीन चिश्ती (सोलहवीं शताब्दी) के निकट पाते हैं जो बाबा फ़रीद के वंशज और उत्तराधिकारी थे।[2] गरीबदास का समय 1717-1778 ई० ठीक है जिसका सेन महोदय ने अपने कथन में संकेत दिया है।[3]

उल्लेखनीय है कि सन्त गरीबदास जी के सम्बन्ध में उक्त सूचनाएं बहुत थोड़ी हैं। डॉ० मोहनसिंह ने गरीबदास जी के जीवनकाल का जैसा उल्लेख किया है वह अशुद्ध भी है। इधर हाल ही में दो महत्वपूर्ण कृतियां प्रकाश में आई हैं—एक है श्री भक्तराम द्वारा रचित सन्त गरीबदास का 'जीवन चरित्र' और दूसरी कृति 'ग्रन्थसाहिब (सद्गुरु श्री जैतराम जी की वाणी)' है जो बाबा बुल्हनदास ने सन् 1955 में प्रकाशित करवाई है। ये दोनों रचनाएं गरीबदास के व्यक्तित्व पर पर्याप्त प्रकाश डालती हैं। अब तक आचार्य परशुराम चतुर्वेदी जैसे सन्त-साहित्य मर्मज्ञ विद्वान् को भी जो यह शिकायत रही है कि इनकी जीवनी के विवरण बहुत कम उपलब्ध हैं।[4] इन दोनों कृतियों के प्रकाशन से वह भी दूर हो गई है। 'जीवन चरित्र' के रचियता श्री भक्तराम की कृति का आधार—एक हस्तलिखित पोथी है जो ब्रह्मानन्द नामक गरीबदासी साधु द्वारा रचित है। श्री जैतरामजी की वाणी और 'जीवन चरित्र' में आए तथ्यों में साम्य है। हरियाणा प्रदेश में प्रचलित गरीबदास सम्बन्धी किंवदन्तियों में भी उक्त दोनों रचनाओं में आए तथ्यों का साम्य है। श्री जैतराम गरीबदास के ज्येष्ठ पुत्र एवं शिष्य दोनों ही थे। अतः उनके द्वारा उल्लिखित तथ्यों की प्रामाणिकता असंदिग्ध है। सन्त जैतराम ने बताया है

---

1. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० 556
2. डा० मोहन सिंह, एन इन्ट्रोडक्शन टू पंजाबी लिट्रेचर, पृ० 152
3. मिडिवल मिस्टिज़म आफ् नार्दन इण्डिया, खण्ड-III, पृ० 391 (क्षितिमोहन सेन)
4. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० 729

कि गरीबदास का जन्म संवत् 1774 वि० वैसाख पूर्णिमा के दिन 'अबीक्ष नक्षत्र' के शुभ लगन में हुआ था। इनका जन्म स्थान छुड़ानी ग्राम है जो हरियाणा प्रान्त में स्थित है। इनके पिता का नाम श्री बलीराम तथा माता का नाम रानी था।[1] गरीबदास गृहस्थ थे। इनकी छः सन्तान बताई जाती हैं—जैतराम, तुरतीराम, अंगदराय, तथा आसाराम नामक चार पुत्र थे तथा दिलकौर और ज्ञानौ नामक दो पुत्रियाँ थीं।[2] जैतराम जी ज्येष्ठ पुत्र थे। लेकिन अपनी बाणी में उन्होंने अपना नाम चौथे स्थान पर लिया है। यह उनकी विनम्रता का परिचायक मात्र है क्योंकि 'जीवन चरित्र' में भी और छुड़ानी वालों में भी जैतराम ही गरीबदास जी के ज्येष्ठ पुत्र बताए गए हैं।

गरीबदास का सामान्यतया शिक्षित होने का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। आचार्य चतुर्वेदी लिखते हैं—कहा जाता है कि सन्त गरीबदास पढ़े-लिखे कुछ भी नहीं थे, न इन्हें पद्य रचना का कोई विशेष अभ्यास ही था।[3] गरीबदास की वाणियों से इस मत की पुष्टि नहीं होती कि उन्हें पद्य-रचना का अभ्यास नहीं था। जहाँ तक पढ़े-लिखे होने का प्रश्न है। मध्यकाल के विरले ही कवि आज के अर्थ में पढ़े-लिखे थे। प्रवाद तो यहाँ तक है कि कबीरदास भी अनपढ़ थे। लेकिन इस अनपढ़ता का अर्थ वह नहीं है जो आजकल समझा जाता है। गरीबदास जी की वाणियों से पता चलता है कि इन्होंने कबीर की वाणी को पढ़ा है और केवल कबीर

---

1. दिल्ली मंडल देश बखानौ। दिल्ली से पश्चिम दिश जानौ॥
धाम छुड़ानी नगरी मांही। गरीबदास उतरे तिस ठाँही॥
हरियाणा मंडल कहिलाई। ता मध्य सतगुरु उतरे आई॥
समवत सतरासौ चौहत्तर। सुभ मुहूरत अबीछ निछत्र॥
बैसाख मास की पूर्णमासी। ऐसे सतगुरु उतरे आँही॥
गरीबदास तब इस्म धराया। मात पिता के ज़िजमन आया॥
पिता नाम बलीराम कही जै। माता रानी नाम सुनी जै॥
ता माता के उदरि आए। गाम छुड़ानी धाम कहाए॥
—ग्रंथ साहिब, सद्गुरु श्री जैतराम जी की वाणी, पृ० 34

2. गृहचार कर गति चलाई। दो धारा प्रगछ दिखाई॥
बिन्द सरूप रूप प्रगटाना। भिन्न भिन्न जिनका करौं बखाना॥
तुरतीराम और अंगदराया। तीजा आसेराम कहाया॥
चौथा जैतराम हैं भाई। सतगुरु चरणों सुरती लाई॥
दिलकौर और ज्ञानौं हैं भाई। दोनों सतगुरु सरने आई॥
—वही, पृ० 35

3. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० 729

के जीवन और आदर्शों का ही नहीं वरन् कबीर काव्य का भी इन्होंने अनुकरण किया है। आध्यात्मिक स्तर पर कुछ भी हुआ हो किन्तु भौतिक स्तर पर यह साफ दिखाई देता है कि गरीबदास ने अपनी प्रारम्भिक अवस्था में ही कबीर-वाणी का अध्ययन भी किया है और आत्मसात् किया है। कृषि जीवी समाज में जैसा सहज स्वाभाविक है ये पहले पशु चराया करते थे और युवावस्था प्राप्त करने पर कृषि करने लगे। ऐसी स्थिति में स्वभावतः इनकी औपचारिक शिक्षा-दीक्षा नहीं हुई। इन्होंने जो कुछ सीखा वह सत्संगति से तथा स्वयं के अनुभव से। लेकिन इसे अनपढ़ता नहीं कहा जा सकता।

गुरु

'गरीबदास जी की वाणी' सम्पादक स्वामी अजरानन्द का कहना है कि गरीब दास की आयु 12 वर्ष थी, जब वे एक दिन जंगल में गाएँ चरा रहे थे तो कबीर जी ने गरीबदास से एक अनब्याई गऊ का दूध माँगा। गरीबदास के यह कहने पर कि यह गाय तो अनब्याई है कबीरदास जी ने उस गाय की पीठ पर हाथ फिरा दिया जिससे उस गाय ने दूध दे दिया। दूध पीकर उन्होंने गरीबदास को आशीर्वाद दिया और दीक्षा दी।[1] आचार्य चतुर्वेदी का कहना है कि गरीबदास को कबीर जी ने स्वप्न में दर्शन देकर अपना शिष्य बना लिया था।[2] अलौकिक और अतिप्राकृत में आज के लोगों की आस्था नहीं है अतः विश्वास करना कठिन होता है कि कबीर ने स्वप्न में कैसे दीक्षित कर दिया अथवा गरीबदास को पशु चराते हुए कबीर कैसे दर्शन दे सकते हैं जबकि इनके समय में ऐतिहासिक दृष्टि से शताब्दियों का अन्तर है? समाधान के रूप में चतुर्वेदी जी ने महर्षि शिवव्रतलाल का मत उद्धृत किया है—कि गरीबदास को दर्शन देने वाले अथवा दीक्षित करने वाले कोई कबीरपंथी साधु रहे होंगे, और असली साधु कबीर का ही रूप होते हैं। अन्त में आचार्य जी का कहना है कि कारण जो भी रहा हो, इसमें सन्देह नहीं कि कबीर साहब को ही गरीबदास पथ-प्रदर्शक मानते थे और इनके प्रायः सभी सिद्धान्त भी उन्हीं के मत से प्रभावित जान पड़ते हैं।[3]

जैतराम जी की दृष्टि में गरीबदास साक्षात् कबीर ही थे।[4] श्री भक्तराम भी इसी मत की पुष्टि करते हुए प्रतीत होते हैं, जब वे जैतराम की ही वाणी उद्धृत

---

1. गरीबदास की वाणी, भूमिका, संस्करण 1924
2. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० 729
3. परशुराम चतुर्वेदी (आ०), उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० 729
4. 'गरीबदास सतगुरु मिला, अदली पुरुष कबीर।' ग्रंथ साहिब, जैतराम की वाणी, पृ० 25

करते हैं—

'दास गरीब कबीर है, कबीर गरीब जान' तथा

'गरीब कबीर भेद नहीं दूजा, जैतराम नित कीजै पूजा।'[1] इत्यादि। यहाँ श्रद्धातिरेक के दर्शन होते हैं, जैसा कि प्राय: प्रत्येक पंथ वाले अपने प्रवर्तक को विग्रह रूप में ब्रह्म के ही समशील ठहराया करते हैं और जिन्हें किसी सदेह गुरु की पथ-प्रदर्शन के लिए आवश्यकता नहीं होती। किन्तु जिस आग्रह से सभी निर्गुण सम्प्रदाय वाले गुरु को महत्व प्रदान करते हैं ऐसी स्थिति में साधना सम्बन्धी संकेत के लिए किसी देह-धारी गुरु का होना अनिवार्य है।

स्वयं गरीबदास ने कबीर को इन शब्दों में गुरु रूप में स्वीकार किया है—'दास गरीब कबीर का चेरा, सन्तलोक अमरापुर डेरा।'[2] इसी प्रकार अनेक स्थलों पर इनकी वाणी में इस प्रकार के साक्ष्य मिल जाएँगे। गरीबदास स्वयं कबीर के ही अवतार थे अथवा उन्हें स्वप्न में कबीर से दीक्षा मिली या पशु चराते हुए उन्हें कबीर ने दर्शन दिए—इन सभी बातों से गरीबदास के लिए अथवा गरीब पंथ में कबीर का महत्व एवं प्रभाव तो स्पष्ट ही प्रकट है। इसका समाधान हमें उपर्युक्त महर्षि शिवव्रतलाल के शब्दों में ही मिलता है कि कोई कबीरपंथी साधु गरीबदास को पथ-संकेत करने वाले अवश्य रहे होंगे और इस प्रकार के मार्ग-दर्शक को कबीर ही मान लिया हो तो बड़ी बात नहीं है। इसी प्रकार की मान्यता घीसा पंथ में भी प्रचलित है जिसके अनुसार घीसा साहब और चौधरी इन्द्राज को कबीर साहब गरीबदास की तरह दीक्षित करते हुए बतलाए गए हैं।

कुछ घटनाएं

कहा जाता है कि पाँच वर्ष की आयु में ही आपने अपने मलूका नामक साथी तथा उसके परिवार वालों को दिव्य प्रकाश की झलक दिखलाई थी। खेल-खेल में मलूका की कनिष्ठा उंगली में कंकर लगी। उंगली से खून बहने लगा और मलूका पीड़ा से रोने लगा। गरीबा (बचपन का नाम) ने अपने साथी को शान्त करने के लिए कहा कि देख तेरी उंगली पर कितना अच्छा 'तारा' चमक रहा है। मलूका ने विस्मित होकर वह चमकदार तारा देखा तथा मुट्ठी में बन्द कर भागा-भागा घर गया। घर वालों के देखते-देखते वह 'तारा' (दिव्य प्रकाश) लुप्त हो गया। किन्तु यह चमत्कार गाँव वालों की चर्चा का विषय बन गया।[3] दस वर्ष की अल्पायु में ही बोदीदास नामक वैष्णव भक्त को निर्गुण-ब्रह्म सम्बन्धी गुप्त भेद प्रकट करने

---

1. भक्तराम, जीवन चरित्र, पृ० 24
2. गरीबदास की वाणी, वे० प्रेस, पृ० 148
3. ग्रंथ साहिब, जैतराम जी की वाणी, पृ० 396

की घटना का जैतराम ने अपनी वाणी में विस्तार से वर्णन किया है जिससे इनकी जन्मजात दिव्यता प्रकट होती है।[1] इसी प्रकार की एक ओर घटना का उल्लेख जैतराम ने किया है जिसमें अल्मोड़ा की गुफा में साधना करने वाले किन्हीं मनसा राम नामक कबीरपंथी साधु ने अपने शिष्य 'हाड़ी भड़ंगा' को गरीबदास के रूप में साक्षात् कबीर के दर्शन करने के लिए छुड़ानी भेजा था। हाड़ी भडंगा पूर्ण आश्वस्त होकर लौटे थे कि गरीबदास निश्चय ही विग्रहवान कबीर ही हैं।[2]

सम्वत् 1794 वैसाख शुक्ला चतुर्दशी को संध्या समय नौ योगेश्वर चन्द्रावती नदी (शायद झज्जर प्रदेश में कोई बरसाती नदी रही हो) के तट पर छुड़ानी के निकट वह वृक्ष के नीचे विराजमान हुए। गरीबदास जी अपने सत्संगियों सहित जलपान लेकर योगेश्वरों की सेवा में उपस्थित हुए। रात के समय ज्ञान चर्चा हुई जिसमें गरीबदास ने अपने सुरत-शब्द योग की बड़ी खुलासा व्याख्या की। योगेश्वर बड़े प्रभावित हुए। प्रातः नित्यकर्म के पश्चात् इन नौ योगेश्वरों के भोजन की व्यवस्था वहीं नदी तट पर ही की गई। योगेश्वरों ने भोजन तैयार होने पर अपनी तुरही बजाई और सिद्धि के बल से गरीबदास की परीक्षा के लिए योगियों की पूरी सेना ही वहाँ उपस्थित कर दी। गरीबदास जी ने इस अवसर पर अपनी यह साखी[3] पढ़ी और सभी को मनवाँछित भोजन करवाया। योगेश्वर श्रद्धानत हो जयघोष करने लगे। जाते समय योगेश्वरों की विनती पर महाराज ने उनको अपना एक दुपट्टा भी भेंट किया।

हुलासी नामक एक धर्मदासी साधु के भ्रमनिवारणार्थ बड़ी विस्तृत ज्ञानचर्चा का उल्लेख जैतराम जी ने किया है, जिसके निमित्त सारा निर्गुण-ज्ञान रहस्य प्रकट कर दिया है।[4] गरीबदास की दिव्यता एवं अलौकिकता को प्रकट करने वाली घटनाओं के अतिरिक्त उनकी दयालुता, परोपकारिता तथा सहृदयता को प्रकट करने वाले छोटे-बड़े कई विवरण प्राप्त हैं जो गरीबदास जी के व्यक्तित्व के सम्यक् आकलन में सहायक हो सकते हैं। 'जीवन चरित्र' में ऐसी लगभग 90 घटनाओं का विवरण दिया गया है।

---

1. ग्रन्थ साहिब, जैतराम जी की वाणी, पृ० 398-99
2. वही, पृ० 399-401
3. गरीब सुख देना दुख मेटना ताजा राखे तन।
   सुर तैंतीसों खुश किए नमस्कार तोहि अन्न।
   खुल्या भंडारा गैब का, बिन चिट्ठी बिन नाम।
   गरीबदास मुक्तातुले, धन केशो बलिजाम।
   —ग्रंथ साहिब, जैतराम जी की वाणी, पृ० 401-4
4. वही, पृ० 415-16

मृत्यु

गरीबदास ने 61 वर्ष की आयु प्राप्त करने पर संवत् 1835 विक्रमी भादों मास की शुक्ला दूज के दिन अपनी ऐहिक लीला समाप्त की।[1] इनकी मृत्यु के बाद छुड़ानी ग्राम में ही इनकी समाधि बनवाई गई। इस समाधि में इन द्वारा प्रयुक्त कुछ वस्तुएं तथा पात्र आज भी वहां वर्तमान हैं।

व्यक्तित्व

गरीबदास एक सामान्य से कृषक थे। स्वभाव से सरल, दयालु तथा परोपकारी बतलाया जाता है। इनका खान-पान, वेशभूषा, प्रायः इस क्षेत्र के किसी भी अच्छे से कृषक से समानता रखने वाली ही रही होगी। किसी भी प्रकार के ये नशे के कड़े विरोधी थे।[2] इनके व्यक्तित्व का बड़ा सुन्दर काव्यमय चित्र जैतराम जी ने अपनी वाणी में देते हुए लिखा है कि—

नीमा पगड़ी और दुपट्टा धोती कमर कसाना।
पग जोड़ी कलाबूत जड़ाऊ ऐसा रूप धराना।।
मध्यभाव लघु दीरघ नाहीं, सतगुरु कूँ कूरबाना।
छाती छत्र नैनन में मृग छवि, पद उरध रेख सहनाना।।
श्रवणलग भौं चढ़ी लिलाटं, पलक बिलंद बिलंदा।
नाक सुवे की सकल बनी है, आए सतगुरु जिंदा।।
नामी गरद गता कुंड़ली, हंसा गवन अमाना।
तलबे पांवडी पाया की नाई, मंद मंद मुस्काना।।
दड़ी में दाँत चमेली सेतं, रसना लहराई।
कंठ होठं सुन्दर बहु नीके, केहर कमर रहाई।।
बचन बाक बाणी मन मान्या, सब सुन्दर सुखदाई।
हाथ तंबूरा घनहर गाजे, झुनक झुकक झनकाई।।
बजे तंबूरा अजब जहूरा, राम रंग शुभ रंगा।
कंठ कोकिला राग रंगीला, धन सतगुरु सत्संगा।।[3]

अर्थात् सुन्दर पगड़ी, दुपट्टा, धोती तथा जड़ाऊ जूतियाँ उनकी वेशभूषा थी। शारीरिक दृष्टि से न अधिक लम्बे थे न छोटे बल्कि मध्याकार थे। छाती छत्र के समान

---

1. संवत अठारह सो पैंतीसा, प्रलोकि सिधारे हैं जगदीसा।
   मास भादवा दोज कहावै, पखवारा शुक्ल पक्ष कहावै।।
   —वही, पृ० 140
2. ग्रंथ साहब, श्री गरीबदास जी की वाणी, पृ० 648
3. वही, पृ० 414

चौड़ी, नयन मृग की तरह मोहक, पदतल उभरा हुआ, आकर्षण खचित भू, ऊँची सघन पलकें, शोभावमान थीं। कीर-नासिका, गहरी नाभिका, पदतल कोमल तथा सुडौल, अधरों पर मन्द मुस्कान धारण किए हुए, दाड़िम के दानों जैसे दाँत थे जो चमेली की तरह शुभ्र थे, लहराती हुई रसना, कण्ड, होंठ सुन्दर और कमर सिंह के समान पतली, कोकिला सा मधुर स्वर इत्यादि उनकी आँगिक छवि थी। तंबूरे पर जब राग आलापते थे तो उनके सत्संग में निराला ही ठाठ होता था। इसी विवरण से मिलता-सा काव्यमय चित्र इनके व्यक्तित्व का 'जैतराम जी की वाणी' में एक अन्य स्थान पर भी उपलब्ध है।[1]

शिष्य-परम्परा

गरीबदास की शिष्य-परम्परा में 20 प्रमुख शिष्यों का नाम लिया जाता है जो इस प्रकार हैं—जैतराम, सन्तोखदास, राजाराम, बनखंडी, रामदास, दौलतराम, लालदास, श्यामदास, हरिदास, जीवनदास, चैनराम, प्रेमदास, भानीदास पूरनदास, ठण्डीराम, जैसीराम, चेतनदास, गुलाबराम, मनसाराम, और कुसाली-राम।[2] इन सभी शिष्यों को जैतराम जी ने पूर्ण सन्त बतलाया है। इन बीस शिष्यों में से जैतराम इस अर्थ में अद्वितीय हैं कि इनके द्वारा रचित बड़ा ही सुन्दर काव्य साहित्य उपलब्ध होता है। शेष उन्नीस का कोई साहित्य उपलब्ध नहीं है। अपनी खोज के सिलसिले में मुझे जो सूचनाएँ मिली हैं उनके अनुसार काव्य-रचना केवल जैतराम जी ने ही की है। शेष उन्नीस कवि नहीं थे। सन्तोखदास—असौदा ग्राम के निवासी थे। जाति के बनिया थे इनका साहित्य नहीं है। ठण्डीराम महाराज गरीबदास के निकटतम शिष्यों में से थे। वाणी इनकी भी कोई नहीं है। हरिदासजी बहादुरगढ़ के निकटस्थ झाड़ौदा के निवासी थे जो परम सन्त हुए हैं। इनके ग्राम झाड़ौदा में ही इनकी समाधि है जिसकी बड़ी मान्यता है। प्रतिवर्ष गाँव में इनकी समाधि पर मेला लगता है।

गरीबदास की मृत्यु के पश्चात् गुरु गद्दी के प्रथम अधिकारी जैतराम जी हुए, किन्तु वे माता के आग्रह पर गद्दी छोड़कर करौंथा आ गए थे। उनके स्थान पर गुरु-गद्दी का अधिकारी तुरतीराम जी को बनाया गया जो गरीबदास के दूसरे बड़े पुत्र थे। इनके पश्चात् क्रमशः दानीराम जी, शिवदयाल जी, रामकृष्णदास गुरु गद्दी के अधिकारी हुए। इनके बाद महन्त गंगासागर जी गुरुगद्दी के अधिकारी हुए। सुना है इन्होंने भी अपने पुत्र को उत्तराधिकार सौंप दिया है। गुरुगद्दी पर (छुड़ानी छत्री साहब) वर्ष में दो बार मेला लगता है। बड़ा मेला गरीबदास के

---

1. ग्रंथ साहिब, जैतराम जी की बाणी, पृ० 36
2. वही, पृ० 35

जन्मदिवस पर लगता है। हजारों की संख्या में गरीब पन्थी साधु (अधिकतर पंजाब से) मेले पर आते हैं तथा सत्संग करते हैं। इस अवसर पर सिक्खों के गुरु-ग्रंथ साहिब की ही भाँति गरीबदास जी की वाणी (ग्रन्थ साहिब) का अखण्ड पाठ किया जाता है। मेले के अवसर पर महाराज की पादुकाएँ, लोटा, अँगरखा, पलंग इत्यादि के दर्शन एवं स्पर्श किया जाता है। गुरुगद्दी वंशानुगत है। महन्त शिवदयाल ने छत्री साहब में अखण्ड ज्योति जलाने की प्रथा प्रचलित की थी जो अब तक चलती आ रही है।

रचनाएँ

महाराज गरीबदास जी के शिक्षित होने का कोई प्रमाण अन्तः अथवा बाह्य साक्ष्य से प्राप्त नहीं होता जैसाकि पहले उल्लेख किया जा चुका है। अतः उन्होंने वाणी स्वयं लिपिबद्ध नहीं की। गोपालदास नामक दादूपन्थी साधु जो सन्तवाणी के मर्मज्ञ थे, उन्होंने इनकी वाणी लिपिबद्ध की। कहा जाता है कि गरीबदास जी की प्रसिद्धि सुनकर गोपालदास जी इनके पास आए। बड़े प्रभावित हुए और इन्हीं की सेवा में रहने लगे। महाराज की आज्ञा लेकर गोपाल दास ने वाणी लेखन का शुभारम्भ वि० सम्वत् 1797 के फाल्गुन मास की त्रयोदशी के दिन किया।[1] लेकिन महाराज जैतराम जी की वाणी में संकेत मिलता है कि वाणी का लेखन सम्वत् 1898 में आरम्भ हुआ—

'सम्वत् सतरा सो अठावनवैं वानी वचन उचारा।'[2]

वाणी संख्या—महाराज गरीवदास की वाणियों की संख्या के विषय में विद्वानों में मतभेद है। डॉ० रामकुमार वर्मा अनुमान से वाणी-संख्या 17000 से कुछ अधिक बताते हैं।[3] स्वामी चेतनदास के अनुसार कुल वाणी 18500 के लगभग हैं।[4] कई हस्तलिखित ग्रंथों में यह संख्या 18770, 18591, 18542 इत्यादि बताई गई है।[5]

वाणी संख्या में भिन्नता का कारण यह है कि गोपालदास जी द्वारा लिपिबद्ध वाणी खुले पत्रों पर लिखी हुई थी। महाराज गरीबदास जी की मृत्यु के पश्चात् शिष्य मण्डली ने वाणी की अपनी इच्छानुसार चुनाव किया और इस काँट-छाँट के क्रम में कुछ पत्र इधर-उधर हो गए हों यह संभव है। सर्वप्रथम इनकी समस्त वाणी का प्रकाशन सन् 1924 ई० में स्वामी अजरानन्द जी ने बड़ौदा के आर्य-सुधारक

---

1. ग्रन्थ साहिब, श्री गरीबदास जी की वाणी, पृ० 54 (भूमिका) सन् 1964
2. ग्रन्थ साहिब, श्री जैतरामजी की वाणी, पृ० 404
3-4. के० सी० गुप्ता, श्री गरीबदास, पृ० 43
5. वही, पृ० 44

प्रेस से करवाया था।[1] इससे पहले गरीबदासी साधु-महाराज की वाणी को—'रत्नसागर', 'नवरत्नमाला' के नाम से हिन्दी, पंजाबी एवं बंगला भाषा में छपवाते रहे। ये वाणी के सम्यक् प्रकाशन न होकर कुछ चुने हुए महत्वपूर्ण अंशों के प्रकाशन थे।[2] कुछ विद्वानों ने 'रत्नसागर' को ग्रन्थ साहिब के अतिरिक्त एक स्वतन्त्र रचना माना है।[3] जबकि 'रत्नसागर', 'नवरत्न माला' इत्यादि में ग्रन्थ साहिब की कुछ महत्वपूर्ण वाणियाँ ही संकलित है जो पाठ-सुविधा के लिए तथा प्रचार-प्रसारार्थ प्रकाशित करवाई गई थी।[4] इनकी वाणी का एक संस्करण वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद से भी प्रकाशित हुआ है, जो पूर्ण नहीं है।

गरीबदास की वाणी का सम्यक् प्रकाशन अब सन् 1964 ई० में हरिद्वार से 'ग्रन्थ साहिब' के नाम से हुआ है, जिसके प्रकाशक स्वामी धर्मस्नेही जी महाराज परमहँस इसहैं। ग्रन्थ का सम्पादन तथा संशोधन स्वामी चेतनदास एवं श्याम सुन्दर दास शास्त्री ने किया है। विद्वानों ने 70 पृष्ठ की भूमिका देकर बड़ा महत्व-पूर्ण काम किया है। भूमिका में वाणी का संक्षिप्त परिचय बड़ी प्रामाणिकता से दिया है। साथ ही इनका जीवन चरित्र भी संक्षिप्त रूप में दे दिया है जिसकी अपनी अतिरिक्त उपादेयता है।

धर्मस्नेही जी ने वाणी को दो खंडों में तथा पुस्तकाकार में प्रकाशित करवाया। पूर्वार्ध भाग में 70 पृष्ठों की भूमिका के अतिरिक्त पृष्ठ 1 से 297 पृष्ठ तक 71 अंग हैं। पृष्ट 298 से 536 पृष्ठ तक ग्रंथ भाग है जिसमें 43 शीर्षक हैं। उत्तरार्ध भाग में पृष्ठ 537 से 715 पृष्ठ तक पद भाग हैं जिसमें 15 शीर्षकों के अन्तर्गत पद संकलित हैं। पृष्ठ 716 से 1037 पृष्ठ तक 51 शीर्षकों के अन्तर्गत विभिन्न राग संकलित हैं। अन्त में पृष्ठ 1038 से 1078 तक कबीर वाणी संकलित है। कुल वाणी की संख्या इसमें 18500 के लगभग ही है।

समस्त वाणी को चार भागों में बाँटा गया है। पहला भाग अंग भाग है। इसमें मंगलाचरण, मन्त्र चलीसा, गुरुदेव का अंग, सुमरन का अंग, विरह, ज्ञान विरह, विरह चेतानी, पतिव्रता, परिचय, रस, लाभ, जरना, हैरान, लै (लौ) का अंग, निहकर्मी पतिव्रता, चेतावनी, मन, सूक्ष्म मार्ग, सूक्ष्म जन्म, माया, चाणक, करनी बिना कथनी, कथनी बिना करनी, कामी नर, सहज, साच, कुसंगति असाधु, साधु, साधु महिमा, साधु साक्षीभूत, विचार, पीव पिछान, अबिहड़, भेष, उपदेश, विश्वास, काल, पारख, शूरातन इत्यादि 61 अंग हैं। प्रायः सभी अंग साखियों में

---

1. ग्रन्थ साहिब, श्री गरीबदास जी की वाणी, पृ० 48 (भूमिका)
2. ग्रन्थ साहिब, श्री गरीबदास जी की वाणी, पृ० 48 (भूमिका)
3. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० 730
4. ग्रन्थ साहिब, श्री गरीबदास जी की वाणी, पृ० 48 (भूमिका)

वर्णित है। अंगों के शीर्षकों से ही उनका कथ्य स्पष्ट हो जाता है। निर्गुण साहित्य में अंग अध्याय अथवा प्रकरण का समशील है। जिसमें शीर्षक में उल्लिखित विषय का सम्यक् प्रतिपादन साखियों द्वारा किया जाता है। सामान्य तथा दोहे को ही सन्तों ने साखी नाम दे दिया जो उनके अनुभूत ज्ञान का प्रामाणिक साक्ष्य (साक्षी) है। गरीबदास जी ने विभिन्न अंगों के शीर्षकों के अन्तर्गत आए विषयों सम्बन्धी अपनी अनुभूति और विचारना का काव्यमय प्रतिपादन किया है।

वाणी का दूसरा भाग 'ग्रंथभाग' है जिसमें शीर्षकों के साथ—'ग्रंथ', 'कथा' तथा 'बोध' जैसे प्रत्यय होने के कारण—'ग्रंथ भाग' नाम दे दिया गया लगता है। इसके अन्तर्गत—आदिपुराण, गणेश पुराण, कर्मदण्ड मोक्ष पुराण, अर्जनामा, भक्त-माल, हंस परमहंस की कथा, भगल बानी, अन्नदेव की दो आरती, आदि माया ग्रंथ छत्तीस कौम का ग्रंथ, शब्दी, अन्दरूनी रासा फूलमाल, बहदेका ग्रन्थ, विलास बोध, सुख-सागरबोध हिम्मरबोध, मुहम्मदबोध तथा काफरबोध आदि 43 शीर्षक हैं। इस भाग में प्रत्येक ग्रन्थ के लिए अलग-अलग छन्दों का प्रयोग किया गया है। छन्द वैविध्य को देखते हुए गरीबदास के छन्द ज्ञान पर विस्मित होना ही पड़ता है। आदिपुराण से गणेश पुराण तक 24 पौराणिक कथाओं का वर्णन किया गया इससे भारतीय पौराणिक समृद्ध विरासत के प्रति गरीबदास जी की गहरी जान-कारी एवं सम्मान भावना लक्षित होती है। ध्यान देने की बात है कि कथाओं के शीर्षक पौराणिक हैं किन्तु प्रतिपादन की शैली तथा दृष्टि इनकी अपनी है। अधिकतर 'बोध' और कथाओं के माध्यम से निर्गुण ब्रह्म का और उस तक पहुँचने की विधि का ही बोध कराया गया है। एक बात जो अनेक बार सामने आई है कि निर्गुण मार्गी सन्त त्रिदेव सहित अन्य देवी देवताओं तथा अवतारों आदि से सन्त पद को ऊँचा मानते हैं। क्योंकि ये सभी तीन लोक के साम्राज्य के अन्तर्गत ही आने वाले हैं जबकि सन्तों की बादशाही इनसे ऊपर सतलोक तक है। इसी कारण लोकचित्त में शताब्दियों में स्थित इन देवी-देवताओं के साथ तुलनात्मक विधि से सन्तों तथा सन्त मत का प्रकर्ष दिखलाकर प्रकारान्तर से लोकचित्त को अपने प्रभाव में लाने की यह उत्तम विधि है। इसमें लोकसंग्रह की सच्ची भावना ही अन्तःसलिला स्वरूप काम करती है।

इस भाग में 'ब्रह्म कला' तथा 'ब्रह्मवेदी' जैसे शीर्षक के अन्तर्गत आए पदों का गरीबदासी पन्थ में प्रातः एवं सन्ध्या समय आरती की तरह गायन किया जाता है। 'अन्नदेव' की बड़ी और छोटी दो आरतियाँ भी इस भाग में उल्लेखनीय हैं। अब तक निर्गुण एवं सगुण साहित्य में किसी भी भक्त कवि ने अन्न को इतना महत्व नहीं दिया। 'अन्नदेव' की आरती द्वारा अन्न का महत्व स्थापित करना

कितने मारके की बात है। 'अन्नदेव तूँ आप मुरारी'[1] कहकर अन्न को स्वयं भगवान् के दर्जे तक ऊँचा उठा दिया है। अन्न-सा महत्वपूर्ण संसार का कोई पदार्थ नहीं है। यदि यह न हो तो सारी सृष्टि का ढाँचा ही बिगड़ जाए।[2] इन दोनों आरतियों का अवलोकन करने पर इनकी पारदर्शी एवं मौलिक दृष्टि का स्पष्ट आभास होता है अठारहवीं शती की हिन्दी गद्य का नमूना देखना हो तो 'शब्दी' तथा 'विलासबोध' शीर्षक वाली इनकी रचनाओं का अवलोकन किया जा सकता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—'यह तो पिण्ड ब्रह्माण्ड की ऐनक है, उस ऐनक कुँसुरत के विमान पर ठहरावे। अधः से लेकर, ऊर्ध्व पर धर। ऊर्ध्व के चौंक में एक झण्डा है। सो कैसा झण्डा है पचरंग पिछान है। उस झण्डे के आगे एक चौंतरा है, उस चौंतरे पर सतगुरु का चेला बैठा है। जो कुछ दिया है सो वहाँ मुयस्सर है। आगे बड़ी-बड़ी सैल है, वहाँ इसके ताई तोशा चाहिएगा।[3] तुकात्मक गद्य का भी एक नमूना देखें —'अवधू मन का मुतंगा सुरत की सेली, निरत का नाद पवन का फरूवा। अडिग आडबन्ध कदली कोपीन, ज्ञान का गोला भ्रम विभूति रमावनी। मूलमुद्रा सोहँगम माला, गुट कंठी मधु मृगछाला। चित्त की चीपी, ज्ञान का घोटा भाव की भाँग पियावनी। दिल की दारू पद का पोसत, बुद्धि की माटी सन्धि की शीशी। क्षमा का छालना, प्रेम का प्याला, पीएगो सिद्ध कोई।'[4] गरीबदास जी का काल ठीक भारतेन्दु काल का समारम्भ काल ही है। महाराज की गिनती हिन्दी गद्य को नया स्वरूप देने वालों में सहज ही की जा सकती है। अब तक हमें अधिकतर निर्गुण भक्ति साहित्य में पद्यात्मक ही प्राप्त होता है। समर्थ विभूतियों ने अपने समय तक प्रचलित सभी छन्दों एवं काव्य रूपों का प्रयोग अपनी वाणी में किया है। इनका गद्य-प्रयोग भी यह सिद्ध करता है कि इन्होंने भी इसका प्रयोग किसी परम्परा अथवा प्रभाव से ही प्रेरित होकर किया होगा। दुर्भाग्य से गरीबदास जी के पहले का गद्य आज अधिक उपलब्ध नहीं है लेकिन गरीबदास जी के गद्य से स्पष्ट आभास मिलता है कि इस तरह का गद्य उनसे पहले भी खूब प्रचलित रहा होगा।

गरीबदास जी की वाणी का तृतीय भाग पद भाग है जिसके अन्तर्गत विभिन्न छन्दों को ही शीर्षक के रूप में रख दिया है। यथा—सवैये, कवित्त, रेखते, झूलने, अरील, बैंत, झूमकरे, अष्टांगयोग, रमैणी इत्यादि। बैंत छन्द पर सिक्ख गुरुओं की वाणी का पंजाबी प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। झूमकरे शायद झूमक जैसा कोई

---

1. ग्रन्थ साहिब, गरीबदास जी की वाणी, पृ० 438
2. वही, पृ० 436-40
3. वही पृ० 468
4. वही, पृ० 470

छन्द रहा हो। वाणी के 'झूमकरे' पढ़ने पर ऐसा लगता है कि जैसे गरीबदास जी किसी 'झूमकरा' नामक व्यक्ति को सम्बोधित कर रहे हों—'नाभि कमल में पैंठिए राय झूमकरा, चल बंकनाल के घाट सुनो राम झूमकरा।' इला पिंगला पेरिओ राय झूमकरा, उत्तरो औघट घाट सुनो राम झूमकरा। सुषुम्ना सुरति लगाइये राय झूमकरा, खोलो ब्रज कपाट सुनो राय झूमकरा।'[1]

'झूमकरा' के सम्बन्ध में प्रकाश डालते हुए स्वामी चेतनदास भूमिका में लिखते हैं—'झूमकरा भी एक लोकगीत है, कई व्यक्तियों की यह जो धारणा है किसी 'झूमकरा' नामक सेवक को सम्बोधन करके यह वाणी कथन की गई है, यह नितान्त मिथ्या है क्योंकि सन्त शिरोमणि कबीर साहिबजी ने भी इसको अपनी भणन्त में स्थान दिया है।[2] अष्टांग योग' में अष्टांग योग जैसी कोई बात न होकर वाणी की दुरूहता एवं दुर्बोधता ही इसके 'अष्टांग' शीर्षक होने का कारण लगता है। हरियाणा में 'अष्टा' शब्द मुश्किल या कठिन का पर्यायवाची है। शायद इसमें 'अष्ठी' वाणी होने से ही अष्टांग बना है।[3] एक उदाहरण देखें—

कंदर्प गुदागात, भगनी स भोगं। कथो ज्ञान ध्यानं, कहाँ योग योगं।
लोहा कु लोहा, कटल रूप द्रोहं। प्रसतं पारस; अग्रमूल सोऽहम्।
अंगुष्ठान गलतं, चलतं अचानं। ग्रहचार तन तत्व, सोहम् सुभानम्।
मूरत अमूरत अन्यनाम नासा। बाहर न भीतर, न पहुमी अकाशा।
अलबूद सूदं, मकरंद मोहं। कहते गरीबं, असथान कोऽहम्।।[4]

'रमैणी' छन्द भी सन्त साहित्य में चौपाई छन्द से बने पद के लिए रूढ़ हो गया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का अनुमान है कि सम्भवतः रमैनी शब्द का प्रयोग गोस्वामी तुलसीदास की रामायण में प्रयुक्त चौपाई छन्द के लिए किया गया है।[5] गोस्वामी तुलसीदास के प्रसिद्ध ग्रंथ 'रामचरितमानस' का लोक प्रचलित नाम 'रामायण' है। संभव है चौपाई का लोकप्रचलित नाम रमैनी रहा हो। संत गरीबदास की बाणी में 45 पृष्ठों में रमैणी-पद आए हैं। कई का विषय सहज ही बोधगम्य होने वाला है—कई रमैणी दुर्बोध हैं। एक रमैणी में शायद कुछ भविष्य-वाणी जैसी की गई है। उदाहरण प्रस्तुत है—'कलियुग को आदि, बारह सदी का अंत है। दूलह दयालु देव, जानत कोई संत मेव। ओही वाला कंत है।। दिल्ली के तख्त छत्र, फिर भी फिरायसी। खेलत गुप्तार सैन, भंजन सब फोकफन, महियल

---

1. ग्रन्थ साहिब, गरीबदास जी की बाणी, पृ० 653
2. वही, पृ० 66 (भूमिका)
3. वही, पृ० 66 (भूमिका)
4. वही, पृ० वही
5. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, प्रस्तावना

राजबाला पुरुष, सतगुरु दिखलायसी ।। आवेगा दखन से दीवाना, काबुल का काल किलियं, गलत है तुरकाना ।। किल किलियं अवतार कला, जीतन जग झुझमला, ऐसा पुरुष आया । कहता है गरीबदास, दिल्ली मंडल होय बिलास ।।'[1] 'तमाखू की बैंत' में नशे मात्र को निषिद्ध ठहराया है । जिस तम्बाकू के नशे को हम इतना सहज ढंग से लेते हैं, उसकी भयंकरता इन शब्दों में द्रष्टव्य है—

गरीब सो नारी जारी करे, सुरापन सौ बार ।
एक चिलम हुक्का भरे, डूबे कालीधार ।।[2]

चतुर्थ भाग में सारी वाणी को विभिन्न रागों के शीर्षकों के अन्तर्गत बाँट रखा है । उसमें लगभग 50 रागों के नाम हैं जैसे—राग गौड़ी, राग दीपक, कल्याण, कान्हड़ा, केदार, हेली परज, राग, जय-जयवन्ती, विहाग, सोरठ, मलहार, मारू-मंगला, बारहमासा, चौरी, विनोद, विजोग, बरवै, सरबंग, बधावना, सेहरा, ढोरी, कहरा, बाँगड़ा, बंगला, निहपाल, रामभैरव, रामकली, प्रभाती, बिजावल, आसा-वरी, सारंग, नट, वसंत, धमार, होरी, काफी, धनाश्री, हिंडोल आदि । इनके अतिरिक्त फुटकल पद भी हैं । लोकचित्त को कितना गरीवदास जी ने अपनी विभिन्न राम-रागनियों से समृद्ध किया है वह अपने आप में बड़े महत्व की बात है। लोकचित्र में विभिन्न रागों में आए हुए पद स्थायी स्थान बनाए हुए हैं । संगीतज्ञों के लिए इस रागनिधि से लाभान्वित होने की बड़ी सम्भावनाएँ हैं । बाणी के अंत में 40 पृष्ठों में कबीर साहब की बाणी दी हुई है । इससे गरीबपंथ में कबीर के प्रति श्रद्धा का पता चलता है। गरीबदास जी तो थे ही कबीर के अवतार । पहले ही इसका उल्लेख किया जा चुका है ।

सारी बाणी में आरम्भ से अन्त तक—'मौन मुखर, सब छन्दों में उस एक अनिर्विच छंद मुक्त' का गान किया गया है । ऐसा लगता है कि उस अनिर्विच अनु-भूति की छाक कुछ ज्यादा ही गाढ़ी है जो नाना छंदों एवं रागों में सिमट ही नहीं पा रही । बस बरस रहे हैं धारासार । सावन की झड़ी, जैसे रुकने का नाम ही नहीं । सब अनायास नितान्त सहज ही जैसे शब्द निसृत होते जा रहे हैं, कहने वाले का जैसे मन भरता ही नहीं, इतना समृद्ध भाव-पक्ष, इतनी प्रगाढ़ अनुभूति । भाषा बेचारी तो इस मौले मस्तान, साहिब छाक में गलितान सर्व अन्तर्यामी महात्मा के आगे निरन्तर हाथ बाँधे हुक्म बजा लाने को तत्पर खड़ी रहती है । कबीर की भाषा के विषय में आचार्य द्विवेदी जी ने जो शब्द कहे हैं, वे केवल कबीर के ही लिए नहीं वरन् हर कृती सन्त के लिए फिट बैठते हैं जिनमें अनुभूति की प्रामा-णिकता है । अगर सन्तों की भाव धारा में निमज्जित होने का प्रयास किया जाए,

---

1. ग्रंथ साहिब, गरीबदास जी की बाणी, पृ० 694
2. गुरु ग्रंथ साहिब, गरीबदास जी की बाणी, पृ० 642

भाषा-तट पर बैठे-बैठे खरपतवार, फूल-पत्तियों से खिलवाड़ में ही उलझकर न रहा जाए तो अनन्त रस की उपलब्धि होती है। इनमें भाषा का सर्वग्राह्य-सा रूप है, जिसे प्रायः सारे उत्तरी भारत में समझा जा सकता है। ब्रज, अवधी, खड़ी बोली, राजस्थानी, पंजाबी, उर्दू, फारसी, इत्यादि के मिले-जुले शब्द एक सर्व-सम्मत भाषा का अच्छा उदाहरण हैं—गरीबदास जी की भाषा। भाषा का गद्य रूप भी इनकी बाणी में उपलब्ध है—जो उस समय की भाषा का दिग्दर्शन करवाता है। निश्चय ही गरीब दास जी की भाषा अलग से शोध का विषय है।

श्री जैतरामदास जी

गरीब पंथ में महाराज जैतराम दास जी का अन्यतम स्थान है। ये गरीबदास जी के पुत्र थे और शिष्य भी। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय बात यह है कि सन्त का बेटा सन्त कम ही होता है—महंत भले ही हो जाए। किन्तु जैतराम जी प्रथम श्रेणी के संत और कवि हो गए हैं। 'मारग-सार' के अनुसार जैतराम का जन्म सन् 1937 ई० (सम्वत् 1794 वि०) में हुआ था।[1] मारग-सार सन्तों की चुनी हुई बाणियों का संकलब है, 1973 ई० में रामरतन सत्संग भवन, बहादुरगढ़ की ओर से प्रकाशित करवाया गया है। इनकी माता का नाम मोहिनी था।[2] जैतराम जी अपने चार भाइयों में तथा दो बहनों में सबसे बड़े थे। कहते हैं कि जैतराम तथा तुरतीराम दोनों जुड़वा भाई थे। इनमें जैतराम पहले जन्मे थे अतः ज्येष्ठ माने जाते हैं।[3] जैतराम जी ने जहाँ गरीवदास संबंधी इतनी प्रामाणिक जानकारी अपनी वाणी में दी है वहाँ अपने विषय में केवल इतना ही संकेत दिया है कि मैं इनका पुत्र एवं शिष्य हूँ। जैतराम सम्बन्धी जानकारी का अभाव मैं जिसे चाहकर भी पूरा नहीं कर सका। इनके जीवनवृत्त से सम्बन्धित जिन तथ्यों का उल्लेख श्री भक्तराम कृत 'जीवन चरित्र' में मिलता है वे निम्नलिखित साखियों में मिलता है—

माला फिर दी रैन दिन, बिन कर रसखना बीर।
गरीवदास सतगुरु मिला, अदली पुरुष कबीर ॥[4]

तीन सुंनि को छोड़कर, चौथे पथ को खोज।
गरीबदास गुरु हम मिला, डारा सिर सें बोझ ॥[5]

---

1. मारग-सार, सं० रतनलाल, पृ० 425
2. जीवन-चरित्र, भक्तराम, पृ० 355
3. वही, पृ० 354
4. ग्रंथ साहिब, श्री जैतरामजी की बाणी, पृ० 25
5. वही, पृ० 96

अनेक स्थानों पर जैतराम जी की वाणी में अन्तः साक्ष्य के आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि गरीबदास जी उनके पिता और गुरु दोनों थे।

श्री भक्तराम जी द्वारा लिखित 'जीवनचरित्र' में तथा 'हरियाणे' में प्रचलित कतिपय किंवदन्तियों में जैतराम जी के जीवन की कतिपय घटनाओं का विवरण मिलता है जिसके आधार पर इनकी जीवनी का खाका तैयार किया जा सकता है। 'जीवन-चरित्र' में बताया गया है कि जब महाराज गरीबदास ज़ी की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई तो करौंथा निवासी उनको लेने के लिए आए। उनका गाँव करौंधा ही था, छुड़ानी तो ननिहाल था।[1] स्वयं तो नहीं गए, किन्तु अपने स्थान पर जैतराम जी को करौंधा वालों के हवाले कर दिया, यह कहकर कि यह भी मेरे जैसे ही हैं, इन्हें ले जाओ, पिता की आज्ञा से जैतराम जी करौंथा आ गए। गाँव के बीच में एक कच्ची झोंपड़ी जैतराम जी के लिए बनवा दी गई। जैतराम जी यहाँ भजन सत्संग करते रहे। कई किम्वदन्तियाँ उस समय से सम्बन्धित प्रचलित हैं।

कहते हैं कि एक बार मुसलमानों की एक जनजाति राँघड़ों की धाड़ (दल) करौंथा गाँव पर चढ़ आई। वह नवाबी काल था। हिन्दू जनता पर मुसलमानों का दबदबा सत्ता के कारण बना हुआ था। मुसलमान हिन्दुओं पर लूटपाट के लिए चढ़ाईयाँ किया करते थे। गाँव वालों ने जैतराम जी से कुछ करने को कहा। उन्होंने कहा कि मैं आगे हो लेता हूँ, आप सब मेरे पीछे रहना, कोई आगे निकलने का प्रयास न करे। सामना हुआ और जैतराम जी राँघड़ों की गोलियों को अपनी छाती पर झेलते रहे। अपनी छाती पर उन्होंने चद्दर का कड़गता कस लिया था। उनके गाँव के एक चूहड़े (मेहतर) ने आगे सिर निकाला तो वहीं ढेर हो गया। अन्ततः राँघड़ भाग निकले। कहते हैं कि जैतराम जी ने गाँव के बीच में आकर चद्दरी खोली तो सारी गोलियाँ ज्यों की त्यों नीचे गिरीं। इस आलौकिक घटना को देखकर सभी जयध्वनि करने लगे।[2]

'जीवन चरित्र' में बताया गया है कि संत जैतराम जी करौंथा में कम ही रहते थे। वे बीच-बीच में बीबी-बच्चों को छुड़ानी में छोड़कर भ्रमण करने पंजाब में निकल जाते थे। वास्तविकता यह है कि वे अधिकतर पंजाब में ही रहे। एक बार वे पंजाब ज़िला जालन्धर में नकोदर से लगभग सात मील दूर महतपुर ग्राम में सत्संग कर रहे थे। अकस्मात् खड़े होकर आपने हाथ जोड़कर 'सतसाहिब' (प्रणाम) किया। उन्हें ऐसा करते देखकर सत्संग में बैठे किन्हीं स्वामी नारायाण-दास ने उनसे पूछा—'महाराज, आपने यह 'सत साहिब' किसे किया?' महाराज

---

1. जीवन चरित्र, पृ० 3
2. करौंथा ग्राम में प्रचलित किंवदन्ती के आधार पर।

ने कहा कि हमारा भाई तुरती राम अपने धाम (परलोक) वापिस जा रहा है। हम दोनों इकट्ठे ही आए थे। मैंने तुरतीराम की आत्मा से कहा है कि चलो मैं भी आ रहा हूं। इस पर उपस्थित जनों में सन्नाटा छा गया। लोग अनुनय विनय कर कहने लगे कि अभी नहीं महाराज। जैतराम जी ने सत्संगियों से पूछा कि भाई आप क्या चाहते हैं? सभी ने कहा कि अभी नहीं, कम से कम तीन साल और हम आप के दर्शन चाहते हैं। इस पर उन्होंने सभी को आश्वस्त किया कि हम तीन वर्ष बाद इसी समय इस चोले को छोड़ देंगे।[1]

इस घटना के एक वर्ष पश्चात् संत जैतराम जी फिल्लोर (पंजाब) के किले में, किले के सरदार के साथ (जो उनका परम भक्त था) सत्संग कर रहे थे। दोपहर बाद का समय था। द्वारपाल ने सूचित किया कि एक जटाधारी साधु महाराज से मिलना चाहते हैं। आज्ञा मिलने पर साधु को अन्दर लाया गया। परस्पर अभिवादनोपरान्त साधु जी ने महाराज को एकान्त में बुलाकर कुछ बात की और वापस चले गए। सरदार ने यह बात जाननी चाही। पहले तो महाराज टालते रहे, अंत में सरदार के आग्रह पर बताया कि हम दोनों हिमालय की कन्दरा में तपस्या किया करते थे। महाराज गरीबदास के अवतार धारण करने पर मेरी इच्छा हुई कि महात्मा गरीबदास जी के दर्शन और सत्संग का लाभ उठाऊँ। तब मैं अपना शरीर इन महात्मा के सुपुर्द करके आया था। वह समय पूरा हो चुका है। इसी हेतु ये महात्मा मुझे याद दिलाने आए थे। मैंने साधु जी से महतपुर के सत्संगियों वाली बात बता दी है और उनसे कह दिया कि दो वर्ष पश्चात् मैं उपस्थित हो जाऊँगा, इतने तक वे और संभाल रखें। घटना बड़ी बिचित्र प्रतीत हुई। क़िले के सरदार तथा एक दो अन्य व्यक्ति इस बात की सत्यता जानने की गरज़ से उन साधु महाराज के ठिकाने का सही पता लेकर वहां पहुँच गए। वहाँ जाते ही उन्हें उस जटाधारी साधु के दर्शन हुए। साधु ने स्वयं ही उनसे पूछा कि जैतराम जी के पहले शरीर के दर्शन करने आए हो, देख लो वह उधर कन्दरा के अन्दर है। सरदार एवं उनके साथियों को वे सारी बातें वैसी ही मिलीं जैसी जैतराम जी ने बताई थीं। वापिस आकर उन्होंने सभी से सारी बातें बतलाई।[2]

कहते हैं कि तीन साल पूरे होने पर अपने वचन के अनुसार वे महतपुर पहुँच गए। आसपास के सभी श्रद्धालु सेवक, सत्संगी उनके आगमन की सूचना पाते ही उपस्थित हो गए। महाराज ने अपना चोला छोड़ दिया और हिमालय में पड़े अपने पहले वाले शरीर को जा उठाया। शरीरान्त होने पर भक्तों एवं सेवकों ने महतपुर में ही उनकी समाधि बना दी। नूरमहल (पंजाब) में भी एक मकान उनके

---

1. जीवन चरित्र, भक्तराम, पृ० 382
2. वही, पृ० 382-83

शिष्यों का है। करौंथा में गांव के बाहर-दक्षिण-पूर्व एक छत्री आपके नाम से बनी हुई है। सन्त जैतराम जी के मृत्यु संवत, इनकी शिष्य-परम्परा तथा अन्य बातों की सूचनाएँ अभी सामने नहीं आई हैं।

रचनाएँ

जैतरामदास जी की वाणी का प्रकाशन सन् 1955 ई० में हो चुका है। इनकी समस्त 'बाणी' ग्रंथ साहिब अर्थात् 'सद्गुरु श्री जैतराम जी महाराज की वाणी' के शीर्षक से छपी है। वाणी छपवाने का बड़ा रोचक इतिहास है। और मुझे भी वाणी के प्रकाशन-काल का साक्षी रहने का सौभाग्य मिला है, क्योंकि उन दिनों मैं बाबा भीष्म जी के पास प्राय: आया-जाया करता था। महाराज जैतराम जी की वाणी की हस्तलिखित पाण्डुलिपि करौंथा वाले मकान में बाबा बालकदास के पास सुरक्षित थी। श्री दुल्हनदास जी ने (जिन्हे दल्लेदास और भीष्म जी भी कहा जाता है) पाँडुलिपि माँगी तो बालकदास जी ने आना-कानी की थी। इस पर भीष्मजी बिगड़ पड़े और बाबा बालकदास को लेने के देने पड़ गए। एक ओर तो भीष्म जी ने क्रोध के वस से तथा साथ ही कई ऐसे साक्ष्य प्रस्तुत करके जिनसे बाबा बालकदास को यह लगा कि भीष्म जी साक्षात् जैतराम जी ही हैं—बालक-दास को बाध्य कर दिया और हार कर उन्हें पाँडुलिपि भीष्म जी को सौंपनी पड़ी। भीष्म जी ने अपने परिश्रम से कमाए धन से वाणी का प्रकाशन, रोहतत प्रेस, रोह-तक से करवाया। वाणी के प्रकाशन सम्बन्धी अधिक विवरण आगे 'दुल्हनदास जी' के प्रसंग में दिया जाएगा।

बाणी की संख्या—श्री भक्तराम जी का कहना है कि संत जैतराम जी ने बारह हजार वाणियों की रचना की थी। वह वाणी इस समय प्रकाशित भी हो चुकी है। सन्त जैतराम जी ने अपने बाणी में अपने पिता और गुरु महाराज श्री गरीबदास जी बाणी के कठिन स्थलों की सुन्दर व्याख्या की है। श्री भक्तराम जी ने ठीक कहा है कि जैतराम जी की बाणी सतगुरु की वाणी रूपी ताल को खोलने के लिए ताली का काम देती है।[1]

सन्त जैतराम जी की वाणी (ग्रंथ साहब) के अन्त में श्री नृसिंहदास ने जो पुष्पिका जोड़ी है उसके अनुसार—'सन्त साहब कबीर गुसाई साहब दयावंत। वंथी छोड़ कृपा निधान सकल सन्त सहाई॥ नृसिंह दास की बंदगी अष्टांग डिंडोत सकल संतन के तांई भूल चूक माफ करनी लगा कानाँ तुम साषी की भूल माफ करनी। जैतराम जी की बानी का जोड़ा लिखतं—अंग = 3 साखी संख्या—469; ग्रंथ = 4 साखीं संख्या 6400; राग पद = 474 साखी संख्या—4507; सर्व बानी का

---

1. जीवन चरित्र, भक्तराम, पृ० 381

जोड़ = 11335; साखी सर्व जोड़ धरा हैं ।। सन्त कबीर गुसाई गरीबदास जी की दया ।। जैतराम जी की बाणी का पुस्तक सम्पूर्ण समाप्तम् मिति मास साढ़ सुदी छटी संवत् 1883 ।।[1]

उक्त विवरण से पता चलता है कि बाणी की संख्या साखियों में लगभग बारह हजार ही है। यहां जो जोड़ दिया गया है वह भी थोड़ा अशुद्ध है। लगता है कि कहीं गिनती गड़बड़ है। अतः जैतराम द्वारा रचित बाणी की संख्या लगभग बारह हजार ही माननी चाहिए। जैतराम जी की बाणी को अपने हस्तलेख में लिखने वाले सन्त नृसिंहदास (नरसिंहदास) ने बानी सम्पूर्ण करने का समय सम्वत् 1893 लिखा है लेकिन सम्वत् के इस उल्लेख से कोई भी प्रयोजन पूरा नहीं होता। मेरा मत है कि यह मूल बाणी की समाप्ति वाला सम्वत् नहीं हो सकता। लगता है कि अपने से पहले की किसी पाँडुलिपि से नृसिंह दास ने वाणी की नकल की होगी तथा अपनी प्रति में वही संवत दी होगी।

बाणी परिचय

ग्रंथसाहिब[2]—श्री जैतराम जी की बाणी—में कुल 510 पृष्ठ हैं। यह एक बृहदाकार ग्रंथ है। आकार प्रकार में यह ग्रन्थ महाराज गरीबदास की बाणी जैसा ही है, जो 1924 में अजरानन्द ने प्रकाशित करवाई थी। बाणी के अन्त में चौदह पृष्ठों में महाराज दूलन दास (दुल्हनदास, दल्लेदास या भीषम जी) की बाणी संकलित है। बाणी के तीन विभाग किए हैं। उनके अनुरूप पहला भाग—अंग भाग है, जिसमें—बिनती, गुरु का अंग, सुमरन का अंग, श्रवण का अंग, गुरु प्रकरण का अंग, सुमरन सार का अंग, मूलज्ञान अंग, तथा चेतावनी का अंग सम्मिलत हैं। 'बाणी' के दूसरे विभाग में लेखक ने ग्रन्थ भाग (कथात्मक प्रसंग) को रखा है जिसमें सेउ सम्माकी कथा, नारद मुनि की कथा, शुकराचार्य की कथा, धुरु भगत की कथा, शिवगण कथा, वारता धोबी की, गरीबदास जी का हाल, हौद कोसर तथा अवगत नगरवार्ता, गुरुमुखकीवार्ता, रचना के भेद, माया और देवताओं का संवाद, रामचन्द्र की कीरति, तथा कबीर साहिब का हाल इत्यादि प्रसंग आते हैं। तीसरे विभाग में गौड़ी, रेखते, हेली, बसंत, धमाल, काफी, जै जैवन्ती, मंगल, दीपक, विहाग आदि रागों पर आधारित सैंकड़ों पद हैं। इस भाग में कुछ फुटकल पद (शब्द) भी हैं। पहले विभाग में जो गुरु प्रकरण का अंग है—वह दूसरे विभाग (कथा प्रसंगों) में ही रखना युक्तिसंगत है, क्योंकि इसमें महाराज गरीबदास जी की अधिक चर्चा है।

---

1. ग्रन्थ साहिब, श्री जैतराम जी की वाणी, पृ० 496
2. वही, पृ० 2

कुछ प्रसंग उपर्युक्त तीनों विभागों में से किसी के भी अन्तर्गत नहीं आते हैं, जैसे—कला के भेद, गुप्तज्ञान, गुप्तवस्तु के भेद, तत्त्व भेद आत्म प्रमात्मतत्त, कबीर लोक के भेद, सेत अटारी, कंठ कंवल के भेद, ज्ञानसागर, भगतों के नाम (भक्तमाल), अनहद भेद, सरगुण का, प्राणायाम, तथा हरियाणा की महिमा इत्यादि स्वतन्त्र प्रसंग हैं।

गुरु-अंग प्रकरण में गुरु (श्री गरीबदास) को सत्पुरुष, साहिब, आदि पुरुष तथा सूक्ष्म ब्रह्म का समशील बताया गया है। गुरु महिमा का वखान करते हुए सन्त जैतराम जी ने कहा है कि—

गरीब सतगुरु मेरा महरमी, अदली आद अलेख।
सर्वलोक गलतान है, जाकै रूप न रेख॥[1]

एक बात ध्यान देने की है कि ग्रन्थ के आरम्भ में संकलित साखियों में जैतराम जी ने 'गरीबदास' की छाप का प्रयोग किया है। इससे यह भ्रम हो सकता है कि उक्त साखियां गरीबदासकृत हैं। लेकिन बात ऐसी नहीं है। जिसमें पश्चिमी पाकिस्तान, वर्तमान पंजाब, जम्मू-काश्मीर, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश आदि सभी शामिल थे उस पंजाब में उत्पन्न होने वाले सन्तों की यह खास विशेषता है कि उन्होंने अपनी बाणियों में अपने आदिगुरु के नाम की छाप दी है। इसका सबसे उत्तम उदाहरण सिक्खों का 'गुरु ग्रंथ साहब' है जिसमें गुरु गोविन्द सिंह के पूर्ववर्ती सभी गुरुओं ने अपनी बाणियों में 'नानक' छाप का प्रयोग किया है। कौन-सी बाणी किस गुरु की है इसका पता महलों की संख्या से चलता है। पहले महले में आदिगुरु नानक की वाणी संकलित है, दूसरे में गुरु रामदास की, तीसरे में गुरु अमरदास की चौथे में गुरु-अर्जुन देव की। यही क्रम आगे तक चला है।

ग्रंथ (कथा-वार्त्ता) विभाग में—गरीबदास जी की जन्म कथा सम्बन्धी प्रसंग हैं जिनको गरीबदास के जीवन परिचय में उद्धृत किया जा चुका है। इस भाग में सेउ-सम्मान की कथा के माध्यम से गुरु भक्ति का उत्तम आदर्श प्रस्तुत किया गया है। सन्तों के पाहुना आने पर सेउ-सम्मन (पिता-पुत्र) द्वारा भोजन पकाने के लिए बनिए की चोरी करना, सेउ का धड़ बनिए के घर तथा सिर ताक में रह जाना, सन्तें (कबीरादि) के सेउ के विषय में पूछने पर सिर का बोलना, फिर सन्तों द्वारा उस अलग हुए सिर का धड़ से जोड़कर सम्पूर्ण किया जाना आदि वर्णित है। नारद मुनि की कथा में नारद को पौराणिक ढंग में प्रस्तुत किया गया है। विश्व मोहिनी द्वारा नारद का लुभाया जाना अन्ततः नारद द्वारा विष्णु को शाप दिया जाना इत्यादि द्वारा माया के प्रबल प्रभाव को दिखाया गया है। शुक्राचार्य की कथा में शुक्राचार्य का एक देवांगना के साथ कामवश कई योनियों में भटकना तथा अन्त

---

1. ग्रन्थ साहिब, श्री जैतराम जी की वाणी पृ० 2

में भृगु द्वारा उसका उद्धार दिखाया है। धुरु (ध्रुव) भगत की कथा परम्परागत है। इसके माध्यम से वैराग्य तथा भक्ति का प्रति-पादन बड़े सुन्दर ढंग से किया गया है। शिवगन कथा में महाराज गरीबदास जी द्वारा साधुराम नामक शिवगण को ज्ञानोपदेश देना दिखाया गया है। इससे जैतराम जी की शिव के प्रति आस्था का भी पता चलता है। उन्होंने लिखा है—

धन सिव जोगी पुरुष तुम्हारा, रिद्धि सिद्धि मुक्त भगत मंडारा।
अमर निहचल सो सिव कल माँही, अडिग समाध खण्ड हो नाहीं।।
देवी हरहर करैं उचारा, आक धतूरा करैं अहारा।।[1]

इस प्रसंग में साधुराम के निमित्त से संतमत-साधना पद्धति का महाराज जैतराम ने बड़ा जमकर विवरण दिया है। एक गारंटी और दी है कि सन्त ने जिसको अपना मन्त्र (नामोपदेश) दे दिया है, उसका बेड़ा संसार सागर से निश्चित ही पार हो जाएगा। रामचन्द्र की कीरति में जैतराम जी ने रघु से लेकर राम के वन गमन तक की कथा बड़े सुन्दर ढंग से कही है और आरम्भ से अन्त तक राम को परब्रह्म के रूप में ही प्रस्तुत किया है। जिस दशरथ सुत राम के प्रति निर्गुण सन्तों में अवमानना पाई जाती है उनको जैतराम जी ने उन्हें पूर्ण अवतार तथा तिरलोकीनाथ माना है—

'चित्रकूट, में जाए कर ठहरे दोनों वीर।
सीता पत्नी साथ है रामचन्द्र रधुवीर।।
दसौटे बनखण्ड में तिरलोकी के नाथ।
जैतराम लीला आगम उधारे बहुत अनाथ।।[2]
'पतित अधारन आइयाँ रामचन्द्र औंतार।।[3]

कबीर साहिब का हाल 'में कबीर के चारों युगों में प्रकट होने तथा कई अन्य प्रसंगों का बड़ी श्रद्धा से वर्णन किया है और कबीर को 'ज्ञान ध्यान का सागर', अबनासी दुल्हा' 'आदि पुरुष' तथा 'कबीर करतार'[4] इत्यादि सम्बोधनों द्वारा समादृत किया है।

'राग विहाग' के अन्तर्गत दो पद हैं। इन दोनों पदों के बारे में जैतराम जी का कथन है कि---'ये दो सबद सतगुरु कै ताईं उचारे थे, उस समय हमने दोनों सबद कंठ कर लिए थे। यह बारता उस देश की है। यह बारता सत्य है सत्य माननी है। वह सबद वहाँ उचारे थे। सतगुरु ने हमारे कंठ करवाये थे। वहाँ

---

1. ग्रन्थ साहिब, श्री जैतरात की बाणी, पृ० 118
2. वही, पृ० 298
3. वही, पृ० 287
4. वही, पृ० 362-63

समागम सन्तों का अपार था।[1] साधना (ध्यान) के क्षणों में जैतराम जी—सेत अटारी अथवा सेतगुमट (सतगुरु साहिब का स्थान विशेष) में महाराज गरीबदास जी समीप पहुँचे उस समय ये दो पद गरीबदास ने जैनराम को सुनाए थे। इन दोनों पदों को जिनमें उन्होंने अपने पद का रहस्य तथा महत्व बतलाया है—साधक सत्संगी खूब गाते हैं।[2] हरियाणवी सत्संगियों में जैतराम के उक्त दो पदों की तरह ही उनके अन्य अनेक पद भी बहुत लोकप्रिय हैं।

मूल ज्ञान का अंग, कला के भेद, गुप्तज्ञान गुप्त वस्तु के भेद, तत्त भेद, कबीर लोक का भेद, हौद को सर का हाल, अवगत नगर सेत अटारी ज्ञानसागर तथा अनहद भेद शीर्षकों के अन्तर्गत सन्तमत में स्वीकृत साधना पद्धति अर्थात् सुरति-शब्द योग को शब्द-भेद के बार-बार सहज एवं प्रभावशाली ढंग से दोहराया गया है। साधक के साधना मार्ग में पड़ने वाले स्थानों का इतना स्पष्ट और सटीक वर्णन निर्गुण-साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। इतनी स्पष्ट और प्रगाढ़ अनुभूति भी कम ही सन्तों में मिलती है। यदि सार रूप में सारी जैतराम जी की वाणी को कहना हो तो ऐसे कहेंगे—

'निकट से निकट कहता हूँ, नैनों बीच रहता हूँ।
नैनों के निरंजन पास, उलटो उलट निरष आकास।।[3]

जिस ब्रह्म की प्राप्ति को सभी धर्म, मत, सम्प्रदाय, असाध्य तथा असम्भव जैसी मानते हैं, उसी को सन्त निकट से निकट—नैनों के बीच, तिल के ओल्हे बतलाते हैं। यही सन्त मत की खूबी है। इसीलिए सन्तमत सहज है। जैतराम जी उपर्यक्त शब्दों से इसी ओर संकेत कर रहे हैं। यह जो नैनों के बीच निरंजन रहता है—इस तक पहुँचने के मार्ग को विहंगम पन्थ कहते हैं—यह सुरति हंसनी का मार्ग है (अगर पन्थ है)। सुरत के के विमान पर बैठकर जिसका रंग जरद है—सतलोक, अकहलोक पहुँचते हैं जहाँ निरंजन राय विराजमान है।[4] इस प्रकार जैतराम जी ने अपने सार भेद, गुप्तज्ञान, तत्तभेद, अनहद भेद तथा मूल ज्ञान की पारि-भाषिक शब्दावली को स्पष्ट और सरल करके समझाया है। इसीलिए इनकी बाणी को गरीबदास की बाणी की कुँजी कहा गया है।

गरीबदास जी की तरह इनकी बाणी में भी गद्य का तत्कालीन स्वरूप सुर-क्षित है। भाषा और शैली एक उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगी, यथा—

'अपना सरूप कौन है। और कहाँ रहता है और उस सरूप का नाम क्या

---

1. ग्रंथ साहब, श्री जैतराम जी की बाणी, पृ० 152
2. वही, पृ० 151-52
3. वही, पृ० 179
4. वही, पृ० 149

है। उसका धाम कौन है अपना सरूप ब्रह्म है। ब्रह्म कहाँ रहता है। तुरिया पद में रहता है। सैतसरूप उजल है। उसका धाम नभ आकास है। नभ कुँडल में गोता लाइके हंस का मेला करै। दोनों भाव एक करै सबद सबद से मिलावे चंद सूर एक करै इंगला पिंगला एक करके साँसों साँस दोनों एक करके सुषमन सिंध में ले समावै नाद बिंद दोनों थीर जमावै—इंगला पिंगला मध्य द्वारा तिल प्रधान है। पवन पलट कर छेद्र बेधै—कुलफ सुनि की बाट घाट मारग अपंथ पन्थ है। आगे बिना चरनों गवन करना है।'[1]

गरीब पन्थ : साधना पद्धति

महाराज जैतराम जी का कथन है कि—

दास गरीब कबीर हैं, कबीर गरीब जाण।
गरीब कबीर भेद नहीं दूजा, जैतरा नित कीजै पूजा।[2]

इसी प्रकार ब्रह्मानन्द जी का कथन है कि—

कबीर कलासैं उतरे, सो हरितन है जान।
गरीबदास तन धारकर, करत लोक कल्याण।।
कबीर कलासैं उतरे, गरीबदास जिहिं नाम।
हंसन तारन कारणे, ता पद मम प्रणाम् ।।[3]

उपर्युक्त दोनों सन्तों के साक्ष्य के आधार पर यदि कबीरदास को कबीर न भी माना जाए तो कबीर से गरीबदास जी का अत्यधिक प्रभावित होना तो माना ही जा सकता है। इससे अनुमानतः यह भी कहा जा सकता है कि गरीबदास की साधना पद्धति भी कबीर जैसी ही होनी चाहिए। और कबीर ही क्या सन्त सम्प्रदाय की साधना पद्धति का सर्वमान्य सा स्वरूप-सुरति योग, सुरति-शब्द योग, लय योग, सहजयोग अथवा सुरति-शब्द मार्ग ही है। गरीब पन्थ में साधना सम्बन्धी साक्ष्य भी इसी ओर संकेत करते हैं—

गरीब चार पदारथ एक करि, सुरति निरति मन पौन।
असल फकीरी जोग यौह, गगन मँडल कुँगौन।।[4]

यह "गगन मंडल कुँगौन" कैसे सम्भव है? गुरु-मन्त्र अथवा उपदेश से-जो गुरु द्वारा अधिकारी शिष्य को दिया जाता है। इस उपदेश को गुत्य-मन्त्र (गुझ-

---

1. ग्रन्थ साहिब, श्री जैतराम जी बाणी, पृ० 153
2. जीवन चरित्र, भक्तराम, पृ० 24
3. वही, पृ० 24
4. ग्रन्थ साहब, श्री जैतराम जी की बाणी, पृ० 179

मन्त्र) भी कहा जाता है। इसकी ओर संकेत करते हुए जैतराम जी का कथन है कि—

निकट से निकट कहता हूँ, नैनों बीच रहता हूँ।
नैनों के निरन्जन वास, उलटौ उलट निरप आकास ।।[1]

गुरु पदिष्ट विधि से नैनों को उलटकर सुरति के सहारे विहँगम यात्रा पर हंस को चलना होता है, अभ्यास से यह नैन रमैया निरंजन निकट ही मिल जाता है। एक अन्य स्थान पर जैतराम जी संकेत की पुष्टि करते हैं कि "सुरत के विमान पर बैठ-कर—जिसका रंग जरद है—सतलोक, अकह लोक पहुँचते हैं जहाँ निरन्जन राय विराजमान हैं।"[2] इस सुरति शब्द के मेल को गरीबदास जी इस प्रकार कहते हैं—

गरीब सुरति स्वयंवर रच रहना, गगन मण्डल के माँहि।
चश्मा मस्तक बीच है, धरण कमल की छाँहि ।।[3]

इसी तरह की साक्षी थोड़े विस्तार से एक और स्थान पर मिलती है—

गरीब देखो पुरुष अमान को, अंजन बिना अगाध।
ओह तालिब तिल में बसै, परखे कोइ जन साध ।।
गरीब तिन चरणों उस धाम चल, सुरति अगम कुं धाम।
निरत कम्बल में पैठकर, तहाँ वहाँ रहो समाय ।।
गरीब तहाँ एक झाँकी गैब है, तिसि झाँकी में द्वार।
तिस द्वारे में देहरा, तहाँ वहाँ अनन्त भण्डार ।।[4]

इस प्रकार बाणी में, जहाँ तहाँ सभी प्रसंगों में अवसर पाते ही गरीबदास जी तथा जैतराम जी साधना संकेत देने में अति उदार प्रतीत होते हैं। सच यह है कि इनकी सारी बाणी की मूल सम्वेदना यह साधना पद्धति ही है।

उपर्युक्त साधना में सत्गुरु का महत्व अन्यतम है। वास्तव में साधक को साधना सम्बन्धी संकेत पाने के लिए विग्रह रूप में उस जीवित गुरु की अपेक्षा हुआ करती है, जिसने यह मार्ग तय किया हो। इसी तरह गरीबपन्थ में "नाम सुमरन" का बड़ा महत्व है। उनके अनुसार—"राम नाम सुमरन सार वस्तु है। यही मूल मन्त्र है। जप, तप, संयम, ध्यान आदि नाम सुमरण के बिना फीके हैं। नाम ही शिरोमणि सार है। नाम ही शून्य सरोवर में स्नान करवा सकने में समर्थ है।"[5]

---

1. ग्रन्थ साहिब, जैतराम जी की वाणी, पृ० 149
2. ग्रन्थ साहब, श्री गरीबदास जी की बाणी, पृ० 141
3. वही, पृ० 141
4. वही, पृ० 211
5. वही, पृ० 9

"नाम-सुमरन" की तरह ही गरीब पन्थी सत्सँग के प्रति भी बड़े आग्रहशील हैं। गबीरदास जी का कथन है कि "साध संगति बड़े भाग्य से मिलती है। सत्संगति पाकर युगों से बिछड़े हंस अपने वंश से जा मिलते हैं। साध संगति से कर्म-बन्धन नष्ट हो जाते हैं और सत्संग से दीदार तक प्राप्त हो जाता है।[1]

सन्त साहित्य में दर्शन घलुवे का माल है। स्वतन्त्र रूप से तत्त्व विवेचन कम ही सन्तों ने किया है। उस आदि सत्ता का वर्चस्व दिखाने में "ब्रह्म" सम्बन्धी धारणा प्रकट हो गई है। इसी तरह विश्व-प्रपंच की वस्तुस्थिति दिखलाने-जतलाने में जीव, जगत एवं माया सम्बन्धी धारणाएँ प्रकट हो गई हैं। दर्शन, सन्त साहित्य में, प्रासंगिक रूप में आया है। दुग्ध रूपी वाणी से दर्शन रूपी घृत अलगाना पड़ता है। "ब्रह्म" के सम्बन्ध में गरीबदास जी का कथन है कि···"वह शब्द स्वरूपी घट घट में व्याप्त है। वह गुप्त भी है प्रकट भी है, हद-बेहद से पार है तथा अगम-अथाह है। सारी सृष्टि उसी में बिराजती है। वह शाहन पतिशाह है।"[2] "जीव" एवं "ब्रह्म" का एक ही ज्योतिमय स्वरूप है। कर्म की झाँई (आवरण) ने द्वैत पैदा कर दिया है अन्यथा आत्मा और परमात्मा एक ही है। "जगत्"[3] "ख्वाबी खेल" है, सेमल का फूल है तथा धुएँ का बादल है।[4] "माया" के सम्बन्ध में कबीर की ही तरह गरीबदास जी का भी कथन है कि—"यह मोहिनी है, चराचर इसके द्वारा विमोहित हैं। सभी इसके ग्रास हैं। इसका विषैला जाल तीनों लोक में फैला है। सभी इसके दास हैं। केवल सन्तों की शरण में रहकर इससे बचा जा सकता है।[5]

सन्त गरीबदास की रचनाओं का परिचय देते हुए पीछे हम उनकी कृति "ब्रह्म वेदी" का उल्लेख कर आए हैं। गरीबपन्थ में इसकी चौवन साखियों में से अन्तिम सोलह साखियाँ प्रातः एवं संध्या समय आरती के रूप में गाई जाती है। केवल गरीबपन्थी ही नहीं यहाँ के घीसा पन्थी साधु भी इस ब्रह्मवेदी का गायन बड़ी श्रद्धा से करते हैं। इसका यहाँ उद्धृत करना उचित ही है—

"गैबी ख्याल विशाल सतगुरु, अचल दिगम्बर धीर है।
भक्ति हेत काया धर आए, अवगति सत्य कबीर है॥
नानक दादू अगम अगाधू, तरी जहाज खेवट सही।
सुख सागर के हंस आए, भक्ति हिरबंर उर धरी॥

---

1. ग्रन्थ साहिब, सद्गुरु श्री गरीबदास जी की बाणी, पृ० 121-23
2. वही, पृ० 40, 245
3. वही, पृ० 201
4. वही, पृ० 482 (सद्गुरु श्री जैतराम की बाणी)
5. ग्रन्थ साहब, सद्गुरु श्री गरीबदास जी की वाणी, पृ० 99

कोटि भानु प्रकाश पूर्ण, रोम रोम की लार है ।
अचल अभंगी है सत्संगी, अविगत का दीदार है ।।
धन्य सतगुरु उपदेश देना, चौरासी भ्रम मेटही ।
तेज पुँज तन देह धर कर, इस विध हमकूं मेंट ही ।।
शब्द निवास आकाशबाणी, यौह सत्गुरु का रूप है ।
चन्द सूर नहीं पनव पानी, नाजहाँ छाया धूप है ।।
रहता रमता राम साहिब, अविगत अलह अलेख है ।
भूले पन्थ वितण्डवादी- कुल काखाविन्द एक है ।।
रोम रोम में जाप जपले, अष्ट कमल दल मेल है ।
सुरत निरत कुँ कम्वल पठवो, जहाँ दीपक बिनतेल है ।।
हरदम खोज हनोज हाजर, त्रिवेणी के तीर है ।
दास गरीव तवीब सतगुरु, बन्दी छोड़ कबीर हैं ।।[1]

गरीबपन्थी लोग "सतसाहिब" कहकर परस्पर अभिवादन करते हैं ।

गरीब पन्थ के डेरे (आश्रम)

गरीब पन्थ केवल हरियाणा तक ही सीमित नहीं है । इसके डेरे पंजाब, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, राजस्थान तथा गुजरात में भी पाए जाते हैं, जिनकी नामावली नीचे दी जाती है—

हरियाणा में स्थित डेरे :—ज़िला रोहतक—(1) छुड़ानी धाम (2) करौंथा, (3) मदाना कलाँ (4) साँपला (5) डीघल, (6) इस्माइला, (7) बहादुरगढ़, (8) असौदा (9) भैंसवाल (10) भालौठ (11) अहीर (माजरा) (12) गोपाल पुर (13) बेरी, (14) माँडोठी, (15) छारा (16) काणौदा (17) गोच्छी (18) बाला गढ़ी (19) खानपुर (20) रूखी (21) रसूलपुर (22) बखेता (23) कल्हा वड़ (24) जुआँ ।

ज़िला जींद—(1) खटकड़ (2) छान (3) बड़ौदा

ज़िला करनाल—(1) अगरा खेड़ी (2) कुराड (3) नजूराँ (4) कैलाना (5) भूसले (6) जरू की खेड़ी (7) आरा की खेड़ी

ज़िला अम्बाला—(1) कलाहटी (2) वलाना (3) कुँजपुरा (4) मलौड़ (5) रामपुर (6) बटरोहण (7) सजादपुर

पंजाब-स्थित डेरे

ज़िला पटियाला—(1) पटियाला (2) नाभा (3) मादसाँ (4) मछराय

---

1. ग्रन्थ साहब, श्री गरीबदास जी की बाणी, पृ० 406

(5) लाडपुर

ज़िला संगरूर—(1) सुनाम (2) बटरियाणा (3) बसियार्क (4) कान्हगढ़ (5) कपियाल (6) भवी (7) जलूर (8) बरनाला (9) धुरी (10) चाँदा (11) जैनपुर

ज़िला लुधियाना—(1) लुधियाना (2) दुलमा (3) (झनेर (4) संदौड़ (5) रामतलाई (6) छपार (7) ब्रही (8) रकबा (9) मणियानी (10) तलवण्डी छोटी (11) तलवण्डी बड़ी (12) कैलपुर (13) भाटियाँ (14) वासियाँ (15) अयाली (16) सरावाँ।

ज़िला जालन्धर—(1) नूरमहल (2) महतपुर (3) जंडियाला (4) तगड़ाँ

ज़िला होशियारपुर—(1) बडडौं, (2) मताबपुर (3) रामपुर पोसवाल (4) रत्तेवाल (5) अड्डवाना।

जिला फिरोजपुर—(1) फिरोजपुर (2) मोगा (3) तलवण्डी

ज़िला अमृतसर—(1) अमृतसर (2) बलेहर (3) कैरों (4) मनिहाला दासूवाल, (5) कलार, गुल्हड़वाल

राजस्थान में स्थित डेरे—जिला गंगानगर : (1) श्री विजयनगर

जिला जयपुर : (1) अलवर (2) हरसौरा (3) पाँवटा, (4) किसनगढ़

देहली स्थित डेरे—(1) दिल्ली, (2) इसापुर (3) बाजीदपुर

गुजरात स्थित डेरे—(1) पेटलाद (2) शान्तिपुर

उत्तर प्रदेश के डेरे—(1) सहारनपुर, (2) रामपुर, (3) उत्तरकाशी, (4) हरिद्वार (5) ऋषिकेश (6) वाराणसी इत्यादि।

गरीब पन्थ : उपलब्ध साहित्य

(1) ग्रन्थ साहिब, श्री मज्जगद गुरु श्री 1008 श्री गरीबदासाचार्य जी महाराज, की अमृत वाणी (ग्रं० सा० श्री गरीबदास जी की वाणी) दो भाग, प्रकाशक : प्राप्तिस्थान—श्री स्वामी धर्म स्नेही जी महाराज, अहीर-माजरा, हरिद्वार, सन् 1964, पृ० सं० 1078 (व्यक्तिगत संग्रह)

(2) सन्त गरीबदास की बानी, वेल्वेडियर प्रेस, प्रयाग।

(3) ग्रन्थ साहब अर्थात् सद्गुरु श्री गरीबदास जी महाराज की बानी, प्रकाशक : श्री स्वामी अजरानन्द गरीबदासी, रमताराम, सम्वत् 1981 वि०

(4) ग्रन्थ साहिब अर्थात् सद्गुरु श्री जैतराम जी महाराज की वाणी, प्रकाशक : श्री दुल्हन दास जी महाराज (भीष्म जी); प्राप्ति स्थान—डॉ० जगत सिंह, रोहतास प्रेस, रेलवे रोड, रोहतक, सन् 1955, पृ० 510 (व्यक्तिगत संग्रह)

अध्याय 2

हरियाणा का घीसा पन्थ

हरियाणा के सन्त-साहित्य में "घीसा पन्थ" का महत्वपूर्ण योगदान है। पन्थ का नामकरण सन्त घीसादास जी के नाम पर किया गया है जो इस पन्थ के प्रवर्त्तक हैं। "उत्तरी भारत की सन्त परम्परा" में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने न घीसा साहब का उल्लेख किया है न घीसा पन्थ का। हरियाणा में घीसा पन्थ के कई महत्वपूर्ण अखाड़े हैं। यहाँ के सत्संगियों में घीसा साहब एवं उनके शिष्य सन्त जीतादास की बाणियाँ बड़ी लोकप्रिय और प्रचलित हैं। इस पन्थ का प्रायः सारा साहित्य प्रकाशित रूप में उपलब्ध भी है।

सन्त घीसा साहब का जन्म सम्वत् 1860 वि० में दिल्ली के पास खेकड़ा नामक ग्राम में हुआ था। इनका शरीरान्त विक्रम सम्वत् 1925 की मार्गशीर्ष शुल्क दशमी को इनके जन्म स्थान खेकड़ा में हुआ था।[1]

घीसा साहब के जीवनवृत्त की जानकारी हमें तीन स्रोतों में मिलती है—श्री घीसा सन्त का जीवन चरित्र एवं वाणियाँ,सचित्र ग्रन्थ साहिब तथा बाणी श्री ईशरदास जी महाराज। ये तीनों ही रचनाएँ साम्प्रदायिक हैं जिनमें अतिशय श्रद्धा के दर्शन होते हैं। फिर भी हमारे पास इनके अतिरिक्त प्रामाणिक तथ्य-प्राप्ति का और कोई साधन नहीं है। हरियाणा में कुछ किंवदन्तियाँ भी प्रचलित हैं जो घीसा जी के जीवन पर प्रकाश डालती हैं। इन सभी स्रोतों के आश्रय से श्री घीसा साहब का जीवनवृत्त निम्न रूप में सामने आता है—

कहते हैं कि देहली से बारह कोस उत्तर-पूर्व दिशा में खेकड़ा नामक एक गाँव

---

1. श्री हरिशरण गोस्वामी कृत श्री सद्गुरु घीसामत : वन्दनम्, पृ० 1-2

है जहाँ कबीर पन्थी भक्त सदासुख जी निवास करते थे। एक बार अहीरों के तालाब पर एक साधु के आगमन की सूचना पाकर सदासुख जी तालाब पर गए और महात्मा जी को अपने घर लिवा लाए। सदासुख जी की सेवा से साधु अति प्रसन्न हुए और जाते हुए कह गए कि हम तेरे यहाँ अवतार लेंगे। कहते हैं कि यह साधु और कोई नहीं स्वयं कबीर साहिब ही थे जो सम्वत् 1860 वि०, आषाढ़ शुक्ला पूर्णमासी के दिन सदासुख के घर घीसा जी के रूप में अवतरित हुए थे।[1]

घीसा साहब जाति के जुलाहे थे। यह चर्चा इनकी साम्प्रदायिक रचनाओं में कई स्थानों पर आई है। अन्तःसाक्ष्य के आधार पर भी यही प्रमाणित होता है। स्वयं घीसा जी की बाणी यही कहती है—

"घीसा सन्त शरण सतगुरु की; रेज़ा बुणते भाई"[2]
"हम अहैं जुलहदीरहैं अलहदी-बहदा मेटैं जाते हैं।"
प्रेम मगन होय रेज़ा बुनते, शब्द सूत सुलझाते हैं॥[3]

यहाँ भले ही किसी अलौकिक रेज़ा बुनने की बात की गई हो, संकेत लौकिक भी हो सकता है। इनके परम शिष्य जीताराम जी का एक पद इस ओर स्पष्ट संकेत करता है—

"मेरे मन मान्या है सत्गुरु का नाम,
लोग कहैं जुलाहा जुलाहा, मेरे दरश रह्या राम।"[4]

किन्तु इन्होंने जुलाहे के इस व्यवसाय को आजीविका का साधन बनाया इसका कहीं जिकर नहीं है।

घीसा पन्थ में प्रसिद्ध है कि घीसा जी स्वयं कबीर के ही अवतार थे। ये तो पूर्ण-ब्रह्म-स्वरूप स्वयं कबीर ही प्रकट हुए थे। उन्हें किसी गुरु की आवश्यकता नहीं थी। ये स्वयं कबीर को ही अपना गुरु मानते थे। एक स्थान पर इनकी साखी आया है—

'सकल शरीरों रम रहे, अवगत सत्य कबीर।
सत्यरूप, सतगुरु मिले, नीर क्षीर के तीर॥'[5]

जीतादास अपनी गुरु प्रणाली को इस रूप में अभिव्यक्त करते हैं—

'केवल रूप किया प्रकाश, यह यश गावें जीतादास।
पाए प्रसाद भए आनन्द, रक्ष करैं गुरु रामानन्द।

---

1. ग्रन्थ साहब, संक्षिप्त जीवनलीला, पृ० अ, तथा ऊ
2. वही, पृ० 9, वाणी 5
3. वही, पृ० 9 वाणी 6
4. वही, पृ० 109
5. ग्रंथ साहब, वाणी, पृ० 8

पाए प्रसाद भए मन थीर, रक्षा करैं गुरु सत्य कबीर।
पाए प्रसाद भए अंचित, रक्षा करैं गुरु घीसा संत ।।[1]

बाल्यकाल से ही घीसा साहब अलौकिक प्रतिभा का परिचय देने लग गए थे। एक बार इनके पिता जी काठे नामक ग्राम में एक मेला दिखाने घीसा जी को ले गए। घीसा जी तब केवल पाँच वर्ष के ही थे। मेले में एक सिद्ध अपने प्रतिद्वन्द्वी को शास्त्रार्थ में अपशब्द कह उठा। इस सिद्ध बाबा को अपनी सिद्धि पर ज्यादा ही गर्व था। कहते हैं कि बालक घीसा ने सिद्ध को फटकारा। बच्चे की इस फटकार पर सभी चकित रह गए। सिद्ध ने भी खड़े होकर बालक घीसा से क्षमा याचना की।[2] इसी प्रकार श्री सदासुख जी बालक घीसा को अपने साथ—बदरखा ग्राम जाने वाली बारात में ले गए। वहाँ एक विधवा ब्राह्मणी को, जो कृष्ण की भक्त थी, घीसा जी ने बाल-गोपाल के रूप में दर्शन दिए। इस भक्तिन ने अपने सारे परिवार वालों को इस बाल-गोपाल के दर्शन करवाए।[3]

14 वर्ष की आयु होते इनका प्रभाव क्षेत्र काफी विस्तृत हो चुका था। गाँव के ही निवासी नानू भक्त, सुखलाल तथा अहीर पट्टी के कई आदमी आपके भक्त हो गए। यहाँ तक कि गाँव का बड़ा चौधरी जीता नम्बरदार भी आपका भक्त हो गया। गाँव के ब्राह्मण लोगों ने इसका बड़ा विरोध किया। कहने लगे कि इस जुलाहे ने तो हमारे सारे यजमान ही मूंड लिए। लोगों के सामूहिक प्रतिवाद से रुष्ट होकर घीसा जी ने मानदास तथा जीतादास के साथ गाँव छोड़ दिया और यमुना किनारे खाण्डवबन (खाण्डबारी) तहसील बागपत में आसन लगा लिया। यहाँ भी अनेक भक्त इनके भजन एवं सत्संग से लाभान्वित होने लगे।

खेकड़े से घीसा साहब के चले जाने के बाद गाँव में तरह-तरह के उपद्रव होने लगे। अतः कई लोग मिलकर प्रार्थना करके घीसा साहब को वापस खेकड़ा ले आए। फिर उसी प्रकार सत्संग होने लगा। कहते हैं कि पावले के सेवा सिंह को इनके दर्शन मात्र से ही वैराग्य हो गया। मण्डोले का चन्दा धोबी तथा उसकी दोनों बीवियाँ भी महाराज के अनुयायी हो गए।'[4]

एक बार अपने कई भक्तों के साथ घीसा साहब देहली घूमने गए। रास्ते में एक नाथ जी यमुना किनारे धूमी रमाए बैठे थे। नाथ जी को महाराज ने गोरक्ष-नाथजी के रूप में दर्शन दिए। यह नाथ बाबा भी घीसा जी के अनुयायी हो गए। देहली में महाराज घीसा जी अपने भक्त कंवलदास के घर ठहरे। यह कंवलदास

---

1. ग्रन्थ साहब, बाणी, पृ० 44
2. वही, पृ० आ
3. वही, पृ० आ
4. वही, पृ० ई

शाही महलों में जरी का काम करते थे। कंवलदास से घीसा जी की महिमा सुनकर बादशाह बहादुरशाह उनका दर्शन करने आए और उनसे एक पुत्र के लिए बिनती की। घीसा जी ने बादशाह से कहा कि यदि तुम माँस-मदिरा का त्याग कर दो तो पुत्र-प्राप्ति हो जाएगी। बहादुरशाह को यह शर्त कठिन लगी। कहते हैं कि इसी भेंट के समय महाराज ने गदर तथा बहादुरशाह पर भावी संकट की भविष्यवाणी की और खेकड़ा चले आए। कहते हैं कि खेड़ा हटाणा गाँव में एक दिन प्रातः अपने कई भक्तों सहित भ्रमण करते हुए पानी की नाली में अटके हुए पत्ते को अपनी छड़ी से चालू करते हुए घीसा जी कहने लगे कि हम भक्तों की नाँव इसी प्रकार भवसागर में भी नहीं अटकने देते। इसके तीसरे दिन एक मल्लाह पत्थर की दो चौंकियों सहित महाराज की सेवा में उपस्थित हुआ। मल्लाह ने अपनी नाव भँवर में अटकने तथा महाराज का स्मरण करने पर किनारे लगने वाली घटना सुनाई। मल्लाह की नाँव के अटकने का समय ठीक वही था जिस समय महाराज छड़ी से पत्ते को धारा में बहा रहे थे।[2] इस प्रकार घीसा साहब के अनेक चमत्कारों की कथाएँ उनके भक्तों में प्रचलित हैं।

श्री घीसा सन्त दरबार

सम्वत् 1925 विक्रमीय में महाराज घीसा जी के सत्यलोक गमन के पश्चात् खेकड़ा ग्राम स्थित सुन्दर वाटिका में एक अष्टकोण समाधि भवन उनके शिष्यों द्वारा बनवाया गया था जिसे छतरी साहब कहते हैं। इस छतरी साहब पर—अषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा, मार्गशीर्ष शुक्ला दशमीं तथा फाल्गुण पूर्णिमा को वर्ष भर में तीन मेलों का आयोजन किया जाता है। हजारों घीसा पंथी साधु इन मेलों में आते हैं तथा सत्संग लाभ उठाते हैं। इन मेलों को ही श्री घीसा दरबार कहा जाता है।

शिष्य-परम्परा

घीसा जी के तीन पुत्र थे। इनमें से वृन्दावनदास तथा केवल दास बाल्यकाल में ही मृत्यु को प्राप्त हो गए थे अतः तीसरे पुत्र प्रेमदास जी को गद्दी का प्रथम महंत बनाया गया। इनके बाद महंत रामकिशनदास, श्री अचलदास तथा श्री जितेन्द्रदास क्रमशः क्रमशः दरबार गद्दी के महंत बनते आ रहे हैं। महंत केवल वंशानुगत क्रम से बनाने की परम्परा बन गई है। आजकल महन्त जितेन्द्रदास गद्दी पर विराजमान हैं। इनके अतिरिक्त श्री मानादास, जीतादास, नेकीदास, कंवल-

---

1. ग्रंथ साहब, पृ० ट
2. वही, पृ० अ

दास, ठीण्ढेदास, हजारीदास, सेवादास, शिवगिरीदास, यमुनादास तथा शिवप्रसाद दास इत्यादि घीसा जी के प्रमुख शिष्यों में से हैं। इनमें से श्री जीतादास तथा नेकीराम विशेष उल्लेखनीय हैं।

रचनाएँ

घीसा दास जी ने न तो स्वयं कोई क्रमबद्ध ग्रंथ लिखा, न किसी और से लिखवाया। वे समय-समय पर अपनी मौज में जो सहज ज्ञान, शब्द, बाणी, आदि उच्चारण करते थे, उन्हें उनके साथ रहने वाले सन्त व भक्त लोग लिखकर याद करते रहे। उन्हीं द्वारा कुछ शब्द बाणियों का संग्रह 'सचित्र ग्रंथ साहब' में प्रकाशित हुआ है।[1]

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि इस 'सचित्र ग्रंथसाहब' में संकलित वाणी तथा पद इत्यादि सभी उनके भक्तों द्वारा लिखित या मौखिक रूप में संरक्षित थे। इन सभी को संकलित कर इस 'सचित्र ग्रंथ साहब' का प्रकाशन संवत् 2016 वि० आषाढ़ पूर्णिमा को सम्पन्न किया गया। इसके प्रकाशन में सबसे अधिक योगदान अवधूत चन्दनदेव जी महाराज का रहा है। ये महाराज रामकिशनदास के शिष्य श्री नकलीदेव जी के शिष्य हैं।

'सचित्र ग्रंथ साहिब' के अतिरिक्त तीन और साम्प्रदायिक प्रकाशन हैं जिनमें घीसा जी की बाणी संकलित हैं। एक—'श्रीग्रंथ साहेब' जिसका प्रकाशन महन्त अचलदास जी ने सम्वत् 2016 वि० में करवाया है। दूसरा प्रकाशन है बाणी महाराज ईशरदास जी की, जिसे महन्त निरंजनदास साधू पंजाबी ने सन् 1958 ई० में प्रकाशित करवाया है। तथा तीसरा प्रकाशन 'श्री घीसा सन्त जी का जीवन चरित्र एवं बाणियाँ' हैं जिसके प्रकाशक महन्त जितेन्द्रदास हैं और जो अभी हाल ही में—जून, जुलाई, 1977 में प्रकाशित हुआ है। इस प्रकार—क्रमानुसार इन प्रकाशनों को इस प्रकार रखा जा सकता है—'श्री ग्रन्थ साहब', 'सचित्र ग्रन्थ साहब', 'बाणी—ईश्वरदास जी की' तथा श्री घीसा सन्त जी का जीवन चरित्र एवं बाणियाँ।'

घीसा जी के नाम से प्राप्त बाणी

उपर्युक्त चारों ग्रन्थों में घीसा जी की 'बाणी' संकलित है। सर्वेक्षण से पाया गया कि इन चारों ग्रन्थों में संकलित साथियों तथा पदों की संख्या प्रायः समान ही है। पाठ भेद भी कोई खटकने वाला नहीं है। 'सचित्र ग्रन्थ साहब' में सद्गुरु—महिमा' के अन्तर्गत ग्रन्थ के आरम्भ में 46 दोहे संकलित हैं—जबकि 'बाणी'

---

1. ग्रंथ साहब, उपसंहार से उद्धृत।

ईशरदास जी की—में 47 दोहे संकलित हैं और दोनों के केवल 30 दोहे ही मेल खाते हैं। यही दोहे 'श्री ग्रन्थ साहब' में केवल 34 हैं—जो ग्रन्थ के आरम्भ में 'गुरु उपमा' के शीर्षक से दिए गए हैं। पदों की संख्या में भी अन्तर है। 'सचित्र ग्रन्थ साहब' में 94 पद हैं, 'श्री ग्रन्थ साहब' में 93 पद तथा ईशरदास जी की बाणी में पद संख्या 101 तक पहुंच गई है।[1]

ईशरदास जी की 'बाणी' गुरुमुखी लिपि में प्रकाशित है तथा इसकी भाषा पंजाबी पुट लिए हुए सामान्य हिन्दी ही है जिसका स्वरूप प्रायः सन्तों की बाणियों में मिलता है। इस ग्रन्थ में बाणी संख्या भेद तथा पाठ दोनों ही थोड़े अधिक हैं। इसका कारण भाषा भेद तथा श्रद्धाबुद्धि दोनों ही हैं। 'सचित्र ग्रन्थ साहब' तथा 'श्री ग्रन्थ साहब' में अन्तर नगण्य है। चौथी कृति 'श्री घीसा सन्त जी का जीवन चरित्र एवं बाणियाँ' में 'सचित्र ग्रन्थ साहब' तथा 'श्री ग्रन्थ साहब' दोनों का मिला जुला रूप दृष्टिगोचर होता है।

'सचित्र ग्रन्थ साहब' में घीसा जी की वाणी को तीन भागों में बाँट कर रखा गया है—साखी भाग, बाणी भाग तथा शब्द। साखी भाग में सद्गुरु म्हिमा के अन्तर्गत 46 दोहे हैं। इन दोनों में सद्गुरु स्वरूप, सद्गुरु महिमा तथा उपदेश का मिला-जुला स्वरूप है, केवल सद्गुरु महिमा ही नहीं है, जैसा शीर्षक से प्रकट होता है। जैसे—

सद्गुरु महिमा—

'घीसा गुरु ईश्वर पर ब्रह्म, सतगुरु सब का देव।
गुरु बिन पार न पावई, तातें शरणा लेव॥'[2]

उपदेश—

'घीसा गुरु की सेवा जो करै, हृदय ध्यान लगाय।
काल जाल से छूट ही, सत्य धाम को जाय॥'[3]
'घीसा जग में आयकर, बहुत हँसाये लोय।
ऐसी करनी कर चलो, पीछे हंसे न कोय॥'[4]

वाणी भाग में कुल 350 के लगभग साखियाँ हैं, जिनको 79 विभिन्न शीर्षकों में बाँट रखा है, जिनका व्यौरा इस प्रकार है—उत्पत्ति प्रकरण, सत्गुरु की प्रतिज्ञा

---

1. सचित्र ग्रंथ साहब, पृ० 1-1
2. वही, पृ० 1; 1
3. वही, पृ० 1; 2
4. वही, पृ० 4; 32

सत्गुरु परिचय, सत्गुरु का आगमन और ताने की शुरुआत, समर्थ जुलाहे का ताना, निर्भय त्रिकालज्ञानी, मन की दृढ़ता, साधक का उपदेश, परमहंस अवधूत की रहनी, निर्भय अवधूत की महिमा, पीवबिछान, एकता विचार, साहेब का रूप और मिलन युक्ति, जमनानाथ को योगेपदेश, योगमारग, साक्षीपद, तुर्की का सच्चा तरीका, नकली यवनों की शिक्षा, हिन्दू तुर्क एकता, सहजयेता, रमइयारूप, सत्सवांग नाक्षी का अंग, निज रूप जानने की मुक्ति, वैरागबोध, निजशब्द की—परख, साधुसंगत का अंग, निर्भयता, निरालम्ब पद, पठितमूरख, सद्गुरु कृपा, अन्दरूनी उपदेश, सत्यस्वभाव, अहंकार का अंग, सच्चा खेल व्यंगार्थवाणी, बीजक सार इत्यादि। लगता है कि इन साथियों को अन्य सन्तों की बाणियों के अनुरूप अंगों के अन्तर्गत बाँधने का प्रयास किया गया है। कई स्थानों पर तो शीर्ष तथा उसके अन्तर्गत आने वाली साखियों का कोई सम्बन्ध भी समझ नहीं पड़ता। जैसे—व्यंग्यार्थ बाणी का उदाहरण लेते हैं जिसमें न व्यंग्य का पता चलता है न अर्थ ही कोई विशेष है—

'सभी खेल खेलत रहे, पिये तमाखू भाँग।
एक पलक बिसरे नहीं, हृदय हरि का नाम ।।
आई गई का शौक था, सो है सन्त सुजान।
घीसा सन्त को यूँ कहैं, सो साधु निष्काम ।।[1]

लगता है चेलों ने इनकी बाणी के साथ कुछ ज्यादा ही खींचतान तथा स्वतंत्रता बरती है। इनकी बाणी का तीसरा भाग-शब्द भाग है, जिसमें 94 पद संग्रहीत हैं। ईशरदास जी की बाणी में संकलित घीसा साहब के पदों की संख्या 101 है, जिसमें पदसंख्या 98 तो कबीर का पद 'जलबिच मीन प्यासी' अविकल रूप में ही घीसा जी के नाम से दे रखा है। इसी प्रकार कुछ पद जीतादास जी के हैं, इनके नाम से संकलित तथा प्रचलित हैं। 'श्री ग्रन्थ साहब' में इनके नाम से 93 पद 'पढ़ने की बाणी' के अन्तर्गत दे रखे हैं। इस प्रकार घीसा जी के नाम से प्राप्त साहित्य के अन्तर्गत 34 से 47 तक दोहे, 350 के लगभग साखियाँ तथा 93 या 94 पद (शब्द) हैं।

कछेक साखी तथा पदों को छोड़कर शेष में भाव पक्ष बड़ा सबल है। अनुभूति की प्रामाणिकता है, भाषा सरल तथा प्रवाहयुक्त है। उदाहरण स्वरूप उनका एक पद यहाँ प्रस्तुत है—जिसमें इस नर-नारायणी काया को एक बंगले का रूपक बाँध कर प्रस्तुत किया गया है। पद इस प्रकार है—

''बंगला खूब बना दरवेश, या जल में अलख पुरुष को देख ।। टेका ।।
पाँच तत्व का बंगला कीन्हा, त्रिगुण रंग लगाया।

---

1. सचिव ग्रंथ साहब, पृ० 33

इस बंगले का रहने हारा, फेरि बहुरि नहीं आया ।।1।।
इस बंगले के दस दरवाजे, बीच पवन दरवेश ।
बिना फिराया बंगला फिरता, बिन धूनी बिन टेक ।।2।।
जैसी लकड़ी ढाक की, ऐसा यह तन देख ।
वा में केशूरकम रहया, या में पुरुष अलेख ।।3।।
बंकनाल घर कमंद लगाकर, जा पहुँचे वा देश ।
घीसा सन्त देख लिया बंगला, सब घट साहेब एक ।।4।।"[1]

महन्त श्री प्रेमदास जी

प्रेमदास जी घीसा जी के पुत्र थे। सम्वत् 1925 वि० में घीसा जी के परलोकगमन पर आप घीसा-सन्त-दरबार, खेकड़ा के प्रथम महन्त बनाए गए। जीतादास के जीवनकाल में आप पर दरबार का उत्तरदायित्व कम ही था। अध्ययन के प्रति इनकी रुचि थी। कहते हैं कि देहली में किसी पण्डित से इन्होंने 'न्याय-शास्त्रादि' का अध्ययन भी किया था। सम्वत् 1945 वि० में जीतादास की मृत्यु के बाद स्थायी रूप से दरबार-साहब में रहकर प्रेमदास जी अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह सुचारू रूप से करते रहे और अपने पन्थ को सुचारू तथा संगठित करने के लिए निरन्तर प्रयास किया। आप एक विचारशील विद्वान सन्त तो थे ही साथ ही अच्छे वैद्य भी थे। इनकी सहृदयता तथा दयालुता की आज भी सर्वत्र ख्याति है। आपने फाल्गुन शुक्ला अष्टमी सम्वत् 1970 वि० को परलोक प्रस्थान किया।[2] इनके नाम से केवल एक ही पद पाया जाता है जो इस प्रकार है—

'भजन बिना नर ये जान पशु ।।टेक।।
पशु पखेरू विषय वासना में ऐसे नर ये रहत रजू ।।
आशा तृष्णा में फिरत हैं, जैसे रज्जू से बँधे पशु ।।
काम क्रोध मोह लोभ से, इनसे छूटत नाहीं एक पलू ।।
प्रेमदास घीसा संत बतावैं, बिन सतगुरु न्यू ही फिरत भुलु ।।[3]

महन्त श्री रामकिशनदास जी साहेब

आप प्रथम महन्त श्री प्रेमदास जी के पुत्र थे। प्रेमदास जी की मृत्यु के बाद आप सम्वत् 1970 वि० में दरबार-घीसा-साहेब के दूसरे महन्त के रूप में गुरु गद्दी पर आसीन हुए। पिता की ही तरह आप भी अत्यन्त शील स्वभाव के थे तथा प्रसिद्ध

---

1. सचित्र ग्रंथ साहब, पृ० 54; पद 28
2. वही, पृ० ऐ०
3. वही, पृ० 113

वैद्य भी थे। आपने सत्संग बढ़ाया, श्रेष्ठ प्रबन्ध किया, छत्री साहब की मरम्मत करवाई, पत्थर का चबूतरा, कुँआ तथा कई पक्के भवन बनवाए। श्री रामकिशन दास जी ने कई व्यक्तियों को भेष देकर सत्य नाम की नौका पर बैठाया। प्रसिद्ध सन्त नकली देव जी महाराज भी इन्हीं के शिष्य थे। सम्वत् 1999 वि०, पौष कृष्णा पंचमी रविवार के दिन आपने अमरलोक प्रस्थान किया।[1] सचित्र ग्रंथ साहब में इनका यही जीवन-परिचय प्राप्त होता है। इनके नाम से केवल चौदह पद ही उपलब्ध हैं। श्री ग्रंथसाहिब तथा सचित्र ग्रंथ साहब—दोनों में इनके पदों की संख्या 14 ही है। अवगत अथवा अवगतदास के नाम से ही आपके पद प्रसिद्ध हैं। बानगी के लिए इनका एक पद प्रस्तुत है—

कोई दम जीवै तो हरदम नाद बजा लेना ।।टेक।।
धरती फलक एक कर लेवों रे, अरे हाँ सोहं सुरत समा लेना।।
ईड़ा पिंगल साथ पियारे, अरे हाँ सुपमन ध्यान लगा लेना।।
निर्गुण राह पड़ा सीधारे, अरे हाँ हंसा वाट चला लेना।।
घीसा सन्त प्रेम शरण मेरे, अरे हाँ मन के खोट मिटा लेना।।
अवगत जीवन लाभ यही है, अरे हाँ जिवड़ा मोक्ष करा लेना।।[2]

महन्त श्री अचलदास जी साहेब

आप दरबार साहब के तीसरे महन्त हुए हैं। आप दयालु, विनम्र होने के साथ साथ शील और सन्तोष के साक्षात् स्वरूप थे। अभिमान तो आपको छू भी नहीं सका था। आपने अल्पायु में अनेक बिछुड़े हुए सत्संगियों को पुनः थोड़ा और सत्संग का खूब प्रचार किया। आपने असाधारण परिश्रम करके छत्री साहब के गुम्बज पर संगमरमर लगाकर दरबार-साहब की अत्यधिक शोभा बढ़ाई। सम्वत् 2012 वि० में आपने इस पाँच भौतिक देह का परित्याग कर सत्लोक को प्रस्थान किया।[3] अचलदास जी के नाम से 16 पद उपलब्ध हैं। भाव और भाषा दोनों सामान्य ही हैं। एक पद नीचे दिया जाता है—

'सत्य कबीर श्री घीसा राम, बन्दी छोड़ जय घीसा राम ।। टेक ।।
अनेक बार प्रभु जग में आए, सत्य कबीर कहीं जिन्दा कहाए ।।
भर्में जीव आप सुलझाए, दया करी सुखुधाम ।। 1 ।।
तात भ्रात और महतारी, मतलब की है दुनिया सारी ।।
तुम हो सतगुरु दीन हितकारी, सुधलो मेरी आठो याम ।। 2 ।।

---

1. सचित्र ग्रंथ साहब, पृ० ऐ०
2. वही, पृ० 118; पद 9
3. वही, पृ० ऐ०

माया मोह में फंसे हुए हैं, काम क्रोध मन बसे हुए हैं ।।
बुरी तरह से कसे हुए हैं, इनसे बचाओ करुणाधाम ।। 3 ।।
कहाँ तक कहूँ कही न जाती, कुछ ना मेरी पार बसाती ।।
प्रभु तुमरे बिन कौ हिमाती, बिगड़े सुधारो काम ।। 4 ।।
प्रेम रूप का सार बताओ, अवगति कुछ आ लखाओ ।।
दास अचल को शरण निभाओ, भिक्षा दीजो अपना नाम ।। 5 ।।[1]

महन्त की गौरव-गरिमा को अधिक समुज्ज्वल करने के लिए शायद उनके नाम पर 'बाणी' का होना आवश्यक-सा है । उपर्युक्त महन्तों के पदों के सर्वेक्षण से यही लगता है । किसी के नाम पर 'बाणी' का होना पंथ में अतिरिक्त गौरव की बात मानी जाती है । इस खींचतान का यही कारण है ।

महंत अचलदास जी के मरणोपरान्त उनके इकलौते पुत्र की जितेन्द्रदास जी दरबार-साहब, खेकड़ा की गद्दी को सुशोभित कर रहे हैं । उन्होंने अपने प्रयास से श्री घीसा सन्त जी का 'जीवन-चरित्र एवं बाणियाँ' वर्ष 1977 जून में प्रकाशित करवाया है ।

उपर्युक्त महंतों के अतिरिक्त भी घीसा पन्थ में कई उल्लेखनीय सन्त हुए हैं जिनकी आगे चर्चा की जाएगी । घीसा जी के प्रमुख शिष्यों में से एक श्री जीतादास जी हुए हैं । इनके नाम पर बड़ा साहित्य मिलता है जो गुण और मात्रा दोनों के हिसाब से महत्वपूर्ण है । कई बार कहा आता है कि कुछ ऐसे कृती शिष्य होते हैं जो अपनी महानता से गुरु को प्रसिद्ध कर देते हैं । जीतादास जी भी घीसा जी के ऐसे ही शिष्य हुए हैं ।

श्री जीतादास

इनके जन्म संवत् तथा माता-पिता का उल्लेख नहीं मिलता । यह जानकारी पाने के उद्देश्य से मैं महंत जितेन्द्रदास जी से मिला भी था किन्तु इस प्रयास में मुझे कोई सफलता नहीं मिली । उपलब्ध तथ्यों से इतना ही पता चलता है कि जीतादास जी जाति के जाट थे और खेकड़ा ग्राम के एक प्रतिष्ठित नम्बरदार थे । ये पढ़े लिखे नहीं थे । इस अनपढ़ता वाली बात का उन्होंने अपने पदों में स्पष्ट उल्लेख किया है । — 'जीता पढ़ा न अक्षर सीखा ।'[2] इनके भतीजे सुखलाल जी घीसा जी के सत्संग में पहले ही आ चुके थे । अपने भतीजे को हटकाने के लिए ही वे घीसा जी के सामने उपस्थित हुए थे किन्तु भतीजे को रोकना तो दूर स्वयं भी इनके सदा-सदा के लिए बनकर रह गए । समय के साथ उनपर घीसा जी

---

1. सचित्र ग्रंथ साहब, पृ० 122; 1
2. वही, पृ० 110

का रंग गाढ़ा ही होता चला गया। जहाँ लोगों को घीसा जी सामान्य जुलाहे लगते थे। जीता जी को घीसा जी साक्षात् राम दिखाई देते थे। इस तथ्य को उन्होंने निम्न पद द्वारा प्रकट किया हैं—

'मेरे मन मान्या है सतगुरु का नाम ।। टेक ।।
लोग तो कहें जुलाहा जुलाहा, मेरे दर्श रहया राम ।।'[1]

घीसा जी के जीवन-चरित्र सम्बन्धी 30-32 चमत्कारों का उल्लेख मिलता है। उनमें जीतादास जी का स्वतन्त्र रूप से कहीं उल्लेख नहीं हुआ है। इतना ही पता चलता है कि इनके ऊपर अपने और सभी गुरुभाइयों से रंग कुछ ज्यादा ही गाढ़ा चढ़ा था। ये निरन्तर घीसा जी की सेवा में मन, वचन तथा कर्म से लगे रहते थे। इनकी 'रहनी' आदर्श गुरु मुख शिष्य की थी। आपके पदों में त्याग, वैराग्य तथा अनन्य गुरु-भक्ति के खूब दर्शन होते हैं। घीसा जी की मृत्यु के पश्चात् दरबार साहब का उत्तरदायित्व अधिकतर आप ही निभाते रहे। आप संवत् 1945 वि० में परलोक गमन कर गए। लगता है पंथ के महंतों ने वह स्थान आपको नहीं दिया जो चाहिए था। किन्तु आपका साहित्य आपको तथा सारे पंथ को सदा गौरव प्रदान करता रहेगा।

रचनाएँ

श्री जीतादास जी की बाणी 'श्री ग्रंथ साहब' में संकलित है जिसका प्रकाशन सम्वत् 2015 वि० में सत्संगियों द्वारा करवाया गया है। इसमें जीतादास सहित घीसादरबार के सभी पूर्वोक्त महंतों की रचनाएं भी सम्मिलित हैं। यह घीसा पन्थ का एक महत्वपूर्ण प्रकाशन है। जीता जी की बाणी को तीन भागों में बांटकर परिचय देने में सुविधा रहेगी प्रथम भाग में 41 अंगों में विभक्त साखियां हैं जिनकी संख्या लगभग 1777 बैठती हैं। अंगों के नाम इस प्रकार हैं—गुरुदेव का अंग, सुमरन का अंग, विचार, मन, माया, सूर, चितावनी, स्वार्थ, पीवपिछान, दीनता, समझे घट का, विनती, भगती, लोभ, आनदेव, प्रतिव्रता, जीवन मृतक, पारख, मुसलमानी, ब्रह्मज्ञानी, समर्थ, मोह, शील, जरना, विरह, ज्ञानबिरह, निंदक, गुरु-निर्दोषता, साच, उपदेश, सर्वव्यापक, बैराग, भेदीनर, साधू, कलयुगी साधू, प्रार्थना, प्रेम, परमार्थ का अंग इत्यादि। दूसरे भाग में विभिन्न रागों में पदों को विभक्त कर रखा है जिनका ब्यौरा इस प्रकार है—

मंगल, पद 34; रेखते, पद 31; सीठणा, पद 5; होरी, पद 21; रागसारंग, पद 8; शब्द हेली, पद 6; राग बंगला, पद 3; रमैणी, पद 19; चरखे, पद 6; झूलने, 69 पंक्तियां; पढ़ने की बानी, 249 पद (जो पद, रमैणी तथा गुष्ट राम में

---

1. सचित्र ग्रंथ साहब, पृ० 109

विभक्त हैं, कल्मे, पद 5; आरती, पद 8; भक्तमाल; प्रभाती, पद 33; भोग का शब्द, पद 1 ।

तीसरे भाग में पद (गेय शब्द) आते हैं जिनकी संख्या 885 है। दूसरे और तीसरे भाग में पदों की संख्या लगभग 1392 बैठती है। जीतादास जी की वाणी में एक सच्चे सरल हृदय भक्त के उद्‌गारों की स्पष्ट झलक मिलती है। वहां भाव सौन्दर्य की कमी नहीं है। अपने भावों को येन-केन-प्रकारेण अभिव्यक्त करने के प्रयास में कई जगह भाषा विकृत भी हो गई है। ग्राम्य दोष का भाषा में प्राचुर्य है। किन्तु संत तो अपने राम के हाथ बिके उसके वैतालिक हैं। उसी के गुणगाण से उन्हें काम है। उनमें पंडितों को चूक भले ही लगे, उनके राम उससे प्रसन्न होते हैं। भाव चाहिए, सत्य एवं निष्ठा चाहिए, इनके राम इतने से ही प्रसन्न हो जाते हैं। अतः इन सन्तों को इतने से ही काम है। जीतादास के उपलब्ध साहित्य का उत्कर्ष हमें इनके गेय पदों में प्राप्त होता है। साखी भाग में किसी दार्शनिक मतवाद के खण्डन-मण्डन में न पड़कर सामान्य व्यावहारिक बातों की अभिव्यक्ति से ही सन्तुष्ट हैं। इनकी चिंता सामान्य मानव को लेकर है, क्योंकि इनका लक्ष्मीभूत श्रोता सामान्य मानव है जो निन्तर अपने अज्ञानवश इस दुनिया के गोरख धन्धे में पड़कर अपने आदि घर को भूल बैठा है। इसको जगाने के निमित ही यह बाणी का तामझाम रचना पड़ता है। जीतादास के पदों में गुरु-भक्ति, विरहानुभूति तथा वैराग्य के उत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं। बानगी के लिए एक पद प्रस्तुत है जिसमें दैन्य भाव भाव को सहज ही अभिव्यक्त किया है—

'अवगुणहारा हूं मैं जन थारा।
अवगुण माफ करो करतारा ।। टेक ।।
पूत कपूत बहुत अलिहारा, मात पिता को तो भी प्यारा।
हगा मूता सब धो डारा, ऐसा हूं बालक मैं थारा ।।
कामी क्रोधी मैं तो लोभी, हूं अवगुण का भरा तन मन सारा।
शरण पड़े की गुरु लाज निबाहयो, ऐसे हो सरजनहारा ।।
युग युग दया करी दासों पर, ऐसे हो सच्चे करतारा।
मैं पापी तुमने पचकर उबारा, कब तक महिमा गाऊँ तुम्हारा ।।
घीसाराम सबेरा सुनियों, कूक रहा जन जीता थारा ।।[1]

जीतादास के अतिरिक्त घीसा पन्थ में कुछ अन्य संत भी उल्लेखनीय है जिनकी बाणियाँ प्राप्त हैं। इनमें कुछ महत्वपूर्ण संत ऐसे भी हैं जिनकी बाणियां तो प्राप्त नहीं होती, लेकिन जिनकी शिष्य-परम्परा और पंथ में जिनका सम्मान बहुत अधिक है। उनकी चर्चा नीचे की जाती है।

---

1. सचित्र ग्रंथ साहब, पृ० 102 से उद्‌धृत

अवधूत नेकीराम जी महाराज

आप घीसा जी के परम शिष्यों में से थे। आपका जन्म फाल्गुण पूर्णिमा सम्वत् 1904 ग्राम नाहरी, ज़िला सोनीपत (हरियाणा) में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री शादीराम तथा माता जी का नाम लक्ष्मीदेवी था। आपने नाहरी, पिंडारा तथा निर्जन (जींद) में साधु आश्रम बनाए। तीनों ही स्थानों पर पंथिक सत्संगों का आयोजन होता रहता है। आपके प्रसिद्ध शिष्यों में हीरादास, ईशरदास तथा द्योतराम जी प्रसिद्ध हैं। ज्येष्ठ शुक्ला सप्तमी, सम्वत् 1969 वि०, के दिन नाहरी ग्राम में आप ने इस पाँच भौतिक शरीर का त्याग किया। आपका जीवनचरित्र 'जीवनगाथा' के नाम से सन् 1974 ई० में महंत समन्दरदास जी ने प्रकाशित करवाया है। 'जीवनचरित' के अनुसार आपका अवतार अलौकिक शक्ति के रूप में हुआ था। जीवन का हर व्यापार एक चमत्कार होता था। यह प्रकाशन साम्प्रदायिक श्रद्धातिरेक का सुन्दर उदाहरण है। 'गाथा' के अन्त में महाराज के 51 शिष्यों की सूची दे रखी है, जो हरियाणा-पंजाब-देहली तथा उत्तर प्रदेश इत्यादि से सम्बन्धित हैं। आपके नाम पर कोई 'बाणी' इत्यादि नहीं मिलती। अब शायद कोई 'आरती' एवं कुछ पद आपके नाम से चला दिए गए हैं। 'घीसा दरबार खेकड़ा' के तौल पर नाहरी में भी आपके नाम पर 'सन्त-आश्रम नाहरी' की स्थापना हो गई है और यहां भी महंत गद्दी वंशानुगत क्रम से चल पड़ी है। आपके बाद 'दलीप साहेब' महंत बने।

महंत दलीप साहेब जी

आप महाराज नेकी राम जी के भतीजे, श्रीरामचन्द्र के पुत्र थे। आपका जन्म माघ सुदी 13, सम्वत् 1953 वि० में हुआ। सोलह वर्ष की आयु में आषाढ़ शुदी 7, 1969 वि० में आप सन्त आश्रम नाहरी के महंत बनाए गए। आपने अपने जीवनकाल में सत्संग को दूर-दूर तक फैलाया। आप ज्येष्ठ बदी दसवीं, सम्वत् 2001 वि० को परलोक गमन कर गए। आपके नाम पर भी उपलब्ध साहित्य नगण्य ही है। शायद दो ही पद आपके नाम से 'सन्त वीणा' में पृ० 83 तथा पृ० 182 पर पाए जाते हैं। आपके बाद आपके इकलौते सुपुत्र महंत समन्दरदास जी आजकल संत आश्रम। नाहरी की गद्दी को सुशोभित कर रहे हैं।

महंत समन्दरदास जी

आप विचारशील विद्वान् साधक हैं। आपके नियंत्रण में नाहरी आश्रम की शोभा तथा महत्व खेकड़ा से कई गुणा अधिक बढ़ गया है। सत्संग को आपने नए आयाम दिए हैं। आप युगानुरूप अपने पूर्वज सन्तों के विचारों को अपने प्रवचनों में बड़े आकर्षक एवं सहज ढंग से सत्संगियों तक पहुंचाते हैं। आपका व्यक्तित्व

प्रभावशाली एवं रुचि-मति दोनों ही ऊँची हैं। आपने साम्प्रदायिक साहित्य में भी पर्याप्त संवृद्धि की है। 'सतगुरु के अज्ञात प्रेमी के पत्र', सन्त शब्द तरंग, सन्तवीणा, संत समागम (पत्रिका) तथा जीवनगाथा आपके आश्रम के महत्वपूर्ण प्रकाशन हैं।

'सतगुरु के अज्ञात प्रेमी के पत्र'—जो 'सन्त समागम' पत्रिका में समय-समय पर निकलते रहे हैं, पुस्तक रूप में प्रकाशित करवा दिया है। इसमें संकलित 10 पत्र बड़े अच्छे गद्यगीत के नमूने हैं। मुमुक्षुओं को सत्य-पथ पर अग्रसर करने के लिए समन्दरदास जी ने अनेक रूपकों दृष्टान्तों तथा सन्तों के पदों का बड़े सुन्दर ढंग से इन पत्रों में समावेश किया है। 'अज्ञात प्रेमी' आप स्वयं ही हैं। उन्होंने अपना सन्देश लोगों तक पहुंचाने की अनूठी विधि का आश्रय लिया है। इसके पश्चात् 'सन्तवीणा' में गरीबदास, कबीरसाहब, घीना जी, जीतादास, चरणदास, बाजीद जी, भानीनाथ, गुलाबनाथ, दादू हरिदास, दलीप साहब, नानक, धर्मदास, कमाली, रैदास, तुलसीदास, सूरदास, मीरा, रज्जब, गोरख, नामदेव, ब्रह्मानन्द, सुन्दरदास, ईशरदास, तथा शंकरदास इत्यादि 41 सन्तों के 271 गेयपद संकलित हैं। एक ही पुस्तक में विविध सन्तों की चुनी हुई बाणी वास्तव में सत्संगियों के लिए एक बड़ी बात है। कई पद तो बड़े दुर्लभ हैं जो केवल सत्संगियों के कण्ठ में ही निवास करते हैं। भानीनाथ तथा गुलाबनाथ के पद ऐसे ही हैं। ऐसा ही स्तुत्य प्रयास 'सन्त शब्द तरंग' का प्रकाशन है। इसमें भी नरसीदास, केशवदास, तोखा-दास, दिलसुख, मंझंइनाथ तथा हसनू फकीर के पद ऐसे ही दुर्लभ पद हैं। त्रैमासिक-पत्रिका 'सन्तसमागम' ने भी कई वर्ष धार्मिक साहित्य के क्षेत्र में बड़ा सराहनीय काम किया है। समन्दरदास जी भी, इस पत्रिका के माध्यम से, अपने विचार कभी पदों में कभी पत्र के रूप में तो कभी नाटक के रूप में अभिव्यक्त करते रहे हैं। इनमें अभी और अपेक्षाएं हैं।

नेकीदास जी के दो अन्य शिष्य हुए हैं—जिनकी बाणी उपलब्ध है। ये हैं—ईशरदास जी महाराज तथा द्योतराम जी।

सन्त ईशरदास जी महाराज

बड़ी विरल सी तथा सुखद बात है कि ईशरदास जी ने अपना परिचय स्वयं ही लिख रखा है। यह परिचय—'बाणी' महाराज ईशरदास की—के आरम्भ में ही लिखा हुआ मिलता है जो इस प्रकार है—'मेरा जन्म गाँव घुड़िआल, ज़िला और तहसील जालन्धर पुरी, कौम राजपूत का है। सम्वत् 1932 वि० में मेरा शरीर पैदा हुआ था। 17 वर्ष की उमर तक स्कूल की पढ़ाई में लगा रहा। अठारहवाँ साल शुरू हुआ तो दूसरी पढ़ाई अर्थात् आत्मिक विद्या का शोक पैदा हुआ।' आगे परिचय देते हुए ईशरदास जी बताते हैं कि किस प्रकार एक साधु द्वारा महाराज नेकीराम का उन्हें पता मिला तथा उनसे गुरु मन्त्र लिया। फिर कुछ

वर्ष तक रेलवे में नौकरी की, नौकरी छोड़कर नेकीराम जी के सान्निध्य में रहे, वहां से पिताजी घर ले आए तथा ग्यारह वर्ष तक एक चौबारे में ही गुजारे। तत्पश्चात् घर से निकल लिया। थककर एक प्रेमी के खेत में बरसाती नदी के किनारे मेघोवाल ज़िला हुशियारपुर में डेरा बना लिया, जो 'डेरा राजपुरा' के नाम से प्रसिद्ध है।[1] आगे अपने परिचय में वे लिखते हैं कि—'अब मैं इस डेरे (राजपुरा) में गुजरान कर रहा हूं। मैं महाराज घीसा संत के खानदान का सन्त हूं। इस कारण यह डेरा घीसा पंथियों का कहा जाता है और इस डेरे में घीसा पंथ की मर्यादा बरली जाती है। दोनों वक्त घीसा पंथियों की आरती होती है। गुरुशक्ति की पूजा होती है। हम अपने पंथ की मर्यादा बरतते हैं, किसी के पंथ को बुरा नहीं कहते।—— महाराज घीसा सन्त की मुखारविंद बाणी को हमने छपवा लिया है जिसका एक ग्रंथ बन गया है (श्री ग्रंथ साहेब जिसकी पहले चर्चा हो चुकी है)। जगतपुरा, ज़िला जालन्धर तहसील नवाँशहर के प्रेमी बीस वर्ष से हमारे सत्संग में आते हैं। उनके सत्संग के वास्ते एक डेरा जगतपुरा में भी बना दिया गया है। हमारी रेहत मर्यादा और उधर के घीसा पंथियों की रैहत मर्यादा में थोड़ा भेद है, इस कारण हम अपने को पंजाबी घीसापंथी कहते हैं।'[2] आगे इनके शिष्य महंत निरंजनदास लिखते हैं कि सतगुरु ईशरदास जी महाराज ज्योति-षज्योत समाए महीना कार्तिक, दिन 25, वीरवार सवेरे 7 बजे संवत् 2001 वि० मुताबिक 9 नवम्बर, 1954 ई०।'[3] इस प्रकार ईशरदास जी के माध्यम में घीसा पंथ पंजाब में भी कई स्थानों पर लोकप्रिय हो गया।

उपलब्ध रचनाएँ

महाराज ईशरदास जी की मृत्यु के बाद उनकी बाणी का प्रकाशन 'बाणी'-ईशरदास जी महाराज, शीर्षक से उनके शिष्य संहंत निरंजनदास ने अगस्त, 1958 ई० में करवाया। 'बाणी' की लिपि गुरुमुखी है तथा भाषा पंजाबी मिश्रित हिन्दी। इस ग्रंथ में 166 पृष्ठ तक ईशरदास जी की बाणी है तथा इससे आगे 158 पृष्ठों में घीषा जी की बाणी है, जिसका परिचय पहले दिया जा चुका है। इनकी बाणी में 143 पद, 4 कुंडलियाँ, 1 कवित्त, 1 सवैय्या, 12 बैंत तथा कुछ फुटकल बाणी हैं। पदों में गेय तत्व पूर्ण मात्रा में है। बैंत सिक्ख गुरुओं का स्पष्ट प्रभाव प्रमाणित करती हैं। भाषा में पंजाबी का पुट कई स्थानों पर स्पष्ट लक्षित होता है। नमूने के लिए इनका एक पद उद्धृत किया जा सकता है—

---

1. बाणी-महाराज ईशरदास, पृ० 5-6
2. वही, पृ० 6-7
3. वही, भूमिका, पृ० 8

'तैनूँ घट माँही निरंजन वे, बाहर क्यों भटक मरें ।। टेक ।।
"तैनूँ जल लग रही माया वे, क्यों नाहक दुःख भरें ।। 1 ।।
तेरा कोई ना संगी वे, तू किसका मान करें ।। 2 ।।
कोई रोज़दा मेला वे, क्यों सिर पर पाप धरें ।। 3 ।।
करो भजन हमेशा वे, तेरे सब काज सरें ।। 4 ।।
करो गुरु की सेवा वे, तेरे सब पाप झड़ें ।। 5 ।।
ईशरदास कहता वे, तू क्यों नहीं राह फड़ें ।। 6 ।।[1]

उक्त पद से इनके भाव तथा भाषा की सही झलक मिल जाती है ।

संत द्योतराम जी

दिल्ली से 52 कोस पश्चिम में ग्राम धनाणा (जिला जीन्द) में द्योतराज जी का जन्म हुआ। बाल्यावस्था में वहाँ रहते हुए वे भगवान की भक्ति तथा परमार्थ के काम किया करते थे। लोगों से अन्न माँगकर भूखों, श्वानों तथा साँडों को खिलाया करते थे। कथावार्त्ता और भगवान की उपासना ही इनका दैनिक कार्य था। 32 वर्ष तक इस प्रकार घर पर ही रहकर भक्ति भजन करते रहे। इनके बड़े भाई इनसे बहुत प्रेम करते थे। उनके मरने पर थोड़े दिन के पश्चात् जींद के पास स्थित तीर्थ रामराय (रामह्रद) में रहने लगे। वहाँ से आपको आपके भानजे सन्तू और जुगलाल निर्जन ग्राम में ले गए और वहाँ आपके नाम से एक आश्रम बनवा दिया। द्योतराम जी कभी कभी निर्जन से बरा ग्राम भी चले जाते थे। अन्तिम समय में आप पिण्डारा रहने लगे और वहीं शरीर पूरा किया। पिण्डारा में इनकी बड़ी अच्छी समाधि बनी हुई है। मैंने इनके जन्म तथा मृत्यु के समय तथा माता-पिता का पता लगाने का प्रयास किया लेकिन मुझे एतत्सम्बन्धी कोई सूत्र नहीं मिल सका। माई बख्तावरी जो इनकी शिष्या हैं, कोई भी जानकारी देने में असमर्थ रहीं। इनके शिष्य श्री योगानन्द जी बड़े अच्छे साधु हुए हैं। इनकी (द्योतराम) तीन रचनाओं का पता चलता है।[2]

रचनाएँ

श्री द्योतराम जी के नाम से—धर्म सनातन प्रकाशन, पंच यज्ञ विधान प्रकाश तथा शुभ कर्म-ज्ञान प्रकाश नामक तीन रचनाएँ पाई जाती हैं। धर्म सनातन प्रकाश तथा पंचयज्ञ विधान प्रकाश दोनों ही रचनाएँ पौराणिक मत से अत्यधिक प्रभावित हैं, वरन् यूँ कहें कि इनमें पौराणिक पंडिताऊ विधि-विधान को ही प्रतिपादित

---

1. बाणी-ईशरदास, पृ० 69, पद 63
2. शुभ कर्म ज्ञान प्रकाश, पृ० 1-4

किया गया है।

'पंचयज्ञ विधान प्रकाश में' देवयज्ञ, अतिथियज्ञ, पितृयज्ञ तथा ब्रह्म यज्ञादि का निरूपण किया गया है। पुस्तक की सामग्री का सर्वेक्षण करने से ऐसा नहीं लगता कि यह किसी निर्गुणियों संत की रचना हो सकती है। पौराणिक देवी-देवताओं की स्तुति एवं पौराणिक आख्यान तो सन्त गरीबदास जी की बाणी में भी उपलब्ध हैं किन्तु यहाँ तो सारा पण्डिताऊ कर्मकाण्ड भरा हुआ है। यही हाल 'सनातन धर्म-प्रकाश' का है। इनकी तीसरी रचना में कुछ बाणी अवश्य प्राप्त हैं। 'शुभ कर्म ज्ञान-प्रकाश' नामक रचना में आरती निर्गुण सगुण ब्रह्म की, मंगलाचरण, पिता पुत्र का संबंध वर्णन, नशा निषेध को अंग, साधू उपमा को अंग, ब्रह्म लीला, साखी तथा शब्द आदि शीर्षकों के अंतर्गत द्योतराम जी की बाणी प्राप्त है। पिता-पुत्र का संबंध वर्णन 102साखियों में प्राप्त हैं। इसमें बड़ी सीधी-सादी घरेलू किस्म की सीख दी गई है। बाल-विवाह से बचो, आहार व्यवहार सात्विक होना चाहिए, फिजूलखर्ची से बचो, इत्यादि जैसे बड़े-बूढ़े सीख देते हैं। 'नशा निषेध को अंग' में सभी प्रकार के नशों में बचाव की सीख दी गई है। साधू उपमा में साधु महिमा है। 'साखी' भाग पुस्तक में जहाँ तहाँ बिखरा हुआ है। इनकी कुल साखियों की संख्या 340 है। साखी की बानगी लीजिए—

"सीधी सरड़क राम की, पहुँचें हरि के दास।
जग से पीछा फिर गए, सुमरन स्वाँसों स्वाँस॥
झीना रस्ता राम का, चालें विरले शूर
रस्ते में ठग बहुत हैं, झगड़ा करैं जरूर॥"[1]

इस उदाहरण से इनके सामान्य भाव तथा भाषा इत्यादि का अनुमान हो जाता है। इनके द्वारा रचित शब्दों की कुल संख्या 25 है। एक शब्द भी उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है—

'तन मन धन अभिमान, गुराँ बिन कौन हरे॥ टेक॥
धन योवन का गर्व करे था, मद माया में मस्त फिरे था।
लाख यतन नहीं धीर धरें था, था धतिया बलवान॥ 1॥
मिच रहे नेत्र पड़ा था अँधेरा, आन अविद्या तुमको घेरा।
निज आनन्द का नहीं था बेरा, बुद्धि पशु समान॥ 2॥
सतगुरु शब्द हुआ उजियाला, तब से भागा भर्म हमारा।
अपना आनन्दरूप निहारा, खिला है गगन में भान॥ 3॥
लख लिया नूर सूरत सुख पाई, धन आनंद में जाय समाई।
संत द्योतराम पिंगलगाई, बहाँई हुआ है यथार्थ ज्ञान॥ 4॥[2]

---

1. शुभ कर्म ज्ञान प्रकाश, पृ० 104; 54, 55
2. वही, पृ० 190, पद 2

जितना भी इनका 'बाणी' भाग है वह प्रामाणिक है और सामान्य सन्तों की बाणी जैसा ही है। किन्तु लगता है कि किसी समझदार पण्डित ने इन सरल-मना साधु का आश्रय लेकर जरूर अपना सिक्का भी साथ ही चलाने का प्रयास किया है। क्योंकि इस कृति में भी साखी और शब्दों के अनन्तर उसने बीच-बीच में अपने प्रवचन डाल रखे हैं। कहीं न कहीं गड़बड़ जरूर है, फिर कभी अवसर आया तो इसका निराकरण करने का प्रयास करूंगा। यहाँ तो यथातथ्य परिचय मात्र ही काफी है।

घीसा पंथ

घीसा साहब के जीवन चरित्र, उनकी बाणी तथा साम्प्रदायिक किंवदन्तियों में स्पष्ट रूप में घीसा जी को कबीर का ही स्वरूप माना गया है। इस बात का प्रस्तुत अध्याय में पहले ही उल्लेख कर दिया गया है। भले ही घीसा जी कबीर-साहब के अवतार न हों और कबीर और घीसा का गुरु-शिष्य होना भी काल व्यवधान के कारण असम्भव है फिर भी घीसा पंथ में कबीर के प्रति आस्था में सन्देह नहीं किया जा सकता घीसा जी स्पष्ट शब्दों में कहते हैं—

'सकल शरीरों रम रहे, अवगत सत्य कबीर।
सत्य स्वरूप सतगुरू मिले, नीर क्षीर के बीर॥[1]

जीतादास भी अपनी गुरु-परम्परा का उल्लेख इन शब्दों में करते हैं—

'पाये प्रसाद भये आनन्द, रक्षा करैं गुरु रामानन्द।
पाये प्रसाद भये मन थीर, रक्षा करैं सत्तगुरु सत्यकबीर।
पाये प्रसाद भये अंचित, रक्षा करैं गुरु घीसा संत॥'[2]

इससे यह निश्चित माना जा सकता है कि घीसा पन्थ में कबीर द्वारा दिखाए मार्ग का अनुसरण साधना-पद्धति में किया जाता है। यहाँ भी वही सुरति-शब्द योग ही मान्य पद्धति है, गुरु का महत्व भी उतना ही है, ब्रह्मजीव, जगत्, माया आदि के विषय में भी इनमें और कबीर में कोई अन्तर नहीं है।

'समर्थ जुलाहे के ताणे' के अन्तर्गत—सुरत शब्द पद्धति का उल्लेख इस प्रकार हुआ है—

'शील सुरत की पाण लगाते, क्षमा की गाढ़ चढ़ाते हैं।
प्रेम मगन होय 'रेज़ा बुनते, शब्द सूत सुलझाते हैं।
सुषमन घर में बुणने लागे, लाभ चौगुणा पाते हैं॥'[3]

---

1. सचित्र, ग्रन्थ साहब, पृ० 8
2. वही, पृ० 44
3. वही पृ० 9

गुरु महिमा का स्पष्टीकरण इन शब्दों से हो जाता है—

'गुरु ईश्वर, गुरु पर ब्रह्म, सतगुरु सबका देव ।
गुरु बिन पार न पावई, तातें शरणा लेव ।।
गुरु की सेवा जो करै, हृदय ध्यान लगाय ।
काल जाल से छूट ही, सत्य धाम को जाय ।।[1]

ब्रह्म के स्वरूप की झलक इन शब्दों में मिल जाती है—

'काला धोला है नहीं, सब घट रह्या समाई ।
सबरंग बन रहे आपके, बेरंग साहब दूर ।
उस सतगुरु की क्या कहूँ, जो आपै नूर जहूर ।'[2]

× × ×

'ना छोटा ना बड़ा है, ना है जात अजात ।
ना ब्राह्मण ना बाणिया, ना क्षत्री राजात ।।
ना काहू का बाप है, ना काहू का पूत ।
आप रूप जगत में रमा, बाँधा एके सूत ।।'[3]

घीसा जी की माया सम्बन्धी धारणा इस प्रकार है—

'ठगनी ने सब जग लूटा, कोई सन्त विवेकी छूटा ।
राजा प्रजा सब ही लूटे, योगी तपस्वी कूटा ।
काज़ी पंडित सब ही लूटे, कहता वेद अछूता ।
मृत लोक पाताल लोक में, स्वर्गलोक लौं दौड़ी ।
तीन लोक भक्षे ठगनी ने, रच दिया खेल अनूठा ।'[4]

घीसा पंथियों के कुछ नियम

घीसा सन्त दरबार खेकड़ा के प्रथम महन्त श्री प्रेमदास जी ने पन्थ को व्यवस्थित करने एवं इसके स्वरूप को वैशिष्ट्य प्रदान करने के लिए कुछ नियमों का पालन आवश्यक ठहराया था। उन नियमों को दूसरे महन्त श्री रामकिशन दास जी ने पद्यबद्ध कर दिया है जो इस प्रकार है—

"सत गुरु आए जगत में देख जनों का त्रास ।
साखा सूत्र दे अपनाये, दिया नाम विश्वास ।।

---

1. सचित्र ग्रन्थ साहब, पृ० 1; 1,2
2. वही, पृ० 14
3. वही, पृ० 19
4. वही पृ० 51-52

कर्म बने मर्याद से, बिन मर्याद न होय।
अन्दर बाहर एक सा, मर्याद कहावे सोय ।।
ऊपर की भी चाहिए, जग में किर्ति सोय।
लोक लाज कुल शर्म से, कुछ तो दृढ़ता होय ।।
सद्गुरु घीसा राम जी, दास प्रेम कर हेत।
या विधि जीव लँघाय, सोहँ सूत्र समेत ।।
गुरु परमेश्वर जानिए, दोनों एक समान ।
प्रथ नियम यह कहा, मानों शिष्य सुजान ।।
सब जीवों पै दया रक्खें: दूजा नियम पहचान।
तीजा क्षमा सबसे चाहिए, कठोर बचन सहान ।।
चौथा संतोष हिय में धरे, सत्यासत्य पहिचान।
नियम पाँचवाँ ये कहा, लो जिज्ञासु जान ।।
छोड़े नहीं सत्संग को, ना कुंसग में जाय।
नियम छठा जो यह कहा, देख शिष्य का भाव ।।
त्याग विषय संसार के, इनमें दुख महान।
नियम साँतवाँ यह कहा, लीजे सज्जन जान ।।
नौवें तज के मान को, दूर इन्हों से जाय।
आनदेव ना पूजिए, जब लों पार बसाय ।।
दिवस एक जो ध्यान हैं, खुला नरम में जाय।
नियम एकादश कहत हूँ, सुनिए शिष्य सुजान।
मात-पिता गुरुदेव जी, सेवा इनकी ठान ।।
भूख प्यास से जो दुःखी और अपाहिज होय।
नियम द्वाद्वस में कहे, अन्न जल की सेवा होय ।।
होय धीरता मन को श्री गुरु के उपदेश।
नियम तेरहवाँ यह कहा, चिह्नों भेष जिज्ञेश ।।
नियम चौदहवाँ कहत हूँ, लखो शिष्य सुजान।
तन मन धन और वाक् से, बाहर कभी न होय ।।
होय किर्ति इस लोक में, निष्फल कभी न होय।
नियम पंचदश ये कहे, जपतप साधन जो होय ।।
भूख प्यास को सहन कर, तितिक्षा शीतधाम की होय।
क्षमा भाव उरराखना, निर्मल साधन जोय ।।
नियम सतरमी का है नहीं, दिन सत्रह की होय।
सन्त समागम होने से, दृढ़ता मन को सोय ।।
शेष रहे जो आदमी, श्रद्धा उनकी होय।

भोजन उनको दीजिए, संत भक्त जो इकट्ठे होय।
अन्त समय जब आवे. होय पास जो लोग ।।
चर्चा संसारी ना करें, देवें ज्ञान वियोग।
होवे अन्तशरीर जब, सब से माफी चाय ।।
हाथ जोड़ आधीन होय, लेवे क्षमा कराय।
घीसा गुरु कृपा करीं, जो प्रेम मुख भास।
जीव यही विधि ऊबरे, मानों दृढ़ विश्वास ।।
पहिले थे ये गद्य में, पद्य करीं हैं दास।
जन अवगत में को हुई, सद्गुरु भये सहाय ।।[1]

ये पद्यबद्ध नियम किसी टीका अथवा टिप्पणी की अपेक्षा नहीं रखते बल्कि सहज ही बोधगम्य होने वाले हैं। घीसा पन्थियों में प्रचलित कुछ और नियम भी देखने में आए हैं। ईशरदास जी द्वारा रचित उनकी पोथी में "घीसा पन्थियों के गुरु भक्ति के असूल" शीर्षक से कुछ नियम दिए गए हैं जिनमें कुछ बातें उपर्युक्त नियमों के अतिरिक्त भी आई हैं। उदाहरण के लिए निम्न तेरह नियमों को लिया जा सकता है जिनका उल्लेख सन्त ईशरदास ने अपनी बाणी में किया है।—

(1) डेरे में गुरु या गुरुगद्दी के बगैर किसी को लम्बी बन्दगी और माथा टेकने का हुक्म नहीं। (2) गुरु प्रणाली में भेख और गृहस्थी तकरीबन एक समझे जाते हैं। (3) गुरु की ज़िन्दगी में किसी साध को शीत प्रसाद देने और गुरु मन्त्र देने का अधिकार नहीं। (4) गुरु या गुरुगद्दी से ही शीत प्रसाद लेना चाहिए। (5) कोई साध गुरु की इजाजत बगैर चेला नहीं बना सकता। (6) गुरु के डेरे या डेरों में रहने वालों साधों को गुरुगद्दी का पुजारी या सेवक समझना चाहिए। (7) सब गृहस्थी लोगों को गुरु के चेलों को एक समान समझना चाहिए। (8) गुरु के हैडक्वार्टर डेरे को बाकी डेरों से बड़ा और पूजनीय समझना चाहिए। (9) डेरेदार साधों को चाहिए कि वे जब गुरु के पास दर्शन को आवें तो खाली हाथ नहीं आना चाहिए। (10) सब साधों को गृहस्थी भक्त लोगों के घर में जाने का हुक्म नहीं, अगर गुरु भेजे तो जा सकते हैं। (11) गुरु की गैर हाजरी में गुरु गद्दी की पूजा करनी चाहिए। (12) जो गृहस्थी लोग तन, मन, धन से सेवा करते हैं वह गुरु की सेवा ही समझी जाती है, साधों की नहीं। साध लोग उस पूजा से डेरा चलाते हैं। (13) गद्दी का अदब आदाब गुरु का अदब-आदाब समझा जाता है।

घीसा पन्थियों के ठिकानों में प्रातः एवं सन्ध्या समय आरती की जाती है।

---

1. सचित्र ग्रन्थ साहब, पृ० 111-13
2. बाणी—ईशरदास, पृ० 164-66

आरती के बोल अधिकांशतः गरीबदास जी की वाणी से तथा थोड़े जीतादास जी द्वारा प्रणीत आरती से लिए गए हैं। इसके अतिरिक्त एक 'भोग' का शब्द है जो भंडारा करते समय गाया जाता है।

प्रमुख आश्रम

खेखड़ा, नाहरी, पिंडारा, निर्जन, रामपुरा (पंजाब) तथा जगतपुरा (पंजाब) आदि घीसा पन्थियों की प्रमुख गद्दियाँ हैं। और बहुत से नगरों तथा गांवों में घीसा पन्थी आश्रम हैं।

घीसा पन्थ : उपलब्ध साहित्य

(1) सचित्र ग्रन्थ साहिब (घीसा सन्त की वाणी), प्रकाशक : प्राप्ति स्थान —अवधूत चन्दन देव जी, दरबार घीसा सन्त खेकड़ा, सम्वतं 2016, पृ० 164

(2) श्री ग्रन्थ साहेब, श्री 108 घीसा सन्त जी महाराज तथा उनके शिष्य जीतादास जी कृत, प्रकाशक—प्राप्ति स्थान : श्री महंत अचलदास जी, दरबार घीसा सन्त, खेकड़ा मुद्रक : बापू प्रिंटिंग प्रेस, बल्लीमारान, देहली, संख्या 2016, पृ० 300 (व्यक्तिगत संग्रह)

(3) 'वाणी' (पंजाबी) सतगुरु ईशरदास जी महाराज, प्रकाशक : महन्त नरंजनदास साधू, पंजाबी (घीसा पन्थी निवासी), डेरा रामपुरा, पिंड मेघवाल, पंजाब ; नवीन प्रेस, टांडा रोड, जालन्धर, अगस्त, 1958, पृ० 323 (व्यक्तिगत संग्रह)

(4) श्री 108 स्वामी द्योतरामजी, शुभकर्म—ज्ञान प्रकाश, प्रकाशक भक्त सन्तलाल, जुगलाल, निरंजनवासी ; सद्धर्म प्रचारक यन्त्रालय, देहली, सं० 1981 वि० पृष्ठ 248 (व्यक्तिगत संग्रह)

(5) श्री 108 स्वामी द्योतराम जी, पंचयज्ञ विधान,—प्रकाश, प्रकाशक : सन्तू तथा मामला, निरंजन निवासी ; अम्बिका प्रेस, भिवानी, सम्वत् 1985 ; पृष्ठ 226 (व्यक्तिगत संग्रह)

(6) 'सतगुरु के अज्ञात प्रेमी के पक्ष,' सम्पादिका : सौभाग्यवती गुप्ता, प्रकाशक : श्री चौ० भगवान सिंह जी तथा विद्याधर जी गुप्ता, हरिहर प्रेस, चावड़ी बाजार, दिल्ली, पृष्ठ 72 ; प्राप्ति स्थान : श्री सन्त आश्रम वासी, (व्यक्तिगत संग्रह)

(7) 'सन्त वीणा', सम्पादिका—सौभाग्यवती गुप्ता, प्रकाशक—महन्त समन्दरदास, श्री सन्ताश्रम नाहरी, हरिप्रेस, चा० बा० दिल्ली, सन् 1968, पृष्ठ 308 (व्यक्तिगत संग्रह)

(8) 'सन्त शब्द 'हंस', सम्पादिका—सौभाग्यवती गुप्ता, प्रकाशक : महन्त समन्दरदास, श्री सन्ताश्रम, नाहरी हरिहर प्रेस, चावड़ी बाजार देहली सन् 1968, पृष्ठ 210 (व्यक्तिगत संग्रह)

(9) श्री घीसा सन्त जी का जीवन चरित्र एवं बाणियाँ, प्रकाशक : आचार्य जितेन्द्रदास महन्त, बन्धु प्रिंटिंग प्रेस, खेकड़ा (मेरठ), जून, 1900, पृ० 120 प्राप्ति स्थान : घीसा सन्त दरबार, खेकड़ा (व्यक्तिगत संग्रह)

(10) जीवनगाथा, धर्मवीर कौशिक, प्रकाशक : समन्दरदास जी महाराज, प्रिंट आर्ट नवीन शाहदरा, सन् 1974, प्राप्ति स्थान—उपरोक्त, पृष्ठ 232 (व्यक्तिग संग्रह)

अध्याय 3

हरियाणा का नितानन्दी पन्थ

हरियाणवी सन्त-साहित्य में अब तक सन्त नितानन्द का परिचय मात्र एक सन्त के रूप में ही दिया जाता रहा है। किन्तु इनकी बाणी ('सत्य सिद्धान्त प्रकाश') की पुष्पिका में हमें इनके भेष अर्थात् पन्थ की नामावली देखने को मिली। इनकी भेष परम्परा में अष्टम स्थान पर श्री भोलादास प्रज्ञाचक्षु का नाम, आता है जिन्होंने नितानन्द जी की बाणी का 'सत्य सिद्धान्त प्रकाश' के नाम से सम्पादन एवं प्रकाशन करवाया है। इन्होंने ग्रन्थ की पुष्पिका में अपनी भेष-प्रणाली का परिचय दिया है।[1] इससे लगता है कि नितानन्दी पन्थ' की अपनी स्वतन्त्र सत्ता रही होगी। अतः इनको किसी अन्य पन्थ के साथ सम्बद्ध न करके इनके स्वतन्त्र पन्थ की चर्चा अधिक संगत होगी। नितानन्द जी अपनी वेशभूषा से भी विरल ही लगते हैं। तिलक के प्रति इनका विशेष आग्रह इनके 'तिलक-मन्त्र'[2] से भी स्पष्ट हो जाता है जो इनको अन्य सन्तों से अलगाता है। कुछ रेखाचित्र जो इनकी बाणी में संकलित हैं उनमें इनके माथे पर वैष्णव-तिलक स्पष्ट ही दिखता है।

सन्त नितानन्द के गुरु गुमानीदास जी को एक वैष्णव साधु बतलाया गया है।[3] कहा जाता है कि एक बार लाला हिम्मतराय नाम के एक गृहस्थ श्री गुमानी

---

1. स्वामी नितानन्द कृत 'सत्य सिद्धान्त प्रकाश', पृ० 468, तथा पृ० 27 'भेष' टिप्पणी
2. वही, पृ० 362
3. वही, जीवन-चरित्र, पृ० 2

दास जी से मिलने गए। गुमानीदासजी की अनुपस्थित में सन्त नितानन्द जी ने लालाजी के साथ कुछ रूखा व्यवहार किया। गुमानीदासजी को जब इसकी सूचना मिली तो उन्होंने नितानन्द जी को यह कहकर लाला हिम्मत राय के पास क्षमा प्रार्थना के लिए भेजा कि लालाजी गृहस्थ होते हुए भी एक पहुँचे हुए साधु हैं। सन्त नितानन्द जी गुरु के आदेशानुसार लालाजी के पास गए और उनसे इतने प्रभावित हुए कि फिर लौटकर गुमानीदास जी के पास नहीं गए। हो सकता है कि सन्त नितानन्दजी को सुरत-शब्द साधना का संकेत लाला हिम्मतराय से मिला हो।[1] इनकी भेंट सन्त गरीबदास जी से भी हुई बतलाई जाती है।[2] किन्तु इनकी साधना पद्धति में योग-क्रियाओं पर इतना आग्रह नहीं है जितना गरीबदास का प्रतीत होता है।

इनके प्रमुख स्थान माजरा (ज़िला रोहतक) से इनके शिष्य ध्यानदास की एक हस्तलिखित पोथी मुझे प्राप्त हुई है। इन ध्यानदास का उल्लेख नितानन्द जी की शिष्य प्रणाली में किया गया है। यहाँ नितानन्द के नाम पर नितानन्दी-पन्थ का एक स्वतन्त्र पन्थ के रूप में प्रथम बार परिचय दे रहे हैं।

सन्त नितानन्द

हरियाणा का सन्त-साहित्य बहुत ही समृद्ध है और इस समृद्धि में सन्त नितानन्द का महत्वपूर्ण योग है। यहाँ के सत्संगी समाज में प्रसद्धि सन्त गरीबदास या सन्त जैतराम जी की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय सन्त नितानन्द जी हैं। सन्त नितानन्द जी सन्त गरीबदास के समकालीन प्रसिद्ध सन्त हुए हैं। आश्चर्य की बात है कि 'उत्तरी भारत की सन्त परम्परा' तथा अब तक के हिन्दी के इतिहास ग्रन्थों में कहीं भी इनका उल्लेख नहीं मिलता। मध्यकाल से लेकर अब तक के प्रायः सभी सन्तों की जीवनी सम्बन्धी प्रामाणिक सूचनाओं का अभाव उनके कृतित्व को समझने में सदैव बाधा की तरह अनुभव होता है। नितानन्द जी की सातवीं पीढ़ी के शिष्य श्री भोलादास प्रज्ञाचक्षु ने काफी श्रम करके कुछ सूचनाओं का संग्रह किया है।[3]

सन्त नितानन्द जी की पुण्य जन्म-स्थली नारनौल है, जो हरियाणा के ज़िला महेन्द्रगढ़ का मुख्यालय है। नारनौल में इनकी चार हवेलियाँ प्रमुख बाजार में सड़क के दोनों ओर आमने-सामने आज भी भग्नावस्था में विद्यमान हैं। बीरबल की वंश-परम्परा में श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल में इनका जन्म हुआ। इनकी रचनाओं को

---

1. स्वामी नितानन्द, जीवन-चरित्र, पृ० 7
2. वही, पृ० 22
3. सत्य सिद्धान्त प्रकाश, पृ० 1-26

देखने से भान होता है कि इन्हें हिन्दी-संस्कृत तथा फारसी आदि भाषाओं का यथेष्ट ज्ञान था। इनका बचपन का नाम नन्दलाल था। इनके पिता रियासत भरतपुर (राजस्थान) में किसी ऊँचे पद पर काम करते थे। कहते हैं कि इन्होंने भरतपुर में तहसीलदार के पद पर भी काम किया था।

सन्त नितानन्द जी का विवाह बचपन में कर दिया गया था। पत्नी नैहर में ही स्वर्गवासी हो गई। दूसरा विवाह युवावस्था में हुआ जो इनकी इच्छा के विरुद्ध माता-पिता ने किया था। ये विवाह के पक्ष में नहीं थे क्योंकि एक साधु के सत्संग से इनके विचारों में परिवर्तन आ गया था। यह साधु श्री गुमानीदास जी थे जो इनके गुरु थे ओर वृन्दावन में रहते थे। तहसीलदारी करते समय नन्दलाल (जो बाद में सन्त नितानन्द कहलाए) प्रायः ही गुमानीदास जी के पास सत्संग हेतु चले जाते थे। धीरे-धीरे उन पर गुमानीदास का रंग गाढ़ा होता गया। जब दूसरी पत्नी का द्विरागमन हुआ तो सन्त नितानन्द के वैरागी मन ने भगवान से तीन प्रार्थनाएँ कीं—मेरा विचार-परिवर्तन हो जाए, अथवा मेरी मृत्यु हो जाए अथवा मेरी पत्नी की मृत्यु हो जाए। कहते हैं कि एक हफता बीतते बीतते उनकी पत्नी की मृत्यु हो गई और इस प्रकार उन्हें गृहस्थ-चक्र से मुक्ति मिल गई।

इन्हीं दिनों नारनौल से समाचार आया कि लाल हवेली लूट ली गई है। यह संवाद इनके पिता की मृत्यु का कारण बना। नन्दलाल ने तत्काल महाराज भरतपुर को अपना त्यागपत्र दे दिया; महाराज भरतपुर के ऊँचे प्रलोभन देने पर भी इन्होंने वहाँ रहना स्वीकार नहीं किया। एक घोड़ा तथा कुछ वस्त्रादि लेकर वे अपने नाना खिताबराय के पास रिवाड़ी आ गए। नाना ने उन्हें अनेक प्रकार से सन्तुष्ट करने के प्रयास किए, फिर से विवाह-बन्धन का प्रयास किया लेकिन उन्हें इनमें सफलता नहीं मिली क्योंकि मुक्ति-कामी नन्दलाल के लिए सांसारिक मोह-बन्धनों में कोई आकर्षण नहीं रह गया था।

इसी समय, कहते हैं कि, स्वामी गुमानीदास जी भ्रमण करते हुए रिवाड़ी के के पास बन में आकर टिक गए। नन्दलाल इस वन में घोड़े पर घूमने जाते थे। गुरुजी से वन में अकल्पित अकस्मात् भेंट हो गई। नन्दलाल गुरु मिलन से गद्गद् और कृतार्थ हो गए। महाराज से प्रार्थना की कि अब मुझे अपनी शरण में ले लो। उधर से नाना खिताबराय अपने कई सहयोगियों सहित आए और बाबा गुमानी-दास से प्रार्थना की कि नन्दलाल को समझा-बुझाकर वापस घर भेज दें किन्तु नन्दलाल स्वयं ही नानाजी को समझाकर वापस भेजने में सफल हो गये और उन्होंने सदा-सदा के लिए गुरु गुमानीदास जी की शरण ले ली। इस प्रकार गृहस्थी से अलग होकर नन्दलाल अब केवल गुरु के ही हो गए और उनके साथ रहकर गुरु सेवा का पुण्य लाभ करने लगे। गुरुजी ने इनकी साधुवृत्ति और सेवा से प्रसन्न होकर अपने भेष में इन्हें विधिपूर्वक दीक्षित कर लिया तथा इन्हें नन्दलाल से

नितानन्द बना दिया।

कहते हैं कि एक दिन गुरुजी जंगल में गए हुए थे। पीछे से एक सज्जन आकर गुरु आसन पर बैठ गए। नितानन्द ने पूछना चाहा कि आप कौन हैं जो मेरे गुरु के आसन पर बैठ गए हैं? सज्जन चुपचाप उठकर चले गए। बाद में सारी घटना का ब्यौरा प्राप्त करने पर गुमानीदास जी ने कहा कि 'नितानन्द तुमसे बड़ा अविनय हुआ है। वे सज्जन बहूझोलरी निवासी लाला हिम्मतराय थे जो मुझसे प्रायः ही मिलने आया करते हैं। गृहस्थ होते हुए लालाजी भजन में पूरे हैं। जाओ और क्षमा प्रार्थना करो।' नितानन्द जी गुरु की आज्ञा शिरोधार्य कर लालाजी के पास पहुँचे। आठ-पहर हिम्मतराय की ड्यूढ़ी पर एक टाँग के सहारे खड़े रहने पर लालाजी का कोप शान्त हुआ। डेढ़ वर्ष की कड़ी परीक्षा में सफल होकर उन्होंने लालाजी का आशीर्वाद प्राप्त किया। हिम्मतराय जी ने आदेश दिया कि यहां से तेरह कोस दूर एक बन है जिसमें जटैला और जगसीपुर दो सुन्दर सरोवर हैं। इस बन के उत्तर में सिवानां, दक्षिण में महमूदपुर, पूर्व में माजरा तथा पश्चिम में बास नामक गाँव है। वहाँ जाओ, तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी। नितानन्दजी ने इसी बन में एक हींस के बिड़े को अपनी साधना-स्थली वनाया।

वैसे तो गुमानीदास जी तथा बहूझोलरी में लाला हिम्मतराय जी के सानिन्ध्य-काल को भी सन्त नितानन्द का साधना-काल ही समझना चाहिए किन्तु एकान्त भाव से भक्ति तथा साधना का काल लालाजी के आशीर्वाद प्राप्त करने के पश्चात् का समय ही है। इसी काल के दौरान इसी बन में नितानन्द जी की 'प्रीतम' मिलन की मनोकामना पूर्ण हुई। उन्होंने अपनी बाणी में एक स्थल पर कहा है कि—

'जिस बन में प्रीतम मिले, धन्य-धन्य बन सोय।
जाल-करील सुहावने, रहे कल्पतरु होय॥'[1]

जिन कंटीले करील वे हींस आदि शोभा-श्री-विहीन मरु वृक्षों के मध्य रहकर प्रिय का दीदार प्राप्त हुआ उनके सामने साधक के कल्पवृक्षों के कानन-उपवन भी फीके लगे हों तो क्या आश्चर्य। नितानन्द के लिए यह काल घोर साधना के साथ-साथ कठिनाइयों का काल भी रहा। वे सूर्यास्त के पश्चात् किसी एक गाँव में जाकर केवल सात घरों तक ही अपनी भिक्षावृत्ति को सीमित रखते थे। तिस पर भी एक घर के सामने केवल तीन स्वाँस लेने तक ही प्रतीक्षा करते थे। जो कुछ मिल जाता अपने स्थान पर जाकर उससे क्षुधापूर्ति कर लेते थे। कई बार निराहार ही रहना होता था। कई बार बन में आने वाले ग्वाल-बालों से रोटी माँगकर उनसे अपने ऊपर कंकड़-पत्थर मारने को कहते ताकि ऋण शोध होता रहे। धीरे-धीरे गाँव वालों को उनकी शक्ति का आभास हो गया। तदुपरान्त माजरा निवासी

---

1. सत्य सिद्धान्त प्रकाश, जीवन-चरित्र, पृ० 10

नितानन्दजी को गाँव लिवा ले गए और यही माजरा ग्राम, जो रोहतक से 26 मील दक्षिण पश्चिम में स्थित है, अन्त तक उनका निवास तथा प्रचार-केन्द्र रहा। इसी समय माजरा-रानीला, सिवाना और बिगोवा नामक चार गाँवों से ध्यानदास, हरिदास, बालानन्द तथा चेतराम आदि तेरह शिष्यों ने नितानन्द जी से दीक्षा ली।

माजरा में भजन-सत्संग करते नित्य नवीन अलौकिकता का परिचय देते हुए कई वर्ष बीत गए। सम्वत् 1840 में एक जबरदस्त दुर्भिक्ष पड़ा। प्राणीमात्र को अन्न का ही नहीं पेय जल तक का संकट आ गया। माजरा निवासी मालवा के लिए प्रस्थान करने लगे तो इनके शिष्य हरिदास जी गाँव वालों से बोले कि पानी की तो बात क्या, आप चाहें तो मोतियों की वर्षा हो सकती है। गाँव वाले हरिदास के इस संकेत को नहीं समझे। गाँव वालों के साथ महाराज नितानन्द जी भी मालवा चले गए। कुछ मास पश्चात् वर्षा होने पर गाँव वाले वापस आ गए। उस प्रवास काल में नितानन्द जी ने ठाकुर मांडूसिंह को, उसकी निष्ठा देख, अपनी मौज (दीक्षा) दी। कहते हैं कि मालवा से वापसी होते समय निराना (राजस्थान) स्थित दादू-द्वारा पहुँच उन्होंने अपने श्रद्धा सुमन इस प्रकार भेंट किए थे—

दादू आदू पीर हैं, अमर पुरी के राव।
नितानन्द सिजदा करें, बड़ी भेंट है भाव॥
दादूजी आगे गए, हम भी पीछे जाँहि।
नितानंद को मिल लियो, लंबी करके बाँहि॥
अमर पुरी के चोंक में, दादू का निश्शान।
नितानन्द देखी कहैं, समझे सन्त सुजान॥
दादू आदू जुगों के, आज काल के नाहिं।
रामचन्द्र लंका चढ़ै, दादू दल के माँहि॥[1]

मालवा प्रवास में एक दिन अपने शिष्य ध्यानदास से नितानन्द जी ने परलोक गमन की इच्छा प्रकट की। शिष्य के यह कहने पर कि महाराज अन्य सम्प्रदाय वाले सदा हमें यही कहकर चिढ़ाएँगे कि आपके गुरु परदेश में भूख के कारण मरे हैं। महाराज ने शिष्य को आश्वस्त किया कि हम अभी 16 वर्ष और चोला नहीं छोड़ेंगे।

छुड़ाणी धाम वाले सन्त गरीबदास जी से भी नितानन्द जी की भेंट का ज़िक्र आता है किन्तु किसी विशेष घटना का उल्लेख नहीं मिलता।

कहते हैं कि एक बार यमुना स्नानार्थ शिष्यों सहित इनकी पूरी मण्डली प्रयाण कर रही थी। रिवाड़ी पड़ाव पर शिष्य की भाँग चुक जाने पर बाज़ार में हेला (पुकार) दिया कि एक सेर भाँग लाओ, पुत्र ले जाओ। एक निःसन्तान

---

1. सत्य सिद्धान्त प्रकाश, पृ० 18

दम्पत्ति तुरन्त भाँग लेकर उपस्थित हुआ। 9 मास पश्चात् पुत्र प्राप्ति पर दम्पत्ति फिर दो सेर भाँग लेकर आए। महाराज ने कहा कि इस बार पुत्री उत्पन्न होगी। ऐसा ही हुआ। इस वंश से एक आदमी वार्षिक मेले पर आज तक श्रद्धावश निरंतर उपस्थित होता है। बड़ी आयु होने पर भी माजरा निवासी बिरजू जाट को उनके इकलौते पुत्र का निधन होने पर, नितानन्द जी ने पुत्र प्राप्ति का वरदान दिया था। बिरजू की पत्नी के अविश्वास करने पर महाराज ने कहा कि एक ही नहीं, काने, कोतरे, लंगड़े, लूले आपको सात पुत्रों की प्राप्ति होगी। ऐसा हुआ भी। बिरजू जाट को एक लड़ाई में गर्दन में घातक घाव आया जो महाराज द्वारा सिर पर हाथ फेरने मात्र से तुरन्त ठीक हो गया।

बताते हैं कि नितानन्द जी का चमत्कार-प्रदर्शन में कभी विश्वास नहीं रहा। अन्य सच्चे सन्तों की भाँति इनकी रहनी भी बड़ी सहज तथा सरल थी। इस प्रकार कुछ अलौकिक अथवा चामत्कारिक घटनाओं का होना हमें भले ही चकित कर दे किन्तु महाराज नितानन्द जैसे सन्तजन के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं।

मालवा प्रवास के समय सम्वत् 1840 में अपने शिष्य ध्यानदास से 16 वर्ष पश्चात शरीर त्याग के कथनानुसार सम्वत् 1856 भादों सुदी एकम अथवा पड़वा के दिन महाराज नितानन्द ने अपनी ऐहिक लीला समाप्त की। प्रातः सभी सत्संगियों तथा शिष्यों को बुलाकर अपना मन्तव्य प्रकट किया कि हमें जटैला सरोवर पर जाल के वृक्ष के साथ, जहाँ मैं भजन करता था, बैठा देना। और आदेश दिया कि मुझे अग्नि-दाग न देकर वायु-दाग दिया जाए। प्रज्ञाचक्षु जी का कहना है वायु-संस्कार की बात पर शिष्यों ने आपत्ति की। उनका कहना था कि ऐसा करने पर पशु-पक्षी आपके शरीर की दुर्गति कर देंगे जो हम सब के लिए अपयश का बड़ा कारण होगा, तो उस समय महाराज ने निम्न अरल का उच्चारण किया—

जो प्राणी मर जाए उसे ना जारिए,
हाथों हाथ उठाय जंगल में डारिए।
सब पक्षी मिल खाँहि, कि चीरैं चाम को,
भर जाय जिनका पेट दुआ दें राम को।।[1]

सन्तजनों का जीवन परोपकारमय होता है अतः मृत देह से कैसा मोह। नितानन्द जी ने सभी उपस्थित सज्जनों के सामने पदमासनारूढ़ हो कुछ समय ध्यान लगाकर शरीर त्याग दिया। उनकी इच्छानुसार उनको वायु-दाग देकर अर्थात् बताए हुए स्थान पर बैठाकर सभी ने गाँव की ओर प्रस्थान किया। थोड़ी दूर चलने पर महाराज की खड़ाऊँ सभी के बीच आकर ऊपर से पड़ीं और आकाश में

---

1. सत्य सिद्धान्त प्रकाश, जीवन चरित्र, 24

विमान उड़ने जैसा आभास हुआ। सबके सब चकित होकर वापिस लौटे तो महाराज का पार्थिव शरीर वहाँ नहीं मिला। यह देखकर सभी लोग मंगल आरती गायन करते तथा महाराज का जयघोष करते हुए अपने-अपने घर लौट आए। माजरा ग्राम में उनकी पुण्यतिथि के दिन प्रतिवर्ष मेला लगता है और उनके वस्त्र, पादुका, लोटा, कटोरी तथा पलंग आदि वस्तुओं के दर्शन कराए जाते हैं।

नितानन्द जी की बाणी

सन्त नितानन्द की बाणी का सम्पादन तथा प्रकाशन नितानन्दी साधु भोलादास प्रज्ञाचक्षु ने "सत्य सिद्धान्त प्रकाश" नाम से सम्वत् 2017 में किया। "सत्य सिद्धान्त-प्रकाश को इन्होंने "गुरुग्रन्थ साहब" भी लिखा। ग्रन्थ में कुल 468 पृष्ठ हैं। आरम्भ में 26 पृष्ठों में नितानन्द जी की जीवनी दे रखी है। बाणी के दो भाग हैं, प्रभम भाग में गुरुदेव, सुमर चेतावनी, सुमरन, विरह, परचा; रस, लाभी, हैरान, हैरत, जरना, लो, पतिव्रता, चेतावनी, मन, सुखमन, माया, चाणिक, कामिनी, सहज, साच, भरम बिधूषण, भेष, कुसंग, सद्संग, असाध, साध, मध्य, विचार, विश्वास, धीरज, वुंकताई, काल, सूरातन, पारख, सुन्दर; वीनती, बेहद आदि 60 अंग हैं। द्वितीय भाग में ब्रह्मस्तोत्र, बारहाखड़ी, गुरुवन्दन, तिलकमन्त्र तथा 176 पद विभिन्न राग शीर्षकों के अन्तर्गत सम्मिलित हैं। प्रथम भाग की साखियों की संख्या 3622 है। "बाणी" का प्रथम संस्करण सम्वत् 1985 में निकला था।[1] यह दूसरा संस्करण है। यह संस्करण भी समाप्त प्रायः है। अब शायद "सत्य सिद्धान्त प्रकाश" का तीसरा संस्करण "रामरतन सत्संग ट्रस्ट, बहादुरगढ़ से प्रकाशित करवाया जाएगा।

सन्त-काव्य "पंडित और प्रबीनन को जोइ चित्त हरे सो कवित्त कहावै" वाला काव्य नहीं है। सन्त कवि कविताई को महत्व नहीं देते। पण्डिताई भी उन्हें पसन्द नहीं है। वे सीधी सादी बात को सीधे ढंग से कहना चाहते हैं। बात कविता बन जाए तो बहुत अच्छा, न बने तो कोई बात नहीं। श्री नितानन्द जी की बाणी का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि पण्डित और गुणीजन के मनोविनोद के लिए कविताई नहीं की। कविकर्म के लिए उनका आदर्श भी अन्य सन्तों की तरह—तुलसीदास जी की यह उक्ति ही है—"कीरति भनिति भूति भलि सोई, सुरसरि-सम सबकर हित होई।"[2] उनका लक्ष्यीभूत श्रोता विशिष्ट पण्डित अथवा विद्वान न होकर जागतिक प्रपंच में अवश पड़ा हुआ कोई भी ऐसा मानव है जो अज्ञानवश अपने वास्तविक स्वरूप को भूलकर माया के वशीभूत होकर लख चौरासी

---

1. सत्य सिद्धान्त प्रकाश, परचा का अँग, पृ० 468
2. रामचरितमानस, बालकाण्ड, वन्दना

के चक्कर की यातना भुगत रहा है। नितानन्द जी की वाणी का लक्ष्यीभूत श्रोता ऐसा ही मामूली आदमी है। सांसारिक मनुष्य अर्थात् साधारण गृहस्थी की छोटी-छोटी बातों—जीवन के व्यापारों को किस खूबी से महानतम मानव मूल्यों से जोड़ते हैं—किस प्रकार अरूप को रूपायित करते हैं—यह लक्ष्य करने वाली बात है। ऊँची-से-ऊँची टेढ़ी-से-टेढ़ी बात को जिस सहज सरल ढंग से अनन्य साधारण भाषा के द्वारा अभिव्यक्त किया गया है यह निश्चित ही नितानन्द जी को ऊँचा कवित्व पद प्रदान करवाने में समर्थ है। जिस रूप में कबीर इत्यादि सन्तों को महान कवि माना जाता है—उसी रूप में नितानन्द जी को भी महान् सन्त कवि कहने में संकोच नहीं होना चाहिए। सन्त काव्य का पुनर्मूल्याँकन करते हुए डॉ० राजदेव सिंह लिखते हैं: "इस काव्य (सन्त काव्य) की आत्मा आनन्द है।...यह मनोविकारों के तनाव का काव्य नहीं, आनन्दोल्लास का काव्य है। सम्यक् ज्ञान वा शुद्ध तत्वबोध से इसका जन्म होता है और बदले में यह सहृदय के चित्त को समस्त दुराग्रहों और पूर्वाग्रहों से मुक्त करके उसे सत्य का साक्षात्कार कराता है।"[1] सन्त नितानन्द की वाणियों में उपलब्ध काव्य इसी तरह का बड़ा ही उदात्त काव्य है। भले ही इसके रचयिता ने काव्य-रूढ़ियों का पालन न किया हो, अलंकारों का जमघट न लगाया हो, अपनी सरल सादगी में यह काव्य सर्वजन ग्राह्य है।

अपने कथ्य को सहज-सरल तथा प्रभावी ढंग से अपने श्रोता तक पहुँचाना ही उन्हें अभीष्ट है। इसके लिए किसी भाषा विशेष की शब्दावली का आग्रह उनके लिए व्यर्थ है। यदि भाषा को नाम देना ही आवश्यक हो तो कह सकते हैं कि यह बाँगरू अथवा हरियाणवी मिश्रित खड़ी बोली हिन्दी है। अपनी अलमस्ती में कहीं कहीं पंजाबी, राजस्थानी, तथा फारसी का सुन्दर समावेश किया है। ब्रज का प्रयोग यत्र-तत्र कथ्य को लालित्य एवं मार्दव देने में बड़ा सहायक है। इससे नितानन्द जी का बहुश्रुत होना प्रमाणित होता है। अपनी लहर में आकर कथ्य की माँग पर फारसी में भी वह लिखते हैं—ज्ञान प्रकाशन के लिए कदापि नहीं। हरियाणा निवासी होने के कारण और अपनी बात को सर्वजन हिताय सर्वजन सुलभ करने हेतु हरियाणवी लोकोक्तियों-मुहावरों तथा विशिष्ट शब्दावली का प्रयोग उल्लेखनीय है। यह सम्प्रेषण को सहज तथा सशक्त बनाने के लिए ही अयत्नज उद्गार हैं। जैसे—मरोड़ करना, चान्दणा होना, जीवन भाँग के भाड़े खोना, देही पर गुलझट पड़ी, नदी में हाथ पखालना, जीवन को जक तक लग रही, उमाहा लगाना, सरता नहीं, मुक्ति माँगे बला, घोल घाल सी बात, सुभर भरना, कनक कटोरे में सिंहनी का दूध थंभना, पीहर से चल सासरे, झाड़ पिछोड़ देखना, टापना, जन्म मरण खूँटा गड़ा, घाणी घालना, बटाऊ लोग, खढ़ा खुदावै और को, उभाने पाएँ,

---

1. डॉ० राजदेव सिंह, सन्त-साहित्य : पुनर्मूल्यांकन, पृ० 313

महंगे मोल की चादर, कूँवे भाँग पड़ी, ऊबना, नान्हा नाका नगर का, डंक मारना, जहाँ आसा तहाँ बासा, फूटे बासन नीर, करंक चिचौड़े स्वान, ताते दूध बिलाव, चूँधा फिरै, मन का खोट, भोंदू भूँड, काल का चबीना, गज़ब घालना, हल्दी की गाँठ से मूसा भया पँसारी, इत्यादि ठेठ हरियाणवी ठाठ हैं। बाणी में सैकड़ों फारसी की साखी हैं। "लगनरो पन्थ हमारो हो" की तरह राग मारवाड़ी में कई पद राजस्थानी भाषा के नमूने के तौर पर लिए जा सकते हैं। "कोई बतलावै री मेरे परदेशिया नूँ" जैसे कई पद पंजाबी भाषा के उदाहरणार्थ लिए जा सकते हैं। भाषा के क्षेत्र में नितानन्द जी बहुज्ञ हैं बहुश्रुत हैं।

इनके छन्द विधान में वैशिष्ट्य है'। प्रायः मुक्तक काव्य में प्रयुक्त होने वाले सभी तो नहीं कई छन्दों का प्रयोग मिलता है। दोहा तथा गीत का प्राधान्य है। अरिल्ल, कवित्त, सवैय्या, तथा सोरठा इत्यादि विरल हैं। दोहा इनका प्रिय छन्द है। उपलब्ध पदों की संख्या 176 है। सारे के सारे पद गीति-काव्य की विशेषताओं को लिए हुए हैं। इनमें रोचकता, संक्षिप्तता, भाव तथा प्रभाव की एकता इत्यादि सभी गुण हैं। पद लालित्य, उचित शब्द संयोजन पदों की अलग से विशेषता है। कई पद तो विभिन्न राग शीर्षकों के अधीन दे रखे हैं, जैसे राग विलावल, प्रभाती, आसावरी पूरबी, होरी, गौरी, बसन्त, मंगल, कल्याण, हेली, मारवाड़ी, घनासोरी, विहाग, राग झँझोटी इत्यादि। लगता है नितानन्द जी को संगीत ज्ञान पर्याप्त था। पदों को शास्त्रीय परख द्वारा इनका आस्वादन लिया जा सकता है। कई पद तो सत्संगी जनों द्वारा सत्संगियों में गाए जाते हैं और गेय पदों की अक्षय निधि स्वर तथा वाद्य संगीत का सुयोग पा सकी तो निश्चय ही कोटि-कोटि जनों के हृदय-हार बन सकने की इनकी क्षमता प्रमाणित हो पाएगी

अलंकारों में अनुप्रास, उपमा, रूपक, दृष्टान्त, उदाहरण तथा विरोधाभास इत्यादि का प्रयोग हुआ है। जगदीश्वर के रूप वर्णन एवं बन्धन में उपमा, संसार की भयावहता, क्षणभंगुरता, विषयों की अनित्यता इत्यादि में रूपक, दृष्टान्त इत्यादि का सटीक प्रयोग हुआ है। अनुप्रास की छटा सर्वाधिक इनके गेय पदों में दर्शनीय हैं।

कहने के लिए कुछ हो तो भाषा भी बन जाती है। छन्द भी सध जाते हैं और अनायास अलंकरण भी उनमें आ जाता है। नितानन्द के पास कहने के लिए बहुत कुछ था, सम्भवतः इसीलिए उनकी वाणी में असर, प्रवाह और प्रभाव है। वह मन को छूती है, विजड़ित चिन्तन को गति देती है, चित्त विकलन को शान्त करती है। कबीर नानक की वाणी की तरह ही सन्त नितानन्द की वाणी भी मृगमरीचिका में दौड़ते हुए जलते प्यास मन को शान्ति देती है। मत में साँई की कारुणिकता के प्रति अटूट विश्वास जगाती है। कर्म की प्रेरणा देती है। अनन्त असहजकर्ताओं के बीच सहज जीवन, सहज निष्ठा और सहज आचार को बल देने वाली ये वाणियाँ

हरियाणा की आम जनता का पग-पग पर मार्ग दर्शन करती है।

सन्त नितानन्द जी की वाणियों में प्रखर तार्किकता, दृढ़ आस्तिकता और सहज आचारनिष्ठा की त्रिवेणी के दर्शन होते हैं। सन्त नितानन्द की वाणियों से स्पष्ट आभास मिलता है कि उनकी दार्शनिक पीठिका बड़ी ठोस थी, उनका भक्तिभाव अत्यन्त उच्छल था और उनकी वाणी बड़ी असरदार थी। वे दार्शनिक नहीं थे लेकिन दर्शन की गहराइयों-ऊँचाइयों से परिचित थे, वे भक्त थे लेकिन कर्म का त्याग उन्होंने नहीं किया था, वे कवि थे लेकिन "पण्डित और गुणीजन का मनो-विनोद करने के लिए उन्होंने कविता नहीं लिखी थी। जिस तरह कबीर की मुख्य चिन्ता जीव को लेकर थी उसी तरह सन्त नितानन्द की समस्या भी माया-लिप्त सँसारी ही था। काम-क्रोध लोभ, मोह, कनक-कामिनी के चक्करों में फँसा हुआ पशुजीव उनका परिचित है। ब्रह्म, माया, जीव, जगत् सबकी असलियत को वे पह-चानते हैं। उन्हें इनसे मोक्ष के उपाय का भी पता है। सन्त नितानन्द जी की वाणियों में इनके स्वस्थ दार्शनिक मत का बड़ा सुन्दर रूप प्राप्त होता है। वे विश्वास करते हैं कि वह निरन्जन देव सभी देवन के देव हैं। सुर, नर, देवी, देव इत्यादि कोई भी उस अलख के भेद को जानने में असमर्थ हैं।[1] वह ज्योतिरूप भगवान हैं प्राणों के दाता पुरुष हैं—पूर्ण हैं, परम ज्ञान विज्ञान के विधाता हैं।[2] कमल नाभि में निवास करने वाले वे आदि स्वामी हैं, सभी जीवों के जीवन हैं, सब घट अन्तर्यामी हैं।[3] वह अलख, ईश, जगदीश सकल जल थल में पूर्णतया व्याप्त हैं, अजन्मा हैं, न निकट न दूर है।[4] सनकादि, सुखदेव नारद मुनि, ब्रह्मा, शंकर, शेष तथा रुद्रादि सहित सर्व भवनों के प्राणी रात-दिन उनका ध्यान लगाते हैं।[5] ये गोविन्द गुणातीत हैं—तीन गुणों से परे हैं। पाँचों तत्व, नारायण; रवि तथा चन्द्रमा इत्यादि उनके चरणों का ध्यान लगाते हैं।[6] चारों वेद उस ब्रह्म को अपार-अपार कहकर उसका वर्णन करते हैं। वे तो अवगति अधर-आधार हैं—उनके क्या गुण कहें ?[7] वे दृष्टि गुण से दूर हैं···मन तथा बुद्धि की वहाँ पहुँच नहीं है। वे सभी में निवास करते हैं और सब उसमें निवासते हैं।[8] वे रूप, रेख, रंग तथा अँग विहीन

---

1. सत्य सिद्धान्त प्रकाश, ब्रह्म-स्तोत्र, 1
2. वही, 2
3. वही, 3
4. वही, 4
5. वही, 5
6. वही, 7
7. वही, 9
8. वही, 12

हैं तथा उनको चर्म चक्षुओं से नहीं देखा जा सकता। सदा सम हैं। अचल तथा अनन्त हैं।[1] भाव-प्रवाह से भिन्न रहकर सदा सतचित्त के व्यवहारी हैं।[2] सभी कर्मों के करने वाले होकर भी निःकर्मी हैं। सकल पिण्ड ब्रह्माण्ड में वह चेतन्यस्वरूप समाया हुआ है। सारे दृश्यमान जगत तथा सूक्ष्मादि पदार्थों को गुप्त से प्रकट करने वाले वे अवगत करतार ही हैं।[3] उस ज्योति स्वरूप ब्रह्म का ही पसारा है यह सारा ब्रह्माण्ड।[4] जीव अविनाशी ब्रह्म का ही अँश है जो माया-मैल में पड़कर मैला हो गया है।[5] जीव मैला है—पीव उजला है। बेचारा माया के घेरे में पड़कर अवगुणी हो गया, इसके नाथ गुणवन्त हैं—कैसे मैला होय ?"[6] यह सुरत सुन्दरी नैहर (जगत्) में आकर अपने पीव को भूल बैठी है।[7] यहाँ आकर अजब दुविधा में फँस गई है—रात दिन जक-तक लगी रहती है—पल को भी चैन नहीं।[8] युगों से अपने प्रीतम के ठाँव से बिछुड़ी हुई सुरत सुन्दरी उन अलबेले प्रीतम से मिलने को बेचैन हैं।[9] हंस स्वरूपी जीव जो यहाँ आकर कागा बन गया है—कुमति के फेर में पड़ गया—अपने मानसरोवर को भूल गया है।[10]

इस जग जंगल से जीव को मुक्त होने के लिए नितानन्द जी इस जीव को कई नामों से सम्बोधित करते हैं। कभी मानसरोवर से बिछड़ा हंसा, तो कभी पीव से बिछुड़ी सुरत सुन्दरी, कभी भोले पक्षी को काल के जाल से उड़ जाने को कहते हैं तो कभी बंजारन कहकर हेला देते हैं—इसी प्रकार अनेकधा जीव को उद्‌बोधित करने के सन्दर्भ में ही जीव-चर्चा यत्र-तत्र सारी वाणी में ही मिलती है। कहीं तात्विक चर्चा नहीं आई है—केवल व्यावहारिक स्थिति की ही चर्चा है।

सर्वप्रथम ज्योति-स्वरूप ब्रह्म का प्रकाश प्रकट हुआ। तदनन्तर उस प्रकाश से माया का विस्तार हुआ। सत-रज-तम की उत्पत्ति; धरती-स्वर्ग, पाताल, चाँद, सूरज तथा तारागण; पानी-पवन, आकाश तथा तेज, शीत-उषा, रात दिन तथा धूप-छाँह; पशु-पक्षी, नर-नार, भूत-प्रेत तथा देव दैत्य इत्यादि सभी कुछ स्थूल

---

1. सत्य सिद्धान्त प्रकाशन, ब्रह्मस्तोत्र, 13
2. वही, 14
3. वही, 28
4. वही, 29
5. वही, विरह का अंग, 58
6. वही, विरह का अंग, 92
7. वही, परचा का अंग, 35
8. वही, विरह का अंग, 52
9. वही, परचा का अंग, 38
10. वही, वही, 112

तथा सूक्ष्म जो भी दृष्टिमान जगत् है—एक पल में अपने गुप्त भण्डार खोलकर इस व्यापक विश्व को रच डाला।[1] उस कारीगर करतार की यह जगत अनूठी बाजी है। इस बाजी को एक पल में वह समेट भी सकता है। जड़-चेतन स्थूल-सूक्ष्म इत्यादि सभी वस्तुएँ नामरूप धारण करती है और इस जगत्-स्वप्न में मिटती जाती हैं।[2] वास्तविक सत्ता तो उसी ब्रह्म की है—आदि में वही तथा अंत में वही ब्रह्म ही ब्रह्म विराजमान है। मध्य में यह जागतिक उपाय केवल भ्रम-मात्र है।[3] सो इस भ्रम जाल अथवा स्वप्न स्वरूप जगत् की किसी भी वस्तु से मोह नहीं करना है—सब कुछ असार जो ठहरा। सार है तो केवल एक ब्रह्म। इसी बात को सांसारिक प्रपंच में लिप्त जीव को समझाते हुए नितानंद जी इस जगत को कई रूपों में प्रस्तुत करते हैं। अधिकांश सन्तों की भाँति नितानन्द जी ने भी जगत की दार्शनिक विवेचनान करके इसके व्यावहारिक पक्ष को अपनी वाणी में उजागर किया है। जगत का मायावी रूप, इसकी असारता तथा इसकी क्षण-भंगुरता को लक्ष्य करके जीव को इस प्रपंच से वच निकलने की सीख देते हैं। इसी सन्दर्भ में ही जगत सम्बन्धी चर्चा इनकी बाणी में मिलती है। तात्त्विक विवेचन की अपेक्षा जीव को नाना रूपों में जकड़े हुए जागतिक प्रपंच की वस्तुस्थिति से अवगत कराके—उसके मोक्ष का विधान ही इनका काव्य है।

माया का शास्त्रीय अथवा तात्विक विवेचन नितानन्द जी की वाणी में नहीं मिलता। माया का व्यावहारिक-क्रियात्मक रूप ही उन्होंने लिया है। सारी सृष्टि माया रूप में ही प्रतीत होती है। सकल माया का ही प्रसार है।[4] माया की मार से कोई नहीं बचता है। कहीं स्थूल रूप में तो कहीं सूक्ष्म रूप में—कहीं मोटी तो कहीं झीनी माया तूफान मचा रही है। कोई मोटी माया से बच गया तो इसे झीनी ने दबोच लिया है। इससे बचा कोई नहीं।[5] करोड़ों में कोई एकाध सतगुरु की शरण में आ के ही बच पाया है। केवल एक ही उपाय है इसकी मार से बचने का सन्त-सतगुरु की शरणागति अन्यथा कोई उपाय नहीं इस पापिनी से बचने का।[6] स्थूल तथा सूक्ष्म सब माया की रचना है। माया ही का देवता—माया ही का मन्दिर है। चौदह भवन जीत कर सभी की सरताज बनी हुई है, सारी सृष्टि को कनक-कामिनी के धागे में इसने पिरो रखा है। धरन-गगन इसके प्रताप से

1. सत्य सिद्धान्त प्रकाश, ब्रह्म स्तोत्र, 28-36
2. वही, प वही, 72
3. वही, वही, 87
4. वही, पृ० 113
5. वही, वही, 121
6. वही, वही, 23-29

थरर्ति हैं।[1] प्रकट दृश्यमान मोटी अथवा स्थूल माया है तथा झीनी अथवा सूक्ष्म-माया का घट में निवास है। हर कहीं माया का विस्तार है जीव कहाँ जाए, इससे बचकर कोई और ही नहीं। आगे-पीछे ऊपर नीचे सब माया की ही माया है। यदि कोई मोटी से छुटकारा पा गया तो उसे झीनी ने धर दबाया। सिद्ध, साधक, जोगी जती, योग साधन का सहारा लेकर मोटी से पार पा गए, किन्तु उन्हें झीनी ने लपेट लिया।[2] मायाएक तिमर वृक्ष है जिसकी शाखा प्रशाखा भ्रम-विकार इत्यादि है। इस वृक्ष के विषस्वरूपी जन्म तथा मृत्यु दो फल हैं तथा सभी अन्धे होकर इन फलों का भोग कर रहे हैं।[3]

मान बड़ाई झीनी माया के स्वरूप हैं। यदि कोई इससे छुटकारा चाहे तो स्वयं को रज अथवा धूल के समान विनम्र बनाना पड़ेगा। जहाँ प्रशंसा पाने की इच्छा है, मान प्राप्ति की चाह है वहीं इस झीनी का प्रबल घेरा है।[4] सन्तों के लिए यही माया सुखदायी है। माया स्वयं पुकार कर हेला देती है कि मैं हरिजन अथवा सन्तन की दासी हूं। सो इस तीन लोक चौदह भवन वाले माया के प्रसार के प्रभाव से बचने का साधन-सन्तों की शरण है—गुरु की छत्रछाया है अन्यथा इससे पार पाना कठिन ही नहीं असम्भव है।[5]

जीव का पीव से मेला ही मोक्ष है। जब दोनों का मेला हो जाता है तो जीव तथा पीव में कोई अन्तर नही रह जाता। जीव ही पीव और पीव ही जीव हो जाता है।[6] अनहद शब्द को श्रवण कर सुरत गलतान हो गई, शून्य में बासा हो गया सुरत का—यहीं मालिक मिल गए। यही सुरत शब्द का मेला ही मोक्ष है।[7] सुरत सुन्दरी अपने प्रीतम से युगों से बिछुड़ी हुई है। पीहर में भटकी हुई है। अपने प्रीतम से मिलना है। वहीं उस अजब अनोखे राम पीव के गाम पहुँचना है। तिमिर मिटाकर घट-घट खोलकर उस प्रीतम को पहचानना है।[8] कैसा स्वरूप है उस पीव का? कैसा उसका वह अनोखा ठाम? तेज पुँज के नूरानी पीव हैं। उनका मुकाम भी कोई मामूली स्थान थोड़े ही होगा। बिना ही अग्नि, सूर्य तथा चन्द्रमा के वहाँ अजब झिलमिल नूर की रोशनी है। एसा अजब नूर तेज का

---

1. वही, माया का अंग, 105-114
2. वही, वही, 121-23
3. वही, वही, 131
4. वही, वही, 136
5. सत्य सिद्धान्त प्रकाश, माया का अंग, 170
6. वही, परचा का अंग, 21
7. वही, वही, 23
8. वही, वही, 35, 36, 38

मुकाम है कि कहने सुनने में नहीं आता।[1] बस सुरत को यहीं इस नूरी महल में नूरी साहब से मिलाना है—यही मोक्ष है।

सुरत का साई से जहाँ मेला होता है नितानन्द जी उस स्थान को सतलोक कहते हैं। यह मोक्ष का मार्ग—सतलोक पहुँचने का मार्ग बड़ा विचित्र है। इसको नितानन्द जी उनमन बाट एवं विहंगम मारग कहते हैं।[2] इसी मोक्षधाम अथवा सतलोक का वर्णन करते हुए महाराज लिखते हैं कि वहाँ उस बारीक भवन में बिना जिह्वा का गुणगान होता है—नैन बिना देखना है, बिना अंग के मिलन होता है। बिना चाँद तथा सूर्य के झिलमिल-झिलमिल अजब नूर है वहाँ। नितानन्द जी इस मोक्षधाम का बड़े मनोयोग से मस्त होकर तथा बड़ा खुलासा ब्यान दिया है। वे जैसे अघाते ही नहीं इस नूरी महल का वर्णन करते हुए। आगे कहते हैं कि इस बाँके ओघट घाट की बाट के वटोही साहब के लाल संतजन ही होते हैं। इस ऊपर की राह में कायर का काम नहीं है—यह सूर सन्तों की राह है।[3] इस निर्वान पंथ में अनेक भाटी चुवैं हैं (प्रेम रस की)। कलालों की कई दुकान हैं—सन्तों को हूर मुक्त मन से सोहनी सुराही से प्याले भर-भर पिला रही हैं—उस सुख चैन के शहर की अपार शोभा है। यह अकल्पनीय नूर तेज का अजब शोभाशाली मुकाम कहाँ स्थित है? अरे बहुत निकट है—केवल 'तिल के ओल्हे' नयन की पुतलिका के पीछे ही यह सब स्थित है। केवल 'नैन का फेरना' ही पर्याप्त है।[4] नयनों को उलट-अन्तदृष्टि करनी होती है—बस यहीं और यहीं नितानन्द जी का मोक्षधाम है—यहाँ पहुँचना ही मोक्ष है।

नितानन्दी साधना-पद्धति

उस अवगति के दरबार तक—प्रवीन पद तक अथवा गैब की नूरी सेज तक पहुँचने के लिए महाराज नितानन्द जी साधना सम्बन्धी कुछ विशिष्ट संकेत देते हैं। इनमें 'लौ' का मार्ग धारण करना तथा मध्य अंग में ध्यान धरना प्रमुख हैं। किसी भी साधक को उस घर तक पहुँचने के लिए लौ लगाने तथा तध्य अंग में ध्यान धारने का आश्रय लेना होगा। उस गुन्न शहर तक पहुंचने के लिए लौ का मार्ग धारण करो। इसी से जीव-ब्रम्ह का एक्य सम्भव है। मन को उलट कर—अन्तर लौ लगाने से उस अमर पुरी की रोशनी घट में ही प्राप्त की जा सकती है।

---

1. सत्य सिद्धांत प्रकाश, माया का अंग, 45-48
2. वही, राग मंगल, 1
3. सत्य सिद्धान्त प्रकाश, राग मंगल, 3-4
4. वही, वही, 5-8

सभी दिशाओं से उलटकर अपने आप में समाना होता है।[1] 'मध्य अंग' अर्थात् मस्तक में नैनों को उलटकर भौंहों के मध्य त्रिकुटी में लौ लगानी होती है। यह सुरत-निरत का खेल है। इसी मार्ग से होकर साधक उस नूरी महल की सेल करता है। सतलोक—सुन्न महल, भँवर गुफा अथवा महाशून्य इत्यादि पहुँचने का नितानन्द जी ने यही मार्ग बतलाया है।[2] इसी को विहंगम गैला, पीन मार्ग अथवा पश्चिम घाटी की बाट चलना भी कहा गया है। इसी को सुरत शब्द मार्ग भी कहते हैं। सुरत को निरन्तर उठते-बजते रहने वाले अनहद शब्द अथवा अनहद धुनि से जोड़ दिया जाता है। कोटि चन्द्र और सूरज का उजाला इस मार्ग में लौ लगाने पर और नैनों से उलटा निहारने पर साधक को चकाचौंध करता है और इसी प्रकार उस गैब के नूर में मिलकर स्वयं भी साधक की सुरत नूरी हो जाती है। और उस अनन्त से सम्पर्क जुड़ जाता है। यह स्थिति मोक्षादि से बहुत ऊपर की बताई गई है।[3]

साधना सम्बन्धी उपायों तथा युक्ति के साथ-साथ कुछ अन्य बातों की ओर भी ध्यान देना चाहिए। साधक को सद्गुरु शरण, सुमिरन का आश्रय तथा पतिव्रता के आदर्श का पालन करना चाहिए। एकान्त भाव से अपने पति (ब्रह्म) में नेह तथा विश्वास—एक उसी की आस—अन्य साँसारिक आकर्षणों या प्रलोभनों के प्रति विरक्ति। साधक को दोज़ख का भय तथा बहिसत की इच्छा न होकर दिल में एक परब्रह्म भरतार का ही ध्यान रहता है।[4] इसके साथ ही मन रूपी भ्रमर को भी—जो संसार रूपी बाग की विषय-वासनाओं में प्रतिदिन बौराया फिरता है—ब्रह्म बाग की ओर मोड़ना आवश्यक है।[5] सत्य का आश्रय दृढ़विश्वास साध संगति—धैर्य धारण कर—शूरवीर के समान शील-सन्तोष के हथियार लेकर जीवन-संग्राम में झूझते रहने से ही मोक्ष अथवा निर्वाण प्राप्ति हो सकती है। सार रूप में नितानन्द जी के अनुसार यदि मोक्षोपाय कहें—तो ऐसे होगा। सर्वप्रथम नाम को हृदय में धारण करके अज्ञान तथा कुमति को त्यागना चाहिए। विवेक बुद्धि से संसार को स्वप्नवत देखें, अनीति से दूर रहें, मैं—मेरी से दूर रहकर भक्ति भाव सहित सुरत को सदा हरिध्यान में लगाना चाहिए। स्थिर मन से अहो-रात्र ब्रह्मविचार में लीन रहे। कुल-परिवार वालों को बाट के बटाऊ से अधिक

---

1. सत्य सिद्धान्त प्रकाश, राग मंगल, लौ का अंग, 4-8
2. वही, मध्य का अंग
3. वही, 1, 2, 3
4. वही, पतिव्रता का अंग, 1-6
5. वही, मन का अंग, 57-60

महत्व न दें।[1] विरह-व्यथा से—ऋतुवन्ती नारी की तरह आर्त्तभाव से आठों पहर अन्तर में उस निरंजनदेव का ध्यान करता रहे। इस विधि से उस मुरार का महल पाया जा सकता है वहाँ चहुदिश चेतन चाँदणा है।[2]

शिष्य-परम्परा

पीछे उल्लेख किया जा चुका है कि नितानन्द भेष की प्रणाली का परिचय हमें 'सत्य सिद्धान्त प्रकाश' की पुष्पिका में बाबा भोलादास प्रज्ञाचक्षु द्वारा दी गई सूचनाओं से मिलता है। प्रज्ञाचक्षु जी के अनुसार—

प्रथम गुमानीदास जी, भये भेष को मूल।
नितानन्द जी दूसरे, स्वामी अति अनुकूल॥
ध्यानदास भये तीसरे, चौथे बिचित्तरदास।
बिसनदास पंचम लेखो, खट गुरु गोकुलदास॥
सप्तम मम गुरुदेव निज, दानीदास प्रकाश।
प्रज्ञाचक्षु नाम मम, अष्टम भोलादास॥[3]

उपर्युक्त भेष प्रणाली में से केवल नितानन्द जी का कुछ परिचय प्राप्त है। इनके अतिरिक्त गुमानीदास, ध्यानदास, विचित्तदास, बिसनदास, गोकुलदास, दानीदास आदि किसी के सम्बन्ध में प्रयास करने पर भी कोई जानकारी नहीं प्राप्त हो सकी। यहाँ तक कि भोलादास के विषय में भी कुछ बताने वाला नहीं मिला। तीन-चार वर्ष से माजरा स्थित नितानन्द जी का मकान बन्द पड़ा है। यहाँ के अन्तिम साधु भरतदास 6 जून, 1974 के दिन मृत्यु को प्राप्त हुए। मकान बन्द है, इस मकान को हस्तगत करने के लिए गाँव के दो मुहल्लों के बीच झगड़ा है। माजरा ग्राम के सरपंच श्री धर्मचन्द तथा श्री विष्णुदत्त की सहायता से मकान में सुरक्षित सामग्री देखने का अवसर प्राप्त हुआ जिसके परिणामस्वरूप कई दुर्लभ और महत्वपूर्ण हस्तलिखित और अप्रकाशित पोथियाँ देखने को मिलीं जिनका परिचय नीचे दिया जाता है। कुछ पोथियाँ दादू पन्थ से सम्बन्धित हैं जिनका परिचय दादू-पन्थ के अन्तर्गत किया जाएगा।

ध्यानदास कृत हरिचन्द सत ग्रन्थ

यह एक हस्तलिखित छोटा सा ग्रन्थ है जिस पर पृष्ठ संख्या इत्यादि कुछ नहीं दी गई है। सारा ग्रन्थ चौपाई छन्द में है जिसमें सतयुगी राजा हरिश्चन्द्र की

---

1. वही, परचा का अंग, 131-135
2. सत्य सिद्धान्त प्रकाश, परचा का अंग, 136-39
3. वही, पृ० 26

पौराणिक कथा वर्णित है। इस ग्रंथ में कुल 306 चौपाइयाँ तथा अन्त में दो दोहे दिए गए हैं। विषय-वस्तु वही पौराणिक है जिसमें राजा हरिश्चन्द्र की कड़ी परीक्षा ली गई है। अन्त में हरिश्चन्द्र के पुत्र रूहितास (रोहतास) द्वारा अयोध्या का राज्य सम्भालना तथा 'रोहतास नगर' बसाने का उल्लेख मिलता है।[1] इस ग्रंथ के अनुसार सत् (सत्य) ही सच्ची भक्ति है। इसी से हरिश्चन्द्र अमर हो गए। उन्हें कोई मृत न समझे, वे अमर हैं।[2] सन्तों का सत्य के प्रति आग्रहशील होना ही ध्यानदास द्वारा हरिश्चन्द्र जी की सत्कथा वर्णन का सेतु है। परम पुरुष की भक्ति दुहेली है। पहले कठिन कसौटी में सफल होकर ही परमगति प्राप्त की जा सकती है। सन्त ध्यानदास जी का कथन है कि—

ज्यों पहली बन सीत जलावै। महा बसंत रुचि पीछै आवै।।
पहल कसौटी हरिचन्द दीन्हीं। पीछे आइ तास गति कीन्हीं।।
साध कसौटी सहन दुहेली। माँथाँ बिना भगति कहा मेली।।
साध संगति सब कोउ गावै। माँग्याँ मन मैलौ ह्वै तावै।।[3]

साधु-सन्तों के बचन का पालन करना सहज नहीं है। हरिश्चन्द्र को साधु-वचन का निर्वाह करने के लिए कैसी कठिन परीक्षा से गुजरना पड़ा। लोगों को भक्ति-मार्ग के काठिन्य को समझने के लिए यह हरिचन्द की कथा बखानी गई है। यह सेंत का सौदा नहीं है—

छत्री सूर सती ह्वै कोई। साधु सबद राषि है सोई।।
तातै हरिचन्द सती बषान्यौं। भाव भगति कौ अरथ हि जान्यो।।[4]

अन्त में केवल एक स्थान पर लेखक का नाम आया है जहाँ भगवत् भक्ति की अपार महिमा की ओर इंगित करते हुए कहा गया है कि—

'उद्धि दोति कर लीजिए, लेषनि भार अपार।
''ध्यानदास' बसुधा लिषै, भगवंत भगत अपार।।[5]

पौथी के अन्त में लिपिकर्त्ता का नाम एवं समय दे रखा है जो इस प्रकार है—

इति हरिचंद सतग्रंथ सम्पूर्ण।। संवत 1871, महीना चैत का।।
वारा बुआना पुरी हुई।। बाचै तीस कूँ। पठतीस कूँ। किरपादास के बेटे जून की राम राम डिंडोत वंचणी।। श्री राम जी सति।।[6]

---

1. श्री ध्यानदास, हरिचन्द सतग्रंथ, चौ० 300
2. वही, वही, चौ० 302
3. वही, वही, चौ० 291-93
4. वही, वही, चौ० 294
5. वही, वही, अन्तिम दोहा।
6. श्री ध्यानदास, हरिचन्द सद्ग्रंथ, अन्तिम पृष्ठ

ध्यानदास जी माजरा की गद्दी के दूसरे सन्त हुए हैं और नितानन्द जी के परम शिष्य थे। इससे अधिक इनके विषय में कोई जानकारी नहीं मिल सकी। रचना ध्यानदास की ही है। इनके समय से भी यही प्रतीत होता है कि ये ध्यानदास नितानन्द जी के शिष्य ही थे जिनका भेष प्रणाली में उल्लेख है।

श्री लालादास-कृत श्री महाभारत इतिहास सार

यह रचना भी हस्तलिखित ही है और नितानन्द जी की वाणी के अन्त में संलग्न है। लगभग 160 पृष्ठ में यह 'महाभारत इतिहास सार' कथा आई है। अन्त में लेखक ने अपना नाम, पिता का नाम, स्थान, जाति इत्यादि का स्पष्ट संकेत इस प्रकार दिया है।

लालादास कहें कर जोरी। सुण कवि गुनि देह जनि षोरी ।।
अस्थल नग्र आगरी गाँऊँ। ऊधौ दास पिता कौ नाऊँ ।।
जात बाणियों लालादास। भाषा कर वरन्यौ इतहास ।।[1]

अन्त में लालादास कहते हैं जो फल केदारनाथ जाने से प्राप्त होता है वही फल इस इतिहास के सुनने मात्र से प्राप्त होगा। जो इस कथा को सुनेगा और गाएगा उसे भक्ति मुक्ति का वांछित फल प्राप्त होगा।[2] कथा के अन्त में 1838 सम्वत्, माघ मासे कृष्ण पक्षे सप्तमी तथा स्थान भूरावास साफ-साफ दिया है। भूरावास, रिवाड़ी के निकट स्थित है और नितानन्दी भेष का ठिकाना भी रहा है। किन्तु यह लालादास भी नितानन्दी साधु थे कि नहीं निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। इन्होंने गुरु का नाम न लेकर पिता का नाम दिया है। गुरु का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। वैसे सन्त नितानन्द की वाणी के साथ लाला दास जी की रचना का संकलन इन्हें इस पंथ से सम्बद्ध सिद्ध करता है। यह भी हो सकता है कि लाला-दास की कृति में संग्रहीत कथा के गुणों से प्रभावित होकर किसी नितानन्दी ने 'महाभारत इतिहास सार' को नितानन्द की वाणी के साथ संकलित कर दिया हो। जो हो, चौपाई छन्द में रचित यह कृति बड़ी मनोहर है। इसकी भाषा अत्यन्त सरल और सुष्ठु है।

नितानन्दी पन्थ के ठिकाने

माजरा (बदूलघन), सिवाना, विगोवा, राणीला, खूडण, अहरी, कडौंदा, भूरावास, वावल, खेड़ी (दौलाँकी) वधवाना, गहली (नारनौल), दरियापुर तथा मिलकपुर इत्यादि ठिकाने माजरा ग्राम के मुन्नी दर्जी ने बताए हैं। इन सज्जन का

---

1. श्री लालादास कृत महाभारत इतिहास सार, अन्तिम चौपाई।
2. वही, अन्तिम दोहा।

मकान नितानन्द जी के मकान के पास है और ये अन्तिम नितानन्दी साधु-भरत बाबा के सत्संगी रहे हैं। श्री मुन्नी दर्जी के अनुसार लगभग उक्त सभी ठिकाने अब समाप्त प्राय हैं। आसपास के कई ठिकानों पर मैं स्वयं गया भी किन्तु सभी ठिकानों पर नहीं जा सका।

फाल्गुन पूर्णमासी के दिन माजरा गांव में नितानन्द के नाम पर वार्षिक मेला लगता है। मेले में आसपास के ग्रामीण श्रद्धालु आते हैं जिन्हें महाराज नितानन्द के उपयोग में लाई जाने वाली कुछ वस्तुओं के दर्शन कराए जाते हैं। इन वस्तुओं में लोटा, डोरी, टोपी, खड़ाऊँ, पलंग, ओढ़ने की गुदड़ी, चद्दर तथा कटोरी हैं।

नितानन्दी पंथ : उपलब्ध साहित्य

(1) स्वामी नितानन्द कृत 'सत्य सिद्धान्त प्रकाश' (शब्द वाणी संग्रह), प्रकाशक—भोलादास प्रज्ञाचक्षु, दी मारवाड़ी प्रैस, लिमिटेड, महारानी झाँसीरोड, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश), संवत् 2017, प्राप्ति स्थान-ग्राम माजरा दुबलधन, ज़िला रोहतक, पृ० 468, (व्यक्तिगत संग्रह)

(2) श्री ध्यानदास कृत 'हरिचन्द सत ग्रंथ' (हस्तलिखित), लेखन-काल : संवत 1971 प्राप्ति स्थान : माजरा (दुबलधन), नितानन्द आश्रम, (व्यक्तिगत संग्रह)

(3) श्री लालदास कृत 'श्री महाभारते इतिहास सार' (हस्तलिखित), लेखनकाल : संवत् 1838, पृ० सं० 160,
प्राप्ति स्थान : माजरा, नितानन्द आश्रम, (व्यक्तिगत संगह)

अध्याय 4

हरियाणा का चरणदासी पंथ

पंथ प्रवर्त्तक श्री चरणदास जी

पंथ के प्रवर्त्तक श्री चरणदास जी सम्बन्धित इन्हीं के शिष्यों-प्रशिष्यों द्वारा रचित कई रचनाएँ प्रकाश में आ चुकी हैं। चरणदास के प्रमुख शिष्य रामरूप जी द्वारा रचित 'गुरु भक्ति प्रकाश' (रचनाकाल 1826 विक्रमीय); जोगजीत द्वारा रचित 'श्री लीलासागर' तथा महंत गंगादास कृत 'श्री श्यामचरणदास चरितावली तीनों ही प्रामाणिक रचनाएँ हैं। रामरूप (गुरु भक्तानन्द) कृत 'गुरु भक्ति प्रकाश' तथा श्री जोगजीत कृत 'श्री लाला सागर' चरणदास जी के जीवन काल में ही रचित प्रामाणिक रचनाएँ हैं। 'श्री लीलासागर' का रचना काल संवत् 181i-19 वि० दिया हुआ है। इनके अतिरिक्त—इसी पंथ के एक अन्य महंत श्री सरस-माधुरी द्वारा कृत 'श्याम चरणदासाचार्य चरितामृत' भी चरणदास सम्बन्धी एक प्रामाणिक रचना है। और भी कई छोटे-छोटे चरित-काव्य हैं जिनमें चरणदास जी का संक्षिप्त जीवन-परिचय मिलता है। 'श्री लीलासागर' तथा 'गुरुभक्ति प्रकाश' शेष चरित्र ग्रंथों के आधार-ग्रंथ हैं। सभी कृतियों में घटना-साम्य है। इनके अति-रिक्त सहजो बाई के 'सहज प्रकाश' तथा चरणदास रचित 'ज्ञान सरोदय' में भी चरणदास जी की जीवनी से सम्बन्धित कुछ संकेत मिलते हैं।

इनका जन्म संवत् 1760 में भाद्र शुक्ल 3 मंगलवार को डहरा ग्राम ज़िला अलवर (राजस्थान) के श्री मुरलीधर ढूसर (बनिया) के घर हुआ था। इनकी माता का नाम कुंजो देवी था। संत चरणदास जी का बचपन का नाम रणजीत था। अपने 'ज्ञानसरोदय' नामक ग्रंथ में उन्होंने स्वयं लिखा है कि—'मेरा जन्म डेहरा में हुआ, बचपन का नाम रणजीत था। मेरे पिता मुरलीधर तथा जाति ढूसरे थी।

मैं बालावस्था में ही दिल्ली गया। जहां घूमते-घूमते शुकदेव जी के दर्शन हो गए और इन्होंने मेरा नाम चरणदास रख दिया[1]। पाँच वर्ष की छोटी आयु में श्री शुकदेव ने अवधूतवेश में आपको दर्शन देकर शिष्य बना लिया था। कहा जाता है कि जन्म से ही उनको अलौकिक शक्ति प्राप्त थी। सात वर्ष की आयु में पिता का देहान्त (?) हो जाने के बाद उनकी माता जी उन्हें अपने पिता के घर दिल्ली ले आईं। उनके नाना राय बिहारीदास मुहम्मदशाह के कोषाध्यक्ष थे। नानक के घर उन्हें शिक्षित करने के लिए एक शिक्षक के पास भेजा गया जैसाकि अलौकिक शक्तिवाले कई सन्तों-भक्तों के विषय में किम्वदंतियाँ मिलती हैं, संत चरणदास जी के विषय में भी वैसी ही किम्वदन्ती प्रचलित है, कहते हैं कि वे अपने शिक्षक को ही अध्यात्मक का उपदेश देने लग गए और यह झूठी शिक्षा लेने ले इंकार कर दिया। विवाह के लिए भी राजी नहीं हुए कहते हैं कि उन्नीस वर्ष की अवस्था में उनको मुजफ्फर नगर से 19 मील उत्तर में स्थित शुकवात (शुक्रताल) नामक स्थान पर श्री शुकदेव ने चरणदास को कृष्ण-मन्त्र की विधिवत् दीक्षा दी और श्री राधाकृष्ण का ध्यान बताया। तत्पश्चात 14 वर्ष तक (अर्थात 33 वर्ष की आयु तक) उन्होंने दिल्ली में ही गुफा बनाकर कई प्रकार की योग साधनाएं कीं।[2] इन साधनाओं के फलस्वरूप चरणदास जी को सभी प्रकार की ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त हो गई थी जिनका उपयोग उन्होंने दीन-दुखियों की सहायता करने एवं भटके प्राणियों को भगवान की ओर प्रेरित करने के लिया किया। अन्तिम दिनों में उनकी प्रवृत्ति ध्यान योग से भक्ति की ओर अधिक हो गई थी।[3] वे हिन्दू मुसलमान, गरीब-अमीर सभी को भगवत् रूप समझकर आदर एवं प्रेम देते थे। ज्ञान, भक्ति और योग इत्यादि सभी साधनाओं में उनकी गतिमति पूरी थी। पात्र के अनुरूप ही वे दीक्षा देते थे उनकी अलौकि शक्तियों से प्रभावित होकर सामयिक शासकों ने स्थान स्थान पर प्रभूत मात्रा में चल एवं अचल सम्पत्ति उनके नाम करवाई थी जिसका उपभोग कर उनके शिष्य-प्रशिष्य केवल व्यापारी बनकर रह गए हैं। उनके जीवन सम्बन्धी चरित-काव्यों में उनके द्वारा प्रदर्शित शताधिक चमत्कारों का वर्णन मिलता है। 79 वर्ष की आयु में सम्वत् 1839 वि० मार्गशीर्ष कृष्ण 7 को उन्होंने इहलीला समाप्त की थी।

रचनाएँ

श्री चरणदास की समस्त रचनाएँ श्री 'भक्तिसागर ग्रंथ' नाम से श्री शुकदेव

---

1. श्रीचरणदास, भक्तिसागर, ज्ञानसरोदय, 2027 सं० संस्करण, पृ० 150
2. रामरूप, गुरुभक्ति प्रकाश, पृ० 68
3. वही, पृ० 95

जयन्ती महोत्सव, वैशाख कृष्णा अमावस्या सं० 2027 वि० के अवसर पर श्री शुक चरणदासीय साहित्य प्रकाशक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा दोबारा प्रकाशित कराई गई है। इस संस्करण में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी द्वारा संकेतिक[1] अविशिष्ट रचनाएँ भी परिशिष्ट भाग के अन्तर्गत संकलित हैं। सं० 2027 वि० वाला यह संस्करण चरणदास जी की सभी रचनाओं का प्रामाणिक संस्करण है।

शिष्य

श्री चरणदास के 52 प्रमुख शिष्य हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं—सहजोबाई, रामरूप, जुगतानन्द, हरिप्रसाद, दासकुंवर, गंगाविष्णु, नन्दराम, हरिनारायण, रामसखी, गुरु छौना, गुरुप्रसाद, मुक्तानन्द, आत्माराम, पूरणप्रताप, हरदेवदास, गुरुमुख दास, भगवानदास, जयदेवदास, त्यागीराम, घनश्यामदास, सुखविलास, श्यामशरण, जयरामदास, सुखानन्द, निरमलादास, जसरामदास, डंडौतीराम, दाताराम, सहजा नन्द, परमस्नेही, हरीबिलास, नूपीवाई, साधराम, चरणखाक, गोपालदास, ठंडीराम, दयाबाई, ध्यानेश्वर जोगजीत, रामधड़ल्ला, श्यामदास, नागरीदास, जीवन दास, रामभोला, सबगतराय, चरणधूर, प्रेमगलतान, राम-प्रताप, हरीदास, विद्यानाथ, सुखरामदास, गुरुभक्त तथा चरणरज।[2]

श्री चरणदास के इन बावन शिष्यों में—सहजोबाई तथा दया बाई बड़ी प्रसिद्ध सन्त हुई हैं। सहजोबाई का 'सहज प्रकाश' तथा 'दयाबाई' का 'दयाबोध' पहले ही प्रकाशित हो चुके हैं। श्रीचरणदास तथा इनकी दोनों प्रसिद्ध शिष्याओं से हिन्दी-साहित्य जगत भली-भाँति परिचित है। चरणदास जी के उक्त बावन शिष्यों में से चार हरियाणा मूल के हैं तथा उनकी रचनाएँ भी उपलब्ध हैं। ऐसे सन्तों में श्री रामरूम जी, जुगतानन्द जी, जोगजीत जी तथा सिद्धराम जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

श्री रामरूप जी

श्री रामरूप जी (1801-1847 विक्रमीय)—इनके जीवन-सम्बन्धी तथ्य तथा घटनाएँ प्रायः प्रामाणिक रूप से उपलब्ध हैं। दो रचनाएँ हैं जो इनके जीवन-सम्बन्धी प्रमुख घटनाओं का सच्चा विवरण प्रस्तुत करती हैं—प्रथम इनके गुरुभाई श्री जोगजीत द्वारा रचित श्री 'लीला सागर' है जिसके पृष्ठ 218 से 226 तक इनका चरित्र वर्णित है तथा दूसरी रचना रामरूप जी के ग्रन्थ 'मुक्तिमार्ग' के आरम्भ में लगभग 60 पृष्ठों में श्री सरस माधुरी शरण द्वारा लिखित इनका चरित्र

---

1. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० 724
2. महंत गंगादास, श्रीश्यामचरणदास चरितावली, पृ० 178-79

ग्रंथ के साथ सम्बद्ध है। दोनों ही 'चरितों' में घटना साम्य है तथा इनके प्रामाणिक होने में सन्देह का कोई कारण नहीं है।

श्रीरामरूप जी का जन्म संवत् 1801 वि० में गौड़ ब्राह्मण वंश में दिल्ली के निकट ग्राम जैसिंह पुरा में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री महाराम जी था। कहते हैं कि इनके जन्म के 3 मास पश्चात् ही माता की मृत्यु हो गई थी। बालक एक धाय को सौंपकर पिता पूर्व दिशा में आजीविका के लिए चले गए। कुछ दिन पश्चात् पिता भी गुजर गए। धाय ने अपने बच्चे की तरह इनका पालन-पोषण किया। जब इनकी आयु 10 वर्ष की हुई तो धाय-दम्पत्ति भी मृत्यु को प्राप्त हो गए।[1] धाय के एक भाई जो चरणदास के सेवक थे इनको भी महाराज की सेवा में ले गए। इन्हें पंथ में दीक्षित कर लिया गया। इनकी शिक्षा का भी प्रबन्ध किया गया[2] और इनकी गुरुभक्ति देखकर इनका नाम गुरु भक्तानन्द रख दिया। इनकी कुशाग्र बुद्धि तथा कार्य कौशल देखकर रामरूप को चरणदास जी ने 'स्वामी' की पदवी प्रदान की और अपना दीवान बना लिया।[3] हर कार्य में इनकी सम्मति ली जाती थी। आगे चलकर इनकी अध्यात्मिक गति-मति देखकर गुरुदेव ने इन्हें रामसरीखा कहकर 'रामरूप' नाम दे दिया। इसके पश्चात् आप 'स्वामी रामरूप' के नाम से भेष में प्रसिद्ध हुए।[4] आपकी ऋद्धि-सिद्धि की द्योतक कई अलौकिक घटनाओं का वर्णन सरसमाधुरी शरण ने आपके जीवन-चरित्र में दिया है। सम्वत् 1847 वि० ज्येष्ठ सुदी 12 बुद्धवार को रोहतक से सोलह मील दक्षिण में स्थित बेरी ग्राम में आपका शरीर पूरा हुआ।[5] बेरी में आपकी समाधि बनी हुई है।

रचनाएँ

श्री रामरूप द्वारा प्रणीत रचनाओं की चर्चा करते हुए डा० रामकुमार वर्मा का कहना है कि इनका एक ही ग्रंथ प्रसिद्ध है। वह है 'बारहमासा'—रचना साधारण है।[6] विद्वान लेखक को पता नहीं कैसे भ्रम हो गया है। 'बारहमासा' तो इनके ग्रंथ मुक्तिमार्ग का एक प्रसंग मात्र है, जो केवल चार पृष्ठों में संकलित है। इनके दो ग्रंथ हैं जिनका निर्गुण साहित्य में विशिष्ट स्थान है। श्री रामरूप द्वारा प्रणीत दो रचनाओं का उल्लेख 'श्री लीलासागर' में इस प्रकार आया है—

---

1. श्री जोगजीत, श्री लीलासागर, पृष्ठ 218
2. वही पृष्ठ 219
3. वही, पृष्ठ 221
4. श्री जोगजीत, श्री लीलासागर, पृष्ठ 221
5. सरसमाधुरी जीवन चरित्र, पृष्ठ 40
6. डा० रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ 290

मुक्तिमार्ग ग्रंथ बनायो । श्री गुरुभक्ति प्रकाश हु गायो ।।
दो पुस्तक अतिसरस बनायो । सन्त भक्त रसिकन मन भायो ।।[1]

इसी प्रकार का उल्लेख श्री सरस माधुरी शरण ने भी इनके जीवन चरित्र में किया है । 'श्री गुरुभक्ति प्रकाश' तथा 'मुक्तिमार्ग' दोनों ही रचनाए प्रकाशित हो चुकी हैं । सन्त रामरूप जी की बाणी को भी चरणदासी पंथ के प्रवर्त्तक श्री चरण-दास की बाणी के समान ही पंथ में सम्मान प्राप्त है ।

श्री गुरु भक्ति प्रकाश

इस ग्रंथ की रचना सं० 1826 वि० में की गई थी । इसमें महाराज चरण-दास की प्रामाणिक जीवनी है । चरणदास के जीवनकाल में ही रामरूप जी ने इसका प्रणयन कर लिया था । लगभग 150 पृष्ठों में जीवन चरित है । भाषा ब्रजमिश्रित खड़ी बोली है । प्रसादगुण आरम्भ से अन्त तक ग्रंथ की प्रमुख विशेषता है । घट-नाओं का विवरण विश्वसनीय है । सारी रचना दोहा तथा चौपाई छन्दों में है । चरणदास की कृष्ण के प्रति विरह भावना की द्योतक निम्न चौपाई बानगी के लिए प्रस्तुत है—

बसतर पहरन की सुधि नाहीं । दस दस दिवस होंहि बिन खाई ।।
सुबकी ले ले रोवन लागे । जग सोवे ये दुख में पागे ।।
घर बाहर सब बौरा जानैं । इनका भेद नहीं पहिचानैं ।।
रोवत पलकें सब उड़ गईयाँ । रोम रोम में सइयाँ सइयाँ ।।
दो दो मास रहैं बन मांहीं । होंहि व्यतीत रात दिन व्हाँहीं ।।[2]

रचना अपनी भाषा, भाव तथा प्रतिपादन शैली की उत्कृष्टता के कारण हिन्दी के जीवनी-साहित्य में उल्लेखनीय है । 'श्री गुरुभक्ति प्रकाश' के दो भाग हैं । पूर्वार्द्ध में चरणदस जी का जीवन चरित्र तथा उत्तरार्द्ध में 150 पृष्ठों में—'गुरु चेले की गोष्ठि' नामक प्रसंग है । इस प्रसंग में श्री शुकदेव जी को गुरु तथा श्रीचरणदास को शिष्य के रूप में उपस्थित कर गुरु-शिष्य का संवाद करवाया गया है । गुरु-शिष्य के संवाद के माध्यम से रामरूप जी ने अपने दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक विचारों को प्रकट किया है । इसमें निर्गुण, सगुण, ब्रह्म, माया, जीव, बन्धन, मोक्षो-पाय तथा अन्त में ज्ञान से भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन बड़ी सहज तथा सरस भाषा में किया गया है । रचना बड़ी उपयोगी है ।

---

1. श्री लीलासागर, पृष्ठ 226
2. स्वामी रामरूप, श्री गुरुभक्ति प्रकाश, पृष्ठ 45

मुक्तिमार्ग

'श्री रामरूप रचित' 'मुक्ति मार्ग' में संकलित वाणी तीन भागों में विभाजित है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी जी ने कहा है कि 'मुक्तिमार्ग'एक का अन्य नाम 'गुरुभक्ति प्रकाश' भी है।[1] लेकिन यह ठीक नहीं है। वस्तुतः 'मुक्तिमार्ग' और' गुरु-भक्ति प्रकाश' दोनों स्वतन्त्र रचनाएँ हैं। 'मुक्तिमार्ग' के पहले भाग में दोहा-चौपाई भाग है जो पृष्ठ 61 से लेकर 201 तक है। इसमें गुरुदेव अंग, पारख अंग, श्री हरिस्मरण अंग, साधु महिमा अंग, सूरातन का अंग, विरह का अंग पतिव्रता का अंग, श्री सतगुरु कृपा का अंग, वैराग्य चेतावनी का अंग, भक्तिज्ञान का अंग, तथा बारहमासा संकलित हैं। जैसा शीर्षकों से प्रकट है कि विषय सुपरिचित हैं, बस भाषा तथा प्रतिपादन इनका अपना है। वाणी सहज एवं हृदय को छूने वाली है जिससे इनकी अनुभूति की प्रामाणिकता सिद्ध होती है। 'मुक्तिमार्ग' का दूसरा भाग पदावली भाग है जिसमें 172 पद संकलित हैं। पद भी यहां विषयानुसार विभिन्न अंगों के अन्तर्गत दे रखे हैं। श्री गुरुदेव अंग में 16 पद, साधु महिमा अंग में 8 पद, भक्ति अंग में 21 पद, सुमिरण का अंग में 14 पद, विरह अंग में 18 पद, योग अंग में 13 पद, वैराग्य अंग में 42 पद, ज्ञान अंग में 31 पद, बसन्त होली अंग में 9 पद, अन्त समय साधु-समझावन का अंग में 8 पद तथा फुटकर बाणी में 25 पद हैं। ये पद भी विभिन्न रागों तथा छन्दों के शीर्षकों के अन्तर्गत दे रखे हैं। इनकी बाणी की बानगी के लिए एक छन्द प्रस्तुत है—

भक्ति करे कोई सूरमा, मोह लोभ को त्याग।
काम क्रोध तज हरि भजें, जिन के ऊँचे भाग॥
जिनके ऊँचे भाग सोई निज नाम उचारैं।
शील क्षमा उरधार, जगत जंजाल बिसारैं॥
पीठ फेर भागें नहीं, आगे ही कूं पाँव॥
बाणा नहिं लजावहीं, रामरूप से राव॥[2]

'मुक्तिमार्ग' का तीसरा और अन्तिम भाग परिशिष्ट भाग है। जिसमें श्री शुकदेव जन्मलीला, आमिषनिवारण तथा पड़िवा (प्रतिपदा) माहात्म्य संकलित हैं। श्री शुकदेव जन्मलीला में व्यास पुत्र श्री शुकदेव का संक्षिप्त जीवन चरित्र है जिन्होंने श्री चरणदास को दीक्षित किया। आमिष निवारण में अहिंसा परमोधर्मा की पुष्टि धर्मराज युधिष्ठिर एवं भीष्म पितामह के प्रश्नोत्तर के माध्यम से सुन्दर ढंग से की गई है। पड़िवा (प्रतिपद) माहात्म्य में श्रीमद्भागवत की कथा के आधार

---

1. उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, संस्करण 2021 पृष्ठ 728
2. श्री रामरूप, मुक्तिमार्ग, पृष्ठ 320-21

पर पयोव्रत (प्रतिपदाव्रत) का माहात्म्य बताया गया है। पृष्ठ 325 से 358 तक 52 पद—'शब्दबावनी' के शीर्षक से संकलित हैं जो रामरूप जी के शिष्य सिद्ध-राम जी द्वारा प्रणीत हैं। इनका उल्लेख आगे किया जाएगा। 'मुक्तिमार्ग' तथा 'श्री गुरुभक्ति प्रकाश' चरणदासी सन्तों में बड़ी प्रतिष्ठित कृतियाँ हैं चरणदास जी के बाद इन्हीं का नाम आता है जिन्होंने पंथ के प्रचार एवं प्रसार में सबसे अधिक योगदान दिया है।

शिष्य

स्वामी रामरूप जी के प्रमुख 82 शिष्यों का उल्लेख श्री जोगजीत ने किया है।[1] इसी प्रकार का उल्लेख श्री सरसमाधुरी शरण ने किया है।[2] बयासी तो प्रमुख गद्दीधारी महन्त हुए हैं, इनके अतिरिक्त और भी बहुत सारे शिष्य थे। श्री सिद्धराम रामकृपाल, अजपादास तथा रामदयाल के नाम इनके प्रसिद्ध शिष्यों के रूप में लिए जाते हैं।[3] इनमें से भी जिनका साहित्य उपलब्ध है वे अकेले श्री सिद्ध-राम ही हैं। शेष शिष्यों में से किसी की बाणी अथवा साहित्य होने का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। अपने अनुसन्धानक्रम में मैंने कई गद्दियों से व्यक्तिगत रूप से संपर्क भी किया किन्तु एक सिद्धराम की ही बाणी का उल्लेख सभी ने किया। श्री राम-रूप की प्रमुख दिल्ली वाली गद्दी की शिष्य परम्परा इस प्रकार है—श्री रामरूप, श्री सिद्धराम, श्री मलूकदास, सेवा दास, सालिग्राम, हरिनारायण, भोलादास तथा वर्तमान महन्त श्री प्रेमदास हैं।[4]

श्री सिद्धराम

इनको रामरूप जी का परम शिष्य बतलाया गया है। इनके जीवन सम्बन्धी अधिक जानकारी नहीं मिल पाई है। इतना ही उल्लेख मिलता है कि वे परम गुरुभक्त थे। सन्त रामरूप जी ने अपने जीवनकाल में ही इनको अपनी गद्दी का महन्त घोषित कर दिया था। सम्वत् 1847 में रामरूप जी, सिद्धराम सहित रामत

---

1. स्वामी रामरूप रंग भीने। शिष्य सेवक अनगिन निज कीने॥
   किए बियासी गुणी महन्ता। साधुन को कछु पार न अंता॥—श्रीलीलासागर पृष्ठ 222
2. अस्सी अरु द्वै जानियैं, स्वामी जू के सन्त।
   सबही किए महन्त गुरु, सतोगुणी बुँधवन्त॥—मुक्तिमार्ग, जीवनचरित्र, पृष्ठ 13
3. वही, पृष्ठ 13
4. वही, पृष्ठ 56-57

(भ्रमण) करने बेरी आए। रामरूप जी का यहीं देहान्त हो गया। सिद्धराम जी ने इनकी सुन्दर समाधि यहां बेरी में बनवाई और एक बड़े भन्डारे का आयोजन किया। अपने गुरु के समान ये भी ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त सन्त थे। इनके पश्चात् इनके परमशिष्य मलूकदास उत्तराधिकारी बने।[1]

बाणी

श्री सिद्धराम द्वारा प्रणीत दो रचनाएँ बतलाई जाती हैं—'शब्द बावनी' तथा 'सागर सिद्धान्त'।[2] पहली रचना तो मुक्तिमार्ग में संकलित है। 'सागर सिद्धान्त' अप्रकाशित है। 'शब्द बावनी' में जैसा शीर्षक से संकेत मिलता है—बावन पद हैं जो राग कड़खा, भैरों, सोरठ, मंगल, बसन्त, धनासरी, बरुआ, झंझोटी, परज, काफीविहाग, हेली, बिलावल, जंगला, केदार तथा भन्डार इत्यादि विभिन्न रागों के रूप में है। भक्ति भाव अंग प्रेम प्रीत अंग, त्याग वैराग्य अंग, योग, ध्यान योग तथा ज्ञान अंग इत्यादि शीर्षकों में इन 52 पदों को बाँट रखा है। अंग शीर्षकों से विषय का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। ग्रन्थ की भाषा सरल है तथा ग्रन्थकार की अनुभूति में प्रमाणिकता है। इनका एक पद यहाँ प्रस्तुत है जिससे इनकी भाषा तथा भाव का अनुमान लगाने में सुविधा होगी—

पद

साहिब सदा हुजूर पियारे साहिब सदा हुजूर।। टेक।।
एक पलक कभी होय ना न्यारा क्यों भरमत है दूर।।
जैसे मृगनाभ कस्तूरी जुस्त नुमायद दूर।।
ऐसे बिन मुरशद नहीं पावै रहत बिसूर बिसूर।।
अबिनासी घट घट में बासी दसौं दिसा भरपूर।।
राई सम कहीं ठौर ना खाली, जाकूं लखत न कूर।।
रामरूप सतगुरु किरपासूं पाया आनन्द मूर।।
सिद्धराम भया दरस दिवाना झिलमिल झिलमिल नूर।।[3]

इनके पदों में गेय तत्व भी प्रचुर मात्रा में है। इन बावन पदों से पहले 39 साखी तथा एक कवित्त भी है।

---

1. मुक्तिमार्ग, जीवनचरित्र, पृष्ठ 40-41
2. रचो ग्रंथ अनुपम महा शब्द बावनी नाम।
   पुनि सागर सिद्धान्त बनाया————।।—मुक्तिमार्ग, पृष्ठ 42
3. मुक्तिमार्ग, शब्द बावनी, पृष्ठ 357

श्री मनमोहन दास

श्री सिद्धराम के शिष्य बीबादास तथा उनके शिष्य मनमोहनदास जी की बाणी भी संवत् 1972 वि० में जयपुर से प्रकाशित हो चुकी है। ये मनमोहन जी जयपुर की गद्दी से सम्बद्ध थे। इनकी बाणी का उल्लेख श्री सरस माधुरी शरण ने बड़े आदर से किया है।[1] बानी तीन भागों में 'प्रेम पयोनिधि' के शीर्षक से है। मुझे केवल प्रथम भाग ही प्राप्त हो सका। शेष दो भाग अप्राप्त हैं, जिन्हें फिर से छपवाने की योजना है। बानी सरस है। राधा कृष्ण की भक्ति ही प्रमुख विषय है।

गुसाईं जुगतानन्द

गुसाईं जुगतानन्द (जुक्तानन्द) चरणदाज के प्रमुख शिष्यों में से एक थे। उनका जन्म मेवात के किसी गाँव (शायद राता) में हुआ बतलाते हैं। ये जाति के ब्राह्मण थे। 5 वर्ष की आयु में इनकी मृत्यु हो गई थी। कहते हैं कि धर्मराय ने तुरन्त इनकी आत्मा को यह कहकर अपने दूतों को आज्ञा दी कि इन्हें वापिस उसी चोले में प्रविष्ट कराओ, यह तो बहुत बड़े हरि भक्त होंगे और बहुत से जीवों का उद्धार करेंगे।[2] अतः ये फिर से जीवित हो उठे। परिवार प्रसन्न हो गया। कहते हैं कि बढ़ती आयु के साथ इनकी भजन, कीर्तन, साधु संगति में रुचि बढ़ती गई। माता-पिता का देहान्त हो जाने के बाद ये निर्बन्ध इधर-उधर बिचरने लगे। कई साधुओं से भगवद्-रहस्य जानने का प्रयास किया। किन्तु सफलता नहीं मिली। भूख लगने पर पीली मिट्टी पानी में घोलकर पी लेते थे। भजन-ध्यान करते रहे। एक दिन ध्यानावस्था में चरणदास ने इन्हें दर्शन दिए और दीक्षित करने का आश्वासन दिया।[3] छः मास बीतने पर एक दिन चरणदास जी साक्षात् इनके सामने प्रकट हुए और जुक्तानन्द के नाम से इन्हें सम्बोधित किया। इनको अस्थल में आने की आज्ञा देकर और हाथ में अबखोरा (?) सौंपकर अन्तर्धान हो गए। कुछ समय पश्चात् जुक्तानन्द चरणदास के अस्थल में पहुँच गए। महाराज ने इन्हें विधिवत् मंत्र, कंठी, तिलक, टोपी, तथा चोला इत्यादि देकर जुक्तानन्द ने गुसाई जुक्तानन्द बना दिया। इस अवसर पर इन्हें जो चोला पहनाया गया वह इनके ठिगने

---

1. प्रेम पयोनिधि अनुभव बानी। रचना की अनुपम सुखदानी ।।
   वह बानी मोहि लागी प्यारी। निश्चय प्रेम पगा बनहारी ।।
   ऐसी बानी सुनी न देखी मन माहीं निश्चय कर लेखी ।।
   —मुक्तिमार्ग, जीवन चरित्र, पृ० 53
2. जोगजीत, श्री लीलासागर, पृ० 230
3. वही, पृ० 230

कद से बहुत बड़ा था। चरणदास जी ने वहीं शिष्यों के सामने ही चोले को इधर उधर से छुआ और चोला फिट बैठ गया जैसे दर्जी ने काँट-छाँटकर ठीक कर दिया हो। राव प्रतापसिंह इत्यादि कई और बड़े अधिकारी यह देखकर श्रद्धा से विभोर हो गए।[1] इनके नाम के साथ कई अलौकिक चमत्कारों का उल्लेख मिलता है।

कहते हैं कि एक बार रामत कहते हुए चुरू नगर में एक बैरागी के मन्दिर में अपने शिष्यों के साथ ठहर गए। उस बैरागी के घर चोरी हो गई। वहाँ के शासक ठाकुर हरीसिंह ने गुसाई जी और इनके शिष्यों को दोषी ठहराकर इन सभी को तोप से उड़ाने की आज्ञा दे दी। इसी समय सामान सहित चोर उपस्थित हो गए। ठाकुर साहब बड़े लज्जित हुए तथा इनके शिष्य बन गए। इसी प्रकार एक बलवन्त राजा (?) कोई मनोरथ लेकर इनके सामने उपस्थित हुए। गुसाई जी ने राजा से बिना पूछे ही उनका मनोरथ कह सुनाया और सफल काम होने का आशीर्वाद दिया। राजा साहब ने अहलादा नामक गाँव गुसाई जी की भेंट किया। इन्हें सभी सभी प्रकार की ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त थी। ये अपने समय के उच्चकोटि के सन्त हुए हैं।[2]

रचनाएँ

गुसाई जुगतानन्द जी की बाणी अब तक प्रकाशित नहीं हुई है। मुझे यह हस्तलिखित ग्रन्थ रोहतक स्थित चरणदासी सम्प्रदाय के महन्त दुर्गादास से देखने को मिला। बाणी गुण और मात्रा दोनों में पर्याप्त समृद्ध है। हस्तलिखित ग्रन्थ पर अन्त में 509 पत्र संख्या अंकित है। जिसके 1018 पृष्ठ बनते हैं। यह काफी बड़ा ग्रन्थ है। बाणी का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

आरम्भ में 'भक्ति बोध ग्रंथ—बहु अंश' शीर्षक है। इस 'भक्ति प्रबोध ग्रन्थ' में अंगों के अन्तर्गत विभिन्न विषयों का निरूपण है। सर्वप्रथम 'सतगुरु अस्तुति'—दोहा चौपाई, कुंगलियों में पत्र 11 तक आई हैं। इसके पश्चात् 'गुरुबोध लक्ष' दोहा-चौपाई, कुंडलियों में पत्र 23 तक हैं। 'साध महिमा' दोहा-चौपाई में 32 पत्र तक वर्णित हैं। 'मन दुई वैराग प्रसंग' अथवा 'मन' प्रसंग के अन्तर्गत 19 दोहे हैं। 'जगत मोह निवृत्ति प्रसंग' अथवा 'बेराग'—दोहा कुंडलियों में पत्र 47 तक आया है। 'आठ-पहर वर्णन' 20 कुंडलियों में पत्र 52 तक है। 'आठ पहर दूसरे-मूल चेतन प्रसंग'— कुंडली दोहा तथा सवैया छन्द में पत्र 55 तक है। 'बैराग परम निवृत्ति मार्ग' पत्र 31 तक वर्णित है। 'उमाह वियोग प्रेम उत्सौं (उत्सव) का अंग' दोहा-चौपाई छन्द में पत्र 68 तक समाहित है। 'नाम महातम वर्णन' में

---

1. जोगजीत, श्री लीला सागर, पृ० 232
2. वही, पृ० 235-36

नाम का माहात्म्य दोहा-कुंडली छन्द में पत्र 71 तक वर्णित है। 'अधीनता को प्रभाव' दोहा में पत्र 74 तक बतलाया गया है। 20 दोहों में एक छोटा-सा अंग 'अजपानिजसमरण का है। 'जगत मिथ्या आत्म सत्य निरूपण' अथवा 'नित अनित का अंग'—दोहा, चौपाई तथा चरपट छन्द में पत्र 100 तक निवृत्त है। 'सत्त चिदानन्द को निरूपण' 107 पत्र तक है। इसके पश्चात् 'गुरु-प्रणाली वर्णन' तथा 'श्री सुक (शुकदेव) स्तुति' वर्णन है। विषय का आभास शीर्षक से सहज ही हो जाता है।

पद भाग में पत्र 112 से 195 तक—169 शब्द (पद) तथा 6 कवित्त सम्मिलित हैं। पदों के शीर्षक विभिन्न रागों से साँकेतिक हैं—जिसमें राग मंडल असावरी, सोरठ, कान्हड़ा, कड़खा, बिलावल, कल्याण, केदार, बसन्त, सारंग, होरी सारंग, धमाल, राग होरी दीपचन्दी, काफी, गौरी, कान्हड़ा दरबारी, विहाग, भैरों, कफीख्याल, मालसिरी, ललित, खमाच, बरुआ, तथा हिन्डोला इत्यादि अनेकों राग हैं।

राग परज में कृष्ण की रूप माधुरी की बानगी प्रस्तुत है—

लषा हम कृष्ण पियारा हो ।। टेक ।।
गावत अधिक उछाह सूँ सोई ध्यान निहारा हो ।।
मोर मुकुट माथे लसै पीतम्बर बारा हो ।।
गुंजमाल अति सोहनी नैनाँ रतनारा हो ।।
मैं सौभा बरनो कहा, ब्रह्मादिक द्वारा हो ।।
चरणदास सतगुरु मिले कीनौं उपगारा हो ।।[1]

इन शब्दों के पश्चात् पत्र 195-196 पर 'सप्तश्लोकीगीता भाषा' केवल 10 दोहों में समाहित है। पत्र 197 से 216 तक 73 कवित हैं। जो पद अथवा शब्द ही हैं इममें कई पदों पर रागों के शीर्षक दिए गए हैं। 217-18 पत्र पर 'चौमासा' 221 तक 'बारहमासा' विवृत्त है 223 तक कुछ कुंडलियाँ तथा कवित हैं।

223 पत्र से 455 पत्र तक 'श्री महाभार थे इतहास सारसमुचे भाषा ग्रन्थ' शीर्षक से महाभारत का सार समुच्चय 33 अध्यायों में दोहा-चौपाई छन्द में दिया गया है। यह महाभारत की भाषा टीका है। इसकी भाषा बड़ी सरल तथा प्रभावी प्रवाहमयी है। निश्चय ही यह बहुमूल्य रचना है। इसके पश्चात् 'गुरु-चेले की गुष्ट के अन्तर्गत 'चार पदारथ' तथा 'विचार प्रबोध' नामक रचना संकलित है। इनके अन्तर्गत धर्म, अर्थ, तथा मोक्ष का विवेचन तथा ज्ञान, भक्ति, वैराग्य इत्यादि की बड़ी रोचक एवं उपयोगी चर्चा है। यहाँ गुसाई जी की बाणी पत्र 509 पर समाप्त हो जाती है। ग्रन्थ के अन्त में गुसाई जी ने ग्रन्थ लेखन-समय का संकेत भी दिया है,

---

1. गुसाई जुगतानन्द, हस्तलिखित ग्रंथ, पृ० 158

जो इस प्रकार है—

विचारबोध पोथी कही मोछ दैन दातार।
वैराग-ज्ञान ताके विषै भक्ति जहाँ सुषसार।।
चैतबदी तिथि पंचमी बार अैतहिंबार।
ताही दिन असथापियाँ जीवन के उपगार।।
चैतबदी दसमी विषै पूरन भई पिछाँनिं।
बार जु सुक्रवार था, कृष्ण पक्ष परवानि।।
अठारह से बत्तीस को, संवत् जानि सुनीति।
भई समापतम कथा यह निरमल महापुनीत।।[1]

गुसाईं जुगतानन्द द्वारा प्रणीत उक्त बाणी चरणदास जी के जीवनकाल में ही रची गई हैं। ग्रन्थ के अवलोकन से बाणी की श्रेष्ठता का सहज ही अनुमान हो जाता है। अनुभूति तथा अभिव्यक्ति दोनों ही पक्ष इनकी बाणी के श्रेष्ठ हैं। जहाँ अनुभूति में विषय विस्तार तथा गाम्भीर्य है वहाँ अभिव्यक्ति में भाषा की सरलता तथा छन्दों की विविधता इनकी वाणी की श्रेष्ठता का प्रमाण है।

ध्यानेश्वर श्री जोगजीत

श्री जोगजीत के पिता का नाम गोविन्ददास था। इनका जन्म स्थान इन्द्रप्रस्थ था। इनका बचपन का नाम हरीदास था।[2] बाद में श्री चरणदास ने इसका नाम जोगजीत रख दिया था। इनका जन्म संवत् 1774 वि० बैठता है।[3] माता-पिता ने बचपन में ही इनको चरणदास जी की सेवा में समर्पित कर दिया था। इनकी शिक्षा महाराज की देख-रेख में ही सम्पन्न हुई। रुचि के अनुरूप इनको योग साधना की दीक्षा दीं गई। योग में सिद्धि प्राप्त करने के फलस्वरूप ही इनका नाम योगजीत रख दिया गया। ध्यान की उच्चतम सफलता (समाधि) प्राप्त करने पर इनको ध्यानेश्वर की उपाधि भी दी गई। श्री भगवान और भक्तों की सेवा में इनकी अधिक निष्ठा होने से इनको 'भक्तानन्द' भी कहा जाने लगा था। इन्हें सभी ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त थी। कई अलौकिक चमत्कार आप से सम्बन्धित बताए

---

1. गुसाईं जुगतानन्द, हस्तलिखित ग्रंथ, पृ० 508
2. गोबिन्ददास का सुत भो जानों। इन्द्रप्रस्थ भो जन्म पिछानों।
   हरिदास था नाम नबी नो। जोगजीत सतगुरु कह दीनों।।
   — श्री लीला सागर, पृ० 6
3. विक्रम जीत को संवत् ईसा। अष्टादशशत वर्ष उनीसा।
   वर्ष पैंतालीस के हम जब ही। लीलाग्रन्थ कह्यो यह तब ही।।
   —वही, पृ० 353

जाते हैं। कहते हैं कि मितरौल गाँव में एक मृत कटिया (पडिया-भैंस की बच्ची) को इन्होंने जीवित कर दिया था। झझर (झज्जर) गाँव में गुलाबराय के पुत्र बिद्धि की पत्नी ने लड़की को जन्म दिया किन्तु जोगजीत जी ने लड़की से लड़का बना दिया। ऐसी ही एक और घटना का उल्लेख मिलता है। थोरा ग्राम में रज्जा नामक बनिये का 2 वर्ष का पुत्र सूखा रोग से मर गया था जो जोगजीत का चरणामृत पीते ही उठ बैठा।[1] खुर्जा और कुरुक्षेत्र जोगजीत जी की प्रसिद्ध गद्दियाँ थी। इनमें भी कुरुक्षेत्र प्रमुख थी। जोगलीत अपने गुरु श्री चरणदास के विशिष्ट कृपा पात्र थे। इनका शरीरान्त सम्वत् 1850 वि० में थानेश्वर में हुआ जहाँ इनकी छत्री बनी हुई है।

रचनाएँ

सन्त जोगजीत की दो रचनाओं का उल्लेख मिलता है—पहली 'महाभारत जैमिनी अश्वमेध पर्व की पद्यबद्ध टीका' तथा दूसरी 'श्री लीलासागर'। आपके नाम से कई पद भी चरणदासी साधुओं में प्रसिद्ध हैं किन्तु मुझे प्राप्त नहीं हुए। अश्वमेधपर्व की पद्यबद्ध भाषा टीका से इनका संस्कृत ज्ञान भी उच्चकोटि का प्रमाणित होता है। श्री जोगजीत की प्रसिद्धि को स्थायित्व देने वाला ग्रन्थ 'श्री लीलासागर' है। यह ग्रंथ कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इसमें श्री चरणदास जी की जीवन-लीला सुललित भाषा में वर्णित है। इनके साथ-साथ इसमें चरण दास जी के लगभग सभी प्रमुख शिष्यों का परिचय भी पद्यबद्ध है। इससे इसका ऐतिहासिक महत्व अक्षुण्ण है। ऐतिहासिकता के साथ ही इसकी साहित्यक विशेषता एवं महत्ता भी असंदिग्ध है। 'श्री लीलासागर' जीवन-साहित्य के उच्चकोटि के ग्रन्थों में रखने योग्य है। केवल जीवनी-परक तथ्यों का संकलन न होकर इसमें स्थान-स्थान पर ज्ञान, भक्ति, साधु, महिमा, वैराग्य इत्यादि विषयों पर भी जोगजीत जी की बड़ी प्रभावशाली टिप्पणियाँ हैं। ग्रन्थ की भाषा ब्रज तथा अवधी मिश्रित खड़ी बोली है। इसमें प्रमुख रूप से दोहा-चौपाई छन्द का प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं वैविध्य हेतु छप्पय, सोरठा, अरिल्ल तथा कुंडली आदि छन्दों का प्रयोग मिलता है। ग्रंथ लेखन-हेतु एवं समय पर इनका स्वयं का कथन है कि "संवत् 1811 वि० कार्तिक पूर्णमासी को एक साधु ने मुझ से कहा कि तुम्हारे गुरुभाइयों ने बहुत सी 'अनभो बानी' बनाई है, तुम भी कुछ कहो। तब मैंने सोच विचारकर गुरु महाराज का तथा सन्तों का चरित्र-वर्णन ही श्रेयस्कर समझा।"[2] आगे कहते हैं—'संवत् 1819 वि० में जब मेरी आयु 45 वर्ष की थी तब मैंने यह ग्रन्थ रचा।

---

1. श्री जोगजीत, श्री लीलासागर, पृ० 323-27
2. वही, पृ० 2

किन्तु महाराज ने मुझे आज्ञा दी थी कि मेरे देहान्त के पश्चात् ही इस ग्रन्थ का प्रचार करना।'[1] श्री चरणदास तथा अन्य गुरु भाइयों के सम-सामयिक होने से तथ्यों में प्रामाणिकता तो है ही, कहीं-कहीं श्रद्धातिरेक के दर्शन भी होते हैं जो ग्रंथ के अभिव्यक्ति पक्ष को सरसता प्रदान करता है।

श्री ज्ञानानन्द निरबाणी

रोहतक चरणदासी अस्थल के श्री ज्ञानानन्द निरबाणी-कृत एक हस्तलिखित ग्रंथ प्राप्त हुआ है। ये ज्ञानानन्द जी श्री त्यागीराम के शिष्य हुए हैं जो चरणदास जी के 52 शिष्यों में से एक थे। इनके जन्म-स्थान, समय इत्यादि का कोई पता नहीं चला है। ग्रंथ में दो रचनाएं संकलित हैं—एक 'श्री भागवत् एकादश स्कन्ध भाषा टीका' तथा दूसरी 'श्री नृसिंह चरित्र'। एकादश स्कन्ध की पुष्पिका में ग्रंथ प्रणयन काल का संकेत इस प्रकार है—'—श्री कृष्ण चरित्र भगवत सार सम्पूर्ण समाप्तम। संवत् 1847, तिथि क्वार सुदी 9 बार शनीचर कुंलिष्य के ग्रंथ सम्पूर्ण किया।'[2] सार ग्रंथ दोहा चौपाई छन्द में वर्णित है। भाषा सुबोध है। 'श्री नृसिंह चरित्र' श्री भागवत्-पुराण के सातवें स्कन्ध में नृसिंह चरित्र की भाषा टीका है। यह भी दोहा चौपाई छन्द में विवृत है। सारी पोथी 324 पृष्ठों में है। दोनों ग्रंथों के रचना हेतु का संकेत देते हुए लिखा है कि ज्ञान, वैराग और भक्ति की भावना को दृढ़ करने के लिए ही यह भाषा टीका की गई है।

चरणदासी पंथ में साधना का स्वरूप

चरणदासी पंथ को '**शुक सम्प्रदाय**' भी कहते हैं। मान्यता है कि श्री शुकदेव मुनि ने साक्षात् प्रकट होकर चरणदास को अपने मत में दीक्षित तथा अभिमंत्रित किया था। शुकदेव का अभिमत क्या था? इसका उत्तर निम्न उद्धरण में मिल जाता है—"इस भागवत-मार्ग अर्थात् श्री शुक-सम्प्रदाय के आद्याचार्य श्री शुकदेव जी महाराज हैं। उपासना और ज्ञान के क्षेत्र में श्री शुक मुनि के दो रूप हैं—एक रूप में वे अद्वैत सम्प्रदाय के आचार्य हैं जिसके अनुसार वे आत्माराम, आप्तकाम, निर्गुण, निर्विशेष, अव्यक्त ब्रह्म के प्रतिपादक हैं और दूसरे रूप में निकुंज रस के प्रवर्त्तक भक्तिरस के आचार्य हैं।—श्री शुक सम्प्रदाय का परम लक्ष्य नित्यरास, महाराज, अमरलोक, (श्री वृन्दावन नित्यविहार) की नित्य प्राप्ति है जिसे साम्प्रदयिक प्रसंगों में सामीप्य मुक्ति के नाम से वर्णन किया गया है।"[3] इस उद्धरण से

---

1. श्री जोगजीत, श्री लीलासागर, पृ० 353
2. श्री ज्ञानानन्द, एकादश स्कंध भाषा, पृ० 130
3. श्री प्रेमरूप, आदर्श सन्त, भूमिका, (xviii.)

स्पष्ट है कि इस सम्प्रदाय में ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों ही स्वरूपों की साधना एवं प्राप्ति अपेक्षित है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि इनकी साधना का स्वरूप निर्गुण और सगुण की समन्वित पद्धति है। किन्तु अधिक महत्व यह सगुण भक्ति द्वारा अखण्ड रास बिहारी के सामीप्य को ही देते हैं। श्री चरणदास का कथन है—

अखण्ड धाम लीला अमर, नित वृन्दावन रास।
नित बिहार जहाँ होत है, चरणदास को बास॥[1]

इसी अभिमत की पुष्टि करते हुए चरणदास के परम शिष्य रामरूप जी का कथन है—

राधाकृष्ण उपास्य, धर्म मगोत हमारो।
निज वृन्दावन धाम, मुक्ति समीप निहारो॥
तीरथगंगा जान, बरत ग्यारस को धारैं।
क्षमाशील संतोष, दयानित हियें बिचारैं॥
सम्प्रदाय शुकदेव की, आचारज चरणदासजी।
रामरूप तिनपद शरण, जहाँ नौधा भक्ति निवास ही॥[2]

उपर्युक्त उद्धरण से इस शुक सम्प्रदाय की उपासना, उपास्य एवं आचार-संहिता इत्यादि का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। इसी प्रकार का संकेत चरणदास जी के परम शिष्य गुसाँई जुगतानन्द भी देते हुए प्रतीत होते हैं—

सम्प्रदा सुषदेव मुनि पंचवी भई प्रकास।
अचारज चरणदास गुरु राधा कृष्ण उपास॥
राधाकृष्ण दास उपास भक्ति प्रभु अनन्य बिचारी।
मत भागौत अनूपचलत सो भये सुषारी॥
द्वारे कई बिसाल गति ज्ञान भक्ति दातार।
वैराग जोग तिन हिये डिढ़ ब्रत पुनीत अचार॥[3]

उपर्युक्त उद्धरणों से चरणदासी सम्प्रदाय की सगुण भक्ति का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। साथ ही सन्तों की प्रतिष्ठित साधना पद्धति सुरति शब्द योग (निर्गुण ब्रह्म उपासना) के संकेत भी स्पष्ट रूप से चरणदासी संतों की बाणी में पाए जाते हैं। उदाहरण प्रस्तुत है—

अजपा जाप जपाइया, अनहद शब्द सुनाय।
अलखलखाया सतगुरु, अमृत प्याला प्याय॥[4]

---

1. श्री चरणदास, भक्तिसागर, पृ० 27
2. श्री रामरूप, मुक्तिमार्ग, पृ० 312
3. गुसाईं जगतानन्द, हस्तलिखित बाणी, पत्र 110
4. श्री रामरूप जी, मुक्तिमार्ग, पृ० 69

एक और उदाहरण देखिए—

नाभि गगन डोरी तणी, सुरती आवै जाय।
रामरूप ज्यों बरत(वृत)में, नटणी रहै समाय॥
सोहं सोहं होत जो, यही ख्याल है खूब।
रामरूप कहै देख लो, घट ही में महबूब॥[1]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि चरणदासी पंथ में निर्गुण-सगुण की समन्वित साधना-समादृत है। सत्गुरु माहात्म्य, नाम स्मरण, विरह की अनिवार्यता, सत्संगति महत्व, शूर-सती का आदर्श इत्यादि सभी बातें इस पंथ मे भी पूरी निष्ठा से मान्य हैं।

नैतिकता एवं सदाचार

मन, वचन, एवं कर्म से सदाचार का पालन अनिवार्य है। जहाँ सगुणोपासक बाँकेबिहारी की प्रीति में लोक एवं वेद सभी मर्यादाओं को ताक पर रख देते हैं वहाँ इस पंथ में मर्यादित एवं सदाचारपूर्ण 'रहनी' आवश्यक है। कर्म के स्तर पर—चोरी, जारी और हिंसा का त्याग, मन के स्तर पर—खोटी चितवन, बैर-भाव, तथा गर्व का त्याग, वचन के स्तर पर—हरिगुण कथन भूलना, कटु वचन, झूठ एवं निन्दा का त्याग इस साधना के अनिवार्य तत्व हैं। चरणदासी संत विश्वास करते हैं कि इन दस महापापों से सदा ही बचना चाहिए।'[2]

चरणदासी अस्थल

हरियाणा में चरणदासी साधुओं के सैकड़ों स्थल (गद्दियाँ) हैं जिनमें कुछ प्रमुख स्थान इस प्रकार हैं—खरक (भिवानी के पास) में—श्री जसराम की गद्दी, कुरुक्षेत्र में श्री जोगजीत जी की गद्दी, खरखोदा में श्री ठंठीराम की, नारनौल में श्री दाताराम की, बेरी में श्री धर्मदास की, परिक्षितपुरा में श्री नन्दराम की, रिवाड़ी में श्री नन्दलाल की, रोहतक और हसनगढ़ में श्री बल्लभदास की प्रमुख गद्दियाँ हैं।

चरणदासी साधु गृहस्थ तथा विरक्त दोनों ही रूपों में पाए जाते हैं। प्रायः पीत परिधान की मान्यता है। अब पहले सी नीति नियम पालन की आवश्यकता नहीं दीख पड़ती है। संध्या प्रातः युगलमूर्ति (राधाकृष्ण) के सामने आरती का नियम है। माला, तिलक की अनिवार्यता है। तीर्थ-व्रत इत्यादि का भी विधान है। दिल्ली तथा जयपुर इस पन्थ के प्रमुख स्थान हैं। दिल्ली में श्री रामरूप, दयाबाई

---

1. श्री रामरूप जी, मुक्तिमार्ग, पृ० 99
2. वही, पृ० 216

तथा सहजोबाई की गद्दियाँ हैं। महन्तों से बातचीत में यह स्पष्ट संकेत मिले कि अब चरणदासी पन्थ शुद्ध रूप से सगुण उपासक बन गया है। महन्त लोग तो आरती-कीर्तन इत्यादि करने की जहमत भी नहीं उठाते इसके लिए पुजारी रख छोड़े हैं। इन लोगों की सम्पत्ति इनके धर्म को समूल चर गई है। चरणदासी लोग वैशाख अमावस्या को वार्षिक मेला, श्री शुकदेव की जयन्ती के रूप में, मनाते हैं। अभिवादन 'राधा-कृष्ण' कहकर किया जाता है। साहित्यिक दृष्टि से यह पन्थ बड़ा समृद्ध है। अभी पूरी खोज हुई नहीं है। मेरा निश्चित विश्वास है कि खोज करने पर इस पन्थ में दीक्षित साधु-पुरुषों द्वारा रचित पर्याप्त साहित्य उपलब्ध हो सकता है। सहजोबाई गद्दी (दिल्ली) के वर्तमान महन्त श्री गंगादास का कहना है कि हरियाणा से चरणदासी सन्तों का प्रभूत साहित्य उपलब्ध होना चाहिए।

चरणदासी पन्थ : उपलब्ध साहित्य

(1) श्री स्वामी चरणदास जी का ग्रंथ, भक्तिसागर, प्रकाशक : श्री शुक चरणदासीय साहित्य-प्रकाशक ट्रस्ट, जयपुर, सम्वत् 2027, राज प्रिंटिंग वर्क्स, जयपुर, प्राप्ति स्थान : श्री सरसनिकुंज, 1007, दरीबा पान, जयपुर, पृ० 756, (व्यक्तिगत संग्रह)

(2) सहजोबाई द्वारा रचित—सहज प्रकाश, प्रकाशक : श्री श्यामचरण-दास;—प्रकाशन कार्यालय : श्री चरणदास मार्ग, देहली, संवत् 2025, प्राप्ति स्थान—वही,

(3) दयाबाई द्वारा रचित—'दया बोध', वेल्वेडियर, प्रेस, प्रयाग।

(4) महन्त गंगदास कृत—'श्री श्यामचरणदास' चरितावली, प्रकाशक : श्यामचरणदास; प्रकाशन कार्यालय : श्री चरणदास मार्ग, देहली, सं० 2025 वि०; प्राप्ति स्थान—मन्दिर श्री चरणदास जी महाराज, श्री चरणदास मार्ग देहली, पृ० 184 (व्यक्तिगत संग्रह)

(5) श्री स्वामी रामरूप द्वारा रचित 'गुरुभक्ति प्रकाश', प्रकाशक : तथा प्राप्ति स्थान—वही,

(6) श्री स्वामी रामरूप कृत 'मुक्ति मार्ग' प्रकाशक : श्री शुक चरणदादीय साहित्य ; प्रकाशक : ट्रस्ट, जयपुर, इन्डो-बर्मा प्रिंटर्स, 16 राजा पार्क, जयपुर, सम्वत् 2029, प्राप्ति स्थान : श्री सरस निकुंज, 2007, दरीबापान, जयपुर, पृ० 402 (व्यक्तिगत संग्रह)

(7) श्री जोगजीत जी द्वारा कृत 'श्री लीलासागर', प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान—वही, श्री हरिमोहन प्रेस, पुरानी बस्ती, जयपुर, सम्वत् 2025 वि० पृ० 354 (व्यक्तिगत संग्रह)

(8) गुसाईं जुगतानन्द द्वारा कृत 'भक्ति प्रबोध ग्रंथ'; श्री महमारथेइतहास सारसमुचे तथा गुरु-चेले की गुष्ट, (हस्तलिखित), प्राप्ति स्थान : चरणदासी महन्त श्री दुर्गादास, रोहतक, पृ० सं० 1018 (व्यक्तिगत संग्रह)

(9) श्री ज्ञानानन्द निर्वानी द्वारा कृत 'श्री भगवत एकादश स्कंध भाषा टीका' तथा 'नृसिंह चरित्र' (हस्तलिखित); पृ० 324, प्राप्ति स्थान ; वही, (व्यक्तिगत संग्रह)

(10) श्री महाराज मनमोहन दास द्वारा कृत 'प्रेम पयोनिधि', प्रकाशक : मुंशी केवल कृष्ण जी वृन्दावन निवासी ; श्री मदनगोपाल प्रेस, वृन्दावन, सम्वत् 1972 ; प्राप्ति स्थान : श्री सरस कुंज, 1007, दरीबापान, जयपुर (व्यक्तिगत संग्रह)

अध्याय 5

हरियाणा का कबीर पन्थ

कबीर पन्थ जितना प्रतिष्ठित एवं प्राचीन है हरियाणा में उस हिसाब से कबीरपन्थी साहित्य प्राप्त नहीं हुआ। हरियाणे के जिन कबीरपन्थी स्थानों पर मुझे जाने का अवसर मिला है आचार्य परशुराम चतुर्वेदी द्वारा उल्लिखित उत्तरी भारत की कबीरपन्थी शाखाओं[1] से उन गद्दियों का कोई सम्बन्ध दिखाई नहीं दिया। इस क्रम में मुझे लगा है कि हरियाणे की प्रमुख कबीर पन्थी शाखा पूर्ण रूपेण एक स्वतन्त्र शाखा है जो अपना सम्बन्ध सीधा कबीर से ही जोड़ती प्रतीत होती है। इस शाखा का नामकरण हम 'बादली शाखा' कर लेते हैं क्योंकि इसके प्रवर्त्तक सन्त इन्द्राज बादली निवासी ही थे। यह बादली शाखा बहुत बाद की है जिसमें पाए जाने वाले साहित्य और सन्तों का परिचय निम्न प्रकार से है।

सन्त इन्द्राज

सन्त इन्द्राज का जन्म अक्तूबर, सन् 1868 में हुआ बताया जाता है। इन्हीं के पुत्र तथा गद्दी के वर्तमान महन्त श्री नन्दराम के अनुसार इन्द्राज जी का जन्म करवा चौथ (कार्तिक मास) के दिन हुआ था। इनके पिता श्री दौलतराम बादली, तहसील झज्जर ज़िला रोहतक के निवासी थे। ये जाति के जाट थे तथा व्यवसाय से कृषक थे। आजीवन खेती करते रहे तथा गृहस्थ-जीवन में रहते हुए महाराज गरीबदास की तरह इन्होंने भी परमलाभ प्राप्त किया। इनकी रहनी बड़ी सरल एवं सहज बताई जाती है। ये परम संतुष्ट गृहस्थ बतलाए जाते हैं। इनका

---

1. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा-पृ० 290-313 द्रष्टव्य

स्वभाव शिशुवत सरल एवं मधुर था। व्यक्तित्व बड़ा सादा था। सामान्य कृषक की वेशभूषा—धोती पगड़ी ही पहनते थे।

गुरु

कहते हैं कि गरीबदास की ही तरह इनको भी स्वयं कबीरसाहब ने ही 'उपदेश' दिया था। गरीबदास की तरह इन्हें भी कबीर स्वयं ही चिताने आए। इन्द्राज कबीर को ही अपना गुरु बतलाते थे। किस रूप में कब इन्हें कबीर के दर्शन हुए इस विषय में कोई किम्वंदंती प्रचलित नहीं है। इतना ही निश्चित सुना गया है कि स्वयं कबीर ही इनके गुरु थे।

सन्त इन्द्राज जी के सरल स्वभाव, उनकी दयालुता एवं परमार्थवृत्ति पर प्रकाश डालने वाली अनेक घटनाएं सुनी जाती हैं। अठानवे वर्ष की जिन्दगी में वे अठहत्तर वर्ष तक निरन्तर हल जोतते रहे। श्रम को बहुत महत्व देते थे। अठानवें वर्ष की आयु में सन् 1966 की 24 जनवरी, को आपने शरीर त्याग किया। बादली में उनके खेत में इनकी समाधि बनी हुई है जहाँ पूर्णमासी को सत्संग होता है। सत्संग की व्यवस्था इन्द्राज जी के पुत्र महंत नन्दराम जी करते हैं।

शिष्य

सन्त इन्द्राज जी के अनेक शिष्य बतलाए जाते हैं जो अपनी रहनी और करनी के लिए बड़े सम्मानित रहे हैं। तहसीलदार साहब चन्दकर्ण, रामस्वरूप तथा लाला हरदेदास इनके प्रमुख शिष्यों में गिने जाते हैं। यह उल्लेखनीय है कि बाबा इन्द्राज का प्रकाशित एवं अप्रकाशित कोई भी साहित्य उपलब्ध नहीं है। सुना है कि उनके नाम से कोई ग्रंथ प्रकाशित करने की योजना उनके शिष्यों के मन में है। जहां तक संत इन्द्राज जी के शिष्यों का प्रश्न है अकेले सन्त हरदेदास ही ऐसे व्यक्ति हैं जिनकी वाणी उपलब्ध है।

सन्त हरदेदास (बादली वाले)

सन्त हरदेदास का जन्म सम्वत् 1932 ज्येष्ठ वदी चौदस, वृहस्पतिवार को हुआ था। इनकी पून्य जन्मभूमि बादली है जो तहसील झज्जर, ज़िला रोहतक में स्थित है। इनके पिता लाला जुगल किशोर जाति से वैंश्य थे। उनका बचपन का नाम हरदुवारी मल था पर सन्त समाज में वे हरदेदास नाम से प्रसिद्ध हुए।

15 वर्ष की आयु में इनके पिता का देहान्त हो गया। अतः स्कूली शिक्षा यहीं समाप्त हो गई। गाँव में इनकी छोटी दुकानदारी थी। पिता की मृत्यु के बाद विवाह करके वे इसी दुकानदारी के सहारे एक सद्गृहस्त का जीवन व्यतीत करने लगे। ला० छोटूराम तथा ला० रामचन्द्र नामक इनके दो पुत्र थे तथा तीन

पुत्रियाँ थीं। ज्येष्ठ पुत्र छोटूराम का युवावस्था में ही देहान्त हो गया था। श्री रामचन्द्र जी अब भी बादली में कपड़े की दुकान किए हुए हैं। लाला जी की आजीविका का साधन यह दुकानदारी ही रही है।

सन्त श्री हरदेदास जी बड़े सरल और विनम्र स्वभाव के व्यक्ति थे। वे बहुत ही मधुर तथा अल्पभाषी थे। कम बोलने के कारण ग्रामवासियों ने 'बोलबाला' अर्थात् 'चुपचाप' नाम दे रखा था। थोड़े में संतोष कर रहने वाली बात तथा आतिथ्य-सत्कार वाली बात की साक्षी देने वाले शतशः सत्संगी-जन आज भी विद्यमान हैं, जिनसे मैंने साक्षात्कार किया है वे सत्संगी जनों, साधु एवं महात्माओं की सेवार्थ निरन्तर तत्पर रहते थे। निर्भीक तथा सत्य के पक्षधर थे। सत्य कहने में कभी लाग लपेट से काम नहीं लेते थे। इसकी पुष्टि इनके द्वारा लिखे गए एक पत्र से होती है जिसे इन्होंने राधास्वामी गद्दी, दयालबाग, आगरा के महंत आनन्दस्वरूप जी के नाम शंका समाधानार्थ प्रेषित किया था। सन्त जी लिखते हैं—'और हम ही सुरति यानी जीव को धुर मंजिल तक साथ देते हुए सहारा देकर राधास्वामी मुकाम तक ले जा सकते हैं'—तुम गलती पर हो, क्योंकि आपने अपने सतगुरु को नहीं जाना। और अपने आपको सतगुरु बताकर लोगों को भूल में डाल दिया और न तो आपको कोई मुकाम हासिल हुआ है और न किसी आपके उपदेशी को हासिल हो सकता है क्योंकि जब तक सतगुरु विदेही जोकि अन्दर बाहर सब जगह मौजूद है —हर वक्त जिसम नूरानी में रहता है और वही जीव को तारने वाला है और वही सरूप सब सन्तों ने लखा है यानी देखा है—उस सरूप के मेल से अन्दरूनी शब्द खुल सकता है। जिश शख्स की रहनी में अजहद भगवती देखते हैं उसके वास्ते वह शब्द खोलते हैं।—आँखों को दबाकर रोशनी देखना और कानों को दबाकर आवाज को सुनना यह तो सब ही कर सकते हैं, इससे कुछ हासिल नहीं हो सकता। मूल तुम्हारे में यही है कि सतगुरु विदेह को मिले बिना सुरति को शब्द मिल नहीं सकता। भूल तुम्हारे में यही है कि सतगुरु विदेह को नहीं जानते हो और कहते हो कि हमारा ही ध्यान और सेवा करने से सुरति को शब्द मिल सकता है।[1] यह पत्रांश उनकी बाणी 'हृदय-प्रकाश' के पृष्ठ 6-7 से उद्धृत किया गया है। इससे इनके स्वभाव को समझने तथा व्यक्तित्व को आँकने में पर्याप्त सहायता मिल सकती है। महन्त आनन्दस्वरूप जैसे बड़े गद्दी धारी के रौब में न आकर उनकी कपट क्रिया की पोल खोलना सन्त हरदेदास जैसे अल्पभाषी की निर्भीकता, आत्म विश्वास तथा सत्यप्रियता का स्पष्ट प्रमाण है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वे सुरति शब्द मार्ग के पहुंचे हुए पारखी सन्त थे। जनता को कान, आंख दबाकर भुलावे में डालने वाले छदम् छली तथाकथित सन्तों तथा धर्म-क्षेत्र में चल रहे छदम-अवतारों के प्रति

---

1. हृदय प्रकाश, पृ० 6-7 से उद्धृत।

वे सतर्क थे। वे बराबर दर्शनार्थी साधु-महात्माओं को बड़े मधुर-शब्दों में, जिससे उनके अहम् को चोट न लगे और समझ भी आ जाए, इस प्रकार के खोटे धन्धे से दूर रखने की सीख देते रहते थे और सन्मार्ग दर्शाते थे। स्पष्ट है कि जहाँ वे सरल हृदय, विनम्र स्वभाव तथा मधुर भाषी थे वहीं उनमें एक सच्चे साधक की प्रखरता का भी अभाव नहीं था। तुलसीदास जी द्वारा सन्त एवं सज्जन के जो लक्षण गिनवाए गएहै—उन सभी का पुंजीभूत रूप संत हरदेदास जी थे। मैंने ये विशेषण यूं ही श्रद्धावश अथवा शब्द-क्रीड़ा के लोभ में नहीं लिख दिए हैं। उनकी वाणी 'हृदय-प्रकाश' के स्वाध्याय से तथा उनके शिष्य-प्रशिष्य इत्यादि अनेक सत्संगी जनों से पुष्टि करके ही इस निर्णय पर पहुंचा हूं।

गुरु

अपने गुरु के विषय के उनका कहना है कि—

हमरे गुरु इन्द्रराज कूँ, हम पर करी सहाय।
भेद बताया आयकर, सतगुरु दिए मिलाए॥
हमरे गुरु इन्द्राज कूँ, दीया भेद बताय।
गगन मंडल के बीच में, सतगुरु दिया मिलाय॥[1]

हरदेदास जी के गुरु महाराज इन्द्राज जी थे। हम पीछे देख आए हैं कि सन्त इन्द्रराज जी एक छोटे से जमीदार थे जो अंत तक कृषि से अपनी गृहस्थी को चलाते रहे। शिशुवत सारल्य इनका प्रमुख गुण बताया जाता है। वे हरदेदास जी के पड़ोसी थे।

इन्होंने लाला हरदेदास जी को अगम-भेद समझाया था। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में सन्त हरदेदास जी बादली को छोड़कर अकेहड़ी में अपने परमशिष्य बाबा खूबीदास जी के मकान पर चले गए थे। यहाँ कई मास तक सत्संग करते हुए तथा भूले प्राणियों को राह दिखाते हुए अन्त में उन्होंने 16 मार्च, सन् 1959 (अर्थात् फाल्गुन शुदी सत्तमी सम्बत् 2015) को यह चोला छोड़ दिया। मृत्यु के समय इनके शिष्यों तथा सत्संगियों ने जब इनसे पूछा कि महाराज कोई आदेश करें, तो हरदेदास जी ने यही कहा था कि यहाँ आने वालों के भोजन इत्यादि का प्रबन्ध अवश्य हो। गाँव वालों ने 50 बीघे जमीन इनके नाम कर दी ताकि महाराज के आदेश-पालन में कठिनाई न हो। अब इनके शिष्य बाबा खूबीदास जी ने इनकी सुन्दर समाधि बनवा दी है जहाँ इनकी पुण्य तिथि, फाल्गुन शुदी सत्तमी को सत्संगी जनों का बड़ा भारी समागम होता है। समाधि में लाला जी की चारपाई अब भी सुरक्षित है।

---

1. हृदय प्रकाश, गुरुदेव का अंग, 2, 3

रचनाएँ

महाराज हरदेदास जी की बाणी 'हृदय प्रकाश' नाम से बाबू मनसा राम सुपुत्र लाला कूड़ेमल महाजन, बादली (रोहतक) द्वारा प्रकाशित करवाई गई। बाबू मनसाराम जी ने लिखा है कि—महाराज ने अपने जीवन काल में एक बार इन बाणियों को पुस्तक रूप में एकत्र करने का आदेश मुझे दिया था किन्तु उस समय कोई ऐसी बात हुई कि यह काम न हो सका, सो उनके शरीर त्यागने के दो वर्ष पश्चात सतगुरु दयाल व महाराज की ऐसी प्रेरणा हुई कि मेरी धर्मपत्नी ने जोर दिया कि गुरु दयाल की बाणी प्रकाश में आनी चाहिए।—मैं बादली गया।[1] और लाला जी के सुपुत्र रामचन्द्र जी व प्रपौत्र किशोर तथा राधेश्याम जी से मिला और पाण्डुलिपि माँगी।—उन लोगों ने मेरी यह प्रार्थना बड़ी खुशी से स्वीकार की और दोनों भाग पांडुलिपि के मुझे सौंप दिए। मैंने जैसे की तैसे छपवाई है कोई काँट-छांट नहीं की है।'[2] सन्त हरदेदास की बानी जून, 1962 में छपकर तैयार हो गई और इसकी 1000 प्रतियां छपवाकर सत्संगीजनों में 'प्रसाद' रूप में मुफ्त वितरित की गई।

महाराज हरदेदास की 'बाणी' अर्थात 'हृदय प्रकाश' के दो भाग हैं। प्रथम भाग में 'बन्दना' से लेकर 'देखा-देखी का अंग' तक 28 अंग सम्मिलित हैं। द्वितीय भाग में 'ब्रह्मवेदी' ककहरा, 'सोलहतिथि', 'सातबार', 'शब्द', 'रेखते', मिश्रित तथा 'पत्र-व्यवहार' सम्मिलित हैं। 'बाणी' की कुल पृष्ठ संख्या 411 है। ग्रंथ के आरंभ में प्रकाशक ने प्रस्तावना के अन्तर्गत बाणी के प्रकाशन के सम्बन्ध में प्रकाश डाला है। इसके साथ ही सन्त हरदेदास की संक्षिप्त जीवनी देकर स्तुत्य कार्य किया है।

'बन्दना' में 17 साखियाँ हैं। 'गुरुदेव का अंग' में 102 साखियाँ हैं।' गुरु पारख का अंग' 58 साखियों में आया है। 'सेवक का अंग' में 25 साखियां हैं। 'भेद-बानी सतगुरु' में 169 साखियाँ हैं जिसमें साधना सम्बन्धी-सतगुरु द्वारा निर्दिष्ट सकेत को स्पष्ट किया गया है। 'चितावनी का अंग' में 254 साखियाँ तथा 6 शब्द सम्मिलित हैं। 'चितावनी काल जाल और संतमता' के अन्तर्गत 703 साखियाँ हैं जिनकी संख्या 'बाणी' में आए अन्य किसी भी अंग से अधिक है। इस अंग में हरदेदास जी ने अन्य सभी निर्गुण-सगुण मत-मतान्तरों से 'सन्त-मत' अर्थात कबीर द्वारा प्रवर्तित साधना-पद्धति को श्रेष्ठ बतलाया है। कबीर, ब्रह्म तथा आत्मा

---

1. लाला मनसाराम जी का वर्तमान निवास-स्थान, 71-ए, कमला नगर, दिल्ली है।
2. हृदय प्रकाश, प्रस्तावना, पृ० 2

इनकी दृष्टि में बराबर हैं।[1] 'निर्गुण बोध लिषते' के अन्तर्गत 358 साखियाँ हैं। इसमें सगुण से निर्गुण को श्रेष्ठ बतलाया हैं। निर्गुण साधना को 'खीर' तो सगुण को इन्होंने 'नीर' बतलाया है।[2] 'गुरु निर्दोषता का अंग' में केवल 13 साखियाँ हैं। 'भगति भेद वानी' के अन्तर्गत 228 साखियाँ हैं। इसमें सुरति-निरत से त्रिवेणी के तीर कबीर को ढूँढ़ना ही सच्ची भक्ति बतलाई गई है।[3] 'कुसंगत का अंग' में 118 साखियाँ हैं। 'संगत का अंग' 102 साखियों में आया है। 'सुमरण का अंग' में 164 साखियाँ हैं। 'बे अकली का अंग' में केवल 29 साखियाँ हैं। 'अकल का अंग' में 34 साखियाँ हैं 'निगुरानर का अंग' में 38 साखियाँ हैं। 'साथ महिमा का अंग में 170 साखियाँ हैं। साहिब सतगुरु तथा साध को हरदेदास जी समान महत्व देते हुए कहते हैं—

साहिब से सतगुरु भये सतगुरु सेती साध।
तीनों ही ये एक हैं, महमा अगम अगाध॥[4]

'साध का अंग' में 102 साखियाँ हैं। 'असाध का अंग' में 36 साखियाँ हैं। 'हैरान का अंग' में 58 साखियाँ हैं। 'विद्या षंडनका अंग' में 98 साखियाँ है तथा हरदेदास जी विद्या-बोझ को इन शब्दों में उतार फेंकने की सीख देते हैं—

हरदेदास तो से कहूं, सतगुरु साई खोज।
पढ़णा गुणना चातरी, डारो विद्या बोझ॥[5]

'मन का अंग' में 129 साखियाँ हैं। 'विचार को अंग' 156 साखियों में आया है। 'विद्या को अंग' में केवल 39 साखियाँ हैं 'चितावनी का अंग' 116 साखियाँ हैं। 'व्यभचारणी का अंग' 19 साखियों में ही आया है। 'पतिव्रता का अंग' में 121 साखियाँ हैं तथा 'देखा-देखी करण का अंग' में केवल 9 साखियाँ हैं।

'बाणी' के दूसरे भाग में सर्वप्रथम 'ब्रह्मवेदी' का अंग हैं जिसमें 63 साखियाँ

---

1. नाम कुछी कह लीजिए, ब्रह्म आत्माराम।
सतगुरु एक कबीर हैं, सकल लोक सब ठाम॥
पिंड प्राण तिस के नहीं, साँसा नहीं शरीर।
सर्व छोड़ यो ब्रिह्म है, कुल का धणी कबीर॥
—हरदेदास द्वारा कृत 'हृदय प्रकाश' पृ० 102, सा० 423-24
2. वही, पृ० 155, साखी 292
3. सुरति निरत के अन्तरै, त्रिबैनी के तीर।
सतगुरु साँई मिलत हैं, जाका नाम कबीर॥
—वही, पृ० 183; साखी 227
4. हृदय प्रकाश, पृ० 229, साखी 6
5. वही, पृ० 272, साखी 98

हैं। यह 'ब्रह्मवेदी' ब्रह्म का रहस्य (भेद) उसका स्वरूप वर्णन तथा उसका गुण-कथन है जो 'आरती' का समशील है। 'ककहरा का अंग' 'अलकनामा', 'बारह-खड़ी' अथवा 'बावन अखरी' का ही समशील है जिसमें 'क' से 'ह' तक 'व्यंजनों के व्याज से उपदेश दिया गया है। इसमें 150 साखियाँ हैं। 'सोला तिथि का अंग' में 64 साखियाँ हैं। जिसमें सोलह तिथियों को उपदेश देने का माध्यम बनाया है। इसी प्रकार 'सात बार' 29 साखियों में अपना अलग-अलग वैशिष्ट्य बतलाते प्रतीत होते हैं। इसके पश्चात् 61 शब्द संकलित हैं जिनमें गेय पदों की सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं। पदों के बाद 9 रेखते हैं। 'मिश्रित का अंग' में 41 साखियाँ हैं जो किसी एक शीर्षक में न बंध पाने के कारण 'मिश्रित' कह दी गई है। 'बाणी' के अन्त में 'पत्र व्यवहार' शीर्षक के अन्तर्गत तीन पत्र हैं जो सन्त हरदेदास ने 'राधास्वामी' जी दयालबाग, आगरा को लिखे थे। इन पत्रों में हरदेदास जी ने 'राधास्वामी पन्थ' में पाई जानेवाली कुछ त्रुटियों की ओर संकेत किए हैं जिनका उल्लेख हम पहले ही हृदयदास के व्यक्तित्व के सन्दर्भ में कर आए हैं। 'हृदय प्रकाश' मैं कुल साखियाँ 3853 हैं तथा 76 पद हैं।

लाला जी कोई अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे। वे 'कागद की लेखी अपेक्षा आँखिन देखी' के पक्ष में अधिक थे। अपनी बात को सीधे, सरल ढंग से कह दिया है इनके पास भाव हैं और अभिव्यक्ति में भाषा ने पूरा साथ दिया है। भाषा का स्वरूप मिला-जुला है जिसमें हरियाणवी का पुट अधिक है। अनुप्रास, रूपक, उपमा तथा उदाहरण इत्यादि अलंकार प्रचुर मात्रा में मिल जाते हैं जो सायास न होकर सहज-रूप से आकर अभिव्यक्ति तथा सम्प्रेषण में सहायक हुए हैं। 'नामरस' अथवा 'राम रस' वाले उदात्त काव्य में जो लालित्य तत्व पाया जाता है—'हृदय प्रकाश' उससे भरापूरा है। कबीर आदि अन्य सन्तों के पदों की भाँति इनके पदों का भी हरियाणे के सत्संगी जनों द्वारा गाया जाना इनकी तथा इनके काव्य की लोकप्रियता का सबल प्रमाण है।

शिष्य परम्परा

सन्त हरदेदास जी की शिष्य मण्डली तो बहुत बड़ी है किन्तु उनमें उल्लेखनीय बाबा खूबीदास, रामरतन दास तथा दुर्गादास ही हैं। पंडित द्वारकादास भी इनके शिष्य थे किन्तु बाद में राधास्वामी पंथ में दीक्षित हो गए।

बाबा खूबीदास

इनका प्रभाव क्षेत्र लाला जी से भी अधिक विस्तृत रहा है। बताया जाता है कि अपने गुरु हरदेदास को प्रसिद्धि दिलाने वाले भी यही हैं। स्वयं अनपढ़ थे किन्तु करनी के पूरे थे। इनका जन्म श्री गंगाराम यादव के घर ग्राम मौनसें, तहसील

झज्जर में हुआ। ये युवावस्था तक घर पर ही रहे तत्पश्चात् साधु हो गए। इनमें लोकसंग्रह की प्रबल भावना थी। इन्होंने अपने प्रभाव क्षेत्र में अनेक स्थलों पर कूप तालाब इत्यादि बनवाए। अकेहड़ी मदनपुर की पाठशाला के चलाने वाले भी यही थे। कई स्थानों पर पक्के मकान बनवाए जिनमें अकेहड़ी तथा गदाई पुर इत्यादि प्रसिद्ध हैं। स्वभाव बड़ा दयालु था। वे मृदुभाषी थे। बताते हैं कि इनके पास आने वाला कभी निराश नहीं लौटा। तहसील झज्जर का बहुत बड़ा भाग इनका प्रभाव क्षेत्र रहा है। इनकी लोकप्रियता इसी से सिद्ध हो जाती है कि आज भी उस क्षेत्र के लोग लोकवाहनों तथा ट्रेक्टरों पर 'बाबा खूबीदास की दया' अंकित करवाए हुए हैं। लगभग 15 वर्ष पूर्व इन्होंने शरीर छोड़ा। इनकी समाधि मूनसैं तथा अकेहड़ी के खेतों में बनी हुई हैं जहाँ प्रायः सत्संग होता रहता है। वार्षिक सत्संग पर एकत्रित होने वाले सत्संगियों की संख्या हजारों में पहुँचती है। इनके कई शिष्य बड़े उच्च-कोटि के साधक बताए जाते हैं। जिसमें बाबा दूलनदास (भीषम जी) तथा गिर-धारा पंडित उल्लेखनीय हैं जिनकी चर्चा आगे की जाएगी। इनकी (खूबीदास) कोई वाणी उपलब्ध नहीं है।

रामरतन दास

सन्त रामरतन दास का जन्म सन् 1908 में श्री हरिनारायण राजपूत के घर ग्राम बादली में हुआ। इनका विवाह बचपन में ही कर दिया गया था तथा एक पुत्र होने पर आपने साधु वेश ले लिया था। ये व्यवसाय से अध्यापक थे सन् 1947 से सन् 1962 तक आपने खरक, बहु-अकबरपुर तथा केलंगा नामक स्थानों पर अध्यापन किया। इन तीनों गाँवों में अपने ग्रामवासियों की सहायता से स्कूल-भवन बनवाए और सेवा से निवृत्त होकर भजन सत्संग में अपना समय व्यतीत करने लगे इसी समय आपने बहादुरगढ़ में सत्संग भवन बनवाया जो नई बस्ती बहादुरगढ़ में रेलवे लाइन के पास ही स्थित है। आपने 21 जनवरी, सन 1964 प्रातः 6-30 बजे बहादुरगढ़ में ही शरीर छोड़ा। विक्रमी संवत् के अनुसार यह दिन माघ शुक्ल सप्तमी सम्वत् 2021 को पड़ता है।[1] इसी दिन यहाँ मासिक सत्संग भी होता है। अब बाबा रामरतनदास के सत्संगियों में एक न्यास की स्थापना करती है जो इस सत्संगभवन की देखभाल एवं सत्संग इत्यादि का प्रबन्ध करता है। इनकी समाधि यहीं बहादुरगढ़ संत्संग भवन में बनी हुई है। बताया जाता है कि वे अपने सत्संगियों को मिश्री का प्रसाद देते थे और उन्हें ऐसा ही मिठा बने रहने का उपदेश देते थे। इनके प्रमुख शिष्य बाबा मेघदास आजकल सत्संग भवन में विद्यमान हैं। साहित्य

---

1. मारग सार, सं० रतनलाल सिंगला, जुलाई, 1973, पृ० 6

अथवा बाणी के नाम पर इनके द्वारा केवल एक सन्देश[1] उपलब्ध है। एक बहुत उपयोगी एवं सुन्दर प्रकाशन बाबा रामरतनदास के शिष्यों एवं सत्संगियों ने निकाला है—'मारगसार' (रामरतन सागर) एक प्रकार से यह रामरतनदास का स्मृति ग्रंथ है। इसके आरम्भ में इनका संक्षिप्त जीवन चरित्र है—शेष लगभग 600 पृष्ठों में प्रमुख सन्तों की चुनी हुई बाणी (पद एवं साखियाँ) संकलित कर रखी हैं। संकलन में कबीर, तुलसी साहब, राधास्वामी, हजूरसाहब, पदमदास, दादूदास, पलटूदास, गरीबदास, जैतराम, नितानन्द, हिरदेदास की अधिक बाणी तथा धर्मदास, नानक, दरियासाहब (बिहार वाले), मीराबाई, गोरखनाथ, चरण-दास, सहजोबाई, बेनामी, मंसूर, साहबदास, गुलाबनाथ, भानीनाथ, घीसा जी, जीताबास आदि सन्तों की थोड़ी-थोड़ी बाणी संकलित कर रखी है। संकलन कर्त्ता श्री रतनलाल सिंगला (सहायक निदेशक, देहली टेलीफोन्स) ने संकलन को उप-योगी बनाने में बड़ा श्रम किया है तथा सन्त-साहित्य की चोखी सूझ का परिचय दिया है। इतने सन्तों की प्रमुख बाणी का एक ही पुस्तक में मिलना सन्तसाहित्य के अध्येता एवं सत्संगियों के लिए परम उपयोगी है।

दुर्गादास

हरदेदास के शिष्यों में दुर्गादास भी उल्लेखनीय है। इनका जन्म श्री चुन्नी-लाल स्वर्णकार के घर ग्राम भटेड़ा, तहसील झज्जर में मार्गशीर्ष पूर्णिमा के दिन संवत् 1973 में हुआ। इनकी माता का नाम दाखाँ देवी था। दुर्गादास जी का कहना है कि ठाकुर कल्लू (भटेड़ा ग्राम के प्रतिष्ठित सत्संगी) की प्रेरणा से 20 वर्ष की आयु में ही मैंने संत हरदेदास से 'उपदेश' ले लिया था। ये तब से अब तक निरंतर भजन-सत्संग में लगे हुए हैं और एक सदगृहस्त का जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

---

1. क्यों भूली घर आपना, यह नहीं देश तुम्हार।
फिर पाछे पछताएगी, करले सोच विचार।।
बिन सतगुर नहीं पाइए, घर अपने की राह।
सन्तों शरणें लागकर, सुरति शब्द समाया।।
संख असंखों कोस है, तरै पिया का देश।
एक पलक में जाइए, ले सतगुरु उपदेश।।
सुन्न सल्हैली सैल है, गगन मंडल के माँहि।।
प्रेम बिना पावै नहीं, कोटि समाधि लगाय।।
प्रेम बिना पावै नहीं, कोटि समाधि लगाय।।
रामरतन लौ लागकें, चढ़ो महल मंझार।
फेर न भवजल आइये, यह सुपना संसार।।—मारग सार, सन्देश

इनकी पत्नी श्रीमती विद्यावती भी सत्संग में पूरी रुचि रखती हैं। दुर्गादास का कहना है कि 'मालिक का मिलना बड़ा सहज है—कोई आओ और हमसे अगम का सौदा करो।'

बाणी

दुर्गादास द्वारा रचित साखियों एवं पदों की एक हस्तलिखित प्रति देखने को मिली जो इनके कथानुसार इनके जीवित रहते प्रकट नहीं होनी चाहिए। इनकी कुछ साखी एवं एक पद यहाँ बानगी के लिए दिए जा रहे हैं जिससे इनकी भाषा, भाव एवं अनुभूति का सहज ही परिचय हो जाएगा—

साखी—दुर्गा सूक्ष्म से सूक्ष्म अति देखा, वार पार नहीं जाकैं।
हद बेहद से न्यारा खेले, बिन ही चश्मों ताकै॥
दुर्गा उड़े गगन में धरणी आवै, खिंड मिंड ना होई।
ऐसा जलवा हमने देखा, समझै बिरला कोई॥
नैंना के तो आगे रहता, हटता नहीं हटाया।
कहै दुर्गा अचरज की बाताँ, वाके धूप न छाया॥
दुर्गा उलट पलट का खेल है, कोई बिरला जानै।
सिर धड़ की बाजी लगै, तब ही पहचानै॥
दुर्गा अपना सतगुरु देख ले, अपनी आँख्या माँह।
तिलकै पीछै रम रह्या, क्यों तूं भटका खात॥

पद—तुम बिन मुझ को कुछ ना सुहावै, और चीज ना भावै॥
अन्दर सिलगै धुंआ ना लिकड़ै, आग नहीं दिखलावै॥
पल पल तरसूँ, छिन छिन तरसूँ, मेरी मौत नहीं आवै॥
दर्शन देवो मेरा प्राण पियारा, सभी दुख मिट जावे॥
गुरु हिरदेदास सतलोक के वासी, अलख अगम दरसावे॥
दुर्गादास हम अचरज देख्या, देख अंचंभा आवै॥[1]

मुझे इनके लगभग 50 पद देखने को मिले हैं। हाँ, बातों से ऐसा आभास अवश्य हुआ कि जिस 'भरपूर अगम के सौदे' की ये गारंटी देते लग रहे थे, उतना माल इनकी दुकान में नहीं है। इनके भी कई शिष्य एवं शिष्याएँ हैं, इनमें से एक सूरजदास उल्लेखनीय हैं।

सूरजदास

ये सन्त हरदेदास के शिष्य दुर्गादास के जामाता थे और ग्राम नाँहदा जि०

---

1. दुर्गादास, हस्तलिखित पोथी

महेन्द्रगढ़ के निवासी थे। युवावस्था में ही इनकी मृत्यु हो गई। इसकी पत्नी सावित्री देवी (दुर्गादास की पुत्री) अपने एक लड़के एवं एक लड़की सहित अपनी ससुराल में सत्संग भजन करके कालयापन कर रही हैं। सूरजदास के जन्म एवं मृत्यु समय का दुर्गादास ठीक अनुमान नहीं लगा पाए। इनके 25-30 पद (हस्तलिखित) दुर्गादास जी के पास ही देखने को मिले। एक पद दृष्टव्य है—

तज फैल मैल न धोयले जा तिरबैणी के तीर।।
हो प्रेम दिवानी पीव की, सब मिटैं कल्पना जीव की,
फिर मिले दिल का दामनगीर।।
देत्याग भरम की भँगरी, तज हरिविमुखन का संगरी,
कर गुरु चरण कंवल पै सीर।।
बिन भजन चाम किस काम की, तू पी प्याली सतनाम की,
कटै तेरी कालजाल ज़ंजीर।
गुरु दुर्गादास मिज स्थान भटेडा, बाँधे राम मिलन का बेड़ा,
सूरज लगा बिरह का तीर।।[1]

इनकी बाणी का स्तर दुर्गादास की बाणी का समशील ही लगता है। कई पद तो गुरु चेले के श्रेष्ठ लगते हैं—भाव और अभिव्यक्ति दोनों में ही।

बाबा दूलन दास
(भीषम जी)

ये बाबा खूबीदास के शिष्य और सन्त हरदेदास (बादली वाले) के प्रशिष्य थे। इनके बड़े भाई श्री गिरधारी लाल के अनुसार इनका पारिवारिक नाम दुलीचन्द था। इनका जन्म फाल्गुन शुक्ला नौमी सम्वत् 1962 वि० में हुआ था। इनके पिता श्री रामलाल तथा माता का नाम नान्हटी देवी था जो जाति से जाट एवं मूनसैं ग्राम तहसील झज्जर के निवासी थे। औपचारिक शिक्षा प्राप्त करने का सुयोग इन्हें नहीं प्राप्त हुआ। 18 वर्ष की आयु में सैनिक सेवा में प्रविष्ट हुए। ये दो बार सेना में भरती हुए और कुल मिलाकर 2 वर्ष की नौकरी की, तत्पश्चात् सत्संग का रंग गाढ़ा होता गया और फक्कड़ हो गए। विरक्त होने के बाद कई वर्षों तक अपने गाँव के आसपास ही रहकर बाबा खूबीदास का सत्संग करते रहे। वैराग्य-तिरेक से इन्होंने अपनी जननेन्द्रिय तक काट ली थी। इसी कारण ये 'भीषम' जी के नाम से प्रसिद्ध हुए। किन्तु इस कृत्य को उन्होंने नादानी ही माना है। इसके पश्चात् ये राजस्थान की पहाड़ियों में कई वर्ष तक भजन साधना में लीन रहे। उन्हीं के अनुसार अलवर के राजा जयसिंह ने इन्हें सम्मानित किया। ये लगभग

---

1. सूरजदास के पद (हस्तलिखित)

सन् 1947 में राजस्थान प्रवास से लौटे। कभी एक ठिकाने से नहीं बँधे। महेन्द्रगढ़, रोहतक तथा हिसार ज़िलों में रमते राम के रूप में भजन-सत्संग करते करवाते रहे। महेन्द्रगढ़ में लालारोढ़ाई तथा रिवाड़ी, रोहतक ज़िले में अकेहड़ी, भूनसैं, झज्जर, बादली, भटेड़ा, अहरी, करौंथा एवं हिसार ज़िले में दुर्जनपुरा तथा भिवानी इनके प्रमुख ठिकाने थे।

साहित्य के लिए सन्त भीषम जी की सेवा इतनी ही नहीं है कि उन्होंने सुन्दर काव्य की सृष्टि की है बल्कि उनकी साहित्य-सेवा का उससे भी उज्ज्वल पक्ष यह है कि उन्होंने सन्त जैतराम जी की वाणी को अपनी समस्त स्वार्जित सम्पत्ति लगाकर प्रकाशित करवाया है। हरियाणा के अद्यावधि उपलब्ध सन्तकाव्य में जैतराम जी की बाणी विषयवस्तु और काव्यत्व दोनों की दृष्टि से अनुपम और शीर्ष स्थानीय है। सन्त भीषम जी ने इस वाणी को प्रकाशित करने में जिस त्याग, तपस्या और लगन का परिचय दिया है वह अद्वितीय तो है ही अनुकरणीय भी है।

जैतराम जी की वाणी का प्रकाशन

सन्त जैतराम के प्रसंग में हम अन्यत्र कह आए हैं कि गरीबदास के पुत्र एवं परम-सन्त जैतराम की हस्तलिखित बाणी की पांडुलिपि करौंथा के गरीबदासी ठिकाने पर वर्षों से रखी हुई थी। अपने परिश्रम की कमाई से, कृषि करके भीषम जी ने उस बाणी का सन् 1955 में प्रकाशन करवाया। यह पूछने पर कि बाणी के प्रकाशन की प्रेरणा कैसे हुई? उनका कहना था कि यह मेरा काम था जिसके लिए मुझे फिर से आना पड़ा (जन्म लेना पड़ा)। अपनी वाणी में भी एक स्थान पर उन्होंने इसका उल्लेख किया है—

"जैत धार उल्ट कर आई अपना दस्त ठीक करवाई।
गुप्तधार प्रगट कीन्ही भगत जनों की माँग भराई।।"[1]

इस पद का अर्थ वे इसी रूप में करते थे, कि भीषम के रूप में जैतराम को फिर से अपनी हस्तलिखित वाणी का प्रकाशन करवाने के लिए प्रकट होना पड़ा। भक्तों की एक बड़ी साध पूरी की उन्होंने बाणी का प्रकाशन करवा कर। जो हो, इन्होंने यह बड़ा उपयोगी काम करवाया है। भीषम जी जैतराम जी के अवतार न होकर केवल भीषम जी हों तब भी इनका महत्व कम नहीं है। बल्कि इससे उनकी महत्ता कई गुणा अधिक बढ़ जाती है।

व्यक्तित्व

सन्त भीषम जी का व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली था। वे बड़े सुदर्शन थे।

---

1. ग्रंथ साहिब, सद्गुरु श्री जैतरामजी की बाणी, पृ० 498

'अतुलित बल धाम' वाली बात उन पर शत-प्रतिशत चरितार्थ होती थी। इनकी रहनी बड़ी विचित्र थी। वे महाक्रोधी एवं परम दयालु एक साथ ही थे। श्रम-धर्म के पक्के पक्षधर थे। ठाले बैठकर भजन करना उन्हें बिल्कुल नहीं भाता था। वे बड़े सेवक थे। मौज में आकर बहुत अच्छा गाते थे। वे परम जागरूक साधक थे। उनकी उदारता और भीषणता दोनों का पूरा साक्षात्कार और भोग करने का व्यक्तिगत अवसर मुझे मिला है। मैं आज जो कुछ हूं उन्हीं की कृपा से हूं। गोस्वामी जी के शब्दों में 'हौं तो हुतो खर को असवार उन्हीं को असीम गयन्द चढ़ायो।'

मृत्यु एवं शिष्य परम्परा

सन्त भीषम जी की मृत्यु 13 मार्च, सन् 1973 (अर्थात् फाल्गुन शुक्ला नौमी सम्वत् 2029 वि०) को हुई। जीवन के अन्तिम वर्षों में—बनियाणी तथा माड़ौंथी के बीच उन्होंने अपना मकान बना लिया था तथा 24 एकड़ लगभग भूमि खरीदकर बड़ा सुन्दर फलदार बाग लगवा दिया था। आजकल इनके शिष्य श्री सुरतन दास ने इनकी समाधि के रूप में एक विशाल सत्संग भवन भी वनवा दिया है।

बाणी—'ग्रंथ साहिब'—सद्गुरु श्री जैतरामजी की बाणी अर्थात् श्री जैतराम की बाणी के अन्त में 'वाणी दुलनदास की' के शीर्षक के अन्तर्गत पृ० 497 से 510 तक भीषम जी की बाणी संकलित है। ध्यान रहे कि इनका नाम कहीं दूलनदास तथा कहीं दुल्हनदास अथवा दुलमदास आया है। लगभग 50 साखियाँ फुटकल तथा इतने ही पद इनकी बाणी के प्रकाशित रूप में उपलब्ध है। कहा जाता है कि इनकी बाणी जो यहाँ उपलब्ध हैं वह केवल एक ही हस्तलिखित कापी की बाणी है। उनकी बाणी की ऐसी ही दो अन्य कापियाँ प्रेस से गायब हो गई थीं। इन प्रकाशित पदों के अतिरिक्त भी कुछ अन्य बड़े सुन्दर पद इनके शिष्यों द्वारा गाये जाते सुने गए हैं। इन्होंने अनगढ़ भाषा द्वारा अपनी अनुभूति को प्रकृत रूप में प्रकट किया है। साधना सम्बन्धी संकेत देने वाली इसकी एक साखी इस प्रकार है—

'नाभी नासिका बीच में उलटी चक्षु फेर।
सतगुरु साहिब सहजैं मिलैं कछू ना लागै देर॥'[1]

इनकी अनुभूति की प्रामाणिकता एवं अभिव्यक्ति की सहजता को निम्न पद में देखा जा सकता है—

---

1. दुलमदास की बाणी (ग्रंथ साहिब—जैतरामजी की बाणी) पृ० 499

पद

'ऐसा खेल बताया सतगुरु देख अचम्भा आई।
पलक माँह, अलख बिराजै त्रिसरैन से झीना भाई॥
नैन खोल देखो नैनों आगे बाहर भीतर एक समाई॥
सूरज चाँद बिन रहै चाँदना ताकी शोभा कही न जाइ॥
दीद बिना वह दीदा देखा दीद माँह बिराजै साँई।
सुर्मा की रेख-भेख ना बाना अधर धार में रहैं ठहराइ।
जात-पात वाके कछू नाहीं नाँह कहीं जननी जाई।
दूलनदास कहैं यह अगम से उतरी हेला देकर दई फर्माई॥[1]

इनकी बाणी के विषय उपदेश, चेतावनी, विरह तथा साधनागत संकेत हैं। पदों में गेयता है तथा वे सत्संगियों द्वारा बड़ी श्रद्धा से गाये जाते हैं।

इनकी समाधि पर शुक्ल पक्ष की नौमी के दिन मासिक सत्संग होता है जिसमें सैकड़ों शिष्य एवं श्रद्धालु भाग लेते हैं। फाल्गुन में वार्षिक सत्संग के अवसर पर बड़े भंडारे का आयोजन किया जाता है तथा हजारों की संख्या में सत्संगी एकत्रित होते हैं।

बाबा गिरधारी दास

जैसा इस अध्याय में पहले संकेत दिया जा चुका है, बाबा गिरधारीदास अथवा गिरधारा पंडित बाबा खूबीदास के शिष्य हैं। इनका जन्म कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी, सम्वत् 1959 में हुआ। ये जाति से ब्राह्मण तथा ग्राम मातनहेल, तहसील झज्जर के निवासी हैं। इनके पिता का नाम श्री रामजी लाल तथा माता का नाम बूजाँ देवी था। बाबाजी आजीवन अविवाहित ही रहे हैं। व्यवसाय से कृषक हैं। इन्होंने 19 वर्ष की आयु में बाबा खूबीदास से सम्वत् 1979, दीपावली के दिन 'उपदेश' लिया था। तब से निरंतर भजन-साधन में लगे हुए हैं। उन्हीं के कथनानुसार अनूपशहर (राजस्थान) तथा बुलन्दशहर (उत्तर प्रदेश) में उनके कई शिष्य हैं। इनके शिष्य नगरों में इनको बुलाकर सत्संग की अध्यक्षता करवाते हैं। इनकी रहनी सरल-सीधी है। स्वभाव से बड़े विनम्र हैं।

बाणी

बाबा गिरधारी दास की बाणी अभी अप्रकाशित है। मुझे इनका हस्तलिखित ग्रन्थ देखने का अवसर मिला जो इनके पास सुरक्षित रखा है। पूछने पर उन्होंने

---

1. दुलमदास की बाणी (ग्रंथ साहिब—जैतराम जी की बाणी), पृ० 499

बताया कि अभी अपने सामने प्रकाशित करने अथवा करवाने का विचार नहीं है। इनकी बाणी का स्वरूप प्रायः निर्गुण सन्तों की बाणी जैसा ही है। वाणी के दो भाग हैं—प्रथम भाग में बारह अंग हैं। दूसरे भाग में पद हैं जोकि विभिन्न राग शीर्षकों के अन्तर्गत दिए गए हैं। पदों की कुल संख्या 146 है। गुरुदेव का अंग 87 साखियों में व्याप्त है। आत्म-भेद अंग में 78 चौपाई तथा 3 साखियाँ हैं। मन का अंग में 106 साखियाँ, अंधे का अंग में 91 साखियाँ, गंगान्हान का अंग में 63 साखियाँ, भेष भ्रम में 24 साखियाँ, भेष का अंग में 30 साखियाँ, गुरु, सतगुरु पूजा का अंग में 45 साखियाँ, अहंगता का अंग में 64 साखियाँ, सत्संग का अंग में 47 साखियाँ, सोलह तिथि का अंग में 25 साखियाँ, निन्दा का अंग में 70 साखियाँ तथा सुन्दर का अंग में 84 साखियाँ हैं। भाव तथा भाषा की बानगी के लिए एक पद प्रस्तुत है—

पद

"बंगला अजब बनाया—तेरा पार नहीं पाया ।। टेक ।।
पाँच तीन मिल नीम खिचाई, अजब कारीगर आया ।।
आठ मास नौ चिणताँ लागे, गरव सिख (?) साज जुड़ाया ।।
कुदरत की कली पिटाई, पक्का ही रंग चढ़ाया ।।
सात दीप नौखण्ड दसबारी, न कोई घड़िया ठहराया ।।
अधर तख्त पर सतगुरु बैठा, अखण्ड दिवला जलाया ।।
खूबीराम मिले गुरु पूरे, आप ही आप लखाया ।।
गिरधारी दास राग बँगला में, निरंखा रूप सँवाया ।।"[1]

इस पद में पंडितजी ने काया—बँगले का रूपक बाँधा है जिससे इनकी बाणी के स्तर का सहज ही अनुमान होता है। इनके अनेक शिष्य है लेकिन उनका कोई पता मुझे नहीं मिल सका।

नारनौल आश्रम

हरियाणा में बादली काली कबीर पन्थी शाखा के अतिरिक्त कबीर-पन्थ के और कई ठिकाने हैं। नारनौल में कबीर-पन्थियों के तीन मकान हैं। उनमें एक मकान के महन्त माधोदास ने 'शोभा देवी' का किस्सा नाम से एक ग्रंथ छपवा रखा है। जहाँ तक शोभादेवी की इस कथा का सम्बन्ध है कबीर पन्थ से अथवा कबीर-पन्थी साहित्य से इसका दूर का नाता भी जोड़ना सम्भव नहीं है। ये महन्तजी भजनीक रहे हैं। इनका कबीर-आश्रम पुलिस लाइन, नारनौल के सामने स्थित है

---

1. गिरधारीदास, हस्तलिखित बाणी, राग बंगला

आश्रम के प्राँगण में एक ओर हनुमानजी की तथा दूसरी ओर शिव जी की मूर्ति स्थापित कर रखी है। कबीर आश्रम में इन मूर्तियों का औचित्य पूछने पर इनका उत्तर था कि भक्तों ने अपनी इच्छा से स्थापित करवा दी हैं। इससे महन्त जी तथा इनके कबीर भक्तों की रहनी तथा करनी का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। यहाँ तक आते-आते कबीर और उनका मत अपने भक्तों और महन्तों के हाथों कितना बदल गया है उसका अनुमान नारनौल आश्रम को देखकर लगाया जा सकता है।

जेरपुर वाला आश्रम

महेन्द्रगढ़ ज़िला में जेरपुर की गद्दी भी कबीर पन्थियों की गद्दी रही है। आज-कल एक नाथ-पन्थी साधु फूलनाथ जी इसके स्वामी हैं। मैंने पाया कि इन्हें अपने लेन-देन से ही अवकाश नहीं है। अतः न वे कुछ इस गद्दी के महन्तों के विषय में जानकारी दे सके न साहित्य के विषय में। यहाँ जाकर केवल इतना पता लगा कि दो पीढ़ी पहले महन्त माधोदास हुए हैं जिनकी कुछ वाणी भी प्रकाशित है "नितानन्द बारहखड़ी" नाम से। किन्तु न तो इनके पास और न ही इनके बताए ठिकाने (नारनौल) से ही वह बाणी प्राप्त हुई। इस पोथी के लिए और भी इधर-उधर प्रयास किया किन्तु वह अनुपलब्ध ही रही।

थुराणा (खुंभा) आश्रम

थुराणा, तहसील हाँसी, ज़िला हिसार से भी कबीर पन्थियों के सन्तों का थोड़ा हस्तलिखित साहित्य मुझे प्राप्त हुआ है। थुराणा गद्दी की वर्तमान महन्त माता शकुन्तला जी हैं। ये गृहस्त हैं। वे इस गद्दी के इतिहास के विषय में केवल कुछ महन्तों के नाम मात्र ही गिनवा पाईं। इसके अतिरिक्त महन्तों का परिचय इत्यादि ये नहीं बतला सकीं।

श्री आसादास जी तथा उनका गीतानुवाद

इसी थुराणा गद्दी के एक महन्त हुए हैं श्री आसादास जी। बड़े विद्वान् साधु बतलाए जाते हैं। उन्होंने श्रीमद्भगवद्गीता का भाषा में अविकल दोहानुवाद किया है। इस गीतानुवाद की पुष्पिका में थोड़ा समय सम्बन्धी उल्लेख भी मिलता है जो इस प्रकार है—"इति श्री भगवदगीता महात्मय सम्पूर्ण समाप्ति सम्वत् 1850 शाके तत्र चैत्र शुक्लादि दश्यम्याँ (?) भृगुवासरे। लिषतं षैम-चदं पठनार्थं आसादास। श्री कृष्णाय नमः।"[1] इस पुष्पिका से इतना पता चलता है कि सम्वत्

---

1. श्री आसादास-कृत गीतानुवाद, पत्र 98 (हस्तलिखित)

1850 में आसादास विद्यमान थे। इससे अधिक उनके विषय में कुछ पता नहीं चलता। माता शकुन्तला भी इससे अधिक बताने में असमर्थ थीं।

गीतानुवाद---गीता का आरम्भ से अन्त तक सम्पूर्ण अनुवाद बड़ी सरल भाषा में किया गया है। अनुवाद के लिए दोहा छन्द का प्रयोग किया गया है। एक तरह से संस्कृत से भाषा में यह छायानुवाद है। विद्वान साधु ने न मूल का कुछ छोड़ा है न अपनी ओर से कुछ जोड़ा है। उन्होंने मूल श्लोकों का ज्यों का त्यों दोहों में बहुत सुन्दर अनुवाद किया है। यह गीता को सामान्य जन तक पहुँचाने का स्तुत्य प्रयास है। किन्तु इन महन्तों को क्या कहिए जो अपने पूर्वजों की लाखों की सम्पत्ति भोग रहे हैं और उनके स्मृति-अवशेष इस प्रकार की पोथी इत्यादि को प्रकाशित नहीं करवाते। अन्त में गीता माहात्म्य बतलाते हुए आसादास का कहना है कि—

"जो कोऊ चाहै भव तरौ, कृष्ण कवल का वास।
और सकल मत छाँडि तू, करि गीता अभ्यास॥
तब लगी तपत संसार की, तापत है सब देस।
दिस्ट पैर जब लगि नहीं श्री गीता को लैस॥"[1]

इससे स्पष्ट है कि महात्मा जी को गीता ज्ञान पर बड़ी आस्था थी और गीताकार पर तो होगी ही। संसार को सुखी एवं शान्त बनाने के लिए गीता-ज्ञान की आवश्यकता है। इस पोथी में अठारहों अध्यायों का क्रम से भाषानुवाद है तथा इसकी कुल पत्र-संख्या 98 है।

आसादास के पश्चात् थुराणा की गद्दी पर बैठने वाले महन्तों के नाम इस प्रकार हैं—गुसाईदास, बालकदास, साहिबदास, साधुराम, प्रेमदास, प्राणदास, गोपालदास, नरसिंहदास, अर्जुनदास, रामतीर्थदास तथा अब वर्तमान महन्त माता शकुन्तला हैं। इन महन्तों की वाणी के बारे में कुछ भी जानकारी नहीं मिल पाई।

श्री शीतलदास के भजन

इसी थुराणा की गद्दी से सम्बन्धित एक साधु शीतलदास हुए हैं जिन्होंने अपने का साधूराम शिष्य कहा है। इन्होंने अपनी हस्तलिखित भजनों की कापी के बीच में यों संकेत दिया है—

"सम्वत् उनीसो त्रियासीया मँगल वारी चौथ।
पूरा करा ग्रन्थ जो भजन एक सो बहोत॥ (1983)
लिखतम साधु शीतलदास कबीरपन्थी की मोजा नारनोंद ज़िला हिसार चेला

---

1. श्री आसादास, गीतानुवाद, पत्र 98 (हस्तलिखित)

श्री महन्त साधूराम जी का थुराने निवासी का।"[1] श्री शीतलदास जी ने अपने भजनों का रचनाकाल सम्वत् 1983 वि० दिया है। इसी थुराणा गद्दी से सम्बन्धित कबीरपन्थी साधु हैं। इनका गाँव नारनौंद जिला हिसार है। इनकी हस्तलिखित कापी में लगभग 50 भजन इनके अपने हैं, शेष इन्होंने किसी गंगाराम एवं काँसीराम कैथल निवासी के बोले हुए लिखे हैं। गंगाराम जी काँसीराम के शिष्य हैं। इस कापी में इन्होंने भजनों के रूप में ध्रुव-कथा लिखी है। काँसीराम-कृत पाण्डु-कथा के कुछ भजन भी इसमें संकलित हैं। शीतलदास के भजनों में बड़ी छिछली-सी लौकिक तुकबन्दी है। पन्थ एवं आध्यात्म सम्बन्धी एक भी भजन इसमें नहीं है। इनसे अच्छा और ऊँचा स्तर तो गंगाराम एवं काँसीराम का है। उल्लेखनीय बात यह है कि वन्दना में गणपति जी की स्तुति है। चण्डी की भी स्तुति है। जबकि कबीर पन्थी सन्तों की इस पोथी में बेचारे कबीर का कहीं उल्लेख तक नहीं है। यह पन्थ की क्षयमान स्थिति का स्पष्ट प्रमाण है।

हरियाणवी कबीरपन्थियों की साधना-पद्धति

पीछे हम देख आए हैं कि लाला हरदेदास की बाणी में साधना सम्बन्धी अनेक संकेत मिलते हैं। इनकी भी पद्धति सुरति-शब्द योग वाली ही है। इस ओर संकेत करते हुए उनका कहना है कि—

"जब सुरति शब्द लग जावै" रे, तबसुख का सागर पावै रे।
हो जा सुरति विवान स्वारा रे। तब एक पलक में पारा रे।"[2]

अर्थात् पहले सुरति को शब्द से जोड़ना पड़ता है। जब सुरति शब्द से सम्पृक्त हो जाती है तो 'वह' सुख-सागर प्राप्त हो जाता है। सुरति के विमान पर ही उस यात्रा पर चलना होता है। वे आगे कहते हैं—

सुरति निरत मन पवन का, करके एक मिलाप।
गगन मण्डल में लाइले, जपि ये अजपा जाप॥"[3]

साधक को सुरति, निरत, मन तथा पवन (स्वाँस) को इकट्ठा करके गगन मण्डल (त्रिकुटी-नाभिमण्डल) में ध्यान लगाना पड़ता है और आन्तरिक रूप से भीतर-भीतर स्मरण भी करते रहना होता है। सुरति निरत को दोनों को अधर मण्डल की ओर उन्मुख करना पड़ता है। साधना संकेत को और भी स्पष्ट करते हुए हरदेदास जी का कहना है—

---

1. श्री शीतलदास-कृत भजन (हस्तलिखित)
2. हृदय प्रकाश, भेद बानी सतगुरु, पृ० 27
3. वही, पृ० 30-88

"इला पिंगला सोध विचारो, त्रिकुटी माँही सुरति धारो।
त्रिकुटी छज्जे ध्यान धरी जै, सतगुरु कूँ तो संगी लीजै।
चींटी के पग हस्ती बाँधो, तिल दरवाज़े माँह को साँधो।
तिल दरवाजे जब बड़े, बहु हल्का हो जाय।
चाल विहँगम चालकर, जब पहुँचे निज ठाम।।[1]

साधक को प्रारम्भिक स्थिति में प्राणायाम का सहारा भी अपेक्षित है। इसके लिए दोनों भौहों (त्रिकुटी) के बीच ध्यान लगाना पड़ता है और भीतर-भीतर सतगुरु का स्मरण भी चलता रहता है। मन रूपी हाथी को सुरति रूपी चींटी से बाँधकर तिलके दरवाज़े में से मार्ग का अनुसंधान (साँधो) करना पड़ता है। इस प्रकिया से अभ्यास करते करते दृष्टि अति सूक्ष्म हो जाती है तब तिलक के ओल्हे (पीछे) ही वह पीव मिल जाता है। यह सारी यात्रा विहँगम यात्रा है, अधर यात्रा है। सुरति को पक्षी की तरह शून्य में ही यात्रा करनी पड़ती है। इस प्रकार साधक साध्य तक पहुँच जाता है। इसी प्रकार के अनेक संकेत इन्हीं बातों की पुष्टि करते हुए अनेक स्थानों पर "हृदय प्रकाश" में मिल जाते हैं। श्री दूलनदास भी इसी प्रकार की साक्षी देते हुए प्रतीत होते हैं—वरन अधिक खुलासा रूप में—

"नाभि नासिका बीच में उल्टी चक्षु फेर।
सतगुरु साहिब सहजैं मिलैं कछू ना लागे देर।।"[2]

साधक को त्रिकुटी में आँखें पलट कर ध्यान लगाना पड़ता है और इस विधि से तिलधार में दिलदार के दर्शन हो जाते हैं।[3] यही है हरियाणा के कबीर पन्थ में साधना का स्वरूप। इनकी साधना पद्धति में भी सतगुरु, स्मरण, सत्संग तथा विरह इत्यादि का सहयोग तो और निर्गण पन्थों की ही तरह निर्विवाद रूप से अनिवार्य है ही।

ह्रास प्रवृत्ति

हरियाणा के कबीर पन्थ में ह्रास के लक्षण स्पष्ट दिखाई पड़ रहे हैं। अनेक कबीर पन्थी ठिकानों पर इसके साधुओं से मिलने पर मुझे इनकी रूढ़िवादिता, संकीर्णता, मौलिकता का अभाव स्पष्ट ही दिखाई पड़ा। ऊपर जैसा संकेत किया जा चुका है देवी-देवताओं के प्रति आस्था से तो ऐसा लगता है कि ये लोग कबीर के नाम पर केवल माल काट रहे हैं। दूसरी बात जो इस पन्थ को नाम शेष करने वाली है वह है राधास्वामी सत्संग का सर्वग्रासी प्रभाव एवं प्रचार। इस सत्संग ने

---

1. हृदय प्रकाश, भेद बानी सतगुरु, पृ० 35, 43-47
2. ग्रन्थ साहब, (जैतराम जी की बाणी) दूलम दास की बाणी, पृ० 499
3. वही, पृ० 500

इस पन्थ को ग्रस लिया है। कबीर पन्थी समय के साथ नहीं बदल पाए और इसका इन्हें भारी मूल्य चुकाना पड़ा है। इस प्रचार के युग में इनका संकोच इनके लिए घातक सिद्ध हुआ है। अपने सत्संग इत्यादि के आयोजन की गतिविधियों में ये पीछे रह गए हैं।

हरियाणा की कबीर पन्थी गद्दियाँ

हरियाणा में बादली, बहादुरगढ़, झज्जर, भटेड़ा, अकेहडी, मदनपुर, मूनसे, मादल, मातनहेल, गदाईपुर, कोसली, लाला रोढ़ाई, रिवाड़ी, अहरी, माड़ौधी-जाटान (भीषम जी की गद्दी), भिवानी, दुर्जनपुरा, धुराना खूँभा, कैथल, जींद इत्यादि ही प्रमुख कबीरपन्थी ठिकाने हैं।

कबीर पन्थी आपस में "सत साहिब" कहकर अभिवादन करते हैं। हरियाणा में बादली वाली शाखा में तो बहुत कुछ कबीर पन्थ का प्रकृत स्वरूप सुरक्षित मिलता है। शेष ठिकानों पर ग्रन्थ पूजन, मूर्तिपूजन इत्यादि का समावेश हो गया है। कई स्थानों पर आरती तथा धूपदीप इत्यादि की औपचारिकता ही शेष रह गई है। आध्यात्मिकता पर साँसारिकता की विजय सी हो गई लगती है।

कबीर पन्थ : उपलब्ध साहित्य

(1) सन्त हरदेदास-कृत "हृदयप्रकाश" प्रकाशक एवं वितरण : बाबू मनसाराम, 79-ए, कमलानगर, सब्जी मण्डी, देहली-6; देववाणी प्रिण्टिग प्रेस, 38 ई, कमला नगर, देहली-6; सन् 1962, पृ० 412 (व्यक्तिगत संग्रह)

(2) "मारग सार" (रामरतन सागर), संकलन कर्त्ता : रतनलाल सिंगला, प्रकाशक—ओमप्रकाश गुप्ता, 4794, डिप्टी गंज, देहली, प्राप्ति स्थान : रामरतन सत्संग भवन, नई बस्ती, बहादुरगढ़ (हरियाणा); जुलाई, 1973, पृ० 608, (व्यक्तिगत संग्रह)

(3) दुर्गादास-कृत "बाणी" (हस्तलिखित), प्राप्तिस्थान : दुर्गादास, भटेड़ा निवासी, तहसील झज्जर, ज़िला रोहतक।

(4) सूरजदास-कृत "पन्थ" (हस्तलिखित) प्राप्ति स्थान : वही।

(5) बाबा दूलन दास जी कृत "बाणी", ग्रन्थसाहिब, श्री जैतराम जी की बाणी में संकलित; प्रकाशक : बाबा दुल्हन दास (दुल्हमदास अथवा भीषम जी); रोहतास प्रिंटिग प्रेस, रोहतक, सन् 1955, प्राप्ति-स्थान : डॉ० जगतसिंह, रेलवे रोड, रोहतक (व्यक्तिगत-संग्रह)

(6) बाबा गिरधारीदास-कृत "बाणी", हस्तलिखित; प्राप्तिस्थान : बाबा गिरधारीदास, ग्राम मातनहेल, तहसील झज्जर, ज़िला रोहतक ।

(7) श्री माधोदास-कृत "इतिहास सतिशोभादेवी", प्रकाशक : यशदेव सिंह सैनी, प्राप्तिस्थान : कबीर आश्रम, नारनोल, सम्वत् 2031; पृ० 16 (व्यक्तिगत संग्रह)

(8) श्री आसादासजी द्वारा रचित "गीतानुवाद" (हस्तलिखित), लेखन-काल : 1850 वि० पृ० 196, प्राप्ति स्थान—महन्त शकुन्तला देवी, कबीर गद्दी थुराणा, (खुम्बा), तहसील-हाँसी, ज़िला हिसार (व्यक्तिगत संग्रह) ।

(9) श्री शीतलदास-कृत "भजन" (हस्तलिखित), प्राप्ति स्थान : वही, रचनाकाल; सं० 1983, (व्यक्तिगत संग्रह) ।

अध्याय 6

हरियाणा का दादू पन्थ

हरियाणा के सन्त साहित्य में हरियाणा के दादू पन्थ का विशेष महत्व है। इस पन्थ के हरियाणा में शताधिक छोटे बड़े थाँबे (दादू पन्थी साधुओं की गद्दियाँ) हैं। दादूपन्थी साधुओं को उनके देश-स्थान, वेशभूषा, रहन-सहन, जीवनयापन, उपदेश-आदेश और प्रचार-प्रसार के ढंगों में विभिन्नता रखने के कारण, उन्हीं विभिन्नताओं के आधार पर छः मुख्य वर्गों में विभाजित किया जाता है जो इस प्रकार है—(1) खालसा, (2) विरक्त, (3) दखनाधा स्थान धारी, (4) उत्तराधा स्थान धारी, (5) नागा और (6) तपसी।[1]

दादूपन्थी छः वर्ग

नारायणा-गद्दी सम्बन्धी साधु खालसा कहलाते हैं। विरक्त दादूपन्थी रमते-राम होते हैं। वे किसी स्थान विशेष पर स्थायी रूप से नहीं टिकते। ये निहंग (अगृहस्थ) होते हैं। और काषाय वस्त्र धारण करते हैं। दखनाधा दादूपन्थी—राजस्थान और राजस्थान से दक्षिण स्थित थाँबों से सम्बन्धित होते हैं। उत्तराधा अथवा उत्तराड़ी के सन्त दादू पन्थ में राजस्थान से उत्तर स्थित थाँबों से सम्बन्धित होते हैं। इनमें हरियाणा, दिल्ली तथा पंजाब इत्यादि से सम्बन्धित साधु गिने जाते हैं। दखनाधा और उत्तराधा साधुओं की वेशभूषा प्रायः एक-सी ही है। ये प्रायः काषाय साफा और श्वेत वस्त्रधारी होते हैं। नागा दादू पन्थी स्वामी सुन्दरदास (बड़े) के थाँबायती शिष्य-प्रशिष्य गिने जाते हैं जो श्वेत वस्त्रधारी और

---

1. श्री सुखदयाल दादू, श्री दादूचरित्र-चित्रावली, पृ० 55

शस्त्रधारी होते हैं। इन्होंने लालसोट, चाँदसेन निवाई, माधोपुर, उदयपुर, दौसा, काचरौदा, भैराणा, कमू, होशियारपुर, फिरोजपुर, नाभा तथा फरीदकोट आदि स्थानों पर अपने सैनिक डेरे, जमाअत तथा चौकियाँ स्थापित कर ली थीं। कहा जाता है कि अशान्ति के दिनों में राज्यों की सुरक्षा के लिए इन्होंने बड़े बलिदान दिए हैं। किन्तु अब इनके स्वरूप में परिवर्तन आ गया है। तपस्वी दादूपंथी विरक्तों की तरह ही रमते राम होते हैं तथा कौपीन, जटाजूट और कटिवस्त्र धारी होते हैं।[1]

हरियाणा का दादूपन्थ, उत्तराधा अथवा उत्तराड़ी के सन्तों के अन्तर्गत आता है। हरियाणा में दादूपन्थ के प्रचार एवं प्रसार का श्रेय बाबा बनवारीदास, स्वामी हरिदास तथा स्वामी साधुराम आदि दादूदयाल के शिष्यों को जाता है। इनमें भी सबसे महत्वपूर्ण बाबा बनवारीदास हैं जिन्हें उत्तराड़ी का सबसे महान् सन्त गिना जाता है। हरियाणा से सम्बन्धित दादू के शिष्यों में केवल बाबा बनवारीदास की ही कुछ बाणी उपलब्ध है। इनके शिष्यों-प्रशिष्यों में कई प्रसिद्ध सन्त हुए हैं जिनकी थोड़ी वाणियाँ प्राप्त होती हैं।

बाबा बनवारीदास

जितना उत्तराड़ी के सन्तों में बाबा बनवारीदास का महत्वपूर्ण स्थान है। इनके जीवन सम्बन्धी तथ्यों का अभाव उतना ही खलता है। इनके जीवन सम्बन्धी तथ्यों के संकलन हेतु मैं रतिया (जिला हिसार) की प्रमुख गद्दी पर गया तथा दादू महासभा के वर्तमान अध्यक्ष स्वामी जीवानन्द (जयपुर) से भी मिला। और भी कई दादूपंथी महंतों से इनके सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए मिला किन्तु इस विषय में सभी को निरुत्तर पाया। राघवदास-कृत भक्तमाला में इनका जरूर उल्लेख हुआ है किन्तु उसमें ऐतिहासिकता का नितान्त अभाव है, केवल साम्प्रदायिक ऊहात्मक संकेत ही उपलब्ध हैं जो इस प्रकार हैं—'बाबा बनवारी हरदास धन्य हैं जिन्होंने सर्वस्व गुरुद्वारे में समर्पित कर दिया। ये दोनों भ्राता—बनवारीदास तथा हरदास उत्तम उत्तराधा भाई हैं जो रात दिन हरि सुमिरन में मत्त रहते हैं। धन्य है इनकी वाणी। जिन्होंने भगवंत भजन से अपने को लाभान्वित किया।[2] राघोदास जी का

---

1. श्री सुखदयाल दादू, श्री दादू चरित्र-चित्रावली, पृ० 56
2. **छपै :** बाबौ बनवारी हरदास धनि, जिन गुरुद्वारे सर्बस दीयौ।
   दादू गुरु द्रिगपाल, तेज तिहूं लोक उजागर।
   सिषचहुं दिसा चिराक, भजन सुमरन के सागर।
   तिन मधि बरनौं दोइ, उत्म उत्तराधा भ्राता।
   सब दिन अर सब रैनि, रहे हरि सुमरन माता।
   राघो बलि बलि रहणि की, भज भगवंत लाहौ लीयौ।।
   —राघोदास-कृत भक्तमाल, पृ० 191

कहना है कि दादूपन्थी में मन-माया को जीतकर आनन्दित रहने वाले बाबा बनवारी महान एवं सभी के प्रिय सन्त हैं। उत्तरदेस में प्रमुदित होकर धर्म (पंथ) का प्रवेश (प्रचार) किया। ये ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त, भजन में दत्तचित्त संत दर्शनों हेतु गुरुद्वारा आते हैं और विधि सहित सभी प्रकार की भेंट पूजा भी चढ़ाते हैं। इनकी रामत के दौरान इनके शिष्य प्रमानन्द ने रात्रि के समय इन्हें प्रणाम किया। पंचभूत इनकी रक्षा में तत्पर रहते हैं। पृथ्वी भी ऐसे संत को देखकर प्रसन्न हुई।[1]

बनवारीदास तथा हरदास के साधना स्थल का संकेत राघोदास-कृत भक्त-माल में इस प्रकार मिलता है—'बनवारी हरदास, रतिये जंगल मधि, साधुराम मांडौठी में, नौके मिल छाज ही।'[2] रतिया में ही इनके प्रमुख शिष्य प्रमानन्द के समय में एक भारी अकाल पड़ने का उल्लेख भी आया है जिससे त्रस्त होकर लोग मालवा चले गए थे।[3] ये दादू जी के शिष्य थे। उत्तराड़ी के सन्तों में इनका प्रमुख स्थान है। रतियाँ (जिला हिसार) इनका साधना-स्थल रहा है। एक प्रमानन्द नामक इनके परम शिष्य थे जो इनके बाद रतिया गुरु गद्दी के उत्तराधिकारी बने। इसके अतिरिक्त कोई ठोस तथ्य इनके सम्बन्ध में प्राप्त नहीं होते। रतिया, अलेवा,

---

1. दादू जी के पंथ में मगन मन माया जीति,
बाबो बनवारी भारी सर्वही को भावतौ।
प्रमोध्यौ उत्तरदेस धर्म कीन्हों प्रवेस,
निरंजन निराकार जी की जस गावतौ।
रिधि सिधि लियें लार भजन रहे देकर,
दरसन कै कारनैं गुरु कै द्वारै आवतौ।
राधो बिधि सहित बिसेस पूजि गुरपाट,
छाजन भोजन सर्व संतौ कौं चढ़ावतौ।
गुरु चेला रामत कौं निकसे सहस साइ,
दिन के अस्ति भये निसा सैंन कीयौ है।
निरभै निसंक बनवारी सिष प्रमानन्द,
आनि कैं उसीसा रैंनि प्रिथी मात दीयो है।
प्रिथी अपतेज बाइ रक्षा करै, आ गया पाइ,
तनमन धन अर्पि नांव जिन लियौ है।
राघौ कहै अवनि प्रष्ण भई संत देखि,
पुलकत बदन सुहरसवत हीयो है॥
—राघोदास-कृत भक्तमाल, पृ० 191-92

2. राघोदास कृत भक्तमाल, पृ० 270
3. वही, पृ० 236-37

उमरा, बिड़हौली, अलवर, जयपुर, देहली, पटियाला, नाभा, नौहर, सूरत, झाड़ेश्वर, दहलोह, अखिलेश्वर, बुरहानपुर आदि में इनके द्वारा स्थापित की हुई गद्दियों का उल्लेख भी मिलता है।[1]

बाणी

बाबा बनवारीदास-कृत केवल 3 पद और 3 आरतियाँ ही बतलाई जाती हैं। इनके द्वारा प्रणीत आरती तो अन्य दादूपन्थी संतों की आरतियों के साथ कुछ कृतियों में उपलब्ध है। इनके नाम से पाए जाने वाले 3 पदों में से दो को यहां दिया जाता है जो रतिया के थांबे में सुरक्षित एक हस्तलिखित पोथी से प्राप्त हुए। तीसरा पद अप्राप्त है। बड़ी कठिनाई से प्राप्त होने वाले उक्त दो पद निम्नवत् हैं—

प्रथम पद—राग सारंग

हरिजी भलो भयौ संतन को।
सुनि सुनि सरस कथा दादू की, भरम भाग गयो मन को ।। टेक ।।
प्रथम में प्रकटे की सांभरी में, संतन के कल्याण।
देखत दर्शन परम सुख उपज्यो, दादू साध सुजान ।।
भगत उभारो भौ तारण को, तुम ही को राम पठायो।
जगत पुनीत करण कारन को, भाग हमारो आयो ।।
निर्मल विमल कथा सुन हरि को, तन को ताप नसायो।
मृत मंडल में राम रस अमृत, आण प्रवाह बहायो ।।
दासन दास कहै बरवारी, आत्म अन्तरी चिन्ता।
पूर्ण ब्रह्म सबन में देख्या, सोई दादू कीन्हा ।।

दूसरा पद—राग भैरों

भेंटयों नाथ निरंजन दादू, कलि केवल जस गावन को।
परि गई गांठ असमझ पणे की, समझ-2 सुरझावन को ।।
हरिजन देह (?) पवन भई तांति, शब्द काड़नी विषय ललाटी (?)।
रूई जगत विषय रजभरी-हरि सुमरन देह निर्मलकारी ।।
मम रहत रसना कत वारी, करणी करता नहीं हजारी।
कात बनाई धोय धरि भाई, तबही अपने अंग लगाई।
करता करे सो सांच बनवारी, जन दादू को दया उझारी ।।

---

1. हरिदास जी बाणी, पृ० 12

शिष्य-परम्परा

'सन्त सरोज' नामक एक छोटी-सी पुस्तक में उत्तराधा सन्तों का कुछ परिचय दिया गया मिलता है जिसमें बनवारी जी की जयपुर वाली गद्दी की शिष्य परम्परा दी हुई है, यह नामावली इस प्रकार है—(1) बनवारीदास, (2) आदूरामजी, (3) गंगाराम जी, (4) श्री सुखराम जी, (5) सहजराम, (6) शिवराम, (7) गोबिन्द-दास जी, (8) उद्धवदास, (9) महंत जुगलदास, (10) महंत-बालाबक्ष जी (11) महंत बिहारीदास, (12) महंत गंगादास जी तथा इनके शिष्य प्रहलाददास तथा माधवदास ।[1] यहाँ बनवारीजी के 10 शिष्य प्रसिद्ध बतलाए गए हैं किन्तु परिचय आदूराम जी का ही दिया गया है । एक और हस्तलिखित ग्रन्थ की पुष्पिका में बनवारी जी की शिष्य परम्पर आई है जो इस प्रकार है—(1) दादू जी, (2) बनवारी जी, (3) छबीलदास, (4) श्यामदास, (5) नारायणदास, (6) हरिदास, (7) सागरदास, (8) अमरदास (9) मौजीराम तथा जस्सा गुलाम । पुस्तक काहनौर (रोहतक) दादू द्वार से प्राप्त हुई थी जिसका लिपिकाल सम्वत् 1943 वि० दिया हुआ है। इस परंपरा में आए हुए सन्त नारायणदास के शिष्य हरिदासजी प्रसिद्ध सन्त हुए हैं। इनकी बाणी भी उपलब्ध हुई है इनके अतिरिक्त बनवारी जी के किसी शिष्य की बाणी अथवा साहित्य का पता नहीं चलता ।

सन्त हरिदास

कहा जाता है कि ये जाति के राजपूत थे । इनका बचपन का नाम हरिसिंह था। इनके जन्म सम्वत् स्थान तथा माता पिता इत्यादि के विषय में कोई प्रामाणिक जानकारी नहीं मिलती अनुमानत: सम्वत् 1750 और 1775 के बीच कभी इनका जन्म हुआ होगा ।[2] प्रसिद्ध है कि हरिसिंह जिला हिसार के आसपास एक प्रख्यात डकैत (डाकू) थे । इनके नाममात्र से लोग काँपते थे । एक बार जंगल में कुछ यात्री रात्रि के समय विश्राम कर रहे थे । ये सभी हरिसिंह से भयभीत थे । इनमें से एक ने कहा कि यदि हरिसिंह आ गया तो ? दूसरे ने उत्तर दिया कि हम क्या कम हैं ? इन्हीं में से एक ने कहा कि वह तो बड़ा क्रूर एवं अत्याचारी है। उसने सैंकड़ों घर उजाड़ दिए हैं, कितनी ही स्त्रियों को विधवा कर दिया है, कितने ही बच्चों को अनाथ कर दिया है । दैवयोग से हरिसिंह भी कहीं पास से ही यह सब सुन रहे थे । फिर एक यात्री बोल उठा कि क्या हरिसिंह के बाल बच्चे नहीं हैं ? क्या हरिसिंह हृदयहीन है ? इन डाकुओं का कैसा भला होगा ? परमात्मा के घर में हरिसिंह अपने पापों का कैसे प्रायश्चित करेंगे ? कहते हैं कि इन बातों से

---

1. श्री हरिशास्त्री, सन्त सरोज, पृ० 1-14 द्रष्टव्य
2. श्री हरिदास वाणी, भूमिका, पृ० 5

हरिसिंह को तत्काल तीव्र वैराग्य हो गया।[1] और वे गुरु की तलाश में चल पड़े। उन्हीं दिनों हिसार के निकट उमरा नामक ग्राम में परमसिद्ध महात्मा नारायणदास रहते थे। हरिसिंह भी घूमते-घूमते नारायणदास जी सेवा में उपस्थित हुए। हरिसिंह के बार-बार प्रार्थना करने पर इनको महात्मा ने दीक्षा दे दी और इनका नाम हरिदास रख दिया। हरिदास गुरु की अनुमति लेकर भ्रमण करते हुए बवाणी खेड़ा, भिवानी, बौंद होते हुए लगभग सम्वत् 1780 के आसपास राणीला ग्राम में पधारे।[2]

कहा जाता है कि राणीला प्रवास में आपका सत्संग स्वामी नितानन्द से भी होता था। ये नितानन्दजी नितानन्दी भेष के प्रवर्त्तक प्रसिद्ध सन्त हुए हैं जिनका साधना स्थल माजरा ग्राम था। राणीला और माजरा निकटवर्ती ग्राम हैं। यह नितान्त सम्भव है कि ये दोनों महात्मा ज्ञान-गोष्ठी करते रहे हों।

एक बार हरिदासजी रामत करते हुए बौंद, कलानौर, होते हुए मोखरा ग्राम की बाणी में कुछ दिन भजन करते रहे। एक दिन कलानौर-निवासी राजपूत शिकारी चूहड़खां ने आपको दूर से हिरण समझकर गोली मार दी जो पाँव में लगी। शिकारी राजपूत ने बड़ा पश्चात्ताप किया और उनको कलानौर लिवा लाया और उनके रहने के लिए एक सुन्दर कुटिया वनवा दी कलानौर के एक पहुँचे हुए मुस्लिम फकीर से भी आपकी ज्ञान-चर्चा का उल्लेख मिलता है। इस गोष्ठी का प्रमाण-हरिदासजी द्वारा रचित 'नसीहत नामा' नामक रचना बतलाई जाती है जो हरियाणा भर में प्रसिद्ध है।[3] कहा जाता है एक बार अकाल पड़ने के कारण एक सेवक ने वर्षा के लिए आग्रह किया। बाबा ने पूछा कि कितनी वर्षा? तो सेवक ने खड़े-खड़े वृक्ष की टहनी को हाथ लगाकर कहा कि यहाँ तक। कहते हैं कि हरिदासजी ने मलार राग में प्रभु की स्तुति आरम्भ कर दी। जिससे धारासार वर्षा होने लगी। सब जल-थल हो गया। लोग बाबा के पास आकर वर्षा बन्द करवाने के लिए प्रार्थना करने लगे तो उनको बताया कि इस टहनी तक वर्षा होगी। इस पर सभी त्राहि-त्राहि कर उठे तो हरिदास ने उस टहनी को तोड़कर भूमि पर गिराने को कहा। ऐसा करते ही वर्षा बन्द हो गई।[4] इसी प्रकार की अनेक चामत्कारिक घटनाओं का उल्लेख मिलता है जिससे पता चलता है कि हरिदासजी को सभी ऋद्धि-सिद्धियां प्राप्त थीं।

हरिदासजी का देहान्त कलानौर में हुआ। राणीला वाले साधुओं को देहान्त

---

1. श्री हरिदास, बाणी, पृ० 6
2. वही, पृ० 6
3. वही, पृ० 7
4. वही, पृ० 8

का पता चला तो रातों-रात उनके शव को कलानौर से ले भागे। जब कलानौर वालों की जाग खुली तो वे भी पीछा करते-करते शव ले जाने वालों को रणीला की सीमा पर पकड़ने में सफल हो गए। अन्त में वहीं गाँव से बाहर सांजरवास और राणीला की सीमा पर इनका दाह-संस्कार कर दिया गया। एक छोटी-सी पक्की समाधि यहाँ बनी हुई है। आसपास के गाँवों में आपकी अब तक मान्यता कायम है।

बाणी—महाराज हरिदास की बाणी 'श्री दादू सेवक' नामक साम्प्रदायिक पत्र के विशेषांक में रूप में 25-7-45 को छपी थी। इसका सम्पादन दादू महासभा जयपुर के वर्तमान अध्यक्ष स्वामी जीवानन्द ने किया है। वाणी को पाँच भागों में विभाजित किया गया है। पहला भाग—साखी भाग है, दूसरा अरिलभाग है, तीसरे भाग में पद हैं, चौथे में कवित्त और सवैया संकलित हैं तथा पाँचवें भाग में भक्त बिरदावली और नसीहत नामा' है। अन्त में एक परिशिष्ट भी है जिसमें कुछ छोटे-छोटे अंग हैं। यह पहले भाग का ही अवशिष्ट है। बाणी कुल 142 पृष्ठों में आई है।

बाणी के प्रथम भाग में छोटे-बड़े 13 अंग हैं। प्रथम अंग गुरुदेव का अंग है, जिसमें 40 साखियाँ हैं। 'सुमिरण का अंग' में 98 साखियाँ हैं। विरह के अंग के अन्तर्गत 61 साखियाँ हैं। सुन्दरी का अंग केवल 18 साखियों में है। सूरातन के अंग की साखी संख्या 92 है। पतिव्रता 26 तथा पीव पिछाण का अंग 25 साखियों में समाहित है। विनती नामक अंग में 60 साखियाँ हैं। कुसंगति 12 तथा ज्ञान अन्ध पगला के अंग में केवल 7 साखियाँ हैं। निगुण नर 16, भक्तद्रोही 15 तथा जीवित मृतक अंग में 20 साखियाँ हैं। कुल साखी संख्या 480 है। अन्तिम परिशिष्ट भाग भी इसी के साथ संलग्न होना चाहिए था। इसमें छोटे-बड़े 8 अंग सम्मिलित हैं। कपटी गुरु का अंग में 7 साखियाँ कामी गुरु का अंग में 11, ज्ञान अन्ध गुरु सिख अंग में 22, ज्ञानवन्त त्यागी सिख का अंग में 13 साखियाँ समाहित हैं। अज्ञानी बेअकिल सिख का अंग में 13 साखियाँ हैं। ज्ञान अन्ध पगला का अंग में 7 तथा गुरु सिख सेवा सरखरू मुक्ति गिरामी का अंग में 30 साखियाँ हैं। अन्त में गुरु महिमा की 7 साखियाँ हैं जिनमें भावों की गम्भीरता तथा भाषा की सरसता सराहनीय हैं। इस प्रकार बाणी में कुल साखियों की संख्या 590 हो जाती है। अंग शीर्षक से विषय का अनुमान सहज ही हो जाता है। भाव-भाषा की दृष्टि से हरिदास जी की बाणी का साखी भाग उच्चकोटि का है। अनुभूति की प्रगाढ़ता तथा प्रामाणिकता का साखियों के अवलोकन से सहज ही आभास हो जाता है।

बाणी का दूसरा भाग 'अरिल भाग' है—जिसमें विभिन्न अंगों को अरिल्ल छन्द में दिया गया है। गुरुदेव सम्बन्धी 17 अरिल्ल है, सुमिरण विषयक 22

अरिल्ल हैं, बिरह शीर्षक के अन्तर्गत 20 अरिल्ल, सूम को 27 अरिल्लों में विवृत्त किया गया है। सूरातन सम्बन्धी 8, काल विषयक 3 तथा कामी नर सम्बन्धित 2 अरिल्ल हैं दिए हुए हैं। इस प्रकार कुल 99 अरिल्ल है। सन्त वाजिन्द अथवा बाजीदशाह (दादूपन्थी) के अरिल्ल बहुत प्रसिद्ध हैं। किन्तु हरिदासजी के अरिल्ल भी वाजिन्द से भाव, भाषा एवं प्रवाह में किसी भी तरह कम प्रतीत नहीं होते। प्रत्येक अरिल्ल हरिदास जी की मस्ती तथा उनकी गहरी अनुभूति का प्रमाण है। भाषा में सरलता है। सभी अरिल्ल गेयात्मकता से भरपूर हैं। अनूठा उपदेश किस सहज एवं प्रभावशाली ढंग से अरिल्ल में समाहित है इसके लिए एक अरिल्ल का उदाहरण लिया जा सकता है—

'नेकी करिए बीर बदी किस काम की, मरणा बिस्वै बीस दुहाई राम की।
लेणा हरि का नाँव हाथ तैं दीजिए, हरिदास हरि हाँ ढील नहीं कीजिए।।'[1]

प्रत्येक अरिल्ल सीधा हृदय पर चोट करता प्रतीत होता है। यहाँ साहित्यिकता भी इन अरिल्ल छन्दों में प्रचुर मात्रा में विद्यमान है।

वाणी के तीसरे भाग में 199 पद हैं जो विभिन्न राग-शीर्षकों के अन्तर्गत दिए हैं। राग सोरठ के अन्तर्गत 41 पद, खम्भायच में 1 पद, : केदार 37, मारू 87, बिहागड़ा 14, बसन्त 10, रामकली 1, गौड़ी 3, कनड़ो 2, धमाश्री राग के अन्तर्गत 3 तथा अष्टक आरती के अन्तर्गत 3 पद हैं। सभी पदों में गेय तत्व प्रभूत मात्रा में विद्यमान है। अनुभूति की तीव्रता, प्रवाहात्मकता तथा प्रभावात्मकता सभी पदों में लक्षित होती है। ये सभी पद भी साहित्यिकता में पीछे नहीं हैं।

चौथा भाग—कवित्त, सवैया भाग है। इसमें 'श्रवंग कवित्त' संख्या 49 है। विषयों की विविधता से हरिदास जी का अनुभवी एवं बहुज्ञ रूप सामने आता है। सवैयों की संख्या 28 है। इनमें विषय विविधता एवं उच्चकोटि की साहित्यिकता के दर्शन होते हैं। एक बात ध्यान देने योग्य है कि इन सवैयों और कवित्तों में रज्जब जी की छाप लगी हुई है। इसका स्पष्टीकरण सम्पादक ने इस प्रकार दिया है—'वाणी के कवित्त और सवैया भाग में रज्जबजी महाराज का भोग लगता है। किन्तु ये कवित्त और सवैया महाराज हरिदास की सभी हस्तलिखित बाणियों में समान रूप से मिलते हैं और रचना भी हरिदास जी की ही प्रतीत होती है। अतएव रज्जब जी महाराज की बाणी में इन पदों का प्रकाशन नहीं हुआ है। वंश परम्परा के बुजुर्ग महन्त सन्तों से भी जानकारी करने पर इसी सत्य की पुष्टि हुई है। अतः उन्हें भी अक्षरशः इसी वाणी में प्रकाशित किया है।[2] वाणी के सम्पादक महोदय स्वयं दादूपन्थी महन्त एवं विद्वान् हैं। बाणी का अन्तिम भाग भी बहुत महत्वपूर्ण

---

1. श्री हरिदासजी की बाणी, पृ० 52
2. वही, पृ० 13

है। इस भाग में हरिदासजी की दो रचनाएँ संकलित हैं—एक तो 'नसीहत नामा' है तथा दूसरी 'भक्त विरदावली' है। 'नसीहत नामा' के लिए तो प्रसिद्ध है कि है कि कलानौर में कोई मुस्लिम साधक थे जिनको हरिदास जी ने धर्म की वास्तविक सीख (नसीहत) देने के लिए 'नसीहतनामा' की रचना की थी। दूबलधन के ऊजड़-दादूपन्थी थांबे से नसीहतनामा की स्वतन्त्र रूप से छपी हुई सैकड़ों प्रतियाँ मुझे प्राप्त हुई हैं। इसकी उपादेयता ही इसके प्रचार का बड़ा कारण रही लगती है। हरिदास-कृत भक्त विरदावली 40 छन्दों में वर्णित है। यह विरदावली भी दादूपन्थी साधकों में पर्याप्त लोकप्रिय है। दादूपन्थी साधु 'भक्ति विरदावली' के कई छन्दों को कण्ठस्थ कर गाते हैं। विरदावली में भगवद्वत्सलता का बड़ा सुन्दर ढंग से प्रतिपादन किया गया है। इसके अन्त में गुरु के नाम, स्थान एवं उनकी कृपा को इन शब्दों में संकेतित किया गया है—

दादूपन्थी नारायणदास, उत्तराधा है सन्त ।।
तिनका शिष्य है हरिदास, जिन पढ्या बिड़द भववन्त ।।
नगर अमर रहत हैं, तहाँ लिया उपदेश,
भवसागर में डूबताँ, कर गह काढ़े केश ।।[2]

वैसे तो इनकी शिष्य-परम्परा काफी समृद्ध है वतलायी जाती है किन्तु पूरी शिष्य-सूची सुलभ नहीं है। इनके 22 प्रसिद्ध शिष्यों के नाम गद्दियों सहित इस प्रकार हैं—

शिष्य-परम्परा

(1) केवलदास—राणीला, (2) कनीराम—बुवाणी, (3) हरनामदास—भिवानी (4) कल्याणदास—माणकावास (5) भगोतदास—गागड़वास, (6) अटलराम—साँभर (7)मनोहरदास—गूढ़ा (8)सहजराम—झज्जर (9)हेतमदास—तालाब (10) काशीराम—धामड़ (11) धर्मदास—रमतेराम (12) मालूकदास—उदेरामसर (13) दयाराम जी—रामतेराम (14) परशुराम—मोखरा (15) मानदास—हरना (?), (16) नेतराम—पीपलोदा (17) नन्दराम—छतूमोहड़ा (18) आत्माराम—भैणी (19) नन्दरामजी—कलानौर (20) चेतराम—बौंद (21) सारंगदास—काहनौर (22) चरणदास—दूबलधन। हरिदास जी की राणीला गद्दी की शिष्य-परम्परा इस प्रकार है—हरिदासजी, केवलदास जी, बाबा बिसनदास, मोतीराम, हरजीराम, बुद्धराम, गुमानदास, मोटाराम, तथा रामदास। आजकल रामेश्वरदास राणीला की गद्दी पर विराजमान हैं। किन्तु इन शिष्यों में से किसी की भी वाणी अथवा किसी प्रकार का साहित्य होने की जानकारी नहीं मिली।

---

1. श्री हरिदास की बाणी, पृ० 136

साधु-निश्चलदास

उत्तराधे के दादूपन्थी साधुओं में साधू निश्चलदास का महत्वपूर्ण स्थान है। दादूपन्थी सन्तों में उच्चकोटि के विद्वान् साधक सुन्दरदास (छोटे) तथा निश्चलदास ही हुए हैं। निश्चलदास का जन्म सम्वत् निश्चित नहीं है। इनका जन्मस्थान कूँगड़ ग्राम है जो ज़िला हिसार की हांसी तहसील में स्थित है। ये जाति के जाट थे। कहा जाता है कि शारीरिक दृष्टि से ये बड़े सुडौल एवं सुदर्शन थे। बचपन में ही किसी दादूपन्थी साधु ने इनको दीक्षा दी थी। जाट होने के नाते पंडित इन्हें संस्कृत ज्ञान का पात्र नहीं समझते थे। सो कहा जाता है कि संस्कृत अध्ययन के लिए इन्होंने काशी में जाकर झूठे ही अपने को ब्राह्मण बतला दिया। यह भेद तब खुला जब एक पंडितजी अपनी कन्या का विवाह इनसे करने के लिए हठ करने लगे। कहते हैं कि पंडित ने इनको दो पत्नियों की गृहस्थी का भार ढोने का अभिशाप दिया। प्रसिद्ध है कि काशी से आने पर इन्होंने दो विवाह किए। कहा जाता है कि बूँदी के राजा रामसिंह इनका बड़ा सम्मान करते थे और इन्होंने इनका शिष्यत्व भी ग्रहण किया था। राजा रामसिंह की प्रार्थना पर निश्चलदास ने 'वृत्ति प्रभाकर' की रचना की जिससे इनके संस्कृत के गूढ़ ज्ञान का लाभ सामान्य भाषा जानने वालों को भी प्राप्त हो सके।[1] अन्तिम समय में आप किड़हौली तहसील सोनीपत में निवास करने लगे। किड़हौली में निश्चलदास ने एक पाठशाला का शुभारम्भ किया जो आज तक चल रही है। इनकी बड़ी गद्दी किड़हौली में ही है किन्तु इनके शिष्यों में कोई भी उल्लेखनीय साधक अथवा विद्वान नहीं है। इनका देहान्त सम्वत् 1920 में दिल्ली में हुआ बतलाते हैं।[2]

साहित्य

विचारसागर, वृत्ति प्रभाकर, मुक्ति प्रकाश, एक वैद्यक ग्रन्थ तथा कठोपनिषद् की संस्कृत व्याख्या—निश्चलदास की रचनाएँ बतलाई जाती हैं।[3] धार्मिक एवं साम्प्रदायिक दृष्टि से इनका 'विचार सागर' ग्रन्थ ही उल्लेखनीय है।

विचार सागर

'विचार सागर' सात तरंगों में विभाजित है। प्रथम तरंग अनुबन्ध सामान्य निरूपण में सम्बन्धित है जिसमें वस्तु निर्देश, ग्रन्थ हेतु तथा ग्रन्थ महिमा इत्यादि

---

1. निश्चलदास, विचार सागर, प्रस्तावना, पृ० 8
2. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० 516
3. वही, पृ० 515

है। द्वितीय तरंग में अनुबन्ध विशेष निरूपण के अन्तर्गत जीव, जगत्, ब्रह्म, इत्यादि का सम्बन्ध तथा स्वरूप वर्णन है। तृतीय तरंग में गुरु शिष्य लक्षण तथा गुरुभक्ति फल इत्यादि का निरूपण किया गया है। चतुर्थ तरंग में उत्तराधिकारी उपदेश निरूपण किया गया है। पंचम तरंग में वेदादि का व्यावहारिक प्रतिपादन तथा मध्यमाधिकारी साधन निरूपण हैं। षष्ट तरंग में 'वेदादि साधन मिथ्यावर्णनम्' के अन्तर्गत जागतिक विश्लेषण है। अन्तिम सप्तम तरंग में जीवन मुक्ति, विदेह-मुक्ति का वर्णन है। ग्रन्थ के प्रयोजन जा उल्लेख करते हुए निश्चलदास का कथन है :

"यह विचार सागर कियो, जामें रत्न अनेक।
गोप्य वेद सिद्धान्त तैं प्रगट लहत सविवेक॥
साँख्य न्याय में श्रम कियो, पढ़ि व्याकरण अशेष।
पढ़े ग्रंथ अद्वैत के, रह्या ने एकहुँ शेष॥
कठिन जु और निबन्ध हैं, जिनमें मत के भेद।
श्रम तैं अवगाहन किये, निश्चलदास सवेद॥
तिन यह भाषा ग्रंथ किया, रंच न उपजी लाज।
तामैं यह इक हेतु है, दया धर्म सिरताज॥
बिन व्याकरण न पढ़ि सकै, ग्रंथ संस्कृतमद।
पढ़ै याहि अनयास ही, लहै सुपरमानन्द॥[1]

'विचारसागर' किड़हौली ग्राम में ही रचा गया, इसका उल्लेख करते हुए निश्चलदास का कहना है—

दिल्ली तैं पश्चिम दिशा, कोस अठारह गाम।
तामें यह पूरो भयौ, किहडौली तिहि नाम॥[2]

उपर्युक्त प्रयोजन कथन में जैसा कि निश्चलदास ने संकेत किया है कि वेद, शास्त्र तथा अन्य अनेक ग्रंथों का सार यह 'विचारसागर' जनभाषा में प्रस्तुत किया है। इसकी इसी उपयोगिता तथा महात्म्य के कारण स्वामी विवेकानन्द ने 'विचार सागर' की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि—'भारत के अन्तर्गत पिछली तीन शताब्दियों में इतना महत्वपूर्ण भाषाग्रंथ और देखने में नहीं आया।'[3] सारे ग्रंथ में दोहा-चौपाई का ही प्रमुखतः प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं सोरठा तथा कवित्त से भी काम लिया गया है। इतनी विषद ज्ञान राशि को इतना सहज, सरल और सुन्दर

---

1. विचारसागर; निश्चलदास, पृ० 327-28
2. वही, पृ० 328
3. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० 515

ढंग से अभिव्यक्ति करना निश्चय ही बहुत बड़ी उपलब्धि है। निश्चलदास की शिष्य परम्परा में और कोई उल्लेखनीय साधु नहीं हुआ जिसका कोई साहित्यक योगदान रहा हो। दादूपन्थ में निश्चलदास का महत्वपूर्ण स्थान सदा ही बना रहेगा।

संत हरदास

संत हरदास का उतराधे दादूपन्थी सन्तों में अपना महत्वपूर्ण स्थान है। दादू जी के 52 प्रसिद्ध शिष्यों में वे इनका नाम बाबा बनवारीदास के साथ ही लिया जाता है।[1] राघोदास ने इनको बनवारीदास (जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है) का भ्राता बतलाया है।[2] इसके साथ ही दादूदयाल जी के शिष्यों के भजन स्थानों का निरूपण करते हुए भी हरदास का भजन स्थान बनवारीदास के साथ रतिये का जंगल बतलाया है।[3] इन बातों से इतना स्पष्ट है कि हरदासजी दादू के शिष्य, उत्तर धे दादूपन्थी सन्त, बनवारीदास के भाई अथवा गुरुभाई थे तथा 'रतिया' नामक ग्राम के जंगल में रहकर भजन करते थे। इसके अतिरिक्त कोई अन्य जानकारी हरदास के विषय में नहीं मिलती।

दो हस्तलिखित बड़े महत्वपूर्ण ग्रंथ मुझे देखने को मिले हैं जिनमें से एक जिला हिसार स्थित उमरा नामक ग्राम से तथा दूसरा ज़िला रोहतक स्थित काहनौर नामक ग्राम से। इन दोनों ग्रंथों में हरदास जी की बाणी संकलित है। इनमें से एक ग्रन्थ तो यही है (उसी की प्रतिलिपि है) जिसे डा० पीताम्बरत्त बड़थ्वाल ने संत मत सम्बन्धी विचारों का पूरा सार ग्रंथ तथा आध्यात्मिक साहित्य का एक वास्तविक पुस्तकालय नाम दिया है।[4] दूसरे ग्रंथ में दादू, कबीर, रैदास, नामदेव तथा हरदास, सुन्दरदास, इत्यादि कई दादूपन्थी संतों की बाणी संकलित है। हरदास की बाणी को देखने से मुझे कुछ ऐसा लगा कि हो न हो ये हरदास जी कोई इसी क्षेत्र के सन्त हैं। अपनी धारणा को पुष्ट करने के लिए मैं जयपुर स्थित दादू द्वारे गया जहाँ दादू महासभा के वर्तमान अध्यक्ष महंत श्री जीवानन्द जी से साक्षात्कार किया। महंत जी ने मेरी धारणा की पुष्टि करते हुए कहा कि निश्चय ही हरदास की बाणी जो आपने हस्तलिखित ग्रंथों में देखी है वह किसी उत्तराधे दादूपन्थी की ही बाणी है, किन्तु इनके विषय में प्रमाण स्वरूप कोई सामग्री हम आपको नहीं दे सकते। यह ध्यान रखने की बात है कि ये जीवानन्द जी 'दादू सेवक' नामक

---

1. राधोदास-कृत भक्तमाल, पृ० 191
2. 'तिन मधि बरनौं दोइ, उत्म उत्तराधा भ्राता'—भक्तकाल, पृ० 191
3. 'बनवारी हरदास—रतिये जंगल मधि'—वही, पृ० 270
4. डा० बड़थ्वाल, हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० 436

पत्र के वर्षों तक सम्पादक रहे हैं तथा श्री हरिदास की बाणी का सम्पादन भी इन्होंने किया है जिसका परिचय इस अध्याय के आरम्भ में दिया गया है। ये सुशिक्षित विद्वान् साधक हैं तथा इनकी बात का बड़ा मोल है।

जीवानन्द जी से मिलने तथा राधोदास-कृत भक्तमाल के साक्ष्यों के पश्चात् हरदास जी की बाणी की शरण ली कि शायद कोई साक्ष्य संकेत हाथ लग जाए, किन्तु कहीं कोई तथ्य अथवा संकेत उन सम्बन्धी जानकारी देने वाला नहीं मिला। हां, बाणी की भाषा के सम्बन्ध में यह निश्चय ज़रूर हो गया कि भाषा हिसार और रोहतक ज़िले बे चीम के प्रयोगों से युक्त है। कुछ भाषा प्रयोग ऐसे हैं जो केवल हरियाणा के इसी क्षेत्र (विशेषकर हिसार तथा रोहतक) के विशिष्ट एवं विरल प्रयोग कहे जा सकते हैं।

हरदास जी की बाणी पूर्वोल्लेखित दो हस्तलिखित ग्रन्थों में संकलित हैं। दोनों ही ग्रन्थों में पद संख्या समान है। 'बाणी' का शुभारम्भ इस प्रकार होता है—

बाणी

"अथ हरदास जी की बांणी माडी ।। पदलिषितं ।। राग गौड़ी ।।'

'राग गौड़ी' के अंतर्गत 29 पद संकलित हैं। 'राग सामग्री' में 21 पद, राग असवारी में 15 पद, 'राग गुड़ा' में 4 पद, राग 'सोरठि' में 8 पद, 'राग वसंत में 4 पद, राग भैरों में 11 पद, 'बिलाबल' में 7 पद, केदार में दो पद तथा 'राग धनाश्री के अन्तर्गत एक पद संकलित है। इस प्रकार सभी रागों के अन्तर्गत आए हुए पदों की संख्या कुल 102 होती है। एक पद 'आरती' शीर्षक से भी पाया जाता है। इन रागों के पश्चात् 'रमैणी' शीर्षक से 'राग मारू' के अन्तर्गत 5 पद और भी है। इन पांच पदों को भी सम्मिलित करलें तो पदों की संख्या 108 हो जाती है। तदनन्तर 'दस पदी रमैणी' 'बारह पदी रमैणी', तथा 'प्रन्द्रवतिथि रमैणी' के शीर्षक के अन्तर्गत क्रमशः 10,12 तथा 16 रमैणियाँ संकलित हैं। प्रत्येक रमैणी में चौपाई छन्द की 8 पंक्तियाँ अर्थात् 16 अर्द्धालियाँ हैं। पन्द्रहतिथि में 16 रमैणी होने के कारण—अमावस से पूनम तक 16 तिथियों का होना है जिसमें प्रत्येक तिथि के व्याज से सीख देने की परम्परा का सुन्दर निर्वाह किया गया है। इनके अतिरिक्त 4 साखियाँ भी संकलित हैं।

सारी बाणी में विषय की दृष्टि से प्रायः उपदेशात्मक, बिनती परक तथा साधना सम्बन्धी पद ही पाए जाते हैं। अधिकाँश पद 'अवधू' तथा सन्तों को सम्बोधित हैं। एक पद में 'माई' अर्थात् माता अथवा सामान्य स्त्री को सम्बोधित कर सीख दे रहे हैं—

मेरी माई री अपनो पतिव्रत कीजै ।।
कंवल नइन के गुण किन गावै, जव लग जग में जीजै ।। टेक ।।

विषिया मूल बात तजि औरे, चित्त चरणो तलि दीजै ।।
गांठि न बीचै गरथ न लागै, सींति सुधा रस पीजै ।। 1 ।।
सुणि बै सीष समंझि मति मेरी, आव घटै तन छीजै ।।
कहै हरदास अवधि दिन आवै राम रटणि करि लीजै ।। 2 ।।[1]

उपर्युक्त पद से हरदास जी की भाषा तथा अभिव्यक्ति की सहजता का अनुमान भली प्रकार हो जाता है। प्रायः सभी पद सहज स्फूर्त हैं। सायास खींचतान इनकी बाणी में नहीं है। भाषा में ठेठ हरियाणवी शब्दों का प्रयोग खूब मिलता है। कई पदों में इनकी अनुभूति की सघनता के दर्शन होते हैं।

इनके शिष्यों तथा इनके द्वारा स्थापित गद्दियों इत्यादि की कोई जानकारी नहीं मिल पाई। इनके भजन स्थान 'रतिया' से भी किसी प्रकार की सूचना उपलब्ध नहीं हुई।

नितानन्दी प्रमुख ढिकाने-माजरा (दूबलधन) ग्राम से दो हस्तलिखित पोथियां प्राप्त हुई हैं जिनका उल्लेख आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने दादूपन्थी साहित्य के अन्तर्गत किया है। प्रथम रचना अनाथदास द्वारा रचित 'विचार-माल' है जिसका उल्लेख चतुर्वेदी जी ने इस प्रकार किया है—इसी प्रकार 'विचार-माला' के रचयिता अनाथदास के विचारों के साथ भी सुन्दरदास के सिद्धान्तों का आश्चर्यजनक मेल खाता है। दोनों के समकालीन होने के कारण उनकी भेंट का अनुमान लगाया जा सकता है।'[2] दूसरी रचना चतुरदास द्वारा रचित 'भागवत एकादश स्कंध की भाषा टीका' है जिसका उल्लेख आचार्य चतुर्वेदी ने इस प्रकार किया है, 'दादू शिष्य सन्तदास जी के शिष्य थे जिनके एक अन्य शिष्य चतुरदास जी द्वारा लिखित कोई 'श्रीमद्भागवत' (एकादश स्कंध; रचनाकाल संख्या 1692) का भी उपलब्ध होना बतलाया जाता है।'[3] इन्हीं दोनों रचनाओं का उल्लेख हमें पंजाब—प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास' में भी उपलब्ध होता है। इस इतिहास ग्रन्थ में 'विचार-माला' को अनाथपुरी द्वारा रचित बतलाया गया है जिसका विषय वेदान्त तथा लिपि गुरुमुखी है।[4] इसी इतिहास ग्रंथ में दूसरी रचना का उल्लेख इस प्रकार है—'चतुरदास—इनके विषय में कुछ अधिक ज्ञात नहीं हो सका। संवत् 1952 विक्रमी में अपने भागवत के 11वें स्कंध का भाषा-अनुवाद दोहा-चौपाई में किया

---

1. हरदास की बाणी, राग घनाश्री (हस्तलिखित)
2. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० 510-11
3. वही, पृ० 513
4. पंडित चन्द्रकान्त बाली, पंजाब प्रांतीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 391

था। भाषा ब्रज और अनुवाद शब्दात्मक न होकर भावात्मक है।'[1] उल्लिखित रचनाओं का परिचय देना आवश्यक है क्योंकि अनाथदास चतुरदास दोनों ही दादू-पन्थी सन्त हुए हैं। इन रचनाओं की लोकप्रियता को देखते हुए तो यह अनुमान भी लगाना संगत है कि ये दोनों 'उत्तराधे दादूपन्थी' सन्त हुए हों।

अनाथ-कृत विचारमाल

यह 'विचारमाल' नामक पोथी की हस्तलिखित है। मुझे इस पोथी की दो प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं। एक तो यह स्वतन्त्र पौथी के रूप में है जिसकी पुष्पिका में लिपिकर्ता ने अपना परिचय तथा समय संकेत इस प्रकार दिया है: 'इति श्री विचार-माल सम्पूर्ण'—लिपिकृतं चौबे जी नयनसुख बावला का। पठनार्थं साधु हरनामदास मिति असौज शुद्धि 15 भृगु बासरे संवत्सर 1928 शुभं भूयात्॥' यह पोथी तो किसी साधु हरनामदास के पढ़ने के लिए नयनसुख चौबे जी ने लिखी जो बावल (गुड़गाँव) के निवासी थे। विचार-माल की दूसरी प्रति—नितादन्द जी की हस्तलिखित बाणी के पीछे सम्बन्ध है। इसके पीछे लिपिकर्ता ने लिखा है—'इतिश्री विचारमाल सम्पूर्ण समाप्त॥ संवत् 1892, कातिग सुदी तीज, थावरबार-सुकलपक्ष॥ स्वामी नितानन्द जी की बाणी। शब्द ? एकादश भागवत, विचारमाल सम्पूर्ण समापते॥ षेड़ी नगर में पुस्तग सम्पूरन हुआ॥ वधवाणा के प्रगनै दौला की षेड़ी। श्री परमगुरु सहाय॥ श्री गेणेशाय नमः श्री स्वामी संतदास जी का सिस श्री भगतदास जी की लेषक॥' उपर्युक्त दोनों लिपिकर्त्ताओं ने जो ठिकाने दिए हैं वे निश्चित रूप से नितानन्दी भेष के ठिकाने हैं। बावल, ज़िला गुड़गांव में स्थित है और खेड़ी (दौलांकी) नारनौल के निकट बधवाने के आसपास स्थित हैं। ये साधु हरनामदास तथा सन्त दास के शिष्य भगतराम जी भी निश्चित रूप से नितानन्दी साधु रहे होंगे। किन्तु अब इनका परिचय बताने वाला कोई भी सज्जन नहीं मिल सका। अब ये ठिकाने भी वीरान हैं, ध्वस्त हैं।

'विचारमाल' में आठ विश्राम हैं। प्रथम विश्राम के अन्तर्गत गुरुस्तुति (गुरु-महिमा) 28 साखियों में वर्णित है। दूसरे विश्राम में 'संत्संगति महिमा 26 साखियों में आई है। तीसरे विभाग में 17 साखियां में 'ज्ञान भूमिका' वर्णन किया गया है। 35 साखियों वाला चतुर्थ विश्राम 'साधन' शीर्षक से आया है। पंचम विभाग में 'आत्मोपदेश' सम्बन्धी 20 सखियां हैं। षष्टम विश्राम के अन्तर्गत 20 साखी 'जगत मिथ्या के शीर्षक से दे रखी हैं। सप्त विश्राम में 'सिष्य अनुभव' के अन्तर्गत 21 साखी हैं। अष्टम् और अन्तिम विश्राम 'आत्म की स्थिति' 46

---

1. पंडित चन्द्रकान्त बाली, पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 359-60

साखियों में विवृत है। कुल साखियाँ 213 हैं। अन्त में 'विचारमाल' के विषय में लेखक का संकेत इस प्रकार है—

'लिखे पढ़ै अति प्रीत युत, अरु पुनि करौ विचार।'
छिन छिन ज्ञान प्रकाशित हो, सरब प्रकार ।।44।।
गीता भारत कौ मतौ एकादश की युक्ति ।
अष्टावक्र बसिष्ट पुनि कछुक आपनी उक्त ।।45।।
सत्रह सै छबीस समत माधवमास शुभ ।
मो मति नितक हुतीस तेतक वरन प्रगट करी ।। सोरठा ।।[1]

लेखक ने स्पष्ट लिखा है कि गीता, महाभारत तथा भागवत एकादश स्कन्ध आदि ग्रंथों का ज्ञान तथा अष्टाबक्र वशिष्टादि ऋषियों के साथ कुछ अभी भी उक्ति विचारमाल में सम्मिलित है। लेखक का कई स्थानों पर नाम आया है 'अनाथ' तथा 'जन अनाथ।' निम्न साखी से इनके गुरु 'मौनी जु' या मौनी जी का भी आभास मिलता है—

पद चंदन आनन्द जुत करि श्री देव मुरारि।
विचारमाल बरनन करूं मौनी जु उरधारि ।।[2]

नितानन्द जी की मृत्यु संवत् 1856 में हुई। इस रचना का काल संवत् 1726 दिया हुआ है। समय का व्यवधान अधिक होने से इन्हें 'नितानन्दी भेष' से सम्बद्ध तो किसी भी तरह नहीं किया जा सकता। इसके साथ-साथ इन गुरु शिष्य के विषय में भी कोई जानकारी नहीं है।

श्री चतुरदास-कृत भागवत एकादश स्कंध भाषा टीका

पोथी लगभग 600 पृष्ठों में है। कहीं कोई पृष्ठ संख्या नहीं लिखी है। पोथी के अन्त में समय तथा रचनाकार का उल्लेख है जो इस प्रकार है—

चौपाई : संवत सोलैसय बणुवाँ। जेठ सकल षष्ठी कुजदिया ।।
संतदास गुरुआग्याँ दीन्हीं। चतुरदास यह भाषा कीन्हीं ।।
दोहा : परम ज्ञान प्रगट करयो मम उरकै जिन देव।
ते मेरे उर नित बसौ संत दास गुरुदेव ।।[3]

उपर्युक्त चौपाई तथा दोहे से रचना का काल-संवत् 1692 ज्येष्ठ शुक्ल षष्ठी तथा रचनाकार संतदास के शिष्य श्री चतुरदास का स्पष्ट उल्लेख है। एकादश स्कन्ध की भाषा-टीका (जनभाषा में टीका) करने का हेतु भी उन्हीं के शब्दों में—

---

1. विचारमाल, श्री अनाथ-कृत, अन्तिम साखी
2. वही, आरम्भ में सा० 3
3. श्री चतुरदास, एकादश भाषा टीका, अन्तिम दोहा।

चौपाई : कृष्ण रूप तिन ग्यान सुनायौ । उधव जन निज पद पहुँचायौ ।।
सो ले कह्यो संस्कृत व्यास । तातैं होई न अर्थ प्रकाश ।।
जो पंडित जानै पै जोई । दूजो कदे न जाने कोई ।।
तातें तिन ऊब करुणा कीन्हीं । मो सेवग को आग्या दीन्हीं ।।
सब लोगन की हित मनधारी । मन उर कै भाषा बिस्तारी ।।
याकौं बाँचै सुने सुनावै । ध्यान करें ऊँचे स्वर गावै ।।
ते ते लहै ज्ञान वैराग । प्रेम भक्ति हरि को अनुराग ।।[1]

सारी रचना चौपाई छन्द तथा जनसामान्य भाषा में रची गई है। ऊपर चतुरदास ने स्पष्ट कर दिया है कि सामान्य जन हिताय संस्कृत से सर्वजनभाषा में टीका करने का हेतु यही रहा है कि यह अमूल्य ज्ञानराशि मात्र कुछ पंडितों तक ही सीमित न रह जाये। विषय वस्तु की जानकारी देने हेतु पोथी के आरम्भ में संकेत देते हुए चतुरदास जी का कहना है कि यह विचार प्रारम्भ में भगवान ने बिरंच (ब्रह्मा) को सुनाया। तत्पश्चात् यह ज्ञान बिरंच जी ने नारदमुनि से कहा, नारद ने व्यास को यह ज्ञान दिया। व्यास जी ने सुखदेव को और सुखदेव जी ने यह ज्ञान राजा परीक्षित से कहा। क्योंकि भगवान ने स्वयं इस ज्ञान का उच्चारण किया था सो इसको 'भागवत' कहते हैं। इसमें भगवान ने अपने तक आने का रास्ता बताया है जिसके सहारे बहुत से जन भगवान को प्राप्त हुए हैं। व्यास ने द्वादश स्कन्धों का वर्णन किया है जिनमें यह एकादश स्कन्ध अन्ध को आँखें देने वाले जैसा है। इस एकादश में इकतीस अध्याय हैं। आरम्भ में, यदुकुल सूर्य की महिमा करके बहु भाँति वैराग्य पैदा किया है। तत्पश्चात् 'हरपुर' पहुँचने के चार पंथों का विवरण योगेश्वरों ने किया है। वही सारा ज्ञान नारद ने सुखदेव से कहा जिससे सुखदेव को परमपद की प्राप्ति हुई। तदोपरान्त कृष्ण-उधव प्रस्ताव के सहारे सारे ज्ञान का वर्णन इत्यादि।[2] पोथी लगभग 500 पृष्ठों में है और नितानन्द जी की हस्त-लिखित वाणी के अन्त में लिपिकर्त्ता ने सम्बद्ध कर रखा है। लिपिक कोई भगत-दास हैं जिनके गुरु संतदास हैं। स्थान षेड़ी (जो पहले विचारमाल में उल्लिखित है) तथा संवत् 1892 दिया है। संतदास एवं उनके शिष्य चतुरदास की कुछ भी जानकारी प्राप्त करने में असमर्थ रहा हूँ।

साधना-पद्धति

संत हरिदास की बाणी में साधना सम्बन्धी संकेत पर्याप्त मिलते हैं जिनके आधार पर हरियाणवी दादूपंथी संतों की साधना का स्वरूप स्पष्ट किया जा सकता

---

1. श्री चतुरदास-कृत एकादश भाषा टीका, अन्तिम 53-56 चौ०
2. श्री चतुरदास-कृत एकादश भाषा टीका, (हस्तलिखित) आरम्भिक चौपाइयाँ

है । एक स्थान पर हरिदास कहते हैं कि सुरति सुहागन प्रसन्न होकर मंगलराग गा रही है, उसको सतगुरु ने शब्द बतला दिया है और इस विधि से इसी जन्म में प्रिय का साक्षात्कार संभव हो गया है ।[1] सतगुरु ने सुरति का शब्द से मेल करवा दिया और इस विधि से हरि के दर्शन हो गए । इस सुरति-शब्द साधना में सुरति, मन तथा पवन (प्राण) सभी को एक कर त्रिकुटी में ध्यान लगाना पड़ता है । इसी की ओर संकेत करते हुए एक पद में हरिदास का कहना है कि मन, पवन, तथा सुरति एक होकर त्रिवेणी तट पर झूल रहे हैं । पांच (तत्व) और पच्चीस (प्रकृति) स्थिर हो गए हैं । विषय-वासना सभी भूल गए हैं । भक्ति के लिए गुरु के उपदेशानुसार इस काया कुरुक्षेत्र का दान कर दिया है और हरि रूपी तीर्थ का स्पर्श लाभ पा लिया है जिससे कि इस संसार में फिर से नहीं लौटना पड़ेगा ।[2] इस सुरति शब्द साधना में नाम स्मरण अथवा जाप का महत्व बतलाते हुए इनका कहना है कि हरि का जाप बीज मन्त्र है—इस नाम जाप से जन्म-जन्म के पाप कटते हैं, जम की फाँसी कट जाती है । जो हरि का सुमिरन करता है उसकी तीन लोक में बड़ाई होती है...तथा हरि के दर्शन हो जाते हैं ।[3] साधक के लिए सुमिरन का महत्व अत्यधिक है । यह सुमिरन लदाव का महल है जिसमें दीमक इत्यादि का प्रभाव नहीं होता और साधक निर्भीक हो जाता है । इस सुमिरन के महल में बैठकर निःशंक हो जाता है । उसे जागतिक प्रपंच प्रभावित नहीं करते ।[4] यह सुमिरन स्वर्ग की सीढ़ी है, सुमिरन से ही सद्गति होती है । इस हरिनाम की नाव का सहारा लेकर कितने ही पतित तर गए हैं ।[5] इस साधना में सर्वोपरि स्थान गुरु का है—

गोबिन्द बैठा गोप हुय, ज्यों कूँवे में नीर ।
गुरु डोरी बिन हरिदास, जल पीवै नहीं बीर ।।[6]

कुँए में गुप्त जल के समान हरि को प्राप्त करने के लिए पिपासु साधक के लिए गुरु रूपी डोरी की अनिवार्यता तो प्यास बुझाने हेतु बनी ही रहती है ।

दादूपंथी संतों की रहनी को हरिदास जी ने एक पद में बड़े सुन्दर ढंग से

---

1. श्री हरिदास बाणी, पृ० 75, पद 150
2. मन अर पनव सुरति भई साहिल, त्रिवेणी तटि झूलै ।
   पाँचौ भई पचीसौं अस्थिर, विषय वाससा भूले ।।
   —श्री हरिदास बाणी, पृ० 93, पद 5
3. वही, पृ० 72; पद 5
4. वही, पृ० 23; पद 6
5. वही, पृ० 61, राम खंभायच
6. वही, पृ० 22, पद 240

व्यक्त किया है। वे 'वैष्णव रहनी' को आदर्श मानते हैं। हरिदास ने यहाँ 'वैष्णव' शब्द में नए अर्थ की उद्‌भावना की है। उनके अनुसार बीस और नौ उनतीस लक्षणों वाली रहनी ही वास्तविक वैष्णव रहनी है जो साधु के लिए आवश्यक है। साधु को सच्चा साधु बनने के लिए शील, संतोष, सत्य, हृदय में सुमिरन, दया तथा दीनता को धारण करना चाहिए। विरह, वैराग्त ज्ञान, गुरुसेवा, तथा प्रेम सहित हरि का गुणगान भी होना चाहिए। क्षमा, सखावत, (उदारता) इत्यादि पवित्र गुणों को धारण करना चाहिए। हुज्जत (व्यर्थ का विवाद), हिरस (सांसारिक सुखों की कामना), दोषदर्शन, निन्दा तथा विषय-वासना से दूर रहना चाहिए। ममता, मान, वैर भावना तथा गर्व-ग्रंथि से भी साधु को रहित होना चाहिए। निष्पक्ष भावना, राम से रति साधक के लिए अनिवार्य है। पाँचों इंद्रियों को वश में रखना चाहिए। भक्तिमात्र के लिए उपदेश का दान करना तथा ब्रह्म-चिन्तन भी साधु के लिए श्रेयस्कर है। इन गुणों वाला साधक स्वयं तो मुक्ति का पात्र होता ही है वह औरों का भी उद्धार कर सकता है।[1] सन्त हरिदास ने अपनी बाणी में इस वैष्णव रहनी का बड़ी तल्लीनता से व्याख्यान किया है।

लोक-संग्रह

सन्तमत के अन्य पन्थों की अपेक्षा दादूपंथ में लोक संग्रह अथवा लोक-कल्याण की भावना के अधिक दर्शन होते हैं। जहाँ चरणदासी महन्त अधिक धनाढ्य होते हुए भी केवल अपने ही सुख-साधनों का उपभोग करते देखते जाते हैं वहाँ दादूपंथी साधु अपने सीमित साधनों के बावजूद लोक कल्याणोन्मुख अधिक दिखाई देते हैं। इनके द्वारा चलाए गए धर्मार्थ औषधालय तथा पाठशालाएँ इनकी लोक कल्याणी वृत्ति की परिचायक हैं। दादूपंथी साधकों ने अपने आसपास रहने वाले दरिद्र-नारायण की बड़े गाढ़े समय में सेवा की है। भेषजज्ञान तो ऐसा लगता है कि दादू-

---

1. जब नर वैष्णव नाम धरावै, बीस नौ उणतीसों लक्षण, साधे साधु कहावै ।।
शील, संतोष, साँच उर सुमिरण, दयादीनता आवै। विरह, विराग, ज्ञान, गुरुसेवा प्रेमसहित गुण गावै ।।
क्षमा, सखावत, हंसज्ञान ले सुखसागर में झूले। हुज्जत हिरस दोषतानिंदा, विषयावासना भूलै ।।
ममता, मान, वैरता, छोड़ै, गाँठ गर्भ की गेरै। निरपष रहै राम सूराता, पाँचो इंद्री फेरै ।।
भक्तिहेत उपदेश दान दे, व्यापक ब्रह्म बिचारै। हरिदास होय मुक्तिग्रामी और सृष्टि को तोरै ।।
—श्री हरिदास की बाणी, पृ० 67, पद 22

पंथ का अनिवार्य अंग था। अब भी कई दादूँपंथी गद्दियों पर हस्तलिखित आयुर्वेदिक ग्रंथ विद्यमान हैं। जिनका प्रकाशन आयुर्विज्ञान के क्षेत्र में बड़ा लाभकारी सिद्ध होगा। ग्रामीण क्षेत्रों में कई पाठशालाएँ भी दादूपंथी चलाते रहे हैं। किन्तु अब लगता है कि ये लोकोपकारी आज की हवा से प्रभावित होकर प्रायः टकाधर्मी होते जा रहे हैं।

आरती

दादूपंथ में संध्या बंदन के समय दादू जी की 'पंच' आरती का गायन एक नियम है। आरती का एक भाग इस प्रकार है—

इहि विधि आरती राम की कीजै।
आत्मा अन्तर वारणा लीजै॥
तन मन चन्दन प्रेम की माला। अनहद घंटा दीन दयाला॥
ज्ञान का दीपक पवन की बाती। देव निरंजन पाँचों पाती॥
आनन्द मंगल भाव की सेवा। मनसा मन्दिर आत्म देवा॥
भक्ति निरन्तर मैं बलिहारी। दादू न जानै सेवा तुम्हारी॥

यह आरती का केवल एक ही अंग है, सम्पूर्ण आरती में ऐसे ही चार और पद हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक थाम्बे के संस्थापक संत की आरती भी दादू आरती के साथ गाने का नियम है।

दादूपंथी आपस में मिलने पर 'सत्यराम' कहकर एक दूसरे का अभिवादन करते हैं।

हरियाणा में दादूपंथी थाम्बे (गद्दियाँ)

राणीला, बुवाणी, भिवानी, माणकावास, गागड़वास सामर, गूढ़ा, झज्जर, तालाब, धामड़, उदेरामसर, मोखरा, पीपलोदा, छतूमोहड़ा, मैणी, कलानौर, बौंद, काहनौर, दूबलधन, रतिया, अलेवा, उमरा, किड़हौली, तथा माँडोठी। माँडोठी में दादू जी के शिष्य साधुराम जी, जो बनवारी जी के गुरु भाई थे, बड़े प्रसिद्ध संत हुए हैं किन्तु उनकी कोई बाणी उपलब्ध नहीं है, अतः उनकी चर्चा यहाँ नहीं की गई है। उपर्युक्त स्थानों के अतिरिक्त भी और बहुत सारे स्थान हैं किन्तु यही महत्वपूर्ण गद्दियाँ हैं और शेष इन्हीं की शाखा-प्रशाखाएँ हैं। धामड़ तथा दूबलधन की गद्दियाँ भी प्रायः नाम शेष ही हैं।

दादू पन्थ : उपलब्ध साहित्य

(1) बाबा बनवारी दास कृत '3 पद तथा 3 आरतियाँ' (हस्तलिखित), रतिवास्थित दादू पंथी थाँबे से प्राप्ति, (व्यक्तिगत संग्रह)

(2) श्री हरिदास जी की बाणी 'श्री दादू सेवक' का त्रैमासिक विशेषाँक, जुलाई, 1945, सम्पादक : स्वामी जीवानन्द, भारत भिक्षु, प्राप्ति-स्थान : राणीला दादूपन्थीथाम्बा, तहसील दादरी स्थित, पृष्ठ 143, (व्यक्तिगत संग्रह)।

(3) श्री निश्चल दास जी कृत 'श्री विचारसागर', प्रकाशक—श्री ब्रज-बल्लभ हरिप्रसाद जी, बम्बई, ज्ञानोदय प्रेस, माता गली मथुरा, सन् 1979 प्राप्तिस्थान : किडगौली, जिला सोनीपत (हरियाणा), पृ० 328, (व्यक्तिगत संग्रह)।

(4) श्री निश्चलदास जी कृत 'श्री वृत्ति प्रभाकर', वही, (व्यक्तिगत संग्रह)।

(5) श्री हरिदास कृत 'बाणी' (हस्तलिखित), 108 पद, रतिया—जिला हिसार तथा काहनौर, जिला—रोहतक, दोनों दादू पन्थी थाम्बों से प्राप्ति (व्यक्तिगत, संग्रह)।

(6) श्री अनाथदास कृत 'विचारमाल', (हस्तलिखित) नितानन्द पंथ के ठिकाने, माजरा (दुबलधन) से प्राप्ति, पृ० सं० 32, लेखनकाल—सम्वत् 1892 (व्यक्तिगत संग्रह)

(7) श्री चतुरदास कृत 'भागवत एकादश स्कंध' भाषा-टीका (हस्त-लिखित), पृ० सं० 600, प्राप्ति स्थान—वही, रचनाकाल—संवत् 1692 वि० (व्यक्तिगत संग्रह)

अध्याय 7

हरियाणा का समता-पंथ

समता-पंथ निर्गुण सम्प्रदाय की आधुनिक कड़ियों में से एक महत्वपूर्ण कड़ी है। इसके प्रवर्तक संत मंगतराम जी हुए हैं। समता पंथ अथवा समतावाद का हरियाणवी संत-साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान है। समता-पंथी निर्गुण साहित्य हरियाणा के सन्त-साहित्य की एक गौरवपूर्ण उपलब्धि है।

समता-पंथ के प्रवर्तक संत मंगतराम जी का जन्म 24 नवम्बर, 1903 ई०, मंगलवार के दिन जिला रावलपिण्डी (पाकिस्तान) के गंगोठिया नामक ग्राम में हुआ। आपके दादा पण्डित सुन्दरदास धार्मिक प्रवृत्ति के आदमी थे। सुन्दरदास जी के गौरीशंकर तथा प्रभूदयाल नामक दो पुत्र थे। प्रभूदयाल जी की दो शादियाँ हुई थीं। पहली पत्नी से ठाकुरदास तथा किशन चन्द नामक दो पुत्र हुए। दूसरी पत्नी गणेशी देवी से करतार देवी, देवकी देवी तथा मंगतराम जी पैदा हुए।[1]

मंगतराम जी बचपन से ही चिन्तनशील थे। जब परिवार के सभी लोग रात को सो जाते थे तो वे चारपाई पर उठ बैठते थे और ध्यान मग्न हो जाया करते थे। कई बार इनकी माताजी इसके लिए इन्हें टोकती थीं तो वे उन्हें चुपचाप सो रहने को कह देते और स्वयं विचारों में डूबे रहते। इनका हृदय बड़ा कोमल था। दूसरों के दुःख-दैन्य एवं अभाव से वे द्रवित हो जाते थे। एक बार एक नया कोट जो इनकी माता जी ने बड़े चाव से इनके लिए बनवाया था, एक निर्धन बालक को दे दिया जो इनका सहपाठी था।[2] चौथी श्रेणी तक इन्होंने अपने गाँव में ही शिक्षा प्राप्त की

---

1. सत जीवन साखी, महात्मा मंगतराम जी, पृ० 1
2. वही, पृ० 4

तत्पश्चात अपनी बड़ी बहन करतारदेवी की ससुराल कल्लर नामक गाँव में चले गए, जहाँ रहकर इन्होंने पाँचवीं से आठवीं श्रेणी तक शिक्षा पाई। यह गाँव उनके जन्म स्थान से 6 मील की दूरी पर स्थित था। वे अपने शिक्षकों तथा सहपाठियों के प्रीति-भाजन थे। शिक्षा इन्होंने केवल आठवीं तक ही प्राप्त की। इन्हें उर्दू और फारसी भाषा का अच्छा ज्ञान हो गया था।[1]

जब मंगतराम सातवीं कक्षा में ही पढ़ रहे थे तभी इन्होंने 40 दिन का तप किया। तदुपरान्त एक दिन आधी रात को इन्हें सत् तत्व का अनुभव हुआ। इसी अनुभूत तत्व को इन्होंने बाद में महामन्त्र[2] का नाम दिया जो इस प्रकार है—

"ओं ब्रह्म सत्यम् निरंकार अजन्मा अद्वैत पुरुष सर्व व्यापक कल्याण मूरत परमेश्वर नमस्तंग।"

इसी सन्दर्भ में सूचित करने वाली उनकी एक साखी भी इस प्रकार है—

तेरह बरस की आयु थी और माघ था मास।
अर्धरात्रि के समय तत्व हुआ प्रकाश ॥[3]

सत्तत्व के साक्षात्कार के पश्चात मंगतराम जी अपना अधिक से अधिक समय तत्व चिन्तन, मनन तथा ध्यान में ही लगाने लगे।

संत मंगतराम जी के गुरु का नामोल्लेख कहीं नहीं मिलता। कहते हैं कि ये पैदा ही गुरु बनने के लिए हुए थे, बनाने के लिए नहीं। इस गुरु निर्धारण स्थिति पर स्वयं मंगतराम जी के विचार इस प्रकार हैं—'बच्चू! इनका (स्वयं की ओर संकेत) गुरु स्वयं परमेश्वर ही है। संसार में गुरु तब धारण करने की जरूरत होती है जब कमी हो। शुरू से यानी बचपन से ही प्रभु ने जागृति बख्शी है। इनका शरीर जब तीन वर्ष का था तब से ही ऐसी हालत है। अन्दर से हर बात की सूझ थी। मगर संसार में मर्यादा के साथ चलना पड़ता है। प्रारब्ध कर्मवश आखिरी जन्म ऐसी जगह हुआ जिस जगह के लोग हमसाए लोग आम संसारी थे। उन जैसा ही बनकर रहने की आज्ञा रही। हम कोई पता नहीं कौन गुरु और कौन चेला है। यह संसारी रीति है।'[4] आगे आत्मसाक्षात्कार के विषय में उनके ये शब्द भी महत्वपूर्ण हैं—'तेरह वर्ष की उमर में एक दिन पानी के किनारे खड़ में बैठे हुए थे। इस महामन्त्र के तीन हरूफ (शब्द) "ओइम् ब्रह्म सत्यम्" प्रकट हुए। दूसरे रोज 'निरंकार अजन्मा अद्वैत पुरुषा' तीसरे दिन 'सर्वव्यापक कल्याण मूरत परमेस्वराय नमस्तंग'। संत मंगतराम जी नित्य महामन्त्र के इन खण्डवाक्यों को एक

---

1. सतजीवन साखी, महात्मा मंगतराम जी, पृ० 10
2. वही, पृ० 8
3. वही, पृ० 9
4. वही, पृ० 78-79

कागज पर नोट करते रहे। फिर जब भी 'जंगल में या एकान्त में बैठते अर्थात विचार अन्तर से प्रकट होते···।'[1] इस प्रकार मंगतराम जी अपने गुरु स्वयं ही थे। कहते हैं कि मंगतराम जी किसी कबीरपंथी (अज्ञात) साधु से प्रभावित हुए थे किन्तु इनकी बाणी इत्यादि से किसी नामधारी गुरु का संकेत नहीं मिलता।

सन् 1920 ई० में संत जी अपने बड़े भाई पण्डित ठाकुरदास के पास पेशावर पहुँचे। कुछ दिन नौकरी की, लेकिन वहाँ से शीघ्र ही घर वापिस आ गए। तत्पश्चात खड्डी उद्योग आरम्भ किया किन्तु इसे भी छोड़ दिया। कुछ दिन इन्होंने हिकमत भी की। विवाह इन्होंने नहीं किया। 1928 ई० में माता जी के देहान्त के बाद ये घर से चल पड़े। लाहौर पहुँचना, काश्मीर यात्रा, जलमादा में निवास, अहमदाबाद में महन्त रतनदास से मिलना, नरवेत्र पर्वत, पर एकान्तवास तथा बनारसी दास द्वारा सन् 1941 ई० में बाणी का लेखन थट्टा तथा चिनारी इत्यादि स्थानों पर सत्संग तथा उपदेश आदि घटनाओं की चर्चा बड़े विस्तार के साथ इनके जीवन चरित में आई है।

संत जी की मृत्यु 4 फरवरी, 1954 को 50 वर्ष की आयु में हुई। आपकी समाधि समता आश्रम, जगाधरी में स्थित है। समता-पंथी साधकों ने एक ट्रस्ट (न्यास) बना दिया है जो सभी प्रमुख गद्दियों की देखभाल तथा सत्संग सम्मेलन इत्यादि का आयोजन करता रहता है।[2]

समता-पंथी : उपलब्ध साहित्य

समता-पंथी-साहित्य अपने गुण और परिमण दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। समता-पंथी-साहित्य के अन्तर्गत निम्न ग्रंथ तथा पत्रिकाएं उपलब्ध हैं—

1. श्री समता प्रकाश (उर्दू तथा हिन्दी); 2. श्री समता विलास (उर्दू तथा हिन्दी); 3. समता आध्यात्मिक पत्र (हिन्दी); 4. समता आध्यात्मिक पत्र, भाग-2 (हिन्दी); 5. समता ज्ञानदीपक (हिन्दी); 6. रहनुमाए मार्फत (उर्दू); 7. समता आनन्दसागर (हिन्दी); 8. सत्संग पुष्पमाला (उर्दू); 9. सत अनुराग सरोवर (उर्दू); 10. परम कल्याण बोध (हिन्दी); 11. आध्यात्मिक प्रश्नमाला (हिन्दी); 12. आध्यात्मिक प्रश्न-माला, भाग-2, (हिन्दी); 13. टुआर्डज एन एवरलास्टिंग ब्लिस (अँग्रेजी); 14. समता दर्पण (उर्दू पत्रिका); 15. समता सन्देश (हिन्दी पत्रिका); 16. गुटका समतावाद नियम (हिन्दी); 17. सतजीवन साखी—महात्मा मंगतराम जी—(उर्दू)।

---

1. सतजीवन साखी, महात्मा मंगतराम जी
2. समता ज्ञान दीपक, संक्षिप्त जीवन चरित्र, 11

श्री समता प्रकाश

यह समता पंथ का गौरव-ग्रंथ है जिसमें महाराज मंगतराम जी की पद्यबद्ध बाणी है। बाणी का मूल रूप मंगतराम जी के परम शिष्य श्री बनारसीदास द्वारा उर्दू भाषा में लिपिबद्ध किया गया था। इसका हिन्दी रूपान्तर पहली बार सम्वत् 2011 वि० में संगत समतावाद, समता योग आश्रम, जगाधरी द्वारा प्रकाशित कराया गया। ग्रंथ मध्यम आकार का है तथा छपाई मोटे अक्षरों में है जिससे स्वाध्याय में सुविधा रहे। दोहा-चौपाई की मिली-जुली संख्या 17000 के आस-पास बैठती है। पदों की संख्या नगण्य-सी है। इतने बड़े ग्रंथ में केवल 8-10 ही पद आए हैं। शेष सारी बाणी दोहा-चौपाई में ही विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत दी गई है। सारी बाणी को 7 अंगों में विभाजित किया गया है।

प्रथम अंग में परम पुरुष की प्रार्थना है। दूसरे अंग में—'समदर्शन योग' शीर्षक के अन्तर्गत पाँच मार्ग (अध्याय या प्रसंग) हैं। पहले मार्ग में 'सारतत्तन्नाय' के अन्तर्गत संसार की उत्पत्ति, मुसलमानी (उत्पत्ति) भेद, सत्गुरु के लक्खण ब्रह्म की पहचान, गुरमुख-मनमुख पर विचार, सतनाम की असलियत, सच्चा प्रेम, सत विश्वास यानी यकीने-पाक, सतपुरुषार्थ यानी साची कोशिश, सत विचार यानी साची सोच, निर्मानता या आजषी, पर उपकार यानी नेकी, अपनी वस्तु पर संतोष यानी हक शनासी, प्रेम यानी लागरज मुहब्बत, सादगी, सतसंगत तथा मौत की याद आदि पर विचार किया गया है। दूसरे मार्ग में 'अथ विज्ञान यात्रा अरम्भते' के अन्तर्गत संसार की असारता तथा सारतत्व का महत्व वर्णित है। तीसरे मार्ग 'योग चिंतामनी' के अन्तर्गत योग द्वारा परम तत्व की प्राप्ति विवृत है। चौथे मार्ग में 'विवेक माला' में सतज्ञान विवेक का महत्व दिखाया गया है। पांचवें मार्ग 'सतसार-प्रकाश' के अन्तर्गत आत्म-रूप सत्य की चर्चा है।

तीसरा अंग का शीर्षक 'समता स्थिति योग' है जिसके अन्तर्गत पहले प्रसंग 'निर्बन्ध जीवन प्रकाश' में सततत्त की महिमा, सत विश्वास, सत साधन, पवित्र आहार, शुद्ध व्यौहार, सतसेवा, नीच की संगत, साध की संगत, प्रभ सिमरन महिमा तथा महिमा सत विवेक आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है। दूसरे प्रसंग 'सम-तत विचार' के अन्तर्गत कर्मगति पर विचार, मंगलाचरण, ईश्वर महिमा, जिज्ञासु धर्म तथा महमामन्त्र आदि विषयों पर विचार प्रकट किए गए हैं। तीसरे प्रसंग 'अथ जीव गती सिद्धान्त' के अन्तर्गत कल्याण सरूप निधान, बन्धन सरूप निधान, सत विचार निधान, धर्म-परायण निधान, सतकर्म साधन निधान, सतरूप विश्वास निधान, आनन्दस्वरूप साधन निधान, आनन्द सरूप अनुभव विधान, आनंद स्वरूप स्थिति निधान, परमगति निधान तथा सत सिखया सन्देश, आदि विषयों पर विचार प्रकट किए गए हैं। चौथे प्रसंग 'सतनाम-प्रबोध मार्ग' शीर्षक के अन्तर्गत सत-अनुराग सरोवर, प्रभ की महमा, आपा मत हरन विवेक तथा भक्ति मार्ग

आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

चौथा अंग का शीर्षक 'चरंजीव गोष्ठ' है जिसमें आध्यात्मिक समस्याओं की विवेचना तथा पवित्र जीवन पर प्रकाश डाला गया है। इसके पहले विवेक[1] में अध्यात्म बोध शीर्षक से आध्यात्मिक यात्रा की सुन्दर विवृत्ति है। दूसरे विवेक 'सतमारग की पहचान' के अन्तर्गत सन्त मार्ग को सतमार्ग कहकर इसका महत्व तथा उत्कर्ष दिखलाया गया है। तीसरे विवेक 'सतसाधु की महमा' के अन्तर्गत उत्तम साधु की महिमा की विवृत्ति है। चौथे विवेक सत्पुरुषों की समानता के अन्तर्गत सभी धर्मों के प्रवर्तकों के प्रति श्रद्धा—सम्मान दिखाया गया है। पाँचवें विवेक का शीर्षक है—'सत नियम जीव उद्धारक' इस शीर्षक के अन्तर्गत जीवात्मा के उद्धार का मार्ग बतलाया गया है। छठे विवेक 'पवित्र जीवन' में सील, सन्तोख तथा दया का महत्व बतलाया गया है।

'श्री समता प्रकाश' का पाँचवाँ अंग 'निखेतर परवत गोष्ठ' है जिसमें योग एवं वैराग्य की महिमा बखानी गई है। इस पाँचवें अंग की पहली किरन (अध्याय) का शीर्षक 'भक्ति तत्व प्रकाश' है। इसमें भक्ति रहस्य पर विचार प्रकट किए गए हैं। दूसरी किरन 'अन्तरगत सार' के शीर्षक से सत्य शब्द, अनहद नाद, एवं शब्द सिन्धु की महिमा का विवेचन है। तीसरी किरण वैराग अंग' में वैराग्य का महत्व दिखाया गया है।

छठाँ अंग—समता सार योग के शीर्षक से है जिसके पहले अध्याय 'नाद-विवेक' के अन्तर्गत सतगुरु परसाद अमरत में—सतगुरु की असीम कृपा का वर्णन है। दूसरे अध्याय में नाद उपासना पर विचार प्रकट किए गए हैं। तीसरे अध्याय में निष्काम कर्मसाधन को परमावश्यक बतलाया गया है। चौथे अध्याय में 'शून कर्म साधन' के अन्तर्गत विदेह स्थिति का महात्म्य वर्णित है। पाँचवा अध्याय नाद ध्यान पद्धति से सम्बन्धित है। छठा अध्याय निर्वाण स्थिति द्वारा जीवात्मा के मोक्ष का विवरण है। सातवें अध्याय में सत्पुरुषों का आदर्श साधन, सार ज्ञान बतलाया गया है। तथा आठवें अध्याय में नाद साधन सार के अन्तर्गत सुरत शब्द योग का गौरवगान किया गया है।

छठे अंग के दूसरे भाग में 'विजय मंगल' शीर्षक से सुरत शब्द साधन के द्वारा संसार विजय की ओर संकेत किया गया है। इसमें प्रत्येक मास के लिए 10-10 साखियों का एक-एक स्वतन्त्र पद है। यही 'आरती' भी है जो 'समता द्वारों' में प्रातः एवं सायं स-स्वर गाई जाती है। 'समता मंगल' में तीन साखियों द्वारा समतावाद (समता पन्थ) का मंगलकारी स्वरूप विवृत्त है।

---

1. श्री समता प्रकाश नामक इस ग्रन्थ में अध्याय, विवेक, किरन, प्रसंग तथा रस —सभी शब्द पर्यायवाची के रूप में आए हैं।

सातवें अंग का शीर्षक समता विज्ञान योग है। इसके अन्तर्गत तीन-तीन रस (अध्याय) हैं। पहले रस में—जीवनसार बोध के अन्तर्गत भगवत्-नाम के सहारे जीवन को सार्थक बनाने की ओर संकेत है। दूसरे रस में ज्ञान निष्ठा प्रबोध के अन्तर्गत सच्चे ज्ञान द्वारा ही भवसागर से निस्तार का विवरण है। तीसरे रस 'तिथि विवेक' में एक परम्परागत काव्य रूप के अन्तर्गत प्रत्येक तिथि को उपदेश का निमित्त बनाया गया है। इसके साथ ही सिमरन दीपक, सार उपदेश, आनन्द-सार, गुरु सरूप लखना, समता शान्ति तथा वाणी सार अमरत शीर्षकों के अंतर्गत पहली बातों की पुनरावृत्ति है। अन्त में 'चेतावनी' शीर्षक से मंगतरामजी ने बाणी को यथावत् रखने, इसमें किसी प्रकार के फेर-बदल न करने के लिए 'चेतावनी' दी है।

श्री समता बिलास

यह महाराज मंगतरामजी की गद्य रचना है। सारे ग्रन्थ को नौ अनुभवों (अध्यायों) में बाँट रखा है। प्रथम अनुभव का शीर्षक है 'समता विधान तथा समता परम निधान' जिसमें समता पन्थी आचार-विचार सम्बन्धी सभी नियम-उपनियम दिए गए हैं। दूसरे अनुभव 'समता धाम' के अन्तर्गत सन्तों की साधना के अन्तिम स्थान— सत्लोक (समता धाम) का वर्णन है। तीसरे अनुभव में समता नीति के अन्तर्गत—समता के पाँच प्रमुख नियम सादगी सत्य सेवा, सत्संग तथा सत् सिमरन के अतिरिक्त समतावाद की श्रेष्ठता, दान, तीर्थयात्रा, मूर्तिपूजा, भूत प्रेत विविध विषयों पर महाराज मंगतराम जी के विचार संकलित हैं। चौथा अनुभव समतावाद का सच्चा स्वरूप उसकी मान्यताएँ तथा पद्धति इत्यादि पर प्रकाश डालता है। पाँचवें अनुभव के अन्तर्गत बाधक तत्वों का विश्लेषण तथा साधक तत्वों—सत्संग, अभ्यास, सेवा, व्रत तथा तप आदि का—महत्व विवृत्त है। छठे अनुभव के अन्तर्गत समता विवेक शीर्षक से समतावादी 'रहनी' तथा 'करनी' का विवेचन है। सातवें अनुभव 'अनमोल सत सन्देश अनुभवी वाक' के अन्तर्गत पूर्व विवेचित तथ्यों का पुनर्कथन मात्र है। आठवें अनुभव 'समता जीवन विज्ञान' के अन्तर्गत जीवन की वस्तुस्थिति का विश्लेषण तथा सत् मार्ग पर चलने हेतु प्रेरणा-प्रद विचार संकलित हैं। नौवें अनुभव (अन्तिम अध्याय) में समता-कर्म के साधक तत्वों का विवेचन किया गया है। इसमें पूर्व विवेचित कतिपय भौतिक एवं आध्यात्मिक नियमों की पुनरावृत्ति की गई है।

समतावाद को समझने-समझाने के लिए 'श्री समता विलास' का अपना महत्व है। ग्रन्थ में नियमों-उपनियमों के विवेचन तथा प्रतिपादन में पुनरुक्ति स्पष्ट दिखती है। भाषा तथा शैली दोनों की दृष्टि से ग्रंथ का विशिष्ट महत्व निर्विवाद है। सामान्य साक्षर भी ग्रन्थ से लाभान्वित हो सकता है। कहीं-कहीं

उर्दू के कठिन शब्द आ गए हैं जो सम्भवतः इस पन्थ के लक्ष्यीभूत श्रोता के लिए इतने कठिन न रहे हों।

समता आध्यात्मिक पत्र (दो भाग)—महाराज मंगतरामजी ने समय-समय पर अपने जिज्ञासु साधक-सत्संगियों को जीवन, सत्संग धर्म, योग एवं साधना-पद्धति सम्बन्धी विचारों से इन पत्रों द्वारा लाभान्वित किया है। इन पत्रों द्वारा सन्त जी ने सरल भाषा में विविधि विचारों को बड़े सहज ढंग से व्यक्त किया है। महाराज के व्यक्तित्व को समझने में ये पत्र कुछ सहायक हो सकते हैं।

समता ज्ञान दीपक—यह जिज्ञासु सेवकों द्वारा समय-समय पर पूछे गए प्रश्नों तथा समाधान-रूप में महाराज के उत्तरों का संकलन है। प्रश्नों का क्षेत्र व्यापक है। भाषा जिज्ञासुओं की तथा भाव महाराज मंगतरामजी के हैं। जीवन, जगत्, धर्म सम्बन्धी विविध प्रश्न तथा उनके उत्तर बड़े रोचक तथा ज्ञानवर्द्धक हैं।

आध्यात्मिक प्रश्नमाला—समता ज्ञानदीपक की तरह ही यह ग्रंथ है। जिज्ञासुओं के आध्यात्मिक प्रश्नों का समाधान समुच्चय है।

समता दर्पण-तथा-समता सन्देश—क्रमशः उर्दू तथा हिन्दी की पंथिक पत्रिकाएँ हैं। समता दर्पण उर्दू भाषा में प्रकाशित मासिक पत्रिकाएँ जो नई दिल्ली से निकलती हैं तथा समता सन्देश हिन्दी भाषा में आगरा से प्रकाशित होने वाली त्रैमासिक पत्रिका है।

टूआर्डज एन ऐवर लास्टिंग ब्लिस—यह ग्रंथ समता विलास के प्रथम अनुभव में आए 'समता निधान तथा समता परमनिधान' का श्री अमोलक राम द्वारा किया गया अंग्रेजी अनुवाद है। अंग्रेजी जानने वालों को समतावादी जानकारी देने के लिए यह पुस्तक लाभप्रद है।

रहनुमाए-मार्फत, समता आनन्द सागर, सत्संग, पुष्पमाला, सत अनुराग सरोवर, परम कल्याण बोध तथा समतावाद नित नियम आदि रचनाएँ गुटकों एवं पुस्तिकाओं के रूप में पाई जाती हैं। इन सभी में 'श्री समताप्रकाश' तथा 'श्री समता विलास' के प्रमुख उद्धरण संकलित हैं।

समता तत्व का स्वरूप

समतत्त या समता तत्व मंगतराम जी की दृष्टि में परम सत्य अथवा परम-तत्व का समशील है।[1] श्री समता प्रकाश में 'समतत्त विचार' के अन्तर्गत समता तत्व पर विस्तार के विचार प्रकट किए गए हैं।[2] उनका मत है कि समतत्त का

---

1. श्री समता विलास, पृ० ख
2. श्री समता प्रकाश, पृ० 372

ज्ञान होने से आनन्द की प्राप्ति होती है तथा यम की फाँसी से मुक्ति मिल जाती है। समतत्त की प्राप्ति होने पर त्रिगुणात्मक माया का नाश हो जाता है, जीव के सभी द्वन्द्व-दुविधा तथा विकार नष्ट हो जाते हैं। समता योग से सब मैल कट जाते हैं, चेतन का चेतन के साथ (जीव का ब्रह्म के साथ) मेल हो जाता है। समता ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है, सारी सृष्टि का आरम्भ तथा अन्त समतातत्व ही है।[1] समता ज्ञान अनादि है जहाँ जरा है न मृत्यु है। यही आनन्द की धारा है जो इसके सम्पर्क में आता है आनन्दित हो जाता है।[2] समता ज्ञान निहकर्म, निर्बानी तथा अनूप तत्व है। समता ज्ञान ही सबका आधार है। इसी से समपद की प्राप्ति अथवा मुक्ति होती है।[3] यह ब्रह्म स्वरूप है, सर्वव्यापक है, शब्द स्वरूप है, धर्म स्वरूप है और अधिक क्या कहें वह स्वयं ही समता ज्ञान स्वरूप है।[4] समतत्व अखण्ड, कालकर्म से न्यारा, अद्भुत प्रकाश, सर्वशक्तिमान, पाप पुण्य से न्यारा अकथ है, अतुल परभावी, परम-विवेक, ताप निवारक, निरंकार तथा वह समता स्वरूप स्वयं हजूर (ब्रह्म) ही है।[5]

समवाद (समतावाद) को स्पष्ट करते हुए श्री मंगतराम जी लिखते हैं—"जिस वक्त कर्तापन अभिमान का लोप हो जाता है, उस वक्त बुद्धि अकर्त स्वरूप आत्मा में लीन हो जाती है, कर्मफल द्वन्द्व से निर्लेप हो जाती है। तब सर्वसरूप अपना आप ही पहचान करती है। यह अवस्था ही असली समवाद विज्ञान है।'[6] समता बोधावस्था को स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं—'जब बुद्धि आत्मानन्द को अनुभव करती है और वासना के जाल से निर्द्वन्द्व हो जाती है, तब अपने आपको केवल परम पद में ही निःचल करके आनन्दित होती है। यह ही समवाद बोध अवस्था है।'[7]

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि समता (समतत्व) से मंगतराम जी का अभिप्राय सतपुरुष व ब्रह्म से ही है। इस समतत्व की प्राप्ति ही समताबोध अवस्था है। इसी समतत्व के ज्ञान को समदाद विज्ञान कहते हैं। इस समतत्व विज्ञान पद्धति को अपनाकर मनुष्य अपना तथा समाज, देश और मानव मात्र का कल्याण कर सकता है। इसी को मंगतरामजी ने समतावाद या समता पंथ का नाम

---

1. श्री समता विलास, पृ० 372
2. वही,
3. वही,
4. वही,
5. वही, पृ० 373
6. वही, पृ० 400
7. वही, पृ 4 1

दिया है। अन्य सन्तों का ब्रह्म यहाँ सम्तत्व बन गया है और यह समतत्व बोध, परमात्म बोध है। यह पद्धति विशेष समतावाद, सन्तमत का पर्यायवाची ही है जो यहाँ पन्थ विशेष के रूप में प्रचलित हो गया है।

समता धर्म : स्वरूप निर्णय

श्री समता विलास में कहा गया है कि समता धर्म यानी बुद्धि का सम भाव में स्थित हो जाना, तमाम कामना और कल्पना से आजाद हो जाना, अपने निज स्वरूप यानी आत्मानन्द में प्रवेश कर जाना, जन्म और मरण के भय से मुक्त होकर अपने अपने अन्तर विखे सत् स्वरूप में लीन हो जाना—यह अवस्था ही पूर्ण धर्म का स्वरूप है और सब महापुरुषों की यह ही इन्तहाई तहकीकात है। उन्होंने इस अवस्था को प्राप्त होने की खातिर अनेक प्रकार की साधना को प्रकट किया है तथा धर्म स्वरूप को प्रकाशित किया, यानी सत्कर्म, सत् विचार, सत् विश्वास, सत्-पुरुषार्थ, सत्संग और बन्धन मुक्त भेद का निर्णय किया। इस प्रकार जो धर्म के स्वरूप को जानने वाला है और हृदय से इन सब गुणों का निधिध्यासी भी है, वह ही समता धर्म अखण्ड शान्ति को प्राप्त होवेगा।[1] इस उद्धरण से स्पष्ट होता है कि—

(1) समता पन्थ का चरम लक्ष्य भी अन्य महापुरुषों द्वारा प्रवर्तित पन्थों की तरह ही आत्मसाक्षात्कार द्वारा परमानन्द प्राप्ति है।

(2) इस पन्थ में भी सदाचरण द्वारा पद्धति विशेष से मोक्ष का प्रावधान है।

(3) 'समता धर्म' भी एक पन्थ विशेष ही है, धर्म नहीं, धर्म की व्यापकता का अभाव है—केवल एक पन्थ ही है।

साधना पद्धति

समता पन्थ की साधना पद्धति भी सन्तों की पारम्परिक एवं प्रतिनिष्ठित पद्धति, सुरत शब्द योग है। 'समता विलास' के अनुसार 'समता योग यानी सुरत शब्द की एकता' सिमरन योग का अभ्यास', 'शब्द प्राप्ति यानी ध्यान योग' शब्द में 'स्थित होना, यही राजयोग है। राजयोग की साधना को छोड़ सब अन्ध विश्वास का त्याग करना, ईश्वर सिमरन ज्ञान, ध्यान, सत्संग, पर-उपकार को मुख धर्म जानकर हर वक्त धारण करना। यह सहज योग समता का नित नियम है।'[2]

उपर्युक्त कथन से समता पन्थी साधना-पद्धति का मर्म सहज ही समझा जा

---

1. श्री समता विलास, पृ० 115
2. वही, पृ० 55

सकता है। इनकी पद्धति भी सुरत शब्द योग ही है जिसे ये राजयोग, सहजयोग और समता योग के नाम से पुकारते हैं। इस साधना में तथा ध्यान का विशेष महत्व है। निम्न साखी में इसी सुरत शब्द पद्धति की ओर संकेत किया गया है—

नित ही शब्द समाध में, पुरती भई अडोल।
मंगत मिटी सब वासना, सुन सतगुरु बचन अमोल।।[1]

सुरति को अन्तर्मुख करके नाम जपने तथा शब्द से प्रीति करने से अविगत ज्योति का प्रकट होना निम्नलिखित साखियों से भी प्रमाणित होता है—

खेंच के सुरती अन्तर कीनी, नाम सिमरन की रसना लीनी।।
उपरस जीवन धनी उदासी, आलख शब्द संग प्रीति बिलासी।।
खेम कुशल तत्त प्रगट पाई, अवगत जोत निरन्तर ध्याई।।[2]

समता पन्थ में साधना पद्धति का स्वरूप सुरत शब्द योग अथवा सहज योग ही है, इस बात की ओर संकेत करने वाले साक्ष्य श्री मंगतराम जी की वाणी में स्थान-स्थान पर पाए जाते हैं। 'नाद ध्यान' तथा 'नाद उपासना' भी कई स्थानों पर इसी पद्धति के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

समता पन्थ के पाँच मुख्य नियम

आध्यात्मिक प्रगति के लिए समता पन्थ में निम्नलिखित पाँच नियमों का पालन अनिवार्य बताया गया है। (1) सादगी (2) सत्य, (3) सेवा (4) सत्संग तथा (5) सत् सिमरण।

1. **सादगी**—असली खुशी और प्रेम का मरकज़ सादगी ही है। जिसने दिलो जान से सादगी धारण की वह ही सब पापों से छूटकर असली खुशी को प्राप्त हुआ। और अपने असली अंजाम का मालिक बना। असली धर्म की बुनियाद यह सादगी ही है।[3]

2. **सत्य**—सत् के साधन से निडरता और प्रेम हासिल होता है। सब जिन्दगी का मेराज सत् की तलाश है। सत् का विचार, सत् की कोशिश यह ही है। जिसके अन्दर ऐसे जज़बात नहीं आए वह हमेशा के वास्ते दुनिया से निराश रहता है। सत् का साधन ही मूल धर्म है।'[4]

3. **सेवा**—निष्काम का सेवा मानुष ज़िन्दगी का मेराज है। जिस तरह पवन

---

1. श्री समता प्रकाश, पृ० 1293
2. वही, पृ० 1293
3. वही, पृ० 66
4. वही, पृ० 68

पानी, धरती, सूरज और चन्द्रमा अपने फर्ज़ को जानकर हर वक्त सेवा में मसरूफ रहते हैं, उसी तरह मानुष को भी लाज़मी है कि अपना फर्ज़ जानकर दूसरे की सेवा करे। तब ईश्वर के हुक्म को मानने वाला हुआ। इस यथार्थ कल्याणकारी साधन को धारण करके जल्द ही साधक परमानन्द को प्राप्त हो जाता है।[1]

4. **सत्संग**—सत्संग में एकत्र होकर सत्सरूप का विचार करना चाहिए। अपने बुरे आचारों को छोड़ देना चाहिए। अपने बुजुर्गों के नक्शे-कदम पर चलना चाहिए। सत्पुरुषार्थ को धारण करना चाहिए। मानुष ज़िन्दगी के असली फर्ज को विचार करना चाहिए। ये सब गुण सत्संग से प्राप्त होते हैं। हर वक्त इस साधन को धारण करना चाहिए।[2]

5. **सत् सिमरन**—सत सिमरन से ही मन की वृत्ति लीन होती है। सत सिमरन से ही मन का फुरना (स्फुरण) होता है। सत् सिमरन से ही ईश्वर का प्रकाश प्रकट होता है। इसलिए असली यह साधन का मूल धारण करना चाहिए, जिससे जल्दी ईश्वर प्राप्ति हो जाये। सत सिमरन से ही मन की धारणा शुद्ध होती है। धारणा के शुद्ध होने से ध्यान प्राप्त होता है। ध्यान से एकाग्र चित्त होकर ईश्वर को, आनन्द को अनुभव करता है जो सब सुखों की खान है। ध्यान की दृढ़ता से ईश्वर के सरूप में लीन हो जाता है। यह ही अवस्था जीवनमुक्त धाम है। सब आनन्द सत चित्त सिमरन से ही मिलता है। इस वास्ते कामिल उस्ताद की शिक्षा द्वारा सत् सिमरन को धारण करना चाहिए।[3]

सतगुरु के लक्षण

जो नित ही सत सरूप में लीन रहता है, हर समय सत् चर्चा करता है, जो इन्द्रिय भोग से अतीत है, जो आत्मा का ही भोग करता है वही पवित्र गुरु है।[4] जो सभी जीवों से प्रेम करता है, पर दुख:हरण, मजहबों से दूर जो सदा अनहद में रत है वही प्रवीण गुरु है।[5] जिसकी जुगती अपार है, जिसके उपदेश सुनने से सिरजनहार मिलता है। जो दृढ़ आसनधारी है, सत का विश्वासी है, जो सूरत को उल्टी मोड़-कर सत्-मार्ग फोड़ता है, मानसरोवर में जिसकी स्थिर समाधि लगी हुई है, ज्ञान ध्यान जिसकी ढाल हैं, समता की तलवार से जो काम, क्रोध, अहंकार, समता आदि शत्रुओं का संहार करता है, जो आठों याम सचेत रहकर अखण्ड निरवानी ज्योति के

---

1. श्री समता विलास, पृ० 74
2. वही, पृ० 81
3. वही, पृ० 84
4. वही, पृ० 71
5. वही, पृ० 71

दर्शन करता रहता है, वही सच्चा सत्गुरु है ।[1] गुरु की अपार महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता—

गुरु की महमा अपार है, जाने कोई गुरु सन्त ।
'मंगत' गुरु साचा सो ही, जा को नहीं भरमंत ।।[2]

समतापंथ में ब्रह्म का स्वरूप

वह पूर्ण परमेश्वर है, सारी सृष्टि में उसी के दर्शन होते हैं । वह अखण्ड, अवगत अपार स्वरूप तीनों कालों में अनुपम है, अकाल है, निरबानी तत्व है। वह मंगलकारी तत्व है, अलेख शब्द है और सारा संसार उसी की भेख है। वह परमानन्द है शक्ति निराधार है, उसकी लीला अनन्त है । वह सभी के अन्तर में समाया हुआ है । यह सारा प्रसार तेरी अद्भुत लीला है । तू ही अनन्त रूपों में विचरण कर रहा है । केवल तू ही सत्य है । तू ही सभी का रक्षक है, दाता है तथा अज्ञेय है ।[3] रूप रेखा बिना ही सर्व सृष्टि का कारण देव है । सभी में नाद रूप में बसा हुआ है, वह अनामी पुरुष सर्वातीत है । उसके अपार नाम हैं। निरंजन, निरंकार, अलख, गोपाल, अद्वैत, पारब्रह्म, आतम, पारगरामी, परमानन्द, दीनदयाल, अबनाशी, अन्तर्यामी, ठाकुर, राम, गर्वप्रहारी, पतितवावन, अवगत, अपरमपार, अनादी, निराधार, अकाल, खुदाइ, अल्लाह, जब्बार, खालिक, मुतलिक,तालां, हूत, परवरदिगार, राजिक, जातरूबानी, कुदरत, कामिला, इलहाम, रूवानी, बखशनहार, निरबान, अच्छर शुन्यकार, अजर-अमर, आद अनील, सनातन, अखण्डसरूप, संन्यास, त्यागी, परमेश्वर, ज्ञान, बिशनू, परमधाम, निरंकार, अजन्मा, अगोचर, अगम अगाध, सिरजनहार, अध्यात्मक, भगवन्त, साखी पुरुष, आदीयज्ञ, ओंकार, मुरारी, प्रभ, समदृष्ट निश्चल, अडोल, निरालंभ, बिधाता, अनामी, सरब अतीत, गुणातीत, परमात्म, परमसिद्धि, आनन्दस्वरूप, समरस, विशम्भर, सचखंड, मुक्तसरूप, गोबिंद, वराट इत्यादि कितने ही नाम हैं ।[4] जिस ब्रह्म का देव, गुणी, मुनि आदि सभी जाप करते हैं, जिसका न अन्त है न पार है, उसके अगणित नाम हैं—

देव गुणी मुनी जपें, अन्त ना पारावार ।
मंगत किस मुख सलाहिए, अगिन्त नाम करतार ।।[5]

---

1. श्री समता प्रकाश, पृ० 72
2. वही, पृ० 72
3. वही, पृ० 1-3
4. वही, पृ० 115-17
5. वही, पृ० 117

आत्मा का स्वरूप

समतापंथ का आदेश है कि सकाल सचेत होकर आत्म तत्व का विचार करो। आत्मा जो सुख निधान है उसका ध्यान करो। बनना-बिगड़ना देह का धर्म है, आत्मा तो सदा अजन्मा है, अमर है। यह राग द्वेष इस शरीर के ही विकार हैं, आत्म तत्व तो सदा निर्दोष है।[1] यह क्रम जाल तथा काम क्रोधादि देह के विकार हैं, आत्मतत्व निःकर्म है। शरीर के मिथ्याधर्म के उपरस होकर समता तत्व रूपी आत्मा का ध्यान करो।[2] सभी प्राणी देह धर्म की ममता में पड़े भ्रमाए हुए हैं, उस निरदेह तत्व आत्मा को कोई ही विरला जानता है। यह आत्म तत्व अजर, अमर, तथा अविनासी है। घट-घट में यह प्रकाश रूप में समाया हुआ है। यह आत्मा शरीर से बिल्कुल भिन्न है। यह जीना मरना तो शरीर का धर्म है, यह आत्मा सदा निःकर्म है, निर्वर है, निर्दोष है, त्रि-गुण रहित है।[3] यह आत्म तत्व सदा अदृष्ट रहता है, केवल सतगुरु के संकेत से इसे देखा-जाना जा सकता है। यह शरीर इस आत्मतत्व के प्रकाश से चेतन रहती है। फिर भी इस देह से अलग है यह अविनाशी तत्व। यह काल कर्म इत्यादि के फेर से परे है। यह सदा अकर्त्ता है, निःसंग है, शरीर में रहता है फिर भी शारीरिक विकारों से अप्रभावित रहता है, इसी आत्म तत्व की पूजा तथा ध्यान करना चाहिए।[4] यह आत्म तत्व सदा ही ज्योतिस्वरूप है, अविनाशी है। यह घट-घट में समाया हुआ है। यह शरीर तो बालू की दीवार है जो एक पल में ही नष्ट हो जाती है। इसके अन्दर जो अजर पुरुष आत्म तत्व विराजमान है वही सार है। यह आत्म तत्व सदा अपने आप में भरा पूरा है, यह साक्षी पुरुष है। यह आत्म तत्व कल्याण स्वरूप है, निरवान पुरुष है। यह जीवन यही आत्मा ही तो है। यह सर्वप्रकाशमान है, अलेख है, अनूप[5] है। ममता-पंथ में आत्म तत्व का यही स्वरूप है।

माया का स्वरूप

समतापंथी मानते हैं कि उस अलख, अद्वैत, पुरुष ने अपनी माया का प्रसार रचाया है। वह स्वयं तो अजन्मा तथा अलेप है किन्तु अपनी माया के नाना रूपों में वही बंटा हुआ है। सर्वप्रथम उस परम पुरुष ने त्रिगुणी माया की रचना की।

---

1. श्री समता प्रकाश, पृ० 867
2. वहीं, पृ० 868
3. वही, पृ० 868
4. वही, पृ० 868-69
5. वही, पृ० 869

तत्पश्चात यह सृष्टि की सारी रचना इस त्रिगुणात्मक माया के द्वारा ही रचवाई। पाँचों तत्वों का खेल भी माया का ही है। यह प्रकट दिखाई देने वाला संसार, पाँच तत्वों तथा मन, बुद्धि, अहंकार इन आठ तत्वों की ही रचना है, जो माया ही है।[1] लोकालोक मण्डल, देश तथा पुरियाँ सब माया का ही प्रसार हैं। यह चाँद, सूरज, चराचर, भूत, तथा चारों योनियों में आने वाले प्राणी सभी माया के अधीन हैं।[2] देव, दानव, पीर, अवतार, सिद्ध, ऋषि, गुणी, मुनि सब के सब माया के ही चेरे हैं। इस माया से राजा, राजेन्द्र, इत्यादि कोई पार नहीं पा सका। इस माया के सूक्ष्म तथा स्थूल बन्धनों से कोई नहीं बचा पाता है। इस विषम माया से मोक्ष केवल सत्संग के द्वारा पाया जा सकता है। बड़े-बड़े गुणी, पंडित इस माया के दुस्तर जाल से नहीं बच पाते हैं।[3] यह सारा दृश्यमान संसार इस मोहिनी माया का ही जाल है। माया का अद्भुत जाल है। इसकी फाँस में पड़कर यह जीव बेचारा भ्रमता रहता है। सभी माया के चक्कर में घूम रहे हैं—मनुष्य, पशु, स्थावर तथा जंगम। यह दृश्यादृश्य सब माया के ही परम विकार हैं।[4]

माया के सम्बन्ध में श्री मंगतराम जी के ऐसे ही विचार उनकी बाणी में यत्र-तत्र पाए जाते हैं। कोई अलग से माया सम्बन्धी अपनी धारणा इनकी प्राप्त नहीं होती।

जगत्

श्री मंगतराम जी ने जगत् की वस्तुस्थिति का वर्णन करते हुए कहा है कि यह संसार का खेल ऐसा ही क्षणभंगुर है जैसे बादल की छाया। यह जगत इस जीवन के लिए अग्नि स्वरूप है जिसमें जीवन का काठ पल पल जलता रहता है। यह जगत् काल रूपी किसान की खेती है। जब भी किसान (काल) की इच्छा होती है वह हरी-सूखी खेती को नष्ट कर डालता है।[5] यह जगत् वायु गति की तरह ही अस्थिर तथा चंचल है, नदी के बहते नीर के समान ही अस्थायी है। यह संसार सेम्बल पुष्प के समान ही है जो देखने में सुन्दर है और प्रसन्नता प्रदान करता है, पर वास्तविकता में निराशाजनक है।[6] यह संसार की रचना मन की भावना के अनुरूप ही रूप बदल लेती है। इस जगत् की व्यर्थ की बाजी को देखकर कितने ही गुणी

---

1. श्री समता प्रकाश, पृ० 35
2. वही, पृ० 35
3. वही, पृ० 35
4. वही, पृ० 896
5. वही, पृ० 820
6. वही, पृ० 821

भ्रम में पड़ते देखे जाते हैं। यह तो काल का बन्दीखाना है। झूठी माया का झूठा जाल है, इसमें सार कुछ भी नहीं है।[1] इस झूठे जगत में आकर कितने ही छल-छद्म करने पड़ते हैं और अन्त में काल के बेलन में कपास की तरह बेले जाते हैं। इस झूठे संसार के भोग भी वासुकि नाग के विष के समान ही विषैले होते हैं जिनके सम्पर्क में आकर नरक भोगना पड़ता है। यह संसार बड़ा दाहक है जो पल-पल आशा-तृष्णा की अग्नि में जलाता रहता है।[2] इस संसार की सराय में जीव एक मुसाफिर के समान ही है, यह स्वप्न की-सी रचना है, इसमें काल का तमाशा चल रहा है। जगत् बालू की भीत है। धुंआ का अम्बार है। यह जगत वास्तव में काँच है, पर दिखावा इसका माणिक-मोती जैसा है।[3] यह जगत् प्रभु की माया का प्रसार है। इस दुस्तर भवजल में सभी गोते खा रहे हैं। जो सच्चा धर्म कमाता है वह पार हो जाता है।[4] जगत् सम्बन्धी ऐसी ही धारणा इस पंथ के ग्रंथों में मिलती है। अलग से कहीं जगत स्वरूप का विवेचन इनकी वाणी में नहीं मिलता है।

सारधर्म निरूपण

श्री मंगतराम जी का कथन है कि यदि संसार में कुछ सार वस्तु है तो वह सच्चे धर्म का पालन है अन्यथा सब असार है। उनके अनुसार सच्चे धर्म का स्वरूप इस प्रकार वर्णित है—

—'प्रथमे निश्चा दृढ़ करे, एक नाम भगवन्त'[5]
—'दूजे शुद्ध विचार करे, मरन जीवन निरनाए'
—तीजे उद्दम ये भला, परमारथ की सोध'
—चौथे खिमा का धारणा, जाए इच्छा का रोग'
—पंचम मन निरमानता में, नित राखे परबीन'
—छेवें जुगत का आहार करे और जगुत का करै व्यवहार'
—सतवें मन तन में धारण करे, निष्काम भाव उपकार'
—अठवें पर-हक-त्यागना, निज सम्पत में धरे सन्तोख'
—नावें संगत सत्पुरुष की, नित ही मिलियो धाए'
—दसमें आत्मराम में, नित ही मनसा धार'
—एकादस मन के वेग को, नित ही राखे हाथ'

---

1. श्री समता विलास, पृ० 821
2. वही, पृ० 821
3. वही, पृ० 824
4. वही, पृ० 39
5. वही, पृ० 42

—द्वाद्वस जीवन जगत में जान ले दिन चार'
—तेरहवें नित ही रूप में, अन्तर रहे लपटाए'[1]

और आगे धर्म की महिमा निरूपित करते हुए लिखते हैं—

—तन मन अपना दीजिए, साचे धरम के मांही।
—मंगत कहे पुकार के, बौहड़ गरम न पाइं॥[2]

उपर्युक्त धर्म-साधनों के अतिरिक्त मंगतराम जी की गद्य रचना 'श्री समता विलास', के प्रथम अनुभव में 'समता विधान' के शीर्षक से एक सौ एक उपदेश दिए गए हैं जिनके अन्तर्गत 'समता पंथ' की धार्मिक, नैतिक एवं सामाजिक मान्यताओं का दिग्दर्शन है। इस पंथ में नैतिकता एवं शुद्धाचरण को आध्यात्मिक जीवन का आधार माना जाता है। नैतिकता से विहीन अध्यात्म साधना को असम्भव-सा बतलाते हुए श्री मंगतराम जी ने कहा है कि—'जब तक इख़लाकी ज़िन्दगी शुद्ध नहीं होती, कभी भी रूहानी रोशनी यानी समता प्राप्त नहीं हो सकती।'[3] 'समता परमनिधान' के 41 प्रश्न का उत्तर भी समता-पंथी मान्यताओं को समझने के लिए आवश्यक हैं।[4]

महामन्त्र

समता पंथ का महामन्त्र है—'ओ३म ब्रह्मसत्यम् निरंकार अजन्मा अद्वैत पुरखा सर्वव्यापक कल्याण मूरत परमेश्वराये नमस्तं।'[5] उक्त मन्त्र समता-पंथ का 'गुरु-मन्त्र', 'गुह्य-मन्त्र' तथा 'महामन्त्र' कहलाता है। समतापंथियों की मान्यता है कि इस मन्त्र का मन से जप करने से अपार ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त होती है। इस मन्त्र के माहात्म्य का वर्णन करते हुए श्री मंगतराम जी लिखते हैं—

तिरयोदश अक्षर मन्त्र यह, सरब सिद्ध दातार।
जो सिमरे नित प्रेम से, मंगल पाये अपार॥
महमा सत सरूप की, सब अक्षर पहचान।
चार बेद और सिमरती, सब का सार निधान॥[6]

---

1. श्री समता प्रकाश, पृ० 42
2. वही, पृ० 43
3. श्री समता विलास, पृ० 12
4. सच्ची कोशिश, सच्चा विचार, सच्ची संगत, ज़िन्दगी को कायम रखने वाले गुण हैं। अन्तकाल के होने तक इन गुणों को स्वीकार करना चाहिए।—श्री समताविलास, पृ० 1
5. श्री समता प्रकाश, पृ० 453
6. वही, पृ० 453

समता आरती

समता पंथ में दोनों समय प्रातः एवं सायँ को आरती गायन का नियम है। समता पंथियों के नित-नियम में आरती-गायन एक महत्वपूर्ण अंग है। आरती को अविकल रूप में यहां दिया जा रहा है जिसके निमित से मंगतराम जी की भाषा एवं भाव का अनुमान भी लगाने में सहायता मिलेगी—

आरती

तूँ पारब्रह्म परमेश्वर, तीन काल रछपाल।
नित पाऊँ सरनागति, सत चरण कँवल दयाल।।
तूँ नित पतित उद्धार है, पूरन प्रभ जगदीश।
मोह माया सँकट हरो, दी जो ज्ञान सन्देश।।
नित ही तेरे चरण की, मन में रहे प्रीत।
तूँ दाता दातार है, पुरखोतम सुखरीत।।
पावन पानी बैसन्तर, धरती और आकाश।
सबको सरजन हार तूँ, आद पुरख अबनाश।।
घट घट व्यापक तूँ परमेश्वर, सरब जीयां आधार।
अनमत कूकर को राख लें, किरपा निद्ध करतार।।
काल करम जाय दूषमा, खल बुद्धि हरो अज्ञान।
सत शरधा पाऊँ चरण की, अखंड प्रेम चित्त ध्यान।।
दीनानाथ दयाल तूँ, पल पल होत सहाये।
कीरत साचे नाम की, मन तन आए समाए।।
अन्तर का सब खेद हरो, दीजो सत विश्वास।
सर नागति हूँ मन्द मति, घट अन्तर करो प्रगास।।
अन्तरगत सिमरन करूँ, निरन्तर धरूँ ध्यान।
घट घट मैं दरशन करूँ, आद पुरख भगवान।।
तू साचा साहिब सरब प्रकाशी, शब्द रूप अखण्ड।
गुनी मुनी उस्तत करें, तन मन पायें आनन्द।।
होवें दयाल तूं सत परमेश्वर, देवें धीर अपार।
निमख निमख सिमरन करूँ, चित चरण रहे आधार।।
काया अन्तर परतख होवें, नारद रूप बिस्माद।
पल पल की जूँ आरती, तन मन तजूँ वियाध।।
जग आवन सुफला होवे, तेरी आज्ञा मन में ध्याऊँ।
अन्तरगत करूँ आरती, भव दुस्तर तर जाऊँ।।

अन्ध मत मूढ़ा नितप्रती, तेरे चरणी करे पुकार।
मँगत माँगें दीनता, सत धरम सुखसार।।[1]

इस आरती का हर समता पंथी के लिए कंठ करके प्रातः एवं सायँ दोनों समय गायन अनिवार्य है। इस आरती के अतिरिक्त 'समता मँगल' नाम से तीन साखियाँ और हैं जिनका गायन तथा कंठ करना आरती की ही तरह आवश्यक है। 'समता मंगल' का मूलपाठ निम्नवत् है—

समता धरम हिरदे रसे, विख ममता होवे नाश।
सत सरूप परमात्मा, जल थल पाऊँ परकाश।।
सब जीवों से प्रेम हो, तन मन सेवा धार।
समता साधन पाये के नित परसाँ जै जैकार।।
सत करम सत निश्चय, निर्मल पाऊँ विचार।
'मँगत' समता धार के, जीत चलो संसार।।[2]

'समता पंथियों' का अभिवादन-सम्बोधन एक दूसरे को 'ब्रह्म सत्यम्' कहकर किया जाता है।

डा० विष्णुदत्त राकेश ने समता-वाद का परिचय देते हुए कहा है—'मंगतराम जी की बाणी ही संगत के लिए गुरु है, किसी अन्य गुरु की आवश्यकता समतावादी के लिए नहीं।'[3] विद्वान् लेखक ने पता नहीं किस आधार पर यह तथ्य प्रकट किया है। मुझे तो जगाधरी-समता योगाश्रम के प्रमुख साधक-प्रबन्धक श्री अमोलकराम जी ने यही सूचना दी थी कि समतावाद में भी नामदान होता है किन्तु राधास्वामी पंथ जैसा योजनाबद्ध एवं एक-एक समय में हजारों को दीक्षित करने जैसी बात हमारे समतावाद में नहीं है। मंगतराम जी ने भी एक स्थान पर लिखा है—'जब तक गुरु सिखया और सेवा न धारण न की जावे कभी भी समता में स्थित नहीं हो सकता।'[4] और यह सन्त मत तो है ही व्यावहारिक-साधना का खेल केवल वाणी का पाठ या किसी ग्रंथ का दर्शन मात्र, सन्तों की दृष्टि में कभी कल्याणकारण या उद्धारक जैसा नहीं हो सकता। यह तो जिन्दा पीरों का धर्म है। केवल वाणी-श्रवण या ग्रन्थ-दर्शन का सन्त-मत साधना पद्धति में काम क्या? ये तो बड़ी वीर्य-वान साधना के पक्षधर हैं।

---

1. श्री समता प्रकाश, पृ० 1216-17
2. वही, पृ० 1217
3. डा० राकेश, उत्तर भारत के निर्गुण पन्थ साहित्य का इतिहास, पृ० 230
4. श्री समता विलास, पृ० 12

समतावाद के आश्रम

जगाधरी, देहरादून, देहली, गुरदासपुर, पठानकोट, जम्मू, हल्दवानी, बरेली, अम्बाला तथा आगरा इत्यादि में समतापन्थ के प्रमुख आश्रम हैं। सभी आश्रमों में प्रायः ट्रस्ट बना रखे हैं, जो सत्संग आदि की व्यवस्था करते हैं तथा आश्रमों की देखरेख करते हैं।

इस पंथ के प्रमुख शिष्यों में बनारसीदास तथा अमोलकराम जी के नाम ही सामने आए हैं। इस तथ्य की सूचना देने वाले साधक शिष्य श्री रोणकचन्द थे। इनकी उदासीनता से लगता था कि समतावाद में श्री मंगतराम जी के बाद कोई उल्लेखनीय सन्त अथवा साधक है ही नहीं। समतावाद केवल थोड़े दिनों में ही औपचारिक आचार मात्र रह गया है। जो भी हो मंगतराम जी तथा उनकी बाणी का सन्त-साहित्य में एक स्थायी महत्व निश्चित है।

समता पन्थ : उपलब्ध साहित्य

(1) महात्मा मंगतराम जी द्वारा रचित 'सन्त जीवन साखी', प्रकाशक : सँगत समतावाद-समतायोगाश्रम, छछरोलीरोड, जगाधरी, जिला अम्बाला, कोहनूर प्रेस, लालकुँआ देहली, सन् 1958, पृष्ठ 160, प्राप्ति स्थान-समता योगाश्रम, जगाधरी, (व्यक्तिगत संग्रह)।

(2) महात्मा मंगतराम जी द्वारा रचित 'श्री समता प्रकाश' (पद्यात्मक बाणी), प्रकाशक--एवं प्राप्ति स्थान—वही, भगवत प्रिंटिंग प्रेस, मथुरा, सम्वत् 2011 वि०, प्रथम संस्करण, तथा दूसरा संस्करण सं० 2026, पृष्ठ सं० 1408 (व्यक्तिगत संग्रह)।

(3) महात्मा मंगतराम जी कृत 'श्री समता विलास' (गद्य), प्रकाशक : एवं प्राप्ति स्थान, वही, राज प्रिंटर्स, राजा मण्डी, आगरा, प्रथम संस्करण, 1949, द्वितीय संस्करण—1956 सन् तथा तृतीय संस्करण — 1975 ई० पृष्ठ संख्या : 410, (व्यक्तिगत संग्रह)।

(4) महात्मा मंगतराम कृत 'समता ज्ञान दीपक' (गद्य), प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान वही, राज प्रिंटर्स, राजा मण्डी, आगरा, पृष्ठ 302 (व्यक्तिगत संग्रह)।

(5) महात्मा मंगतराम द्वारा रचित 'समता आध्यात्मिक पत्र' (प्रथम भाग) (गद्य), प्रकाशक एवं प्राप्तिस्थान, वही : मुद्रक—वही, प्रथम संस्करण—1957 ई०, पृष्ठ संख्या 252, (व्यक्तिगत संग्रह)।

(6) महात्मा मंगतराम कृत 'समता आध्यात्मिक पत्र' (दूसरा भाग) गद्य,

प्रकाशक, मुद्रक तथा प्राप्ति स्थान, वही, प्रथमसंस्करण, सन् 1976 पृष्ठ 144, (व्यक्तिगत संग्रह)।

(7) श्री अमोलक राम कृत 'डवार्डज़ एन एवरलास्टिंग व्लिस' 'समता विलास' के महत्वपूर्ण अँशों का अँग्रेज़ी अनुवाद, प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान. वही, मुद्रक—नवीन प्रेस दिल्ली, सन् 1963, पृ० सं० 66, (व्यक्तिगत संग्रह)।

(8) महात्मा मंगतराम कृत 'परम कल्याणबोध' (गद्य), प्रकाशक—मुद्रक प्राप्ति स्थान—वही, सन् 1957, पृ० 24 (व्यक्तिगत संग्रह)।

(9) महात्मा मंगतराम कृत 'आध्यात्मिक प्रश्नमाला (गद्य)', प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान—वही, मुद्रक : पी० पी० आई प्रेस, पहाड़गंज, नई दिल्ली, सन् 1960, पृष्ठ 46, (व्यक्तिगत (संग्रह)।

(10) महात्मा मंगतराम कृत 'समतावाद नित नियम (गद्य)', प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान—वही, मुद्रक : नवलोक टाइम्स प्रेस, राजा मण्डी, आगरा, प्रथम संस्करण—1953 ई०; द्वितीय संस्करण—1960 तथा तृतीय संस्करण–1971; पृ० 72 (गुटका) (व्यक्तिगत (संग्रह)

(11) महात्मा मंगतराम कृत 'सत्संग पुष्पमाला', सत अनुराग सरोवर तथा रहनुमाए मार्फत (उर्दू), गुटके हैं—प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान : वही (व्यक्तिगत संग्रह)।

अध्याय 8

हरियाणा का राधास्वामी पंथ

हरियाणा में राधास्वामी पंथ की पीठिका

इस पंथ का आरम्भ, जनवरी, सन् 1861 में बसंत पंचमी के दिन राय शालिग्राम जी द्वारा स्वामी जी महाराज श्री शिवदयाल सिंह जी की आज्ञा से आगरा में किया गया।[1] प्रथम गुरु स्वामी जी महाराज की मृत्यु 15 जून, 1878 में हुई। इनका कार्यभार राय शालिग्राम, जो हजूर महाराज के नाम से प्रसिद्ध हुए, अपनी मृत्यु-पर्यन्त (6 दिसम्बर, 1878) सुचारू रूप से चलाते रहे।[2] हजूर महाराज के जीवनकाल में ही इस पंथ का प्रसार बंगाल, बिहार, उत्तरी पश्चिमी प्रान्त (जम्मू-काश्मीर, पंजाब, हरियाणा, हिमाचल) राजस्थान तथा मध्य प्रदेश तक हो गया था।[3] तीसरे गुरु श्री ब्रह्मशंकर मिश्र ने पंथ को इलाहाबाद, वाराणसी, पूर्वी उत्तर प्रदेश, बंगाल तथा उड़ीसा तक फैला दिया।[4] आजकल इस पंथ की विभिन्न शाखाओं ने इसका प्रचार एवं प्रसार अमेरिका, इंगलैंड, जर्मनी, इटली, फ्रांस, ग्रीस, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, कनाडा तथा मलेशिया, इत्यादि तक कर दिया है, तथा इसके अनुयायियों की संख्या लाखों में हो गई है।[5]

पंथ को सुगठित तथा सुव्यवस्थित करने के लिए श्री ब्रह्मशंकर ने सन् 1902

---

1. सार बचन, राधास्वामी, छन्द बद्ध, भूमिका,
2. आगम प्रसाद माथुर, राधास्वामी फेथ, पृ० 57
3. वही, पृ० 131
4. वही, पृ० 131
5. वही, पृ० 132

में पंथ की एक केन्द्रीय परिषद का गठन किया। इस परिषद् द्वारा तीन सदस्यों को 'नाम' देने का अधिकार दिया गया।[1] इन तीन सदस्यों में एक सदस्य बाबा जैमल सिंह थे। इन्होंने परिषद् की स्वेच्छाचारी एवं निरंकुश नीति के विरुद्ध विद्रोह-स्वरूप 'राधास्वामी शाखा' की उसी समय स्थापना की। इसके साथ ही यह पंथ तीन विभिन्न शाखाओं में विभक्त हो गया।—(1) परिषद-संगठित शाखा, जिस की आगे चलकर और शाखाएं हो गई ; (2) दयालबाग शाखा तथा (3) व्यास शाखा।[2] उल्लेखनीय है कि यह अलगाव अथवा विभिन्न शाखाओं में इस पंथ का बंटना किसी सैद्धान्तिक मतभेद के कारण न होकर केवल परिषद की निरंकुशता के कारण था।[3]

हरियाणा में 'व्यास शाखा' का ही अधिक प्रचार और प्रसार है। इस शाखा के प्रसिद्ध संत बाबा जैमलसिंह के पश्चात बाबा सावनसिंह, तथा जगत सिंह हुए हैं। आजकल संत चरणसिंह व्यास शाखा के प्रतिनिधि संत हैं। इन्होंने इस पंथ का आधुनिकीकरण करके अनुयाइयों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि की है। बाबा सावन सिंह के शिष्य किरपाल सिंह ने गुड़मण्डी दिल्ली में सन् 1851 में एक बड़ा सत्संग-भवन स्थापित किया है।[4] सावन सिंह के शिष्य 'शाह मस्ताना' ने सिरसा में 'सच्चा सौदा' नाम से एक बड़ा सत्संग संस्थान स्थापित किया है जिसका संचालन आजकल संत सतनाम सिंह कर रहे हैं।[5] 'सच्चा सौदा' भी प्रायः एक अलग ही पंथ का स्वरूप धारण कर चुका है, क्योंकि व्यास शाखा की गद्दी के प्रति कोई श्रद्धा इनमें नही रह गई है और 'सच्चे सौदे' के अनुयायी लाखों में हो गए हैं।[6]

'हुजूर महाराज साहेब' के एक बड़े प्रभावशाली शिष्य महर्षि शिवव्रत लाल वर्मन हुए हैं। हरियाणा में जो राधास्वामी पंथी साहित्य उपलब्ध है, वह इन्हीं शिवव्रत लाल के शिष्यों द्वारा ही प्रणीत है। इस प्रकार महर्षि शिवव्रत लाल हरियाणवी राधास्वामी पंथ के महत्वपूर्ण सन्त हैं।

महर्षि शिवव्रत लाल

इनका जन्म संवत् 1916 बताया जाता है। इन्होंने एम० ए० तक शिक्षा

---

1. अगम प्रसाद माथुर, राधास्वामी पंथ, पृ० 109
2. वही, पृ० 112
3. वही, पृ० 119
4. वही, पृ० 129
5. सतनाम सिंह, संतलोक का संदेश, भूमिका,
6. स्वतन्त्र सम्प्रदाय के रूप में 'सच्चा सौदा' का परिचय आगे विस्तार से दिया गया है।

पाई थी। प्रारम्भ में इन पर आर्य समाज का गहरा प्रभाव रहा है। यही कारण है कि इनका आर्य समाज तथा राधास्वामी पंथ दोनों में समान भाव से सम्मान किया जाता है। जीवन के उत्तरार्ध में हुजूर महाराज से इन्होंने दीक्षा ली तथा उनका देहान्त हो जाने पर अपनी गद्दी सं० 1978 में गोपी गंज (वाराणसी के निकट) में चलाई।[1] ये बड़े योग्य, अनुभवी तथा विद्वान व्यक्ति थे। इन्होंने 'साधु' 'फकीर', 'संत' तथा 'संतसमागम' जैसे कई आध्यात्मिक पत्र-पत्रिकाओं का वर्षों तक सम्पादन किया। इन पत्रिकाओं द्वारा इन्होंने आध्यात्मिक विषयों की सहज-सरल व्याख्या कर सर्व साधारण तक पहुँचाया। इन्होंने सैंकड़ों ग्रंथों की रचना की जिनमें उपन्यास, उपाख्यान, निबन्ध, काल्पनिक संवाद तथा चुटकुले आदि भी थे। विद्या कोई भी रही हो इनके विचार आध्यात्मिक ही होते थे। 'कबीर जोग', 'बीजक टीका', 'अवधूत गीता', 'संतमाल' आदि इनकी प्रतिनिधि रचनाएँ हैं। इन्होंने आध्यात्मक क्षेत्र में अपनी रचनाओं द्वारा महत्वपूर्ण काम किया है। इनकी मृत्यु संवत् 1996 में हुई।[2] इनका अधिकांश समय लाहौर में बीता।

महर्षि शिवव्रतलाल की शिष्य परम्परा में आने वाले हरियाणवी सन्तों में संत रामसिंह 'अरमान', किदार सिंह, फकीरचन्द, नन्दूसिंह, इत्यादि प्रमुख हैं।[3] एक अन्य संत द्वारका दास भी महर्षि जी के शिष्य हुए। इन शिष्यों में से बाणी अथवा साहित्य तो केवल दो का ही प्राप्त है—एक संत रामसिंह अरमान तथा दूसरे द्वारका दास का।

संत रामसिंह अरमान

'श्री रामसिंह अरमान' का जन्म आश्विन बदी नौमी संवत् 1952 को जुई निवासी श्री बुद्धराम यादव के घर हुआ था। इन्होंने जे० वी० तक शिक्षा प्राप्त की थी और व्यवसाय से अध्यापक थे। ये अध्यापक के रूप में बड़े लोकप्रिय थे। इन्होंने जुई, मीरान, धारवाणबास, बुड़ाना आदि में अध्यापन कार्य किया। भारत के भूतपूर्व रक्षामन्त्री श्री बंसीलाल इनके शिष्यों में से थे। इनका विवाह निम्बो-देवी लुहानी वाली से हुआ था। रघुवीरसिंह तथा बलबीर सिंह नामक दो पुत्रों तथा पाँच पुत्रियों के ये पिता थे। कहा जाता है कि इनका गृहस्थ जीवन बहुत सुखी था।

सत्संग तथा साधु, सेवा की वृत्ति इनमें प्रारम्भ से ही थी। इनकी इस वृत्ति से प्रभावित होकर स्वामी परमानन्द जी ने इन्हें महर्षि शिवव्रत लाल से दीक्षा

---

1. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० 801
2. वही
3. रामसिंह अरमान, अरमान सागर, पृ० 57

लेने को प्रेरित किया था। शिवव्रत लाल से इन्हे सन्तमत में दीक्षा भी मिली और 'अरमान' उपनाम भी प्राप्त हुआ जिसका उल्लेख इनकी रचना 'अरमान सागर' में इस प्रकार है—

'सन् 1920 से करते रहे अभ्यास।
'श्री शिवव्रत लाल की दया से वस्तु मिली वह खास ।।...
'अरजी मेरी सुन लई सतगुरु हुए मेहरबान।
रामसिंह से कर दिया—रामसिंह 'अरमान' ।।'[1]

सन् 1920 से लेकर मृत्यु तक संत जी अपने साँसारिक दायित्वों को निभाने के साथ-साथ निरन्तर अभ्यास तथा साधना में लगे रहे। सन् 1930 में महर्षि शिव-व्रत लाल जी ने इसकी प्रगति से प्रसन्न हो इन्हें जिला हिसार में 'नाम' दान का तथा सत्संग के प्रचार का अधिकार दे दिया जिसका उल्लेख उन्होंने इस प्रकार किया है—

'फिर दिसम्बर, 1930 में गया राधास्वामी धाम।
सतगुरु ने सौंपा मुझे गुरुवाई का काम ।।
जिला हिसार मैंने दिया करो संत प्रचार।
मेरी तरफ से कर दिया मैंने तुम्हें मुख्तयार ।।'[2]

संत रामसिंह 'अरमान' का शरीरान्त सं० 2032 की आश्विन कृष्ण दशमी को हुआ था। संत जी अपनी मृत्यु पर्यन्त अपना सन्तमत प्रचार का कार्य सुचारू रूप से चलाते रहे।

रचनाएँ

अरमान साहिब की दो रचनाएं उपलब्ध हैं—(1) अरमान सागर तथा (2) अरमान रामायण। अरमान सागर प्रकाशित रचना है तथा अरमान रामायण अप्रकाशित है, जोकि संत ताराचन्द की शीघ्र ही प्रकाशित करने की योजना बना रहे हैं। 'अरमान सागर' संत रामसिंह जी की प्रतिनिधि कृति कही जा सकती है। 132 पृष्ठ का यह लघु ग्रंथ 'अरमान' जी के व्यक्तित्व तथा कृतित्व का सुन्दर दर्पण है। इसमें 1000 साखियाँ, दोहे तथा चौपाइयाँ; अंग रूप में 20 कुँडलियाँ 37 सवैये तथा 27 शब्द (पद) संकलित हैं। इस रचना में राधास्वामी सम्प्रदाय सम्बन्धी मान्यताओं तथा आचरण सम्बन्धी कुछ विधि-निषेधों का बड़े सुन्दर ढंग से निरूपण किया गया है।

---

1. रामसिंह अरमान, अरमान सागर. पृ० 58-59
2. वही, पृ० 57

सतगुरु की महिमा

सन्त 'अरमान जी' का कहना है कि इस संसार सागर से पार पाने के लिए, चौरासी के भोग से निस्तार पाने के लिए, तथा जामन-मरण का जो असाध्यरोग इस जीवन को लगा हुआ है, इससे केवल सतगुरु ही मोक्ष दिला सकते हैं।[1] सतगुरु परमपुरुष के अवतार हैं। वे दाता दयाल हैं। वे काग से हंस बनाने वाले हैं। जो तन-मन से उनकी सेवा करता है, वे दयाल होकर उसे भवसागर से पार करा देते हैं।[2] जीव-पीव का मेला कराने वाले सतगुरु सन्त ही होते हैं।[3] जब सतगुरु मेहरबान होते हैं तो अपने भीतर परमानन्द का छिपा स्रोत मिल जाता है—

'दया करती गुरुदेव ने—खूब हुआ आनन्द।
अपने भीतर पा गया प्यारा परमानन्द॥[4]

सतगुरु के चरणों में अरब-खरब प्रणाम करता हूं जो उन्होंने अपना नाम मुझे दिया—

'सतगुरु चरण मैं राम सिंह अरब खरब प्रमाण।
दया करी गुरुदेव ने बख्श दिया निज नाम॥'[5]

राम, कृष्ण, विष्णु, शिव, सनकादिक, गणेश तथा सभी अवतार सतगुरु नाम की महिमा का निरन्तर गुणगान करते रहते हैं।[6]

राधास्वामी स्वरूप

'राधा सुरत का नाम है शब्द स्वामी जान।
धून आत्मिक नाम है कहे रामसिंह अरमान॥
'राधा है जीव आत्मा स्वामी सत करतार।
ये दोनों मिल गये नारी और भरतार॥'[7]

राधास्वामी मार्ग—सुरति शब्द का मार्ग है। सूरत रूपी राधा को शब्द रूप स्वामी से मिलाना होता है। सुरति शब्द का जीव आत्मा तथा ब्रह्म का अथवा नारी तथा भरतार का नाता होता है। सुरति शब्द के मेल से राधास्वामी धाम की

---

1. रामसिंह अरमान, अरमान सागर, पृ० 43
2. वही, पृ० 43
3. वही, पृ० 44
4. अरमान सागर, पृ० 2
5. वही, पृ० 1
6. वही, पृ० 3
7. वही, पृ० 70

प्राप्ति होती है जो सब से ऊँचा धाम है, जहां पहुँचकर जीवन ब्रह्ममय हो जाता है बूंद समुंद्र में समा जाती है। यही अलख अगम तथा खास रूहानी मुकाम है। यही वह अनामी धाम है जिसे ब्रह्मा-विष्णु-शिव सतनाम कहकर निरन्तर जाप करते रहते हैं—

राधा स्वामी धाम है सबसे ऊँचा धाम।
सत अलख और अगम है रूहानी खास मुकाम ।।
ब्रह्मा-विष्णु-शिव सब जपते हैं सतनाम।
राधास्वामी आखिरी वह अनामी धाम ।।[1]

सतनाम महिमा

'सतनाम सत पुरुष का, सत लोक प्रवेश।
चेतन ही चेतन वहां, चेतन रहे हमेश ।।
सतनाम सत पुरुष का, सत लोक में बास।
शब्द योग से रामसिंह, होता है प्रकाश ।।[2]

सतनाम सत पुरुष एक ही वस्तु है। यह अन्तर की ध्वनि अथवा धुनि है। यही अनाहत नाद है, अंतर की धुनि है जो निरंतर बजती रहती है। साधन से इसे सुनने का अभ्यास किया जाता है। सुरत शब्द के अभ्यास से इस सतनाम की प्राप्ति होती है। वह चेतन का देश है जहां आनंद का साम्राज्य है। यही पंचम नाम है—यही सार नाम है।[3] यही अजपा जाप है, इसी से बाहर भीतर उजियार होता है।

सहजयोग अथवा सुरत शब्द योग

'सहज योग' अथवा 'सहज साधना' अथवा 'सुरत शब्द योग' को सभी संत सम्प्रदायों में ब्रह्म-प्राप्ति के लिए एकमात्र साधना-पद्धति माना गया है। इस सहज साधना का प्रतिपादन 'अरमान जी' निम्नलिखित शब्दों में करते हैं—

'सहजे ही धुन होते हैं, सहजे ही आनन्द।
सहजे ही आनंद—सहज में योग कमावे ।।
सहज अजप्पा जाप, सहज में सूरत चढ़ावे।
सहज निरखे रूप—सहज ही आनन्द पावे।
सहजे ही मन बस करै—सहज मुक्त हो जावे ।।[4]

---

1. अरमान सागर, पृ० 70
2. श्री रामसिंह अरमान, अरमान सागर, पृ० 7
3. वही, पृ० 8
4. वही, पृ० 108

तथा

सुरत शब्द यह योग है, सब योगों का मूल ।।[1]

यह सहज योग का अभ्यास सुरत-शब्द का खेल है। जो इसका साधन करते हैं उनके घर में प्रकाश हो जाता है। यह सहज साधना बड़ी सहज है—इससे मन सहज ही निर्मल हो जाता है। सजह योग साधन से सहज ही करतार का दीदार हो जाता है और इस प्रकार इस सहज से जीव भवसागर पार हो जाता है।[2] मोक्ष कामी साधक के लिए यह सहज साधना परम अनिवार्य है।

संतस्वरूप निरुपण

'अरमान' जी के मत से संत, सतगुरु तथा परम पुरुष परमेश्वर में प्रायः कोई अन्तर नहीं है। अपनी गुणवत्ता से तीनों ही पर्यायवाची हैं। जो राग द्वेष से दूर हैं, जो उस प्यारे के प्रेम में हरदम मसरूर रहते हैं जिनके हृदय में साँच की आँच है, जो मीठे बैन से सूने हृदय को भी सरस कर देते हैं जो सदा ही दयाल रहते हैं, जो सदा आनन्द सागर में अवगाहन करते रहते हैं वही पूर्ण संत हैं।[3] जो सुरत शब्द के भेदी हैं, जो साधन और अभ्यास से रमता की रमज समझगए हैं, जिनका अजपा जाप निरन्तर चलता रहता है, जिनकी प्यास मिट गई है, वे ही सन्त हैं—

'साहब में और सन्त में भेद भाव कुछ नाय।
संत मिलें जब रामसिंह, साहब मिल गए आय ।।'[4]

पंथ की अनिवार्यता

हम प्रायः पंथों, मतों तथा सम्प्रदायों को व्यर्थ समझकर आलोचना करते रहते है, किन्तु 'अरमान जी' ऐसा नहीं मानते। वे पंथ की सार्थकता एवं अनिवार्यता में विश्वास करते हैं—

'बिना पंथ के रामसिंह, नहीं ठिकाना ठौर।
बिना पंथ का पावना, फिरे राम का चोर।।
बिना पंथ के रामसिंह, भरम रहा संसार।
पंथाई मार्ग चले—हो भवसागर पार।।
बिना पंथके रामसिंह, श्रद्धा नहीं विश्वास।
पंथाई चले पंथ पर, सच्चा गुरु का दास।।[5]

---

1. श्री रामसिंह 'अरमान', अरमान सागर, पृ० 105
2. वही, पृ० 23
3. वही, पृ० 50
4. वही, पृ० 33
5. अरमान सागर, पृ० 37

उनके मत से बिना पंथ के हृदय डाँवा-डोल रहता है, भक्ति नहीं हो सकती, दिल में उमंग नहीं होती। बिना पंथ का साधक कोल्हू का बैल, कुम्हार का गधा होता है, अतः किसी-न-किसी पंथ का अनुसरण किनारे लगने के लिए अनिवार्य है।[1]

सुमरन माहात्म्य

मानव शरीर को कृतकार्य करने के लिए 'अरमान जी' सुमरन को अत्यावश्यक मानते हैं—

'सुमरन कीजै रामसिंह, छोड़ सुरत उत्पात।
जाना है रहना नहीं, सुनो हमारी बात।।[2]

अभिव्यक्ति पक्ष

भाषा की दृष्टि से अन्य संतों से ये निराले हैं। इनकी भाषा अति सरल तथा हरियाणवी मिश्रित खड़ी बोली है। इन्होंने भाषा का प्रचलित रूप ही अपनाया है। इनकी सारी वाणी प्रसाद गुण से ओतप्रोत है। अलंकारों में उपमा, अनुप्रास, तथा दृष्टान्त ही इन्हें प्रिय है। छन्दों में इन्होंने दोहा, चौपाई, गीति अथवा पद, सवैया तथा कुंडलियाँ, छन्दों का प्रयोग किया है। दोहा तथा पद जहाँ संतों की वाणियों में बहुधा प्रयुक्त होते हैं—वहाँ इनकी कुंडलियाँ तथा सवैये इन्हें बिरल बनाते हैं। एक कुंडली का उदाहरण प्रस्तुत है जिसमें मायावी संसार की असारता का दिग्दर्शन कराया गया है—

'जो आया है सौ जाएगा बाजीगर का खेल।
बाजीगर का खेल माया में चित्त न दीजै।।
यह मन है बड़ा नीच झूठ पर हरदम रीझे।
हरगिज बुझे न प्यास औस नीर न पीजै।।
माया है जंजाल प्रीत न इससे कीजै।
माया ठगनी रामसिंह नहीं तिलों में तेल।
जो आया सो जाएगा बाजीगर का खेल।।[3]

अरमान जी के सवैयों में भी प्रवाह तथा सरसता विद्यमान है। एक उदाहरण प्रस्तुत है जिसमें सांसारिक मोहान्धता का चित्र प्रस्तुत किया गया है—

'जीवन का अभिमान भारी, धन का गुमान है।
कुटुम्ब का गरूर करै, भारी ही नादान है।।

---

1. अरमान सागर, पृ० 38
2. वही, पृ० 32
3. वही, पृ० 110

त्रिया पर तू मोहित हो रहा, कहता मेरी जान है।
मेरा बेटा मेरी बेटी, रामसिंह अज्ञान है।।[1]

इनके पदों में गेय तत्व तथा प्रवाह है। कोई भी छन्द सायास अथवा ठोंक-पीट कर बनाया हुआ नहीं है। ये अपनी बात को पूरी तरह कह सकने में समर्थ हैं। संत-साहित्य में काव्यत्व के जो गुण उपलब्ध होते हैं, 'अरमान सागर' की बाणियाँ उनसे परिपूर्ण हैं।

शिष्य परमपरा

'अरमान' साहेब के शिष्य के शिष्य तो सैंकड़ों बतलाए जाते हैं किन्तु इनके केवल दो शिष्यों ने ही बाणियों की रचनाएँ की हैं। इनमें से एक हैं—संत ताराचंद तथा दूसरी है शिष्या निहाली बाई।

संत ताराचन्द

इनका जन्म सम्वत् 1980 वि० में हुआ बतलाया जाता है। पिता का नाम श्री मूलचन्द तथा माता का नाम चावली देवी था। माता-पिता बचपन में ही गुजर गए थे अत: ये अपनी थोड़ी सी जमीन के सहारे गुजर बसर करते रहे। साधु-सत्संग की प्रवृत्ति आरम्भ से बतलाई जाती है ये बड़े सात्विक आचार विचार वाले व्यक्ति हैं और अविवाहित हैं। रामसिंह जी से नाम लेकर इन्होंने नाम की खूब कमाई की है। कहते हैं कि कमाई (नाम की) में बड़े पूरे हैं। अब तो इनका सत्संग दूर-दूर तक प्रसिद्ध हो गया है। आजकल दिनोद (जन्म स्थान) में एक बहुत अच्छा सत्संग संस्थान इनकी देख-रेख में तैयार हो गया है। एक समिति बना रखी है जो सारे संस्थान के आय-व्यय सम्बन्धी मामलों को देखती है। ताराचन्द जी स्वभाव से सरल, स्पष्ट-वक्ता, तथा संयमी साधक हैं। इनको नाम-दान का धिकार 'अरमान-साहेब अपने जीते जी ही दे गए थे। इनकी कमाई से वे बड़े प्रसन्न थे और उनकी दृष्टि में ये एक कृती शिष्य हैं। सन्त अरमान जी ने इनका उल्लेख अपने 'अरमान सागर' में इस प्रकार किया है—

'बेखटके तुम नाम दो, करो सन्त प्रचार।
हरयाणा के संत हो, तुम्हें दिया अखतयार।।'[2]
तथा
'रोशन ताराचन्द हो जाओगे, हरियाणा दरम्यान।
एक दिन ऐसा हो गया, सबके बनो प्रधान।।'[3]

---

1. अरमान सागर, पृ० 111
2. वही, पृ० 98 ; 70
3. वही, पृ० 97 ; 65

इस प्रकार गुरु का आशीर्वाद इन्हें प्राप्त है तथा आजकल अपने जन्म स्थान दिनोद के अतिरिक्त और भी कई स्थानों पर सत्संग चला रहे हैं।

रचनाएं

इनकी 'अनुभव-प्रकाश' नामक रचना प्राप्त हुई है। इसकी भूमिका इनके गुरु रामसिंह द्वारा लिखी गई है। भूमिका में संकेत किया गया है कि इसका प्रकाशन सन् 1962 में प्रथम बार किया गया। अब इस ग्रंथ के संशोधित संस्करण में 'संत अमृतबाणी' के दोनों भागों से तथा अन्यत्र से भी कुछ नई सामग्री दी है।'[1] निश्चय ही 'अनुभव प्रकाश' को ताराचन्द जी की प्रतिनिधि रचना कह सकते हैं।

अनुभव प्रकाश—212 पृष्ठ की मध्यम आकार की पुस्तक है। आरम्भ में 6 पृष्ठ की भूमिका है जिसमें रामसिंह जी ने राधास्वामी पंथ को आत्म-मोक्ष का सर्वश्रेष्ठ मार्ग बतलाया है तथा संत ताराचन्द को इनके लिए साधुवाद दिया है। सारी वाणी को दो भागों में विभाजित किया गया है। पहला भाग 'संत अमृतवाणी' के शीर्षक से है तथा दूसरा भाग है जिसमें 66 पद हैं।

पहला भाग जो 'सन्त अमृतवाणी' के शीर्षक से है, उसके अंतर्गत 50 अंग हैं। इसमें 83 सवैये, 6 कुंडलियाँ तथा अलफनामा सम्मिलित हैं। सर्वप्रथम 'सतगुरु महिमा का अंग' लगभग 110 साखियों में आया है। साखी संख्या नहीं दी है। परम्परागत रूप से, जैसे एक रूढ़ि का पालन किया गया हो, ताराचन्द जी ने अपने दादा-गुरु महर्षि शिवव्रत लाल तथा गुरु रामसिंह 'अरमान' के प्रति सीधी सरल भाषा में अपनी श्रद्धा व्यक्त की है। इसके पश्चात् 'सतनाम का अंग' लगभग 30 साखियों में आया है। सतनाम का माहात्म्य बताते हुए ताराचन्द जी ने लिखा है—

'सतनाम को जानिये, पाँच नाम का सार।
ताराचन्द सतनाम की, महिमा अपरम्पार।।[2]

'सतसंग का अंग' भी लगभग 30 साखियों में आया है। इसके साथ ही 15-16 साखी सत्संगत का अंग की संकलित हैं। इनमें भी कोई छूने वाली बात नहीं। 'साधन का अंग' में साधना का महत्व भी बड़ा फीका सा ही है। 'सुमरिन का अंग' में भी 'सुमरिन' को बड़े निष्प्रभ शब्दों में सतलोक पहुंचने का अचूक तथा एक मात्र साधन बतलाया है। 'शिष्य का अंग' में शिष्य को गुरुमुख होने की सीख दी गई है। 'अधिकारी का अंग' में अधिकारी का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—

---

1. ताराचन्द, अनुभव प्रकाश, भूमिका,
2. वही, पृ० 15

अधिकारी जो जीव है, उन्हें मिले सत्संग।
ताराचन्द अधिकार बिन, खाली फिरै मलंग ।।'[1]

'भगवती का अंग' में भक्ति को कल्याणकारी कहा गया है और किसी 'सूरमा' को ही इसका अधिकारी बतलाया गया है। 'साधु' 'नुगारा', 'गुरु निंदक', 'भलाई' तथा 'मीठी बाणी' के अंगों में केवल परम्परा का फीका निर्वाह मात्र है। 'नशे का अंग' में सभी नशों को निषिद्ध माना गया है। 'शराब का अंग' में शराबी की विशेषता देखिए—

शराबी का कोई धर्म ना, लौटे कुरडी माँह।
कुत्ता मुँह में मूतता, उसकी सोधी नाहं ।।[2]

'माँस का अंग' में निरामिष भोजन को श्रेष्ठ बतलाया है। 'गुरु निश्चय का अंग' में गुरू के शब्दों पर दृढ़ रहने की सीख है। 'विश्वास का अंग' तथा 'आशा का अंग' दोनों में ही गुरु पर विश्वास तथा 'एकमात्र' गुरु की 'आशा' करना ही हितकर बतलाया है। 'नाम का अंग' में सन्तों के सहज योग की श्रेष्ठता का प्रतिपादन है। सन्तों का दिया हुआ नाम सभी विधियों से श्रेष्ठ है। 'देखादेखी का अंग' में रीस नकारने की सीख है। 'कपटी गुरु के लक्षण का अंग' में नकली गुरु से सावधान रहने को कहा गया है। 'सच्चे गुरु का अंग' में सच्चे गुरु को ही धारण करने की सीख है। 'गाने का अंग,' 'साधन का अंग', इत्यादि में केवल अंग लिखने का निर्वाह मात्र है। 'काल का अंग' मैं सतगुरु शरण को ही काल से बचने का साधन बताया गया है—

'जो सतगुरु का दास है, उससे डरता काल।
मोहर मिली जो नाम की, सतगुरु होय दयाल ।।'[3]

'लग्न का अंग', 'नाम का अंग', 'अनुभव का अंग' तथा 'समझे का अंग' आदि में अपनी ही बातों का पिष्टपेषण है। 'मौन धारण का अंग' मैं मौन की महत्ता बतलाते हुए ताराचन्द जी का कहना है कि—

मौन धारी ताराचन्द से, दिया गगन को फोड़।
सच्चे सतगुरु अरमान मिले, मिटी काल की दौड़ ।।[4]

'असाधु का अंग' में श्रम-धर्म के पक्षधर को सच्चा साधु बताते हुए कहा गया है कि—

---

1. ताराचन्द, अनुभव प्रकाश, पृ० 30
2. वही, पृ० 45
3. वही, पृ० 66
4. वही, पृ० 72

'हल जोतो खेती बोओ, खूब कमाओ मीत।
रैदास कबीरा कह गए, यही बड़ों की रीत।।[1]

'परिचय का अंग' में अपनी 'पहुँच' का परिचय दिया है। 'गुरु मुख का अंग' में 94 साखिाँ हैं। इसमें गुरुमुख की महिमा का वर्णन किया गया है। 'गुरुद्रोही का अंग' 104 साखियों में आया है। तथा इसमें गुरुनिंदक गुरुद्रोही की भर्त्सना की गई है। साखी शीर्षक से 100 साखियां हैं जिनमें ताराचन्द जी ने अपनी आध्यात्मिक यात्रा का परिचय दिया है। 'कंवल भेद निर्णय का अंग' में मूल कंवल से लेकर अन्तिम पड़ाव सतलोक तक के सभी स्थानों का 60 साखियों में परिचय दिया गया है।

पहले भाग में अंगों के पश्चात् 83 सवैये हैं। उदाहरण स्वरूप एक सवैया बानगी के लिए प्रस्तुत है—

बाहर की जो आँख देखती सारा झगड़ा झूठा है।
अन्तर की आँखों से देखो, घट में खेल अनूठा है।
मन माया की फिरै दुहाई, पांच पच्चीस ने लूटा है।
ताराचंद भवसागर तिर गए, सतगुरु सिर पर खुंटा है।।[2]

कई सवैयों में छंद इत्यादि का ध्यान बिल्कुल नहीं रखा गया है। कोई सात पंक्तियों में तो कोई 10 में कोई 22 पंक्तियों में आया है। कई पद भी सवैये शीर्षक से दे रखे हैं—

इन सवैयों के पश्चात् इस ग्रन्थ से 6 कुंडलियाँ तथा अलफनामा है। 'अलफ-नामा' में उर्दू की वर्णमाला के हिसाब में 'अलिफ' से 'ये' तक बारहखड़ी अथवा 'बावन अक्षरों रूढ़ि का यहाँ सुन्दर निर्वाह किया गया है। दूसरा भाग 'शब्द भाग' है जिसमें 66 पद हैं। अन्त में विनती तथा आरती है। इनमें 2 मंगलराग तथा एक 'कविता' किसी अन्य शिष्य की है। इन्हीं पदों में सात पद निहाली बाई के भी संकलित हैं।

सारी बाणी को देखने पर इनकी प्रामाणिकता का आभास तो होता है। किन्तु अनुभूति के वैभव एवं परिपक्वता का आभास-सा प्रतीत होता है। अभिव्यक्ति सहज नहीं लगती, सायास प्रतीत होती है। भाषा सामान्य बोलचाल के अधिक निकट है। केवल इसी रचना के आधार पुर कुछ और अधिक कहना उचित नहीं है। क्योंकि अभी तो 'बाणी-निर्माण-उद्योग' सक्रिय है।

---

1. ताराचन्द, अनुभव प्रकाश पृ० 77
2. वही, पृ० 149

निहाली बाई

ये श्री रामसिंह 'अरमान' की शिष्या और संत ताराचन्द जी की बुआ थीं। इन्होंने ताराचन्द जी के पालन पोषण में बड़ी सहायता की थी। ये बड़ी सात्विक वृत्ति की महिला थीं। साधु एवं सत्संग में इनकी विशेष रुचि थी। इनके नाम से उपर्युक्त अनुभव प्रकाश में 7 पद आए हैं। एक पद यहाँ दिया जा रहा है जिससे इनकी आध्यात्मिक गतिमति का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

शब्द धुन को सुनो रे मेर भाई ।। टेक ।।
सन्त गुरु से तुम लेके नाम तुम शब्द की करो कमाई।
अनहद बाजे घट में बाजैं सुन ले ध्यान लगाई ।। 1 ।।
सहस कंवल दल घंटा बाजै, पहली मंजिल लाई।
बंकनाल के रास्ते चालो, पकड़ शब्द की राही ।। 2 ।।
त्रिकुटी मंडल ओहंग सोहंग देते शब्द सुनाई।
त्रिवेणी की संगम में मेरी सुरता मल मल न्हाई ।। 3 ।।
सुन्न माहा सुन्न बंसी की धुन सुन ले घर के माँही ।।
भंवर गुफा पी अमींरस प्याला, सार शब्द मिल जाई ।। 4 ।।
सतलोक है मुक्तिधामा जिसने सुरत चढ़ाई।
इसी रास्ते साधन करके पहुंची निहाली बाई ।। 5 ।।[1]

रूपचन्द चौहान

ताराचन्द जी के शिष्य रूपचन्द सरल नामक ग्राम के निवासी हैं और मणियाँरी का व्यवसाय करते हैं। इनकी एक रचना दो भागों में प्रकाशित हो चुकी है—'सतगुरु की दात' पहला भाग तथा दूसरा भाग। इस रचना में लगभग 200 पद हैं। कुछ साखियां अंग रूप में भी हैं। पहला भाग मुझे नहीं मिला। उसमें केवल शब्द ही बतलाए गए हैं, 90 के लगभग। दूसरा भाग जो मुझे प्राप्त हो सका है उसके आरम्भ में लगभग 60 साखियां 'सतगुरु महिमा का अंग' के शीर्षक से हैं। जिनमें सन्त ताराचन्द जी के प्रति इनकी श्रद्धा की अभिव्यक्ति है तथा सामान्य परम्परागत गुरु महिमा सम्बन्धी साखियां हैं। शेष 102 पद हैं। अन्त में विनती तथा आरती है। एक पद इनके कथ्य की बानगी के लिए प्रस्तुत हैं :—

तीसरे तिल पै लगाले सुरती ।। टेक ।।
पहने बावैं को एड़ा पींगला, सुखमन सुख की पुरती ।। 1 ।।
झीनी सी धुन में ध्यान लगा ले, निकले आवाज़ कुदरती ।। 2 ।।

---

1. ताराचन्द, अनुभव प्रकाश, पृ० 194

देख सुहानी रचना अपने घट की, करोरे मन फुरती ।। 3 ।।
सुरत शब्द का ये खेल निराला, नीचे आकाश ऊपर धरती ।।4।।
जैसे मकड़ी चढ़ै तालपे, घट से ही प्रगट करती ।। 5 ।।
गुरु ताराचन्द कहै गुप्त भेद है, घर में ही पूरन भगती ।। 9 ।।[1]

महर्षि शिवव्रत लाल के एक अन्य शिष्य पंडित द्वारकादास की दो रचनाएँ प्राप्त हुई हैं। इन्होंने अपनी पुस्तक सतगुरु कथा में महर्षि शिवव्रतलाल को अपना गुरु कहा है[2] किन्तु बादली वालों का कहना है कि ये बादली के कबीरपन्थी सन्त हरदेदास के शिष्य थे।[3] बाद में राधा स्वामी मत में दीक्षित हो गए हैं। कहना कठिन है कि किस फांसवश ये इधर आ गए। ये राधास्वामी पन्थी पण्डित जी को अवमानित भी करते रहते हैं। जो हो, हमें इन्हें इन्हीं की साक्षी पर राधास्वामी पन्थी ही मान लेते हैं।

पण्डित द्वारकादास

इनका जन्म स्थान बादली है। इनका जन्म संवत् 1956 वि० को बसन्त पन्चमी को आधी रात को हुआ था। इनका बचपन बहुत गरीबी में बीता। आरम्भ में इन पर आर्य समाज का प्रभाव रहा। बाद में इन्होंने राधास्वामी मत के हजूर राय शालिग्राम जी के शिष्य महर्षि शिवव्रतलाल एम० ए० से सुरत शब्द मार्ग का उपदेश तथा नामदान लिया।[4] व्यवसाय से ये अध्यापक रहे हैं तथा सन् 1955 में सेवा निवृत्त हुए हैं। 28 वर्ष आयु में इनके एक लड़का पैदा हुआ—हरनामसिंह जो इनकी एकमात्र सन्तान हैं। आजकल हरनाम सिंह राजस्थान में थानेदार के पद पर कार्य कर रहे हैं। द्वारकादास की पत्नी भी अध्यापिका रही हैं जो सन् 1970 में बादली से ही सेवा निवृत्त हुई हैं आजकल पण्डित द्वारकादास ने भी सत्संग चला रखा है जो चैत तथा कार्तिक पूर्णिमा को देहली के त्रिनगर, ओंकार नगर, मकान नं० बी—302, गली नं० 24 गुजरों की चौपाल के पास श्री देवकीनन्दन शर्मा के निवास स्थान पर होता है। पण्डित जी के शिष्यों की संख्या भी सैंकड़ों में हो गई हैं। आजकल इनका जीवोद्धार कार्य बड़े जोरों पर है।

---

1. रूपचन्द चौहान, सतगुरु की दात, पृ० 52, 45
2. द्वारकादास, सतगुरुकथा, पृ० 3
3. हरदेदास सम्बन्धी विस्तृत सूचना के लिए दे० प्रस्तुत प्रबन्ध का 'हरियाणा का कबीर पन्थ' शीर्षक अध्याय।
4. द्वारका दास, सतगुरु कथा, पृ० 3

रचनाएँ

पंडित जी (द्वारकादास) की दो रचनाएँ उपलब्ध हैं—(1) सतगुरु भेद तथा (2) सतगुरु कथा। 'सतगुरु भेद' 172 पृष्ठों की मध्यम आकार की पुस्तक है। इसमें प्रारम्भ में संतमत की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है। प्रतिपादन शैली तथा भाषा अति सामान्य तथा अव्यवस्थित है। 'रचना के भेद' काल की पैदायश और माया, सुरत का जाहिर होना, सुरत पर मन माया के परदे, माया के परदे, कुटुम्ब के परदे, ज्ञान तथा केवल आत्मा का परदा, कलि युग में ज्यादातर सन्त का ज्ञान और दया, सतगुरु का कलियुग में नूरी आना, राधास्वामी जी, सतगुरु का हर जगह सर्वग होना, कालभक्ति और सतगुरु भक्ति का भेद, मूर्तिपूजा के फायदे और नुकसान, नामदान क्या है? जीव कैसे काल से बच सकता है, सतगुरु सर्वग (सर्वज्ञ) कैसे हैं और उनका इन्तजाम, सतगुरु कैसे मिल सकते हैं, सतगुरु निराकार का दर्शन इन्हीं आँखों से होता है, निराकार से साकार होना, सतगुरु निराकार का रूप, नूर और शब्द, पूरण पवित्र ख्याल का सुमरण ध्यान, सतसंग किसे कहते हैं, सतगुरु के प्रसन्न करने का तरीका, सतगुरु काल वचन, मनुष्य कैसे अमर हो, सुमरण विधि नित पाठ, तथा साँस साधन जैसे शीर्षकों के अन्तर्गत पंडित जी ने अपनी टिप्पणियाँ दी हैं जिनके भाव का न कोई क्रम है न भाषा ही ठिकाने की है। हाँ, इनका समन्यववादी दृष्टिकोण श्लाघ्य है। वस्तुतः सभी संतों तथा उनके भेष इत्यादि में एक कबीर ही नामान्तर से समाये हुए हैं, वही मालिकेकुल हैं; सभी संत कवीर का ही रूप हैं।[1] गरीबदास, जैतराम, राधास्वामी, पलटूदास, घीसा साहब, जीतादास इत्यादि सन्तों के पदों के साथ इस कृति में 25 पद पंडित जी के भी संकलित हैं। भाव तथा भाषा की बानगी के लिए इनका एक पद यहां दिया जाता है—

पद—मेरे लगा शब्द का तीर री, मेरा हाल बेहाला ।। टेक ।।
घट में दुखड़ा भारी री, रड़के काल भाला।
मन नहीं धारें धीर, डर है काल का जाला ।।
दिल अन्दर रोना री, कासे कहूं यह ख्याला।
जहाँ जाऊँ तहाँ कपट भरा री, पड़ा जिगर में छाला ।।
ढूँढत ढूँढत री कोई मिले दयाला।
सतसंग में सुनी गुरु की बाणी, करी गुरु ने निहाला ।।
तनमन वारूं प्राणं री करी मन की माला।
द्वारका दास गुरु कबीर जी हुए हमारे रखवाला ।।[2]

---

1. पं० द्वारकादास, सतगुरु भेद, पृ० 11
2. वही, पृ० 156

पंडित जी को सत्संगियों के स्वास्थ्य का भी बराबर ख्याल रहता है इसीलिए पोथी के अन्त में इन्होंने विभिन्न रोगों के उपचारार्थ 25-30 नुस्खे भी दे दिए हैं।

इनकी दूसरी कृति 'सतगुरु कथा' है। जैसा शीर्षक से ही प्रकट होता है इस कृति में बताया गया है कि हमें सतनारायण की कथा इत्यादि में नहीं उलझना चाहिए वरन 'सतगुरु कथा' अर्थात् सत्संग का आश्रय लेना चाहिए। 'सतगुरु भेद' की तरह इसमें विभिन्न विषयों पर टिप्पणियाँ हैं। इस ग्रंथ में कुछ अन्य संतों की बाणी तथा 35 पद इनके स्वयं के हैं। अन्त में राधास्वामी की आरती तथा गरीब-दास जी रचित 'ब्रह्मवेदी' (गरीब पंथियों की आरती) संकलित हैं। इस पोथी के अन्त में भी कुछ नुस्खे लिख दिए हैं। पंडित जी की 'रहनी' और 'करनी' का सार इस पोथी में सीख शीर्षक के अन्तर्गत गिनाई गई 22 बातों में आ जाता है।[1]

पंथ की सम्भावनाएं

राधास्वामी पंथ की कुछ प्रमुख बातें रामसिंह 'अरमान' की बाणी के परिचय के अन्तर्गत ही आ गई हैं। अतः विस्तार में जाने की आवश्यकता यहाँ नहीं है संतों के सुपरिचित और प्रतिष्ठित सहजयोग (सुरत शब्द योग) को राधास्वामी मत के मानने वालों में अति सहज कर दिया है जिससे इनकी प्रामाणिकता संदिग्ध हो गई है। मूल विषय से हटकर अब ये प्रचारधर्मी होकर रह गए हैं हजारों एवं लाखों की संख्या में शिष्य बनाए जा रहे हैं। नामदान की धूम मची है। जो एक बार वर्तमान गुरु (वक्ते-गुरु) की शरण में आ गया, 'नाम' ले लिया बस उसकी नैया पार। संतों की साधना बड़ी वीर्यवान साधना रही है। यह सिर सांटे का सौदा है। किन्तु राधास्वामी मत के वर्तमान धर्मगुरुओं ने साधना को उपहास्य ढंग से सरल बना दिया है। गुरु से एक बार 'नाम' मिल जाए और बस। जैसे सारा ठेका गुरुजी ही उठाए हुए हैं, शिष्यों को गुरु से मिल लेने के बाद कुछ करने धरने की आवश्यकता नहीं। इतने हँसों को गुरु जी का नाम-जहाज मानसरोवर ले जा भी पाएगा, इसमें सन्देह है। संत तो बड़े चौकस होते हैं, उनकी उत्तम वस्तु इतनी सस्ती क्यों? राधास्वामियों के इस सस्ते लोकसंग्रह के विरुद्ध कुछ समझदार लोग विपरीत प्रतिक्रियाएं भी व्यक्त करने लगे हैं। इसी सन्दर्भ में संत हरदेदास (बादली वाले) ने जून, सन 1928 ई० में दयाल बाग आगरा वाले सर आनन्द स्वरूप जी के नाम अपने पत्र में बड़ी साफ चेतावनी दी है जिसमें राजसी ठाठ-बाट, दोषपूर्ण उपदेश (नामदान) तथा देहधारी गुरु का अति की सीमा तक महत्व इत्यादि बातों की

---

1. पं० द्वारकादास, सतगुरु कथा, पृ० 36-37

विशेष चर्चा है।[1] इन दिनों इस 'पंथ' का स्वरूप कुछ-कुछ मजहब जैसा होता जा रहा है, व्यक्तिगत साधना सामूहिक आचार होती जा रही है और साधना का स्थान औपचारिकताएँ लेती जा रही हैं। देश में ही नहीं, विदेश में भी इसका खूब प्रचार किया जा रहा है। आगे कहाँ तक यह अपने मूल स्वरूप को बचा पाएगा इसे केवल भविष्य ही बताएगा।

राधास्वामी पंथ : उपलब्ध साहित्य

(1) श्री रामसिंह 'अरमान' द्वारा रचित 'अरमान सागर', प्रकाशक : भगत ताराचन्द, विनोद (भिवानी); मुद्रक : नोरंगराय सिंहल, शक्ति प्रिंटिंग प्रेस, महाबीर घाटी, भिवानी; सन् 1970; पृ० सं० 132, प्राप्ति स्थान-सत्संग भवन, दिनोद (व्यक्तिगत संग्रह)

(2) श्री ताराचन्द द्वारा रचित 'अनुभव प्रकाश', प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान राधास्वामी सत्संग, दिनोद (भिवानी); मुद्रक : विश्व प्रिंटिंग प्रैस, जुलाना-मण्डी, (जींद), प्रथम संस्करण-1972 तथा दूसरा संस्करण-1974, पृष्ठ सं० 212, (व्यक्तिगत संग्रह)

(3) श्री रूपचन्द चौहान कृत 'सतगुरु की दात' (दो भाग), मुद्रक: हनुमान प्रसाद कागजी, दर्शना प्रेस, भिवानी; सन् 1977, : पृ० सं० 116; प्राप्ति स्थान, वही ; (व्यक्तिगत संग्रह)

(4) पंडित द्वारकादास कृत "सतगुरु भेद', प्रकाशक-देवकीनन्दन शर्मा, 302/24; त्रिनगर, दिल्ली-35; मुद्रक : हरिहर प्रेस, चावड़ी बाजार, दिल्ली-6, सन् 1974, प्राप्ति स्थान : पंडित द्वारकादास बादली, (झज्जर), पृष्ठ संख्या 172, (व्यक्तिगत संग्रह)

(5) पंडित द्वारका दास कृत 'सतगुरु कथा', प्रकाशक-हरिनाम सिंह गौड, एस: आई: पी:, बीकानेर, मोहल्ला अर्थाखाणा; मुद्रक-मिलन प्रिंटर्स, दिल्ली-35, सन् 1975, प्राप्ति स्थान-वही, पृ० सं० 84 (व्यक्तिगत संग्रह)

---

1. उक्त पत्र के कुछ अंश प्रस्तुत शोधप्रबन्ध हरियाणा का कबीर पन्थ' शीर्षक अध्याय में उद्धृत किए गए हैं। पत्र काफी लम्बा और तथ्यपूर्ण है। पत्र के पूरे पाठ के लिए देखिए : संत हरदेदास कृत 'हृदय प्रकाश', पृ० 502-7

अध्याय 9

हरियाणा का साध-सम्प्रदाय

साध सम्प्रदाय का हरियाणवी संत-साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। इसके संबंध में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने कई प्रश्न उठाए हैं। उनका कहना है कि 'इसके इतिहास के सम्बन्ध में उठने वाले कई प्रश्नों के उत्तर आज तक नहीं दिए जा सके, न इसके प्रधान प्रवर्त्तक वा प्रवर्तकों की प्रामाणिक जीवनियाँ ही उपलब्ध हो सकीं।'''परन्तु सब कुछ होते हुए भी इस सम्प्रदाय की उत्पत्ति, प्रगति तथा सिद्धान्तों के विषय में अनेक बातें जहाँ की तहाँ रह गई। कई विद्वानों ने तो 'साध सम्प्रदाय' तथा 'सतनामी' सम्प्रदाय को सर्वशाः एक मानकर इनके इतिहासों को भ्राँतिपूर्ण बना दिया है।'[1] अपने अनुसंधानक्रम में मुझे जो कुछ साम्प्रदायिक सामग्री मिली है तथा एकाध सयाने 'साधों' से बातें करने का अवसर मिला है। इसके आधार पर 'साध सम्प्रदाय' सम्बन्धी कतिपय प्रश्नों के उत्तर अवश्य मिल जाते हैं। उदाहरण के लिए इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक संत उदादास थे और पूरी न सही संत उदादास की जीवनी सम्बन्धी सूचनाएँ भी मुझे मिली हैं।

साध

'साध' वह होता है जो सतनाम और सत शब्द का साधक होता है। इस मत साध के मानने वाले को 'साध सतनामी' कहते हैं।[2] अमृतवाणी इस सम्प्रदाय का ग्रंथ है जिसके अनुसार—

---

1. उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० 472
2. बाबा उदादास, निर्वान ज्ञान, पृ० 1

- साध वह है जो करतार की इच्छा साधे—अपनी चाह न रक्खै ।
- साध वह है जो सत के गुण गावै ।
- साध वह है जो सत करतार का आज्ञाकारी होवै ।
- साध वह है जो एक सतनाम पर विश्वास करे ।
- साध वह है जो अपना आपा करतार को अर्पण कर दे ।[1]

उपर्युक्त उद्धरणों से 'साध' की परिभाषा कुछ इस प्रकार बनती है—जो सतनाम का साधक, का गुणगान करने वाला, सतनाम का विश्वासी तथा जो सत् (करतार) की आज्ञा मानने वाला है वही साध है ।

साध-सम्प्रदाय

साध सम्प्रदाय के मूल साम्प्रदायिक ग्रंथ 'निर्वान ज्ञान' में इस सम्प्रदाय की परिचय देते हुए उल्लेख किया गया है कि 'यह मत आदि से यानी जब से सृष्टि की रचना हुई है तब से प्रचलित है। मत के मानने वालों को 'साध सतनामी' कहते हैं।[2] 'निर्वान-ज्ञान' में सृष्टि के आरम्भ से अब तक अर्थात सतयुग के कलियुग तक के साधों का नाम बदल कर प्रत्येक युग में अवतार हुआ है। इस ग्रंथ में बताया गया है कि आरम्भ में शक्ति के जो दो पुत्र हुए, गोविन्द और परमेश्वर। वे साध थे तथा द्वापर युग में राम तथा लक्षमण, त्रेता युग में कृष्ण तथा बलभद्र के नाम से संसार में अतवरित होते रहे हैं वही सतयुग के प्राणी इस कलियुग में विक्रमी सम्वत् 1714 के अनुमान में योगीदास वीरभान के नाम प्रसिद्ध हुए और सतगुरु के उपदेश से वह फिर सत युग की चाल पर लग गए—'कलयुग माहीं सतयुग थरपा, दीनी भगत बताय' यही दोनों साध जोगीदास वीरभान हमारे मत के अगु आकार माने जाते हैं। यही सतयुग में गोबिंद व परमेश्वर के नाम से प्रसिद्ध थे ।[3]

वीरभान और जोगीदास

अनेक देशी एवं विदेशी विद्वानों के मतों का सार देते हुए आचार्य परशुराम चतुर्वेदी जी का कहना है कि "उपलब्ध सामग्री के आधार पर यदि कोई युक्ति-संगत प्रमाण निकाला जा सके, तो यही हो सकता है कि वीरभान के साथ सम्प्रदाय को उदादास की प्रेरणा पाकर संवत् 1600 के लगभग प्रवर्तित किया था। जोगी-दास ने प्रायः सवा सौ वर्षों के अन्तर उसे और भी सुव्यवस्थित रूप में प्रचलित करने की चेष्टा की थी। वीरभान तथा जोगीदास को सम्प्रदाय की परम्परा के अनु

---

1. अमृतवाणी, 1963, संस्करण, पृ० 2-3
2. निर्वान ज्ञान, पृ० 1
3. वही, पृ० 11

सार सहोदर भाई मानने का कारण भी ऐसी स्थिति में केवल यही हो सकता है कि दोनों का लक्ष्य प्रायः एक ही रहा।[1]

किन्तु 'अमृतवाणी' नामक साम्प्रदायिक पुस्तक में 'उपर्युक्त तथ्यों का उल्लेख इस प्रकार है—'उदयसिंह जी और गोपालदास जी दोनों भाई-भाई थे। गोपाल-दास के बालक जोगीदास जी और वीरभान जी थे। इन दोनों बालकों के चाचा उदयसिंह जी थे।[2] इस उद्धरण से तो स्पष्ट है कि वीरभान तथा जोगीदास दोनों सहोदर थे। इनके पिता का नाम गोपालदास था। उदयसिंह (उदादास) इनके चाचा थे। और किसी ऐतिहासिक एवं साम्प्रदायिक प्रमाण के अभाव में तो हमें यही मानकर चलना होगा।

आचार्य जी ने ऊपर सम्प्रदाय-प्रवर्तन सम्बन्धी काल-संकेत जो दिया है, इस सम्बन्ध में इस प्रकार उल्लेख मिलता है—'अवगत आपके हुक्म से छाया रूपी सतगुरु साहिब सम्वत् 1714 वि० में शहर जयपुर के गाँव बसई में बिराजे जहाँ तहाँ साधन कौ भगत डिढ़ाई और साध चरनों लगे'।'''सन्त जोगीदास वीरभान जी ने यह बूझी—'फकीर साहिब' हम पहले कौन सी रहित साधें? 'मिहरबान साहिब' ने उत्तर दिया—पहले 'शील साधो'।[3] इस साक्ष्य से सम्वत् 1600 वाली बात असंगत पड़ जाती है। अतः हम समय के सम्बन्ध में भी यही मानकर चलते हैं कि संवत् 1714 वि० में स्वयं उदादास जी जीवित थे। इसके आगे पुस्तक में उल्लेख मिलता है कि 1714 सम्वत् में उदादास जी ने साधौं को 12 वर्ष की साधना फर्माई। किन्तु तीन वर्ष पहले ही अर्थात् 1723 सम्वत् में अपनी गद्दी जोगीदास को सौंप दी—'जब महिरबान साहिब' ने कही कि अब हम रमैंगे, अदब जोगीदास जी को रखे रहो—हमने गद्दी जोगीदास को सौंप दी और जोगीदास से कही कि तुम संगत का बोझ रखियो तब 'सब जुगत' बतायकर दिल्ली को आए।[4]

उपर्युक्त विवेचन से यही परिणाम निकलता है कि अन्य किसी पुष्ट प्रमाण के अभाव में साम्प्रदायिक साक्ष्य के आधार पर हम यह मानेंगे कि जोगीदास और वीरभान दोनों सहोदर थे। और उदादास इनके चाचा थे। उदादास जी जोगीदास तथा वीरभान को 1723 वि० के लगभग अपनी गुरु गद्दी बसई ग्राम में सौंपी। यह बसई ग्राम हरियाणा में नारनौल के निकट स्थित है।

---

1. उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० 478
2. अमृतवाणी, पृ० 6
3. वही, पृ० 4-5
4. अमृत वाणी, पृ० 11-12

साधु, सत्तनामी तथा साध सतनामी

देखने में आया है कि विद्वानों में साध, सतनामी तथा साध सतनामी (सत्त-नामी साध) आदि शब्दों को लेकर बड़ी उलझन रही है। पूर्वोक्त 'साध का स्वरूप स्पष्ट करते हुए हमने पाया है कि सत्त अथवा सत्तनाम पर इनका विशेष आग्रह रहता है। 'साध सम्प्रदाय अपने को सर्वज्ञ उस अवगत सत्तनाम के प्रति समर्पित मानता है। यह पूर्ण रूपेण सत्तनाम के प्रति समर्पण एक प्रकार से इनकी प्रमुख विशेषता है। 'सतनामी' साध मात्र का अविभाज्य एवं अनिवार्य विशेषण बन गया है। इसी कारण ये 'साध' अपने को 'सत्तनामी साध' कहते हैं। यहाँ तक कि अकेले विशेषण को ही कई बार विशेष्य तक कहा जाने लगा।[1] अपने को अधिकांश साध केवल सतनामी ही कहते हैं। आचार्य चतुर्वेदी ने पता नहीं किस आधार पर इस 'साध सम्प्रदाय' को सत्तनामी सम्प्रदाय (जगजीवनदास वाला) के साथ 'सम्बद्ध' कर दिया है।[2] वस्तुतः उदादास द्वारा प्रवर्तित 'साध सम्प्रदाय' के 'साध सत्तनामियों' का सतनामियों की कोटा एवं छत्तीसगढ़ी शाखा से कोई दूर का सम्बन्ध भी प्रतीत नहीं होता। इसका कारण शायद कई देशी-विदेशी विद्वानों द्वारा प्रामाणिक तथ्यों के अभाव में दी गई अपूर्ण एवं भ्रामक जानकारियाँ ही हो सकती हैं। जो हो, किसी अन्य विश्वस्त परिचय स्रोत के अभाव में साम्प्रदायिक साहित्य को ही प्रामाणिक मानने के अतिरिक्त हमारे पास कोई चारा ही क्या है। अतः साध सम्प्रदाय का प्रवर्तन-काल सम्वत् 1714 वि० है, प्रवर्तक उदादास हैं तथा उदादास के भतीजे जोगीदास तथा वीरभान ने इस सम्प्रदाय को और आगे बढ़ाया है।

सत्तनामी-विद्रोह

सम्वत् 1729 या 1730 में जिस सत्तनामी विद्रोह[3] का उल्लेख मिलता है उस विद्रोह का उल्लेख भी कहीं इनके साहित्य में नहीं मिलता। साथ ही जोगीदास ने उत्तराधिकार संघर्ष में सम्वत् 1715 में भाग लिया था इसका जो उल्लेख आचार्य चतुर्वेदी ने किया है,[4] उसका कहीं इन साधों की पोथियों में उल्लेख नहीं है। अतः इन इतिहास-प्रसिद्ध सत्तनामी-विद्रोह से इन साध-सत्तनामियों का कोई भी सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। उदयसिंह (बाद में उदादास) का एक युद्ध में भाग लेने का उल्लेख तो आता है किन्तु वह न तो यह 'विद्रोह' ही है और न ही शाह-

---

1. निर्वाण ज्ञान, पृ० 1
2. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० 606
3. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० 607-8
4. वही, पृ० 607

जहाँ के पुत्रों का उत्तराधिकारी का संघर्ष। और जोगीदास का तो कहीं युद्ध, विद्रोह, अथवा संघर्ष को लेकर नाम तक भी नहीं मिलता।

सम्प्रदाय के संस्थापक : बाबा उदादास

उदयसिंह तथा गोपालदास दोनों भाई थे। उदयसिंह जोधपुर के राजा के यहाँ रहते थे। आरम्भ से ही इनकी प्रवृति भक्ति की ओर थी तथा जगत से प्रायः उदासीन रहते थे। कहा जाता है कि राजा जसवंत सिंह भ्रमवश इनसे रुष्ट हो गए तो इन्होंने नौकरी छोड़ दी और बादशाह (औरंगज़ेब) की फौज में भरती हो गए। कुछ दिन पश्चात् औरंगज़ेब की लड़ाई उदयसिंह के साधों से होने लगी तो इन्होंने इस्तीफा दे दिया और अपने साध-सन्तों की ओर से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए।[1] कहा जाता है कि मरते समय इनकी ऐसी इच्छा हुई कि इसी रूप में अर्थात् उदयसिंह के रूप में फिर से प्रकट होकर लोगों को दर्शन दिए जाएँ। सो आप भरौदा गाँव में प्रकट हुए और अपनी बहन उदयकुँवर को दर्शन दिए। बहन ने आशंका प्रकट की कि तुम तो वीरगति को प्राप्त हो गए थे, अब कहाँ से इसी रूप में प्रकट हो गए? बाबा उदादास ने उन्हें अपनी अलौकिक एवं दिव्य शक्तियों का परिचय दिया और बहन से कहा कि हम अवगत के हुक्मी हैं, शब्द स्वरूपी हैं।[2] इस पर बहन को विश्वास हो गया कि ये अलौकिक पुरुष हैं। इसके बाद जोगीदास तथा वीरभान को पहचान आई। इसके बाद वे जयपुर के बसई गाँव में बिराजे। जहाँ-जहाँ इन्होंने अपने साधों को दर्शन देकर लगाया उन स्थानों से से सम्बन्धित एक दोहा प्रसिद्ध है--

बसई भरौदा कासली दिल्ली फतियाबाद।
मोहनपुरा आमेर मैं चरणौं लागे साध॥[3]

सम्वत् 1714 वि० में फकीर साहब (उदादास जी) दिल्ली के चाँदनी चौक में एक बट वृक्ष के नीचे विराजमान हुए। वहाँ आपने यह शब्द उच्चारित किया—

हम बासी वा देश के, जात बरन कुलनाय।
शब्द मिलावा हो गया, देह मिलावा नाहिं॥[4]

यह शब्द एक नाई से सुनकर श्यामदास नामक दुकानदार बाबा के पास आए और इनसे ज्ञान लेकर श्यामदास साध के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनकी पत्नी भी धरमा-बाई के नाम से प्रसिद्ध हुई। अन्त में 12 वर्ष की साधों की साधना पूरी होने पर

1-2. अमृतवाणी, पृ० 7
3. वही, पृ० 34
4. वही, पृ० 36

सम्वत् 1726 फाल्गुन शुक्ला 13 के दिन भण्डारे का हुक्म दिया। इस दिन की स्मृति में आज तक साध लोग इस तिथि को भण्डारे का आयोजन करते हैं।[1] इसी प्रकार का वायवी-सा इनका जीवन वृत्त एक रचना 'ब्रह्मप्रकाश' में प्राप्त होता है। सम्वत् 1714 तथा 1725 के अतिरिक्त काल संकेत इस वृत्त में भी नहीं मिलते। अमृतवाणी पुस्तक के 128 से 179 पृष्ठ तक यह 'ब्रह्मप्रकाश' नामक रचना आई है, जो दोहे-चौपाई में रचित है। इसके रचनाकार का नाम भी कहीं-नहीं आया है, केवल पुष्पिका में रचना का समय—सम्वत् 1873 ग्यारस मंगलवार का उल्लेख है। इस 'ब्रह्मप्रकाश' में उदादास जी सम्बन्धी कुछ अलौकिक एवं चामत्कारिक घटनाओं का विवरण है। 'ब्रह्मप्रकाश' के रचियता ने बाबा उदादास का अवगत के हुक्म से औरगज़ेब के अत्याचारों के कारण प्रकट होना, औरंगज़ेब को एक 'ख्याल' द्वारा चेतावनी देना, बछड़े को जीवित करना, कोढ़ी को नीरोग करना, बाँझ को पुत्र देना, भरौदे ग्राम में प्रकट होकर गोकुलदास को दीक्षित करना, कासली में प्रकट होकर अपनी बहन सदाकुँवर (पूर्वोक्त उदयकुँवर) तथा श्यामाबाई को चेतावनी देना, दिल्ली में प्रकट होना श्यामदास साध को चेताना-काजी को न्याय का पाठ पढ़ाना, दयालदास को परमगति प्रदान करना, सम्वत् 1726 में चन्दा, ईश्वर तथा वीरभान को दर्शन देना, साध परसराम को दर्शन देना इत्यादि-इत्यादि। इस सारे पद्यात्मक वृत्त में शायद ही कोई इतिहास-सम्मत बात हो अथवा जिसको प्रमाणपुष्ट कहा जा सके। यहाँ भी अपने पन्थ प्रवर्तक के प्रति श्रद्धावश उन्हें अतिमानवीय धरातल पर रखा गया है। झख मारकर इसी को उदादास का परिचय समझ सन्तोष करना पड़ेगा।

कबीर और उदादास

साध सम्प्रदाय में कबीर को बड़े सम्मान से याद करते हैं। इनका यहाँ तक कहना है कि जो काशी में कबीर के नाम से अवतरित हुए थे वही अब बाबा उदादास के रूप में प्रकट हो गए हैं—

'उदादास नाम भेद से पाया भाई जे हैं दास कबीर'

'हाँजी साहिब काशी में दास कबीर जी कहाए।'
साहिब यहाँ उदादास नाम भला, फेरा।।
काशी में दास कबीर जी कहाए। तो यहाँ उदाजी के दासा।।[2]

इनके यहाँ उदादास जी कबीर साहिब के ही अवतार माने जाते हैं। इनका कहना है कि कबीर ने जो ज्ञान दिया वह महाज्ञान था किन्तु पीछे से उसमें किन्हीं मनुष्यों

---

1. अमृतवाणी, पृ० 42
2. वही, पृ० 5

ने मिलावट कर दी। उदादास (कबीर साहब) के ज्ञान में जो सन्तों को दरसाया है, उसमें अभी तक कोई मिलावट नहीं है, यह प्रामाणिक ज्ञान है।[1] 'निर्वान ज्ञान' में सैंकड़ों स्थानों पर कबीर का उल्लेख आया है जहाँ कबीर को अवगत की इच्छा के रूप में व्यक्त किया गया है। सृष्टि की उत्पत्ति में सहायक कबीर हैं, देवताओं की सहायता करने वाले कबीर हैं, यहाँ तक कि राम-लक्ष्मण की सहायता करने वाले हनुमान जी के रूप में कबीर ही हैं।[2] कबीर (उदादास) अवगत की इच्छा का विग्रह रूप ही हैं।

गोरखवी और उदादास

साध सम्प्रदाय के साधक गोरष (गोरख जी) को कबीर से भी अधिक महत्व देते जान पड़ते हैं। आचार्य चतुर्वेदी ने जो यह उल्लेख किया है—'उदादास की शिष्य मंडली के एक सदस्य गोरखजी का भी पता चलता है और उस गोरख जी के किसी जर जोधन नामधारी शिष्य का नाम भी कई पद रचनाओं में पाया जाता है।[3] इसमें थोड़ा भेद है। यहाँ उदादास को ही गोरषजी का शिष्य बतलाया गया है। जरजोधन की बानी में इस प्रकार उल्लेख है—'उदाजी के दास गोरष जी के चेला। जिन जुग जुग दिया भगत का हेला।'[4] उदादास जी के दास तथा उदा के दास का तात्पर्य 'उदादास' से ही है, किसी उदादास के शिष्य से नहीं।

हाँ! गोरखजी को उदादास के गुरु के रूप में ही सभी साधों ने उल्लिखित किया है। लगभग पचासों साधों की बानी 'निर्वान ज्ञान' अथवा साधों की पोथी में संकलित हैं और प्रायः हर साध ने—'उदाजी के दास' अथवा 'उदा के दास' अथवा 'बाबा उदादास जी के शिष्य' का उल्लेख अपनी बाणी में किया है, जैसे—

'हाँ जी उदाके दास, गोरष जी के शिष्य हैं'— दोदराज।[1]
'उदा के दास गोरष जी के शिष्य हैं'— दरजोधन[1]
'हाँ जी उदा के दास गोरष जी के शिष्य हैं'— हरीदास।[1]
'हाँ जी उदा के दास गोरष जी के शिष्य हैं'— बिन्द्रबन।[1]
'उदा के दास जुग-जुग भगत ड़िढावैं, ये तो हुकमी गोरष जी का'— तेजराम।[5]

अपनी बानी के अन्त में इसी प्रकार का उल्लेख प्रायः सभी साधों ने किया है।

---

1. अमृतवाणी, पृ० 2
2. निर्वान ज्ञान, पृ० 39
3. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० 477-78
4. निर्वान-ज्ञान पृ० 439
5. वही, पृ० 244, 287, 308, 311, 314 क्रमशः

'निर्वान-ज्ञान' में बानी के साथ-साथ उसका अनुवाद (व्याख्या) भी दी गई है। वहाँ स्पष्ट लिखा है कि बाबा उदादास गोरष जी के शिष्य हैं। इन बानियों के देखने से तो पक्की धारणा यही बनती है कि उदादास जी गोरष (गोरखनाथ) के शिष्य हैं। किन्तु ऐसा मानने से गोरखजी और उदादास के बीच काल-अन्तराल बाधक बनता है। इनका समाधान एक साधक-साध ने तो यही कह कर दिया कि हमारे यहाँ 'गोरष' का मतलब 'परमतत्व' से लिया जाता है। किन्तु 'गोरष' (तथा कहीं-कहीं गोरष जोगी) का इतनी बहुलता से उल्लेख कहीं न कहीं ऐतिहासिक गोरष से जोड़ता प्रतीत होता है। वैसे गुरु गोरखनाथ चिरंजीवी माने जाते हैं, अतः इस मान्यता में विश्वास करने वालों के लिए कालभेद की समस्या नहीं रहती। 'निर्वान ज्ञान' में 'गोरष' को उदादास के गुरु के रूप में याद किया गया है। ये गोरष 'चाहे' परमतत्व हों अथवा ऐतिहासिक गोरख नाथ हों यहाँ तो उदादास के गुरु-रूप में ही आए हैं।

साहित्य

साध सम्प्रदाय का महत्वपूर्ण ग्रंथ 'पोथी' हैं। इसे पोथी को 'निर्वान-ज्ञान' के नाम से अब प्रकाशित भी करवा दिया गया है। 'निर्वान-ज्ञान' 620 पृष्ठों की पुस्तक है। इसके प्रारम्भ में भूमिका के रूप में 72 पृष्ठों में 'सत्तनामी-पंथ', विचार पूर्णमासी' तथा 'विचार भंडारा' इत्यादि का परिचय है। तत्पश्चात 548 पृष्ठों में विभिन्न साधों की बानी अनुवाद सहित संकलित है।

पोथी में सबसे पहले तेजराम की बाणी है। फिर परस जी कूँभासाध, दास पदारथा, दास ईश्वर, पण्डजी, कान्ह जी, रामचन्द्र जी, हरिया (हरिदास), बिन्दा, बिन्द्राबन, गोरधन, भूदरदास, वीरभान जी, दोदराज, मनाजी, दरयोधन जी, हरीदास, करन जी, रामलाल जी, लालमन जी, गोबिन्द जी, धरमा बाई, श्याम देई, बसंती बाई, राजोबाई, गोपीचन्द्र, दान जी, खोजा अग्गर, कूँभासाध, सुन्दर साध, बिरसिंह जी, परस जी (परसराम), गंगाराम जी, आनन्द राम, खेमदास, गोबिन्ददास, गरीबदास, दुरगादास, ईसुरदास, कमाजी, मलाजी, जरजोधन जी, देवीदास जी, दीपा जी, नामदेव जी, इत्यादि लगभग पचास साधों की बानी इसमें संकलित हैं।

वीरभान जी की बानी—इसमें 236 से 241 पृष्ठ तक संकलित हैं। इनके कुल 5 पद ही हैं। 'पद' को बानी का शीर्षक दे रखा है। सारी बानी में चौपाई तथा दोहा छन्द का ही प्रयोग किया है। कुछ पद अथवा शब्द हैं। किन्तु बानी का विभाजन, कुछ विभिन्न शीर्षकों में किया हुआ है। कड़ा, अश्लोक, चरणों की बानी चढ़ाई जथा, नोनिद्धी, निशानी तथा मात्रा इत्यादि इनके अपने ही बिरल शीर्षक हैं। अब तक की निर्गुण एवं सगुण परम्परा में साहित्य अथवा बानी के इस प्रकार के शीर्षक देखने में नहीं आए।

'अमृत वाणी' भाग-1 तथा 'अमृतवाणी' भाग-2 नामक दो प्रकाशन भी महत्वपूर्ण हैं। इनमें साधों के अतिरिक्त कबीर, मीरा, सुन्दरदास, इत्यादि अन्य सन्तों की बाणियाँ भी संकलित हैं। 'निर्वान-ज्ञान' तथा 'अमृतवाणी' फर्रुखाबाद-शाखा ने प्रकाशित करवाई हैं। सारी साध-बाणी की भाषा खड़ी बोली मिश्रित राजस्थानी है।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने जो वीरभाव की 'बानी' अथवा 'आदि उपदेश'[1] का उल्लेख किया है, वह सब 'निर्वान-ज्ञान' में संकलित हैं। जिसका पहले ही संकेत किया जा चुका है। 'आदि उपदेश' गद्य में रचित है। इसका बहुत-सा भाग 'अमृत बाणी' के 'पूनों का विचार' तथा 'भण्डारे का विचार' के अन्तर्गत आ चुका है। इन दोनों विचारों में ही इनके नैतिक-सामाजिक नियम आ जाते हैं।

इनके अतिरिक्त प्रिथीलाल कृत 'साध पंथ' तथा 'नसीहत की पुड़िया' आदि का उल्लेख भी मिलता है जो मुझे देखने को नहीं मिली है।

जो विकट समस्या इस पंथ में सबसे अधिक खलने वाली है, और जिसका अनुभव आचार्य चतुर्वेदी ने भी किया है वह है किसी भी साध-साधक या साहित्य-कार के जीवन परिचय का अभाव। 'निर्वान-ज्ञान' में उल्लिखित इतने सारे साधों में से किसी एक की भी जीवनी अथवा ऐसे संकेत नहीं मिलते। जिनके सहारे कुछ ऐतिहासिकता एवं प्रामाणिकता का समावेश इस 'पंथ' में हो सके।

साधना-पद्धति

साध सम्प्रदाय में साधना का स्वरूप लगभग कबीर-पंथ वाला ही है। पहले हमने उल्लेख किया है कि साध सम्प्रदाय में कबीर साहब का कितना महत्वपूर्ण स्थान है। इनके यहाँ भी सूरत शब्द साधना ही स्वकृत है। नाम स्मरण का महत्व भी साध सम्प्रदाय में बहुत है। निर्वान-ज्ञान में नाम का महत्व एक स्थान पर इस प्रकार बतलाया गया है—

'उदा के दास खाँसा सुमरन नाम मात्रा नित दायमी बताई ।।
आद नाम जुगाद नाम ।। एक नाम सुमर सतनाम ।।
सत्तसरूपी सत का ध्यान ।। सत्त अवगत तुम लीजो मान ।।'[2]

'स्वाँसा सुमरन' (अजपा जाप) का महत्व बीरभान जी इस रूप में स्वीकारते हैं—

'सतगुरु दरसे वीरभान गावै म्हानै स्वाँसा सुमरन पाया ।।'[3]

'सत शब्द' की साधना का महत्व साध कान्हा जी इस प्रकार बतलाते हैं—

---

1. उत्तर भारत की सन्त परम्परा, पृ० 479
2. निर्वान-ज्ञान, पृ० 528
3. वही, पृ० 237

'दुय कर जोर साध कान्ह जी पढ़ै अब मत भरमौ कोय ।।
सत का शब्द जो पाइयाँ भगत जुगाँ जुग होय ।।'[1]

साध परस जी साध-साधक की रहनी और करनी पर प्रकाश डालते हुए सुरत-शब्द साधना का उल्लेख करते हुए कहते हैं—

'पृथ्वी की कही न.मानै कोई ।। जिन बन्दे सूरत शब्द से लाई ।।
माफक भगत शब्द को परखैं ।। जिस की करनी आगे दरसै ।।
'जिनके शब्दमिदा मन मांही ।। यह नट और कला साधना भाई ।।
अगम पंथ है गत का गैला ।। सतगुरु की मिहर सै साध चढ़ै ला ।।'[2]

यह 'सुरत शब्द' का गैला अगम पंथ है और इस पर साधक (साध्र) गुरु कृपा से ही चढ़ने (चलने) में समर्थ हो सकता है। प्रायः हर साध इसी पद्धति की थोड़ी बहुत साक्षी देता हुआ प्रतीत होता है। इस पंथ में सतगुरु का महत्व भी बहुत अधिक है। सुमिरन, सत्संग, इत्यादि को भी इस पंथ में साधना का सहायक तत्व मानते हैं। साध-सम्प्रदाय में भी सुरत शब्द-पद्धति ही स्वीकृत है तथा इसमें नाम स्मरण, सतगुरु कृपा तथा सत्संगत आदि तत्वों का विशेष महत्व है।

आचार संहिता

साध समाज में बत्तीस नियम अथवा 32 लक्षण (लछन) प्रसिद्ध हैं। जिनसे इनका जीवन प्रायः नियन्त्रित रहता है। उन्हीं 32 लक्षणों को आचार्य परशुराम जी ने विल्सन महोदय के साक्ष्य पर निम्न रूप में संकलित किया है—

(1) केवल एक ईश्वर को मानो और उसी को सृष्टि नियंता के रूप में पहचानो। वही सत्य, शुद्ध, अनादि, अनन्त, सर्वशक्तिमान तथा 'सत अवगत' है।

(2) विनम्र तथा विनीत बने रहो और विषयों के प्रति आसक्ति न रखो।

(3) कभी असत्य न बोलो, न किसी के प्रति बुरे शब्दों का प्रयोग करो। अपने हृदयों में भी कभी दुर्भावना न आने दो, न कभी शपथ लो।

(4) गन्दी बातें कभी न सुना करो, न भजनों के अतिरिक्त किसी प्रकार के संगीत को श्रवण करो। संगीत की सभी सामग्री तुम्हारे भीतर वर्तमान है।

(5) किसी भी वस्तु के लिए कभी लालच न करो। जो कुछ हमें मिला है सब ईश्वर प्रदत्त है। ईश्वर केवल ध्यान, निर्धन जीवन तथा अपने प्रति आत्म-समर्पण पर ही रीझता है।

---

1. निर्वान-ज्ञान पृ० 501
2. वही, पृ० 482

(6) अपने को केवल साध मात्र बतलाओ (पूछने पर)। किसी वर्ण या जाति का नाम न लो। तुम्हारा सच्चा गुरु परमेश्वर के अतिरिक्त कोई नहीं है।

(7) श्वेत वस्त्र पहना करो। रंगीन कपड़े, मेंहदी, सुरमा, ललाट पर तिलक अथवा अन्य प्रकार के किसी भी चिह्न को धारण मत करो। कर्ण-बेध वा दाढ़ी रखना उचित नहीं।

(8) कभी मादक द्रव्यों का व्यवहार न करो। पान अथवा तम्बाकू मत खाओ। कभी किसी सुगन्धित पदार्थ का सेवन मत करो। ईश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य का अभिवादन न करो। न किसी के यहाँ नौकरी ही करो।

(9) जीव हिंसा न करो। न किसी से बलपूर्वक कुछ छीनो। अहिंसा ईश्वर का पहला नियम है। छोटे-छोटे जीवों पर सदा दया करो।

(10) पुरुष केवल एक पत्नी रक्खे और स्त्री केवल एक पति को ही अपनाए।

(11) विरक्त साधु का वेष धारण न करो। न भिक्षा स्वीकार करो।

(12) दिन, मास, आदि के शुभाशुभ होने पक्षियों अथवा पशुओं की बोलियों को शकुनाशकुन मानने का स्वभाव त्याग दो। केवल ईश्वर पर ही भरोसा रखो।[1]

प्रथाएं

साध सम्प्रदाय में अधिकांश जाट जाति के लोग ही हैं। इनका प्रमुख व्यवसाय कृषि है। अब इनके यहाँ पालन की जाने वाली उपर्युक्त आचार संहिता कुछ ढीली पड़ती जा रही है क्योंकि जहाँ पहले ये लोग नौकरी इत्यादि से परहेज करते थे अब ऐसा नहीं है। इनके यहाँ ऊँच-नीच अथवा जाति-वर्ण का कोई बन्धन नहीं है। साध-सम्प्रदायों में दीक्षित होने पर सभी बराबर हो जाते हैं। साध केवल साध के ही घर भोजन करता है। इनके यहाँ एकपत्नी एक पति प्रथा ही मान्य हो। विधवा विवाह अब मान्य हो गया है। विवाह की रीति बड़ी सरल है। ये लोग विवाह पर अधिक धन भी खर्च नहीं करते हैं। किन्तु अब इनमें स्खलन आता जा रहा है। रहन-सहन बड़ा सादा है। पहले नशे से प्रायः ही परहेज किया जाता है, किन्तु अब इसमें भी ढील आ गई प्रतीत होती है। समय की बदलती धारा ने इनके मौलिक स्वरूप को बड़ी सीमा तक प्रभावित किया है। फिर भी साधों का चरित्र इधर हमारे यहाँ जाट जनता में आदर्श माना जाता है। 'महापाठ'[2] नामक मात्रा (मंत्र)

---

1. उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० 481-82
2. निर्वान ज्ञान, पृ 543

के पाठ से सभी प्रकार के विघ्न (झंझट) दूर करने की इसमें प्रथा है। विभिन्न अवसरों पर विभिन्न मात्राओं (मन्त्रों) के पढ़ने की व्यवस्था भी इनके यहाँ पाई जाती है। फेरा लेने के समय 'ब्रह्मचारी' पढ़ी जाती है। जब बाराती बारात में चढ़ते हैं तो 'चढ़ाई'[1] पढ़ने की प्रथा भी इनकी विशिष्टता है।

पूर्णमासी तथा भण्डारे का विचार

साध सम्प्रदाय में पूर्णमासी तथा भण्डारे का विचार बहुत महत्वपूर्ण हैं। कहा जाता है कि साधों की 12 वर्ष की साधना पूरी होने पर उदादास जी ने पूनो (पूर्णमासी) का विचार उनकी गति-मुक्ति के लिए फर्माया था। साधों का विचार है कि पूर्णमासी के बिना पूनों (पूर्ण) अर्थात मुक्ति का भेद नहीं मिलता।[2] अतः साधों में पूर्णमासी का विचार बड़ी निष्ठा से किया जाता है। साध सम्प्रदाय का यह सर्वशः महत्वपूर्ण अनुष्ठान है। यह पूनों तथा भण्डारे का विचार सम्वत् 1726 फाल्गुन शुक्ला 13 से ही प्रतिवर्ष निरन्तर साध सम्प्रदाय में चला आ रहा है। इसमें एक बड़े भण्डारे (भोज) का आयोजन किया जाता है जिसमें हजारों साध इकट्ठे होते हैं। भण्डारे के लिए अगले वर्ष के स्थान (चौकी) इत्यादि का पहले ही निश्चय कर लिया जाता है। भण्डारे में श्रद्धानुरूप प्रत्येक साध के लिए चढ़ावा उनकी साधना का ही अनिवार्य अंग है।

इस भण्डारे में जो जुगत (प्रसाद) तैयार की जाती है उसके लिए बड़े कड़े नियम हैं, जैसे भण्डारे में चढ़ाया जाने वाला धन अपनी मेहनत की कमाई का हो। और जो खाद्य पदार्थ इत्यादि प्रयोग में लाए जाते हैं वे शुद्ध हों। ऐसा समझा जाता है कि पूर्णमासी के दिन स्वयं मिहिरबान साहिब (उदादास) हाजिर होते हैं। जो प्रसाद भण्डारे में प्राप्त होता है उसे बड़ा पवित्र समझ कर ग्रहण करते हैं। इसका एक कण भी व्यर्थ नहीं जाने देते। यह प्रसाद बाबा उदादास द्वारा पवित्र किया हुआ माना जाता है और यह गति-मति का देने वाला होता है।

भण्डारा प्रारम्भ होने से लेकर प्रसाद पा चुके पर विदा होने तक के लिए विभिन्न अवसरों पर अलग-अलग मात्राओं (मन्त्रों) के बोलने का विधान है। यहाँ 'भण्डारे' तथा पूनों के विचार' के विवरण का देखने से तो ऐसा प्रतीत होता है कि साध सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक ने इसे जितना ही सरल सहज बनाया था अब उसी पन्थ को विधि-विधान, अनुष्ठान तथा थोथे आचारों और औपचारिकताओं के जाल में जकड़ दिया गया है। इस भण्डारे तथा पूनों के विचार को आदि से अन्त तक तीन दिन तक निभा पाना इनका यह कृच्छ्र आचार वा साधना द्राविड़ प्राणायाम से कम

---

1. निर्वाण ज्ञान, पृ० 547
2. अमृतवाणी, पृ० 14

नहीं है।[1] भण्डारे का महत्व बतलाते हुए कहा गया है कि इससे गुरु महाराज की आज्ञा का पालन होता है, सतगुरु भण्डारी-भण्डारे के समय साधों को दर्शन देते हैं, सभी साधों को इकट्ठा होने का अवसर मिलता है, सतगुरु के चरणों में समर्पित होने का अवसर मिलता है, अपने आचरण व्यवहार को ठीक करने का अवसर मिलता है, साधबाई (साध-समाज) के महत्वपूर्ण सामाजिक तथा नैतिक निर्णय लिए जाते हैं, नए साधों को दीक्षा दी जाती है तथा उनके अपराध क्षमा करवाए जाते हैं।

यह भण्डारा तथा पूर्णमासी का अवसर साध-समाज का महत्वपूर्ण आयोजन है। परन्तु अब इसकी भी गरिमा में अन्तर आने लगा है। सुना गया है कि बहुत से साध अब केवल इसे मेले से ज्यादा महत्व नहीं देते। 'भण्डारे' में बाबा उदादास के नाम पर माल काटते हैं।

जिस सहज सच्ची साधना का प्रचलन इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक बाबा उदादास ने किया था और जिसका स्वरूप व्यक्तिगत था अब उसका स्थान एक सामाजिक संगठन ने ले लिया लगता है। गाँवों के गाँव तथा पूरा क्षेत्र ही 'साधों' का हो सकता है, 'साधकों' का नहीं। साधना अब केवल औपचारिकता मात्र रह गई है। केवल नाम दे देना या ले लेना ही तो पर्याप्त नहीं। लगता है कि 'संगठन में ही शक्ति' वाला सिद्धान्त इस युग की अनिवार्यता है जिसे इन्होंने भी अपना लिया है।

प्रभाव क्षेत्र

साध सम्प्रदाय का प्रभाव क्षेत्र दिल्ली के आस पास चारों ओर है। इनका प्रमुख केन्द्र फर्रुखाबाद, मिर्जापुर, दिल्ली, पंजाब, हरियाणा तथा राजस्थान है। वीरभान के अनुयायियों का प्रमुख केन्द्र फर्रुखाबाद ही है। यहाँ का 'साधबाड़ा' कभी से प्रसिद्ध है। मथुरा, बरेली, मेरठ, तथा शाहजहाँपुर के देहातों में भी साध पर्याप्त संख्या में पाए जाते हैं। दिल्ली के आस-पास के गाँवों में भी साध पाए जाते हैं। हरियाणा में रोहतक तथा जींद जिले में साधों की अच्छी संख्या है। जयपुर, जोधपुर, धौलपुर, बड़ौदा एवं भरतपुर इत्यादि स्थानों पर भी ये पाए जाते हैं।

साध सम्प्रदाय : उपलब्ध साहित्य

(1) बाबा उदादास कृत 'निर्वान ज्ञान' (अनुवाद सहित); प्रकाशक—साध समाज, फर्रुखाबाद, मुद्रक : लालमणि प्रेस फर्रुखाबाद, प्राप्ति स्थान, साध समाज, फर्रुखाबाद, पृष्ठ सं० 548, (व्यक्तिगत संग्रह)

---

1. अमृत वाणी, पृ० 1-70 द्रष्टव्य

(2) 'अमृत वाणी' (दो भाग) ; प्रकाशक—वही, मुद्रक—रमेशचन्द्र शर्मा, अशोक प्रिंटिंग प्रेस, फर्रुखाबाद, सन् 1963, प्राप्ति स्थान, वही; पृष्ठ 404; (व्यक्तिगत संग्रह) ।

(3) 'ब्रह्मप्रकाश' (अमृतवाणी में संकलित); पृष्ठ सं० 52, लेखनकाल—सम्वत् 1873 वि०; मुद्रक, प्रकाशक तथा प्राप्ति स्थान—वही,

अध्याय 10

हरियाणा का बेनामी सम्प्रदाय

हरियाणा के सन्त साहित्य में 'बेनामी-पन्थ का अपना विशिष्ट स्थान है। इस पन्थ के प्रवर्तक श्री कक्कड़ साहिब के शिष्य 'बेनामी' साहिब हैं। इस पन्थ के प्रमुख बाड़े (आश्रम) अलवर (राजस्थान) में हैं। यद्यपि बेनामी पन्थ की प्रमुख गद्दियाँ तथा इसके प्रवर्त्तक सन्त बेनामी साहिब राजस्थान से सम्बन्धित हैं। फिर भी हरियाणा के सन्त-साहित्य में इस पन्थ को सम्मिलित करने का औचित्य यह है कि बेनामी-पन्थ में उपलब्ध-साहित्य के रचयिता सन्त तथा बेनामी सन्त के गुरु कक्कड़ साहिब एवं और कई बेनामी-पन्थी साधक हरियाणा प्रदेश से सम्बन्धित हैं। वैसे भी राजस्थान के अलवर ज़िला सांस्कृतिक दृष्टि से हरियाणा के दक्षिणी क्षेत्र से भिन्न नहीं है, और फिर झज्जर तथा गुड़गाँव के क्षेत्र—इस पन्थ के प्रभाव क्षेत्र में आते हैं। इधर हरियाणा में भी इनके कई ठिकाने हैं। इन्हीं बातों को देखते हुए हमने इस पन्थ को अपनी सीमा में ले लिया है।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रभावशाली सन्तों में बेनामी जी की गणना की जाती है। पता नहीं किस कारण से विद्वानों की दृष्टि से यह पन्थ तथा इसका महत्वपूर्ण साहित्य अब तक ओझल रह गया है। उपलब्ध जानकारी के आधार पर इस पन्थ के सन्तों और इसके उपलब्ध साहित्य का तथा इस पन्थ के स्वरूप का परिचय यहाँ पहली बार दिया जा रहा है।

कक्कर जी

इस पन्थ के प्रवर्त्तक बेनामी जी के गुरु सन्त कक्कर जी की जन्म-तिथि का पता नहीं चलता। इनका गृहस्थी का नाम गंगाराम था। इनका जन्म स्थान

मिलकपुर ज़िला गुड़गाँव था। ये शरीर से बड़े पुष्ट और आजानु बाहु थे।[1] तथा जाति से जाट थे। कहते हैं कि कक्कर जी बड़े अक्खड़ एवं अहंकारी थे। ये धाड़ा (डाका) दिया करते थे तथा केवल अमीरों-मालदारों को ही लूटा करते थे।[2] कहते हैं कि कक्कर जी चालीस वर्ष की उम्र तक इसी प्रकार लूट-पाट से जीवन यापन करते रहे। इसी समय एक साधु से इनकी भेंट हो गई। इस अज्ञातनामा साधु के सत्संग के प्रभाव से गंगाराम का काया पलट हो गया। साधु जी के कथनानुसार गंगाराम जी ने घर पर रहकर बारह वर्ष तक घोर साधना की। तत्पश्चात् घर से निकल गए। उत्तराखण्ड, हिमालय इत्यादि में रमते हुए गंगा तट पर कुछ दिन भजन किया। फिर दिल्ली के एक शिवालय में ठहरे। प्रसिद्ध है कि यहाँ पर एक अँग्रेज़ दम्पत्ति को इनके द्वारा बताए हुए अनुष्ठान से पुत्र प्राप्ति हुई। यहाँ से आप तछाता ग्राम ज़िला मथुरा में एक तालाब पर पधारे।[3] और कुछ दिनों के लिए वहाँ टिक गए। तछाते तालाब पर नियमित सत्संग होने लगा। सत्संगियों ने जब उनका नाम जानना चाहा तो उन्होंने कहा कि कोई इस शरीर को परम हंस कहता है, कोई अवधूत तथा कोई बावला कहता है। आपकी जो इच्छा हो कहो। इस पर किसी ने कहा कि महाराज आपका शरीर तो कक्कड़[4] जैसा है। आपने कहा, भई! कक्कड़ कह लो। सो तभी से लोग उनको कक्कड़ कहने लगे।[5] 'बेनामी बोध' से इनकी मृत्यु के सम्बन्ध में कहा गया है कि—

खेंच करी बेनाम ने, कक्कड़ लिए बुलाय।
गुन्नी से यकतीस में, मिले ज्योत में जाय॥[6]

इस अन्तःसाक्ष्य के आधार पर कक्कड़ जी की मृत्यु सम्वत् 1931 वि० के फाल्गुन महीने की शिव चौदस को हुई थी। पूरा सिद्ध का बाड़ा (आश्रम) नाम से अलवर नगर में इनकी समाधि बनी हुई है।

शिष्य परम्परा

सन्त कक्कड़ जी की शिष्य परम्परा निम्न प्रकार हैं—

---

1. बेनामी बोध, पृ० 1
2. वही
3. वही, पृ० 2-5
4. कक्कड़—छान या झोंपड़ी के बिड़ोंद (प्रमुख बल्ली लक्कड़) जो छान का आधार होती है।
5. बेनामी बोध, पृ० 5
6. बेनामी बोध, पृ० 1

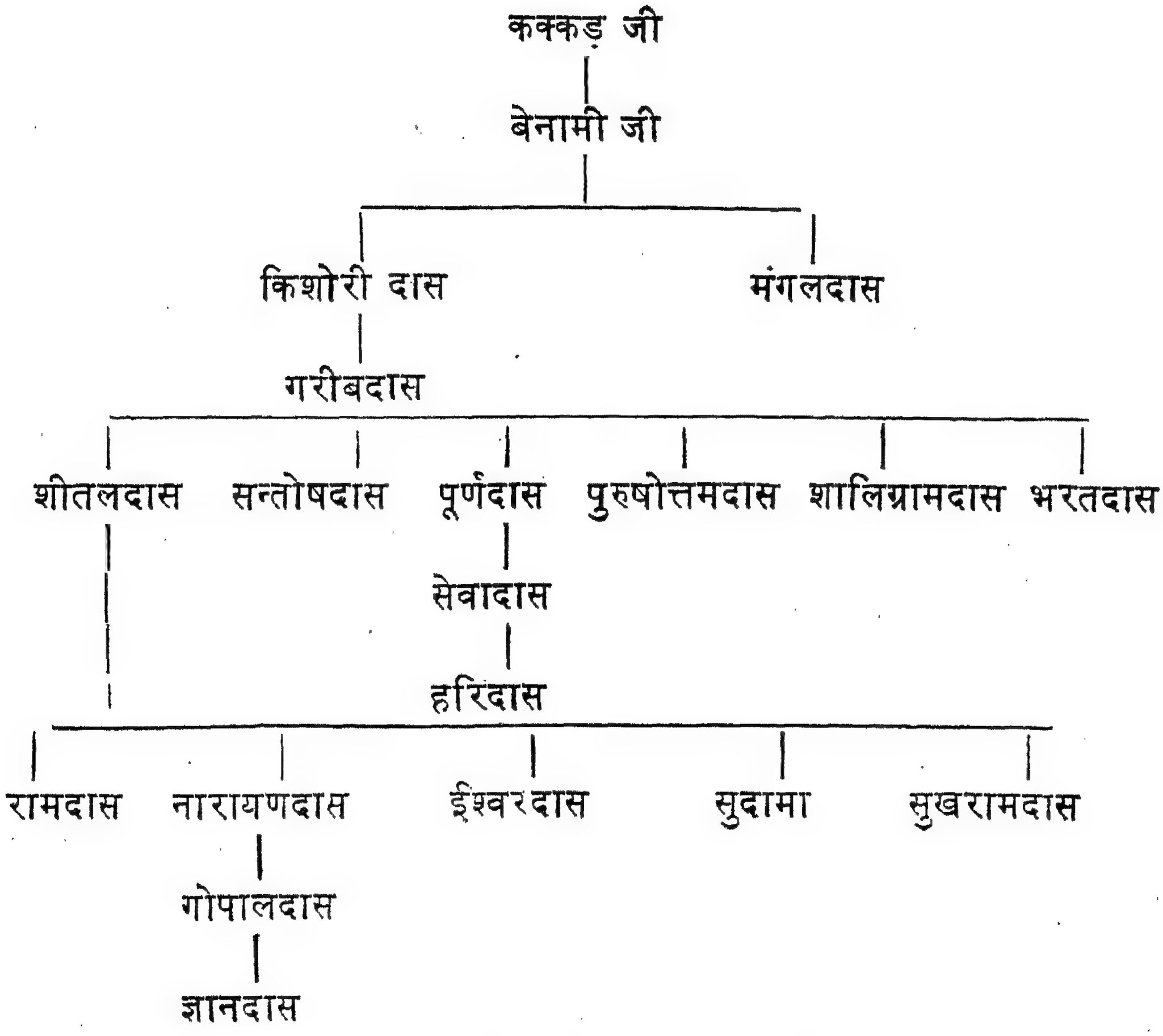

कक्कड़ जी के प्रसिद्ध शिष्य बेनामी जी हुए, जिनके नाम पर बेनामी पन्थ चल निकला। कक्कड़ जी की बाणी कोई नहीं है।

बेनामी जी

बेनामी जी के विषय में एक साखी मिलती है जिसमें इनके जन्मस्थान, जाति तथा गोत्र का संकेत मिलता है—

मलुक यह कोसी का जाट, पाँच तत्व का कोश।
बिन काया बातें करें, गांगवान है गोत।।[1]

उक्त साखी से स्पष्ट है कि बेनामी जी हरियाणा की सीमा के समीपस्थ कोसी ग्राम (राजस्थान) के निवासी थे। जाति के जाट थे तथा गोत्र गांगवान था। इनका गृहस्थी का नाम रणजीत सिंह था। कहते हैं कि ज़िलेदार के पद पर इन्होंने कई वर्ष काम किया था। वे महाराज भरतपुर के सम्बन्धी थे। इन सभी बातों से पता चलता है कि रणजीत सिंह एक प्रतिष्ठित परिवार से थे। इनके जन्म सम्वत् इत्यादि का पता नहीं चलता।

---

1. बेनामी बोध, पृ० 79

गुरु

अपनी बाणी में कई स्थानों पर इन्होंने सन्त कक्कड़ जी का अपने गुरु के रूप में उल्लेख किया है—

इतना सुन बेनामी बोला, जो तो सहज सहज बताय ।
मेरे गुरु अलख निरंजन आप हैं, जिनकी देह का कक्कड़ नाम ।।[1]

रणजीत सिंह स्वभाव से धार्मिक वृत्ति के मनुष्य थे। कहा जाता है कि पहले ये किसी कृष्णभक्त महात्मा के शिष्य थे। 50 वर्ष की आयु में इनकी भेंट कक्कड़ जी से हुई।[2] कौसी में कक्कड़ जी के आगमन पर रणजीत सिंह भी अन्य कई सत्संगियों की भाँति कक्कड़ जी के रंग में रंग गए। सत्संग का प्रभाव कुछ और प्रगाढ़ हुआ तो इन्होंने शिष्य बनने की इच्छा प्रकट की। इस पर कक्कड़ जी ने इन्हें 40 दिन निराहार तथा मौन रहकर घर पर ही साधना करने का आदेश दिया। 40 दिन के पश्चात् जब ये सूखकर काँटा हो गए तो परिवार वाले इन्हें पलंग समेत कक्कड़ जी की शरण में गाँव से बाहर तालाब पर ले गए। कहते हैं कि इसके पश्चात् ये घर नहीं लौटे। कक्कड़ जी ने रणजीत सिंह के अनुरोध पर इनको नया नाम दिया—'बेनामी !' तब से ये 'बेनामी' के नाम से प्रसिद्ध रहे और इन्हीं के नाम पर बेनामी' नाम देकर इन्हें कक्कड़ जी ने धर्मोपदेश देने का आदेश देते हुए यह साखी पढ़ी—

'मारे मद अहंकार मन छोड़े सकल विकार।
बेनामी कलि बीच में निहं कलंक अवतार ।।'[3]

महाराज कक्कड़ जी की आज्ञा लेकर बेनामी जी अपनी रमत में निकल पड़े। 'दह' नामक ग्राम में कई दिन तक भजन-सत्संग करते रहे। यहाँ से वे लालपुर नामक ग्राम में पधारे। यहाँ पर एक शास्त्री जी इनसे वाद-विवाद में पड़ गए। बेनामी जी ने बड़े सहज भाव से कहा है कि पंडितजी तू तो बावला (पगला) है। कहा जाता है कि पंडितजी वास्तव में पागल हो गए।

सम्वत् 1906 वि० में आप भ्रमण करते हुए अलवर स्थित शुक्ल जी की बगीची में आकर टिक गए। यहाँ मंगलराम ब्राह्मण इनके सबसे पहले शिष्य बने। कुछ दिन के पश्चात् बेनामी जी शुक्लजी की बगीची को छोड़कर भूरासिद्ध के बाड़े (आश्रम) में विराजमान हुए। यह भूरासिद्ध का आश्रम अलवार में किसी भूरा नामक सिद्ध फकीर का ठिकाना रहा था। बेनामी जी के यहाँ आने के बाद से

---

1. बेनामी बोध, पृ० 104
2. वही, पृ० 9
3. वही, पृ० 9

यह बाड़ा बेनामी साधुओं के अधिकार में ही रहता आया है।

बेनामी जी के चमत्कारों की अनेक कथाओं का उल्लेख 'बेनामी बोध' में मिलता है। एक कथा है कि एक दिन एक भंगी ने आकर आग्रह किया कि महाराज हमारे घर प्रसाद पावें। इन्होंने स्वीकृत दे दी। भंगी ने बड़ी श्रद्धा से भोजन बनवाया। बाबा को बुलाने गए तो अगले दिन चलने के लिए कह दिया। भंगी ने अगले दिन फिर बढ़िया भोजन तैयार करवाया। बुलाने पर बाबा ने कहा कि चलो—हम आते हैं। भंगी के घर पर बाबा के लिए परसे गए थाल में एक बड़ा-सा भूरा कुत्ता आकर मुँह मारने लगा। भंगी की पत्नी ने कुत्ते को लकड़ी मारी। इतने में भंगी भी आ गया। उसने कुत्ते को मुक्का मारा। कुत्ता भाग गया। बाबा के न आने पर भंगी जब फिर बुलाने गया तो बेनामी जी बोले—'भई तेरी पत्नी ने तो लकड़ी मारी, तूने मुक्का मारा। बाबा भाग आया अब क्या करेंगे चलकर।'[1] भंगी यह सुनकर चकित रह गया। एक दूसरी कथा के अनुसार अलवर के राजा शिवदान सिंह ने एक दिन बाबा जी की परीक्षा करने के निमित्त से बाबा के भोजन के लिए एक कटोरे में ढकवाकर माँस भिजवा दिया। बाबा ने कहा कि रख दो, जिसका भोजन है वह आकर ले जाएगा। इतने में एक सिंह आया और माँस खाकर चुपचाप वापिस चला गया। तत्पश्चात् अलवर नरेश इनके पक्के भक्त हो गए।[2] इनके चमत्कार की एक तीसरी कथा के अनुसार 'ढिढोला ग्राम' में एक बार साधू ने आकर बेनामी जी को लात मारी। इन्होंने साधू महाराज के पाँव को सहलाया। तब से साधू जी जीवन भर विक्षिप्त से ही फिरते रहे।[3] भूरा सिद्ध के बाड़े की पाल (टीला) के नीचे एक दिन एक भंगी अपनी पत्नी के साथ मदिरा पान कर रहा था। बाबा पाल के ऊपर अपने सत्संगियों के साथ टहल रहे थे। भंगी ने एक प्याला बाबा के सम्मुख प्रस्तुत किया। बाबा ने प्याला पी लिया। सत्संगी बिगड़ गए। बाबा ने कहा कि हमनें तो कृष्ण का दिया हुआ दूध पिया है। और ये दोनों राधा-कृष्ण ही हैं जो दूध पी रहे हैं। बाबा ने भंगी से बोतल लेकर औंधी की तो बोतल में से दुग्ध-धारा बह निकली।[4] कहते हैं कि इस प्रकार अनेक चमत्कार दिखाकर बेनामी जी ने अपने प्रति लोगों के श्रद्धा-विश्वास को दृढ़ किया।

'बेनामी बोध' में इनकी मृत्यु की ओर संकेत करने वाली एक साखी दी है—

---

1. बेनामी बोध, पृ० 12-13
2. वही, पृष्ठ 13-14
3. वही, पृ० 16
4. वही, पृ० 17

बारै भूरा सिद्ध में, बेनामी बैठे आय।
गुन्नी से गुन्तीस में, मिले ब्रह्म में जाय।।[1]

साखी के हिसाब से बेनामीजी की मृत्यु सम्वत् 1929 वि० में हुई। इनकी समाधि भूरा सिद्ध के बाड़े में ही बनी हुई है।

शिष्य

बेनामी जी के वैसे तो सैंकड़ों शिष्य हुए हैं किन्तु किशोरदास अथवा किशोरी-दास ही इनमें सबसे प्रसिद्ध बतलाए जाते हैं।

उपलब्ध साहित्य

बेनामी जी की बाणी—'बेनामी बोध' नाम का ग्रन्थ संकलित हैं। इस ग्रंथ में बेनामी जी के अतिरिक्त शिष्य मंगलदास की भी कुछ बाणी संग्रहीत है। कुछ साखियाँ किसी गुलाब नामक सत्संगी की भी हैं। एक पद गरीबदास जी का भी है। 'बेनामी बोध' का प्रकाशन स्वामी हरिदास जी ने सम्वत् 2017 में अलवर से करवाया है।

बाणी-परिचय

बेनामी जी की बाणी को सुविधा के लिए तीन भागों के बाँटा जा सकता है। पहले भाग में साखियाँ तथा चौपाई आएँगी। दूसरा भाग 'पद भाग' तथा तीसरा भाग गद्य भाग कहा जा सकता है। साखी भाग विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत लगभग 650 साखियाँ प्राप्त हैं। सबसे पहले 'बारहखड़ी' के शीर्षक के अन्तर्गत 35 साखियाँ तथा चौपाइयाँ सम्मिलित हैं। यह 'बारहखड़ी' या 'बारहखड़ी' निर्गुण साहित्य का एक परम्परागत काव्य-रूप है जिसमें आकारादि स्वरों तथा ककारादि व्यंजनों के क्रम से सन्त कवि अपने ज्ञान अथवा सीख की अभिव्यक्ति करते हैं। इस शैली की रचनाएँ 'बारहखड़ी' नाम से तो कहीं बारहखड़ी कहीं अखरावती चौंतीसा, ककहरा बावन असरी, ग्रंथाबावनी, बावनी अक्षर उद्धार, बावनी योग, चौंतीसा, ककहरा इत्यादि नामों से निर्गुण साहित्य में पाई जाती है। नागरी लिपि की वर्णमाला के अक्षरों के बहाने उपदेश देने की परिपाटी को आचार्य परशुराम चतुर्वेदीजी ने अपभ्रंश काल से प्रचलित बतलाया है।'[2] बेनामी जी की बाणी में यह परम्परागत काव्य-रूप अपनी प्राचीन विशेषता लिए हुए है। बेनामी जी ने इनमें व्यंजनानुक्रम से बड़े सुन्दर उपदेश दे रखे हैं। उदाहरण के लिए 'भम्मा' भय

---

1. बेनामी बोध, पृ० 1
2. सन्त काव्य ; पं० चतुर्वेदी, भूमिका, पृ० 39

को दूरकर', 'मम्मा' मन को सौंपदे सतगुरु के दरबार' तथा 'लल्ला लौ लागी रहै घर भीतर धर ध्यान' आदि। अन्त में बारहकड़ी के महात्म्य की ओर संकेत करते हुए बेनामी जी ने कहा है—

जोगावे, सीखे, सुने—निरालम्ब पद पाय।[1]

इसके पश्चात् आरती, आरती अद्वैतज्ञान, आरती भूलना, आरती अष्टपदी छन्द तथा आरती पद इत्यादि आरतियाँ हैं जो सभी बेनामी जी द्वारा रचित प्रतीत नहीं होती। क्योंकि पृ० 14-15 पर 'आरती—अष्टपदी छन्द' शीर्षक वाली आरती के अन्त में—'रामकुमार पुकार सुनो'[2] से स्पष्ट है कि यह किसी रामकुमार नामक भक्त द्वारा प्रणीत है। पृष्ठ 6-7 तथा 16 पर दिए गए आरती पदों को बेनामी-पन्थी साधु, प्रातः एवं संध्या समय बड़ी श्रद्धा से गाते हैं। बेनामी बोध में 'सिद्धान्त वार्ता' 'शीर्षक' के अन्तर्गत बेनामी जी की समस्त बाणी का दिग्दर्शन करवाने वाली 209 साखियों का समुच्चय है। इन साखियों में सार रूप में बेनामी जी की ब्रह्म, जीव, जगत तथा माया एवं साधना-पद्धति सम्बन्धी सभी धारणाएँ स्पष्ट हो जाती हैं। 'उपदेश चिंतामणि' के अन्तर्गत प्रायः 'सिद्धान्त वार्ता' वाली बातों की पुनरावृत्ति की गई है। 'उपदेश चिन्तामणि' में उल्टबाँसी किस्म का एक सोरठा भी दे रखा है। कुछ साखियों में ज्ञान-वर्व पहेलियां सी आई हैं। 'परमहँस का खेत' में अलौकिक खेती की बात की गई है तथा 'परमहँस का विवाह' में अलौकिक विवाह का वर्णन है जिसके गाने से सार वस्तु की प्राप्ति होती है—

'बेनामी के ब्याह को गावै समझ विचार।
आवा गवन जिनके नहीं कोई मिले सार में सार॥'[3]

'आल्हा' शीर्षक के अन्तर्गत—आल्हा छन्द में बेनामी जी ने अपनी इहलोक से महाशून्य तक की यात्रा का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। 'आल्हा' लोक-काव्य का एक लोक-प्रिय काव्य-रूप है जिसमें वीररस का प्रतिपादन बड़ी प्रभावमयी शैली में किया जाता है। यहाँ बेनामी जी ने उसी लोक परम्परागत शैली का प्रयोग एवं निर्वाह बड़े सुन्दर ढंग से किया है। आल्हा का एक उदाहरण लिया जा सकता है—

इतना सुन बेनामी चल दिया, गुरु की शिक्षा सिर पर मेल॥
जाके दाखिल भयो बैकुण्ठ में और पद्मासन दिया लगाय॥[4]

---

1. बेनामी बोध, पृ० 5
2. वही, पृ० 15
3. वही, पृ० 94
4. वही, पृ० 106

'आल्हा-काव्य-रूप का यह प्रयोग निर्गुण साहित्य में एकदम विरल है। इस लोक प्रिय विधा का प्रयोग कर बेनामी जी ने सन्तकाव्य को लोक-काव्य के निकट लाने का श्लाध्य प्रयास किया है। 'शेर' शीर्षक के अन्तर्गत बेनामी जी ने उर्दू के प्रतिष्ठित छन्द को गौरवान्वित किया है। इनके शेर का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

दर्शन सफा बजूद में, दीदार नफा खूब।
जरा दम कूँ डाट देखो, दिल अन्दर महबूब ।।[1]

'उपदेश सतर्क चिन्तामणि' के अन्तर्गत 33 साखियों में विषय का निर्वाह कुछ कुछ 'चेतावनी का अंग' तथा 'मरम विधूषण का अंग' जैसे शीर्षकों में पाई जाने वाली बाणी की तरह ही किया गया है। इसमें उन्होंने चेतावनी दी है तथा भ्रम का खण्डन किया है, यथा—

कंठी कंठा पहरते, तिलक भस्म सिर लाय।
तन की सोभा करत है, जग में भक्त कहाय ।।[2]

जैसे बाणी के पद भाग में कुछ छन्द उल्लेखनीय हैं, उसी प्रकार यहाँ भी कुछ कुछ पदों के छन्दों में नवीनता एवं विरलता है। 'इश्तिहार' (विज्ञापन) जैसा शीर्षक सन्तवाणी में एकदम नया है। इसमें शीर्षक के अनुरूप ही विषय का निर्वाह किया गया है। बेनामी जी का एक बड़े सौदागर (मुक्ति सौदा) के रूप में विज्ञापन दर्शनीय है—

सौदा है बहु भाँति का, जैसा जाय सुहाय।
बिन माँगे सौदा मिले, गायक (ग्राहक) सो ले जाय ।।[3]

इसी प्रकार 'वेदान्त छन्द मरैठी' भी सन्त साहित्य में एक विरल छन्द प्रयोग है। इसमें 18-18 पंक्तियों के लम्बे-लम्बे नौ (9) पद हैं। इस मरैठी छन्द की एक टेक उदाहरणार्थ ली जा सकती है—

बेनामी का शब्द समझ के, हो हुस्यार मत फिरे गाफिल।
सिर पै डंका बजै काल का, अपने दिल में सोच संभल ।।टेक ।।[4]

प्रति चार पंक्ति के बाद इस टेक की आवृत्ति का विधान है। पद की टेक के अतिरिक्त 4-4 पंक्तियों के 4 भाग होते हैं। यह नया ही छन्द है। शेष पदों में पृ० के लगभग रेखता, गजल, कवित्त, होरी, झूलना तथा सामान्य पद (शब्द) हैं। पदों में प्रवाह है। इनकी विषयवस्तु सामान्य तथा उपदेश, विनय तथा साधना-

---

1. वही, पृ० 108
2. वही, पृ० 160
3. वही, पृ० 109
4. वही, पृ० 137

पद्धति इत्यादि से सम्बद्ध है।

बाणी के तीसरे भाग में 'बेनामी गीता' है जो गद्य में है। कहीं-कहीं आरम्भ में दोहों द्वारा अध्याय का सार दे दिया गया है। इसमें कुल 18 अध्याय हैं जो सारे ही 17 पृष्ठ से 52 पृष्ठ के अन्तर्गत समाप्त हो जाते हैं। सभी अध्यायों में प्रायः अप्रस्तुतों का सहारा लिया गया है जो कई जगह असंगत भी हो गया है। प्रथम अध्याय में तीन लोक वर्णन हैं। इसमें सत्, रज तथा तम नामक—तीनों गुणों को तीन लोक बताया गया है। यथा—

'तीन लोक वर्णन करें, घट भीतर पहिचान।
रज तम सत ते आदि ले, तीन लोक यह जान।।'[1]

सात दीप में भी तीनों गुणों की गिनती की गई है। नौखण्ड-काय के नव-द्वार हैं। अन्त में प्राणायाम-विधि तथा प्राणायाम-फल दिया गया है। दूसरे अध्याय में 'चौदह भवन' वर्णन हैं जिसमें दस इन्द्रियों में काम, क्रोध, लोभ तथा मोह को मिलाकर चौदह भवन बना दिए हैं—

चौदह भवन वर्णन करें इनकी करो पिछान।
पाँच इन्द्रि ज्ञान की, पाँच कर्म की जान।।[2]

तीसरे अध्याय में—'श्री कृष्णजी का शरीर में वर्णन' के अन्तर्गत मन को कृष्ण, देह को यशोदा, दिव्य दृष्टि को देवकी, बुद्धि को रोहिनी, काम को कंस, क्रोध को अक्रूर इत्यादि कहकर विवृत्त किया गया है। चतुर्थ अध्याय में 'श्री रामचन्द्र जी का शरीर के अन्दर वर्णन' हैं जिसमें मन को विश्वामित्र, दशरथ को देह, रामचन्द्र को ज्ञान, रावण को अहंकार, इत्यादि कहा गया है। पाँचवें अध्याय में 'ब्रह्मा का दिन' बताया है। छठे अध्याय में तीनों गुणों की व्यापकता तथा सातवें अध्याय में 'मन्वन्तर वर्णन' है। मन को मनवन्तर बताते हुए बेनामी जी ने कहा है—

चार पहर की रात है, चार पहर दिन जान।
मन्वन्तर मन सो रहा, मन मन्वन्तर मान।।[3]

अष्टम अध्याय में 'एक से अनेक सृष्टि का वर्णन' तथा नवम अध्याय में शरीर अन्दर शत्रु आदि काल का विकार' बड़ा अटपटा सा है। दशम अध्याय में 'चार युगों का वर्णन' केवल नाम मात्र है। एकादश अध्याय में 'विराट स्वरूप का वर्णन' इस प्रकार किया गया है—

हृदय से फुरना उठे, मन विचलित हो जाए।
इन्द्रिन में हलचल मचे, विषय करन को चाय।।

---

1. बेनामी बोध, पृ० 17
2. वही, पृ० 20
3. वही, पृ० 28

जब फुरना के शीश पर, आसन देय लगाय ।
यह स्वरूप विराट का लखे सोनर हो जाय ।।[1]

द्वादश अध्याय में 'पृथ्वी का तकतोल' तथा तेरहवें अध्याय में 'फिर' तीन गुणों का वर्णन' किया गया है। चतुर्दश अध्याय में 'शरीर के अन्दर गौ लोक वर्णन' में सिर को गौ लोक बताया गया है। पंचदश अध्याय में 'विष्णु भक्ति वर्णन' है जिसमें 'सुरत सुमरनी' को असली विष्णुभक्ति बताया गया है। षोडश अध्याय में 'बरहा और हिरण्याक्ष वर्णन' तथा सप्तदश अध्याय में 'शरीर के अन्तर्गत कपिल आदि का वर्णन' में कल्पना संयुक्त मन को कपिल बताया गया है। अष्टादश अध्याय में 'श्री गीता जी के पाठ का फल वर्णन करते हुए बेनामी जी ने कहा है—

बेनामी वे बुदबुदा, आदि अंत से दूर।
सतगुरु सैन समार के, गुरु के रहे हजूर ।।[2]

प्रायः बेनामी जी रचित सारी गीता में अध्यात्म के कुछ शब्दों को लेकर मन-माना खिलवाड़ सा किया गया है। तत्कालीन गद्य का स्वरूप निर्धारण करने में भाषा कोई सहायता नहीं करती प्रतीत होती।

श्री बेनामी जी के प्रमुख शिष्य किशोरदास जी को एक उत्तम साधक के रूप में बड़ी प्रसिद्धि मिली किन्तु इनकी कोई बाणी नहीं मिलती। बेनामी जी के एक अन्य शिष्य मंगलदास का उल्लेख मिलता है।[3] यह मंगलराम ब्राह्मण थे जो बेनामी जी के अलवर स्थित शुक्ल जी की बगीची में पधारने पर प्रथम शिष्य बने। यह 1906 संवत् की घटना है। इसके आगे-पीछे मंगलराम के विषय में कुछ पता नहीं चलता। इनकी चर्चा यहां इसलिए की गई है कि कुछ पद एवं साखियाँ— 'बेनामी कृत आत्मबोध' में मंगल नाम से संकलित हैं।

मंगलराम (दास) का उपलब्ध साहित्य

'बेनामी आत्मबोध' में मंगल जी के नाम से 2 छप्पय छंद, 2 कुंडलियाँ, 3 कवित्त, एक सवैया, 11 चौपाइयाँ, 4 सोरठे, 22 फूटकल दोहे तथा 14 दोहें 'विनय पत्रिका' शीर्षक के अन्तर्गत संकलित हैं। इनकी भाषा, भाव तथा शैली की बानगी पाने के लिए यहाँ एक सवैया दिया जा रहा है—

इष्ट वही जामें सृष्ट बसै सब, त्याग वही त्रये गुणते-न्यारो।
जोग वही जो जुर रहे ब्रह्म ते, एक अखण्डित रूप निहारो ।।

---

1. बेनामी-बोध, पृ० 37
2. वही, पृ० 51
3. वही, पृ० 11

दास वही नितदाह सहै तन, व्यापक रूप समस्त विचारो।
मंगलसैन विचार कहे, सतगुरु बेनामी ने कियो उजारो ॥[1]

भाषा तथा भाव दोनों हो परिपक्व हैं, किन्तु खेद यही है कि इनकी उपलब्ध बाणी अत्यल्प है।

'बेनामी-आत्मबोध' के पृष्ठ 78, 79 तथा 80 पर 12 दोहे 'मलुक' के नाम से तथा कुछ आठ-दस दोहे 'गुलाब' के नाम से आए हैं। लगता है ये मलुक गरीब दास (बेनामी साधु) के शिष्य थे। इस सम्बन्ध में निम्न दोहा द्रष्टव्य है—

मलुक जन्म जाट घर पाय, कहा बनाया ख्याल।
कहे गरीब गुरुदेव जी, अदली आद दलाल ॥[2]

'गुलाब' कवि भी बेनामी जी के शिष्य लगते हैं—

कवि 'गुलाब' सुन लीजियो, बेनामी परनाम।
बिन रमे याह देह में, राय धराया नाम ॥[3]

गरीबदास

महाराज किशोरदास जी के शिष्य थे। ये जाति के जाट थे। इनका नाम अभय सिंह था। इन्होंने कुछ दिन रघुनाथ गढ़ में भजन किया। तत्पश्चात् ये अलवर स्थित भूरा सिद्ध के बाड़े में आ गए और जीवन-पर्यन्त यहीं रहे। ये 90 वर्ष की अवस्था में ब्रह्मलीन हुए थे।[4] इनकी समाधि भूरासिद्ध के बाड़े में है। इसके अतिरिक्त इनके विषय में और अधिक जानकारी प्राप्त नहीं कर सका। 'बेनामी आत्मबोध' में इनका एक पद आया है। 'बेनामी' साधु कहते तो यह हैं कि इनकी और भी बाणी है किन्तु वह मुझे नहीं मिल सकी। पद यहाँ अविकल रूप में दिया जा रहा है—

देखा सुना किसी ने हो तो ऐसा देश हमारा है। ॥ टेक ॥
सूरज का प्रकाश नहीं है, चंदा कौन विचारा है ॥ 1 ॥
छप्पन भोग छत्तीसों व्यन्जन, इनसे स्वाद निराला है ॥ 2 ॥
ना वहाँ जाप नाहीं वहां अजपा ना वहाँ ज्ञान विचारा है ॥ 3 ॥
गरीबदास गुरु कृपा कीन्हीं, शीतल अंग हमारा है ॥ 4 ॥[5]

गरीबदास जी के शिष्य बाबा शीतलदास जी बड़े प्रसिद्ध संत हुए हैं। उनके

---

1. बेनामी बोध, पृ० 152
2. वही, पृ० 78
3. वही, पृ० 79
4. वही पृ० 18
5. वही, पृ० 165

शिष्य श्री नारायणदास जी हुए जो नरैणा की गद्दी के सन्त थे। किन्तु इन प्रसिद्ध सन्तों की कोई वाणी नहीं मिलती। नारायणदास जी के शिष्य श्री गोपालदास जी हुए हैं जो झज्जर को बेनामी-पंथी गद्दी के बड़े जाने माने सन्त हुए हैं। इनकी बाणी मिलती है।

गोपालदास जी

गोपालदास जी का जन्म संवत् 1950 वि० के लगभग राव धनीराम जी के घर, नैनपुरा, तहसील रिवाड़ी, ज़िला गुड़गाँवा में हुआ। गुरु का नाम नारायणदास था। इन्होंने 5 वर्ष की आयु में ही फकीरी ले ली थी। गोपालदास जी ने 9 वर्ष की आयु में ही झज्जर के 'देवालय' की भूमि को अपने चरण कमलों से पवित्र किया था। इनके गुरु नारायणदास जी ने इनको 12 वर्ष की आयु में ही गुरु-गद्दी दे दी थी। इन्होंने गद्दी धारण करने के पश्चात् कई व्रतों का अनुष्ठान किया। इनमें से एक व्रत 5 वर्ष लम्बा था। इसके पश्चात् इनके साथ बहुत-सी घटनाएं घटी बताई जाती हैं। उनमें से कुछ की चर्चा यहाँ की जाती है।

कहते हैं कि गोपालदास जी के पास एक 'गोमा' नाम की एक बहुत ही सुन्दर गाय थी। जब गऊ की उमर लगभग डेढ़ साल थी। एक दिन महाराज बैठे-बैठे अपने शिष्यों से वार्तालाप कर रहे थे। अचानक उन सेवकों को चरणामृत के लिए कुछ दूध की आवश्यकता थी। उन्होंने महाराज से कहा कि कुछ दूध चाहिए। बाबा ने कहा कि गोमा से ले लो उन्होंने कहा, 'महाराज गोमा तो बिना ब्याई गऊ है।' महाराज ने फिर कहा कि तुम गोमा से दूध ले लो। वह तुम्हें दूध दे देगी। जब सेबक गोमा के पास दूध निकालने पहुंचे तो एक गिलास दूध गोमा ने दे दिया। एक बार झज्जर के कुछ आदमियों ने वृक्ष काटने शुरू किए। एक दिन महाराज के निवास स्थान पर वृक्ष काटने वाले आ धमके। बाबा ने उन्हें वृक्ष काटने से रोका किन्तु वे नहीं माने और वृक्ष काटने के लिए तैयार हो गए। महाराज उनके पास गए। वृक्ष काटने वालों ने बाबा को मारने का इरादा किया। ज्यों ही उन्होंने लाठियां उठाई, उनके हाथ ज्यों के त्यों रह गए। हाथों ने काम करना ही बंद कर दिया। उन्होंने महाराज के पैरों पड़कर क्षमा-याचना की। महाराज ने उन्हें क्षमा कर दिया। वे सभी बाबा के भक्त हो गए और सब ने मिलकर बड़ा अच्छा भण्डारा किया। इसी प्रकार अनेकों लीलाएं दिखाते हुए महाराज ने यहीं देवालय में शरीर छोड़ा। इनकी समाधि यहीं झज्जर देवालय के स्थान पर बनी हुई है।[1]

रचनाएँ एवं शिष्य

झज्जर-देवालय की गद्दी पर आजकल महंत ज्ञानदास जी विराजमान हैं।

---

1. बाबा ज्ञानदास जी द्वारा बताया हुआ, जो गोपालदास जी के शिष्य हैं।

ऊपर गोपालदास जी का जो परिचय दिया गया गया है, वह मैंने ज्ञानदास जी से 30-1-76 के दिन झज्जर जाकर प्राप्त किया था। ज्ञानदास जी गोपालदास जी के मृत्यु संवत् इत्यादि का ठीक से पता नहीं दे पाए। ज्ञानदास जी के अनुसार गोपालदास जी की बाणी का प्रकाशन 'अमृतबाणी' शीर्षक से करवाया गया था। किन्तु अब वह अप्राप्य हैं। उन्होंने हस्तलिखित बाणी मुझे सौंप दी जो मैंने अपनी कापी में टीप ली। बाणी का परिचय इस प्रकार है—

बाणी-परिचय—परिचय की सुविधा के लिए बाणी को दो भागों में विभक्त कर लेते हैं—एक अंग भाग तथा दूसरा पद भाग। अंग भाग में 8 अंग हैं। गुरुदेव के अंग में अपने हाथ केवल 19 साखी ही लगी हैं क्योंकि पाण्डुलिपि के कुछ पन्ने फटे हुए थे। साखियों की अन्तिम संख्या 27 दी गई है। स्पष्ट है कि फटे हुए पन्ने पर 8 साखियां रही होंगी जो अब गायब हैं। गुरु महात्म्य की एक साखी प्रस्तुत है—

'सतगुरु के प्रताप का, कौन कहै विस्तार।
हरके सिरजैं वार हैं, गुरु की दया सैं पार॥[1]

घोबिंद के अंग में 15 साखियाँ, 15 चौपाइयाँ तथा दो दोहे सम्मिलित हैं। भाव और भाषा की बानगी एक साखी से लीजिए—

गोबिंद कहके कूकिए, गोविंद से लौ लाय।
अष्ट पहर सुमरन करो, गोबिंद मिलेंगे आय॥[2]

'काम का अंग' 33 चौपाइयों तथा 2 दोहों में व्याप्त है। निम्न शब्दों में काम का महत्व दृष्टव्य है—

कामदेव जब आन सतावै।
ज्ञान ध्यान की सुध बिसरावै॥
भजन बंदगी करन न देवे।
विषय भोग की चिंता से वै॥[3]

'क्रोध का अंग' में 11 चौपाइयाँ तथा पाँच साखियाँ सम्मिलित हैं। क्रोध का प्रभाव निम्न शब्दों में देखिए—

नैन लाल रूप है कारो। रूम रूम है जावै भारो॥
तनमन सब सुध बुध बिसरावै। कही सत्य ठहरन न पावै॥[4]

'छमा का अंग' केवल 5 साखियों में ही आ गया है। 'लोभ का अंग' 12

---

1. गोपालदास, गुरुदेव का अंग, सा० 16
2. वही, गोबिंद का अंग, सा० 7
3. गोपालदास, काम का अंग, 1-2 चौपाई
4. वही, क्रोध का अंग,

चौपाइयों तथा 2 दोहों में व्याप्त है। लोभ का परिचय देते हुए गोपालदास जी कहते हैं—

लोभ महा दुख रूप है, सोच समझ मन माँहीं।
लाऊ लाऊ करता रहै, कबहूं तिरपत नाँही ।।[1]

'संतोष का अंग' केवल 5 चौपाइयों तथा 2 दोहों में ही समाप्त है। 'मोह का अंग' 9 चौपाइयों में लिखित है। मोह का प्रभाव देखिए—

बांदर ज्यूं यह पकड़ नचावै। उलझ 2 बहु भट का खावै ।।[2]

बेनामी जी की 'वारहखड़ी' के सामान ही गोपालदास जी ने भी 30 चौपाइयों तथा एक दोहे में बड़ी सुन्दर बारहखड़ी लिखी है। इसमें 'तवर्ग' लुप्त हैं जो है सो उत्तम। कुछ अक्षरों की लाक्षणिकता देखिए—

कबका अपनी कायासोधों। भगत को तुम बोवो पोधौ ।।
खखला खबर गुरु से पावै। गुरु बिन भेद कौन दरसावै ।।
घघा घट के भीतर पावै। सतगुरु जिसने भेद बतावै ।।
ड़ड़ा गंग ज्ञान की न्हावो। गुरु चरणों में चित्त लगाओ ।।[3]

पदों में कुछ पद रागों पर आधारित हैं जैसे—दादरा, होली, धमाल तथा प्रभाती इत्यादि। कुल पदों की संख्या 106 है। पदों में गेय तत्व प्रचूर मात्रा में विद्यमान है। भाव स्पष्ट तथा भाषा सरल है। उदाहरण के लिए एक पद द्रष्टव्य है—

नर तेरा चोला रतन अमोला, नींद में सोवै मतवारे ।। टेक ।।
त्रिकुटी के बीच उजाला, अनगिन शशी प्रकाशि निकाला।
जहाँ हुआ चाँदना आला, दीवा जौवे मत ना रे ।। 1 ।।
सतगुरु का ध्यान लगावे, सीधा इस रस्ते पैं आले।
अपने मनवा ने समझा ले, जिंदगी खोवै मतवा रे ।। 2 ।।
जो बने सो सुकरम कर ले, इस मनवा की दुविधा हर ले।
ये बात हिरदे में धर ले, पाप ने बोवै मतना रे ।। 3 ।।
यूँ दास गोपाला गावै, सतगुरु सारा भेद बतावै।
कोई महरम रस्ता पावै, अंधेरा होवै मतना रे ।। 4 ।।[4]

गोपालदास जी की सारी बाणी में अभिव्यक्ति बड़ी सहज है। भाषा में प्रसाद गुण है। भाव स्पष्ट तथा अनुभूति प्रामाणिक है। आजकल इनकी गद्दी (झज्जर) पर महंत ज्ञानदास जी विराजमान हैं।

---

1. वही, लोभ का अंग,
2. वही, मोह का अंग,
3. वही, बारहखड़ी
4. गोपालदास, बारहखड़ी, पद 86

बेनामी-पंथ में साधना का स्वरूप

साधना सम्बन्धी संकेत बेनामी जी की बाणी में कई स्थानों पर आए हैं, जिनकी सहायता से इनकी साधना का स्वरूप स्पष्टतः समझा जा सकता है। सिद्धान्तवार्त्ता में अपनी साधना पद्धति की ओर लक्षित संकेत करते हुए कहा गया है—

सुरत शब्द निश्चय करो, जब आत्म सुध होय।
चार तत्त न्यारे करे, अनहद की धुन होय।।[1]

संकेत को स्पष्ट करते हुए वे आगे कहते हैं—

प्राणायाम का फल यही जो कोई साधै याहि।
प्राण पत्र मेरे करै, करे नाशका माँहि।।
ज्योति झिलमिली खुदरती (कुदरती) देखो मस्तक माँहि।
कोई कोई साधू चढ़ गए। समता माँहि समाँहि।।[2]

उपर्युक्त संकेत से सुरत-शब्द-साधना का स्वरूप स्पष्ट ही है। एक बात और अधिक यहाँ जो दिखाई देती है वह है प्राणायाम पर आग्रह। स्वाँसों को प्राणायाम द्वारा संयमित करते हुए सुरत-शब्द-साधना सम्पन्न करना ही यहां प्रकट होता है। इसी पद्धति से मस्तक में कुदरती ज्योति की झलक मिलती है। इसकी साधना करने वाला साधु समता (पद) में समा जाता है। कुछ और साक्ष्य होते हैं। प्राणायाम को एक ही मात्र महत्व देते हुए बेनामी जी कहते हैं—

बेनामी के मिलन की, अक्कल दई बताय।
प्राणायाम को साध ले, तब बेनामी पाय।।[3]

यहां केवल प्राणायाम-साधना से ही बेनामी-मिलन सम्भव बताया गया है। एक स्थान पर बेनामी जी लिखते हैं—

गुदा नेत्र को ढक लिया, ढके कान के साल।
रसना ते सुर खेंच के, ब्रह्म रंध्र को चाल।।
प्रान पवन के मेल ते, भंवर गुफा के बीच।
अनहद के बाजे बजैं, ये हंसन की रीत।।[4]

उपर्युक्त युक्ति को वे अन्यत्र शब्दभेद से इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं—

---

1. बेनामी बोध, पृ० 68
2. वही, पृ० 68
3. वही, पृ० 69
4. वही, पृ० 70

सुन नूरी मन बात पियारे, बेनामी का शब्द परख।
प्राणायाम का साधन करके, धंस काया में रत्न परथ।।
पद्मासन का साधन करके, मेरुदण्ड को सीधा कर।
दोनों नेत्र करो इक्ठ्ठे, धरो नासिका के ऊपर।।
सुरत खैंच कर घट भीतर ले, ऊंकार का सुमिरन कर।
ज्ञान दृष्टि ते अग्नि प्रगट कर, करम धरो इसके भीतर।।[1]

इसी बात की पुष्टि एक अन्य स्थान पर भी की गई है—

जो तोय आशा राम मिलन की, पद्मासन का निश्चय कर।
मेरदण्ड का साधन करके, गरदन के ताँई सीधा कर।।
दोनों नेत्र करो इकट्ठे, धरो नाशका के ऊपर।।[2]

गुदा नेत्र को ढकने, मेरुदण्ड (रीढ़) को सीधा कर ऐसे तनके बैठ ताकि जिसमें गरदन भी सीधी हो, आदि का बार-बार उल्लेख करने का तात्पर्य पद्मासन पर आरूढ़ होकर दृष्टि को नासिकाग्र भाग पर स्थिर कर, प्राणायाम का साधन और और ओंकार का आभ्यन्तरिक जाप ही इनकी साधना की युक्ति प्रतीत होती है।

यहाँ थोड़ी शंका सी पैदा होती है जिसका समाधान जरूरी है। यह जो बार-बार पद्मासन लगाने तथा नेत्रों को नासिका पर धरने की बात कही जा सकती है, इससे तो सन्तों की सहज साधना वाली नहीं वरन् पक्की योगा-साधन वाली बात ही प्रकट होती है। सन्तों की सुरत-शब्द अभ्यास में नेत्रों को नासिका पर नहीं धरा जाता वरन् उलटा हो जाता है। क्योंकि सन्तों का उपदेश (युक्ति-संकेत) होता ही त्रिलोकी से ऊपर का है। उसमें दृष्टि को ऊर्ध्वमुख कर उलटना होता है। प्राणायाम का महत्व तो प्रायः सन्तों में प्रारम्भिक स्थिति में अवश्य कही है। उनका स्वांस-साधान एक सोपान है, किन्तु सभी कुछ प्राणायाम और पद्मासन नहीं है। यह नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि करने या स्थिर करने वाली बात सन्तों की नहीं योगियों की है। सन्तों की यात्रा का आरम्भ ही 'दो दल घाटी' से होता है। यह दो दल घाटी 'त्रिकुटी स्थान है, जहाँ दृष्टि स्थिर की जाती है। बीच में हो सकता है कि कहीं पंथिक विद्वानों ने फेर-बदल कर दी हो, क्योंकि बेनामी जी की साधना सन्तों की साधना ही है। एक स्थान पर बेनामी जी का संकेत हमारी धारणा की पुष्टि करता प्रतीत होता है—

अमर लोक दृग महल है, दो पांषडि के बीच।
नाम लेत हँसा तिरे, काल नवावे सीस।।[3]

---

1. बेनामी बोध, पृ० 141
2. वही, पृ० 141
3. वही, पृष्ठ 72

यहाँ दृग महल में 'दो दल वाले त्रिकुटी कमल की ओर स्पष्ट संकेत है। गोपालदास जी का एक पद भी उपर्युक्त बात की पुष्टि करता है।

पद—

सुमरण बाण बान चले, सुमरण में लौ लाय ।।
सील सुरत के नेम करके, नासा अग्र जमाय ।।
नाभि कंवल ने सोध बावरे, मेर डंड ठहराय ।।
त्रिकुटी ऊपर चढ़कर देखो, जोत झिलमिली वाय ।।
दास नारायण कहैं दास गोपाला, चित अपना ठहराय ।।[1]

बेनामी पन्थ में बेनामी तत्व

बेनामी-पन्थ में 'बेनामी' उस परम तत्व का ही समशील है जिसे सन्त लोग—ब्रह्म, सतपुरुष इत्यादि के नाम से जानते हैं—

"बेनामी सत्य स्वरूप, सच्चिदानन्द आनन्दमय।"[2]

बेनामी सत्य स्वरूप है, सच्चिदानन्द ब्रह्म ही है।

बेनामी कोली कुर्बान, जिनके बना विहंगम ताना।
बेनामी कोली अविनाशी, नाम धरे की जग में हाँसी ।।[3]

उस आलौकि ताना बुनने वाले कोली (कोरी-जुलाहे) बेनामी पर कुर्बान हो जाऊं। यह बेनामी कोली सृष्टि का कर्त्ता, अविनाशी है। इसका भिन्न-भिन्न नाम-करण संसार में उपहासास्पद है, वह तो अनाम है, बेनाम है। बेनामी जी को इस कलियुग में निष्कलंक अवतार तो उनके गुरु कक्कड़ जी ने ही फर्माया था—

माया मद अहंकार मन, छोड़े सकल विकार।
बेनामी कलि बीच में, निष्कलंक अवतार।"[4]

बेनामी जी स्वयं अपना परिचय देते हुए कहते हैं—

राम जात को क्षत्री है, कृष्ण है जात अहीर।
बेनामी बेटो जाट को, भेटे दास कबीर ।।[5]

यहाँ बेनामी जी अपनी तुलना, जाति परिचय देकर, राम और कृष्ण से करते हुए प्रतीत होते हैं, कबीर तो इन अवतारादि से ऊपर हैं ही। राम और कृष्ण से तो

---

1. गोपालदास, पद 83
2. बेनामी बोध, पृ० 6
3. वही, पृ० 7
4. वही, पृष्ठ 12
5. वही, पृ० 74

बराबरी जतलाते हैं और जैसे कबीर से भेंट गौरव की बात है। बेनामी के स्वरूप और महत्व को प्रतिष्ठित करने वाले एक और साक्ष्य को देख लें—

सब तें पहले बेनामी हैं, पीछे भयो आकाश।
जा पीछे प्रकाश हैरे, या ही को नाम ऊंकार ।।[1]

जैसे कबीर, नानक इत्यादि का कथन है कि ब्रह्म ही आदि, मध्य और अन्त है, सब ब्रह्म ही ब्रह्म है; उसी तरह यहाँ बेनामी को ही सृष्टि का आदि कर्त्ता बतलाया गया है। आकाश, प्रकाश तथा ओंकारादि सब उससे निकले हैं। 'बेनामी' अनाम, परब्रह्म का समशील है।

बेनामी पन्थी भी अन्य सभी सन्तों की तरह गुरु अथवा सतगुरु को बहुमान देते हैं—

गुरु अथवा सतगुरु

'सतगुरु महिमा अमित है, को करि सके बरबाद।'[2]
बेनामी गुरु बन्दना, करत न कबहुँ अधाय।
कलि मल धोई मलीनता, दीया ब्रह्म लखाय ।।[3]

उपर्युक्त शब्दों में सतगुरु की महत्ता स्पष्ट लक्षित है।

सतगुरु ऐसा चाहिए जो शिष्य को भी ज्योतित कर दे। अन्धा गुरु करने से क्या लाभ जो शिष्य को भी डुबो दे। गुरु ऐसा हो जो सहज ही ब्रह्म से मिला दे और अनहद नाद से नाता जोड़े, सब कलिमल धोकर निर्मल कर दे। फोकट गुरु से बचना चाहिए जो शिष्य के हाथ में प्रातः उठते ही भीक्षा का पात्र थमा देता है।[4] हमारे गुरु तो पक्के निशाने बाज हैं। जिन्होंने एक बाण से सारी विषमता (विषयता) हर ली और निर्वाण पद का अधिकारी बना दिया। हमारे गुरु कलिमल पाप तथा तीनों ताप धोने वाले विचित्र धोबी (निर्मल) है। हमारे सतगुरु स्वयं तत्वस्वरूप हैं और हमें भी उन्होंने अलौकिक तत्व दिखला दिया है। माला, तिलक, जनेऊ, इत्यादि से बहलाने वाले गुरु फोकट (झूठे) गुरु हैं, इनसे बचाव आवश्यक है।[5]

नाम सुमरन :—बेनामी जी के मत से नाम का निरन्तर ध्यान तथा जाप चलता रहना चाहिए। आत्म-साक्षात्कार के लिए इस नाम-रूप दीपक का होना अनिवार्य है।[6] नाम सुमरन अथवा भजन बिना जीवन-जन्म के प्रेत के समान है।

---

1. बेनामी बोध, पृ० 127
2. वही, पृ० 172
3. वही पृ० 60
4. वही पृ० 60
5. वही, पृ० 61
6. वही, पृ० 45

यह मैला मन अपनी विषयेच्छाओं की पूर्ति के लिए घर-घर डोलता रहता है और रात-दिन भटकता रहता है सन्तों को कष्ट देता है। इन सभी अवगुणों को दूर करने के लिए नाम की औषधि अचूक काम करने वाली है।[1] इस नाम सुमरन के लिए हाथ की माला की आवश्यकता नहीं। इसके लिए स्वासों की सुमरनी (माला) अपेक्षित है। प्रत्येक श्वाँस निरन्तर उस परमतत्व के जाप में चलता रहे, यही अजपा जाप हो जाता है और आत्मा इस विधि से स्वयं परमात्मा बन जाता है।

सत्संग तथा सन्त महात्म्य

इस नाम जाप अथवा सुमरन के पुष्ट करने वाले सन्त हैं। उनका सत्संग-लाभ सद्गति प्राप्ति के लिए आवश्यक है। सत्संग के प्रताप से मन सुख-सिन्धु में स्थिर हो जाता है। कौवा हंस और हंस परमहंस हो जाता है। साधु इस संसार में प्रकाश पुँज होते हैं, वे भक्तों का उद्धार करने वाले तथा तीनों ताप हरण करने वाले होते हैं। इनके सत्संग के महत्व का वर्णन सम्भव नहीं है। सत्संग से ही सार वस्तु का (आत्मा का) सार (परमात्मा) से मिलन सम्भव है।[2] सन्त तथा सत्संगति का महात्म्य इन शब्दों द्वारा और भी स्पष्ट हो जाता है—

सन्त समान न सगा जगत में कोय रे।
जन्म जन्म के पाप पलक में धोय रे।।
दरसावे निज रूप विघ्न सब खोय रे।
मंगल आनंद होय सन्त मुख जोय रे।।[3]

बेनामी पन्थ में ब्रह्म का स्वरूप

ब्रह्म तीनों गुणों से रहित, निराकार, निर्लेप है। स्याही, कलम, दवात, इनकी सीमाओं से परे हैं। वह ज्योतिस्वरूप है।[4] सर्वातीत सर्वज्ञ है। सच्चिदानन्द स्वरूप है, अनाथनाथ है, सर्वप्रतिपालक है, निष्कलंक है, सगुण-निर्गुण से ऊपर है, अलख, निरंजन, निरपेक्ष है,[5] 4 वर्णों से परे है, आदि-आदि है, फिर भी वह सभी में समाया हुआ है।'[6]

---

1. बेनामी बोध, पृ० 20
2. वही पृ० 9
3. वही, पृ० 162
4. वही, पृ० 3
5. वही, पृ० 6
6. वही, पृ० 114

माया

माया मेरी शक्ति है, मैं माया का पीव ।
मो में तो माया भई, ना समझे सो जीव ।।[1]

माया उस ब्रह्म की ही शक्ति है, ब्रह्म ही उसका स्वामी है। माया उसी का अंश है। यह पाँचतत्व की काया भी माया ही है। यह त्रिलोकी का विस्तार सारा माया का ही विस्तार है। यह तीनों गुणों का सारा प्रपंच ही माया है।[2] लोभ, मोह, काम, क्रोध, इत्यादि सभी माया के सैनिक हैं। यह माया ही सुख-दुख की दाता है। स्वर्ग-नरक सब माया का ही प्रसार है।[3]

पाँच तत्व की देह में, ईश्वर जीव पिछान ।
ईश्वर तो ओंकार है, जीव गुणन की खान ।।[4]

यह जो जीवात्मा है वह शरीर में ब्रह्म (ईश्वर) स्वरूप ही है। गुणों की फेट में आकर यही ब्रह्म जीवस्वरूप बन जाता है। इस जीवात्मा के रुप में ब्रह्म सभी घट में व्याप्त है।

बेनामी पन्थ में जगत को उसी रूप में निरूपति किया गया जैसे अन्य सन्त निरूपति करते हैं—

जगत्

जग झूठा सुपने की माया, भरम के जाल परयो रे ।
जैसे स्वान काँच के मंदिर आपहिं भूस भरयो रे ।।[5]

जगत् को अन्धा, निस्सार कहा गया है और इसे 'माया की नदिया' इत्यादि विशेषणों से चिह्नित किया गया है।[6]

जुलाई, 1977 में—इस पन्थ सम्बन्धी प्रामाणिक जानकारी प्राप्त करने हेतु मैं अलवर-स्थित सार्वजनिक गौशाला में बेनामी-पन्थी साधु स्वामी हरिदास जी से मिला था। यह जो बेनामी पन्थ का—"बेनामी आत्मबोध' नामक ग्रंथ है, उसे इन हरिदास जी ने ही संवत् 2017 में प्रकाशित किया था। वे इस पन्थ के बड़े जाने-माने साधु हैं। बेनामी पन्थ का स्वरूप स्पष्ट करते हुए उन्होंने बताया कि बेनामी पन्थ में हिन्दू पौराणिक देवताओं तथा अवतारों का पूर्ण सम्मान किया जा रहा है।

---

1. बेनामी बोध; पृ० 58
2. वही, पृ० 140
3. वही, पृ० 117
4. वही, पृ० 63
5. वही, पृ० 126
6. वही, पृ० 86

प्रमाण स्वरूप उन्होंने वहीं मन्दिर में शिव-मूर्ति दिखाई जिसकी प्रातः एवं सायं दोनों समय आरती गाई जाती है। बेनामी पन्थ में हनुमान का भी विशेष सम्मान है। बेनामी पन्थ की जानकारी देते हुए स्वामी हरिदास जी ने कहा कि पौराणिक सनातन धर्म का आदर करते हुए निर्गुण की साधना करना ही हमारे पंथ का सच्चा परिचय है। इस पन्थ में गुरु मन्त्र को गुप्त रखते हैं, केवल अधिकारी को ही गुरु द्वारा यह मन्त्र दिया जाता है। अभिवादन में एक दूसरे को 'सत्य राम' कहा जाता है। कुछ साखियों का प्रभाव उन्होंने मन्त्रवत् बतलाया जिनको नीचे दिया जा रहा है—

पहलवान हनुमान हैं, हनै मान अपमान।
प्राण पवन के मेल से, हनै मान अपमान।।[1]

इस दोहे को ताबीज रूप में बांधने से तथा पाठ करने, कराने से भूत-प्रेत-पिशाच आदि की बाधा शान्त होती है।

कबीरदास जी का एक प्रसिद्ध दोहा है—

जो मरने से जग डरै, सो मेरे आनन्द।
कब मरि हूं कब देखिहूं, पूरण परमानंद।।[2]

बेनामी पंथियों का विश्वास है कि इस दोहे का मृत्यु समय पाठ करने से भक्त को यमदूतों से छुड़ाकर भगवान के देवदूत विमान में बैठाकर बैकुण्ठ में ले जाते हैं।

भारत भारो काम है, मन जीते पहिचान।
जब मन जीते आपना, पूरो भारत जान।।[3]

इस दोहे का ताबीज, बनाकर बांधने तथा पाठ करने कराने, जप कराने से शत्रुओं पर विजय तथा अभियोगादि की जीत होती है।

ब्रह्मसरूपी देखबो, समदृष्टि से जान।
बेनामी आसिक कहे, तत्वमंसी का ज्ञान।।

इस साखी का ताबीज़ बनाकर पहनने, पाठ करने-कराने तथा जप करने-कराने से ज्ञान की प्राप्ति होती है। उपर्युक्त दोहे तथा इनका महात्म्य 'बेनामी आत्मबोध' के प्रारम्भ में ही दिया गया है। इसके साथ ही ग्रंथ के पाठ का महत्व भी यहां दिया गया है, पाठ विधि भी मौजूद है।

---

1. बेनामी बोध, माहात्म्य
2. बेनामी आत्मबोध, माहात्म्य
3. वही,

बेनामी पन्थ के प्रमुख आश्रम

(1) भूरासिद्ध का बाड़ा, (2) रैणगिरि (3) झज्जर (4) पेहल (5) तितरका (6) मोतीझील (वृन्दावन शान्ति आश्रम), (7) अलवर (गोशाला) (5) मोइना की प्याऊ (9) लाल डिग्गी इत्यादि।

बेनामी पन्थ : उपलब्ध साहित्य

(1) श्री बेनामी कृत 'आत्मबोध' (बेनामी बोध) ; प्रकाशक—महात्मा हरिदास, सार्वजनिक गौशाला, अलवर (राजस्थान), मुद्रक—भारत प्रिंटिग प्रैस, अलवर; सम्वत् 2017 वि०, प्राप्ति स्थान—सार्वजनिक गौशाला, अलवर (राजस्थान), पृष्ठ संख्या 172, (व्यक्तिगत संग्रह)

(2) श्री गोपालदास कृत 'बाणी' (हस्तलिखित), प्राप्तिस्थान—महन्त ज्ञानदास, बेनामी गद्दी, देवालय, झज्जर, पृष्ठ संख्या 40, (व्यक्तिगत-संग्रह)

अध्याय 11

हरियाणा का परमानंदी पंथ

हरियाणा संत साहित्य परमानन्दी-पंथ का अपना विशिष्ट स्थान है। इस पंथ का मूल उत्स राधास्वामी पंथ है किन्तु कुछ विशिष्टताओं के कारण यह अलग ही पंथ बन गया है। अपने संस्थापक के नाम पर एक स्वतन्त्र पंथ के रूप में परमानन्दी पंथ को इस क्षेत्र की पूर्ण मान्यता प्राप्त है। इस पंथ के प्रवर्तक श्री परमानन्द जी हैं। इनका प्रमुख केन्द्र नकचूटी अथवा नकचौंटी ग्राम है जो आजकल तहसील दादरी जिला भिवानी (इससे पूर्व जिला महेन्द्रगढ़) में स्थित है।

श्री परमानन्द जी का जन्म ठसराना ग्राम, जिला बुलन्दशहर (यू० पी०) में कार्तिक बदी दसवीं, सम्वत् 1924 वि० वार बुद्धवार को अर्धरात्रि पश्चात् माता भागीरथी देवी के उदर से कायस्थ कुल में हुआ।[1] इनका बचपन का नाम श्याम सुन्दर था। इनके माता-पिता बड़े सादे स्वभाव एवं पवित्र मन के कर्मकाण्डी बतलाए जाते हैं। पिता जी व्यवसाय से पटवारी थे। कुछ खेती भी थी। पांच वर्ष की आयु होने पर परमानन्द जी को पढ़ने के लिए मकतब में भेजा गया। पढ़ने में ये कुशाग्र बुद्धि बतलाए जाते हैं। उन्होंने बारह वर्ष की आयु होते-होते उर्दू, फारसी हिन्दी तथा अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

सम्वत् 1936 में इनके माता-पिता, बड़ी भाभी तथा उनकी पुत्रियाँ एक-साथ ही महामारी के शिकार हो गए। इनकी तीन बहनें और दो भाई इनसे बड़े थे तथा तीन भाई छोटे थे। पारवारिक परेशानियों के कारण इन्हें सन् 1945 में अपनी शिक्षा स्थगित करनी पड़ी।

---

1. श्री परमानन्द, हंस चेतावनी, पृ० 3

कहते हैं कि आरम्भ में इन्होंने पटवारगिरी सीखी तथा बाद में सिरसा, फतेह-बाद तथा बुडलाढ़ा आदि स्थानों पर डाकिये का काम किया। इसी दौरान इनकी सत्संग की ओर प्रवृत्ति दिनों-दिन बढ़ती गई। कहते हैं कि इसी समय के दौरान इनकी मुलाकात किन्हीं पं० गौरी दत्त के साथ हुई जिन्होंने इन्हें गीता पाठ की सलाह दी। गीता पाठ से इन्हें शान्ति नहीं मिली। तत्पश्चात् इनकी भेंट गुलाब-दासी साधुओं से हुई। इन्होंने सीख दी कि पोथी-पाठ, तीर्थव्रत, तथा मूर्तिपूजा आदि को छोड़कर किसी जिन्दा गुरु की शरण लो। कहते हैं कि इन्होंने इनसे भी मन्त्र जाप आदि का उपदेश लिया। कुछ सिद्धि भी प्राप्त हो गई किन्तु अहंकार में वृद्धि होती गई।

सम्वत् 1953 वि० में इनकी बदली बीकानेर स्थित नौहर में हो गई। नौहर में इनका सम्पर्क राधास्वामी मतावलम्बी राय सालिग्राम के शिष्यों से हुआ जिनमें पंडित रामजीदास उल्लेखनीय हैं। कहा जाता है कि इन राधास्वामी सत्संगियों की रहनी का इन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। इन राधास्वामियों की देखादेखी वे पुत-लियों को ऊपर चढ़ाकर ध्यान करने लगे और पंडित रामजीदास एवं केदारनाथ से उपदेश देने का आग्रह किया। इन्होंने इनको हजूर राधास्वामी के पास जाने की सलाह दी। सलाह के अनुसार पीपलमंडी (आगरा) जाकर इन्होंने विधिपूर्वक राधास्वामी श्री राय सालिग्राम से सम्वत् 1954 में वि० में विजयदशमी के दिन उपदेश लिया।[1]

उपदेश लेने के बाद इन्होंने कुछ दिन बाद लोहारू, सिरसा आदि स्थानों पर डाकिये के रूप में सेवा की। इनके गुरु हजूर महाराज का 6 दिसम्बर, 1889 ई० में देहान्त हो गया। कुछ समय बाद नौकरी त्यागपत्र दे दिया तथा नकबोंटी ग्राम में एक कुटिया बनाकर स्थायी रूप से रहने लगे। कहा जाता है कि आपको 'परमानन्द' की ध्वनि भीतर से प्रकट हुई और आप स्वयं परमानन्द के नाम से अपना परिचय देने लगे तथा उपदेश भी 'परमानन्द' नाम का ही देने लगे।

कुछ दिनों बाद परमानन्द जी नकचौंटी से लुहारू के निकट लछमन की ढाणी चले गए। यहाँ कई वर्ष तक रहते रहे। अन्तिम समय में नकचौंटी ग्राम के सुखिया चौधरी अमर सिंह इनको वापिस नकचौंटी लिवा लाए। 24 जुलाई, सन् 1954 तदानुसार श्रावणी बदी नवमी सम्वत् 2011 वि० को 87 वर्ष की आयु में इनकी मृत्यु हुई।

परमानन्दजी के शिष्य श्री रामानन्द के कथनानुसार आपका स्वभाव सरल था, मृदुभाषी थे, बड़े परोपकारी एवं सेवा परायण थे। सभी से समानभाव से प्रेम करते

---

1. श्री परमानन्द, हंस चेतावनी, पृ० 9

थे। बड़े दयालु तथा उदारमना थे। आजीवन अविवाहित रहे। मानवीय सद्गुणों में इनकी दृढ़ आस्था थी।

शिष्य परम्परा एवं बाणी

यूँ तो आपके शिष्यों की संख्या हजारों में बतलाई जाती है किन्तु अमर सिंह, प्रीतानन्द, दयानन्द, सुधानन्द, मोहर सिंह तथा रामानन्द जी आपके उल्लेखनीय शिष्यों में से थे। आजकल श्री रामानन्द जी नकचौंटी आश्रम में विराजमान हैं तथा आपके भेष की वृद्धि में जुटे हुए हैं।

श्री परमानन्द जी के नाम से इनके शिष्यों में दो पुस्तकों का प्रकाशन करवाया है। पहली पुस्तक 'परमानन्द ज्ञान आनन्द उदयसागर' है। दूसरा प्रकाशन 'हंस-चेतावनी' अथवा 'परमानन्द विलास' है। पहली पुस्तक का प्रकाशन अप्रैल, 1954 में कराया गया है। इसमें परमानन्द जी के पद हैं जिनकी संख्या लगभग 167 है। इसके दो भाग हैं। पहले भाग में 96 के लगभग पद संकलित हैं। कई पदों पर कुछ रागों के शीर्षक भी दे रखे हैं, जैसे—राग प्रभाती, सोती, गजल, होली, रसिया, दादरा इत्यादि। दूसरे भाग का शीर्षक 'शान्ति आनन्द सागर' है जिसमें 71 पद अथवा शब्द संकलित हैं। इस शान्ति आनन्दसागर' में कई पदों के अन्त में रचयिता के नाम के स्थान पर 'शान्ति' शब्द का प्रयोग किया गया है। जो पद कर्त्ता का बोध करवाता प्रतीत होता है। मुझे तो यही आभास हुआ कि ये पद किसी शान्ति नामक शिष्य अथवा शिष्या के रचे हुए हैं किन्तु नकचौंटी आश्रम के वर्तमान अधिष्ठाता द्वारा इस बात की पुष्टि नहीं हुई। इस ग्रंथ के दूसरे भाग में भी कई पदों के शीर्षक दे रखे हैं। पदों में चेतावनी तथा विनय के भावों का ही आधिक्य है। कुछ पदों में 'आनन्द' नाम की महिमा का भाव है। पदों का स्तर सामान्य से भी नीचे है इनमें न तो भावों की प्रगाढ़ता है और न ही कोई कहीं अनुभूति की प्रामाणिकता के दर्शन होते हैं। सब हल्का-हल्का है। लगता है जैसे भरती के लिए पदों की रचना की गई है। एक पद द्रष्टव्य है—

शब्द

रे मन काहे उमर बितावै ।। टेक ।।
जाकी शरण में जल और थल के प्राणी शीस नवावे।
वाकी शरण ले ले तू वृथा क्यों भार कमावे ।। 1 ।।
वा स्वामी की माया अद्भुत संत ही आय लखावे।
शरणागत वा परम संत को जाते भेद मिल जावे ।। 2 ।।

---

1. श्री परमानन्द, हंस चेतावनी, पृ० 10

रूप रंग वाको त्रखना परखो अन्तरगत मन लावें।
वाके रूप की अद्‌भुत महिमा बिरला पार कोई पावे ।। 3 ।।
शान्ति करो आनन्द मिले, तब चरणन प्रीत लगावे।
बिना प्रेम और प्रीत प्यारे मार्ग लखा नहीं जावे ।। 4 ।।[1]

उपर्युक्त शब्द 'होली' शीर्षक के अन्तर्गत दिया गया है। इस शब्द (पद) में कैसी और कौन-सी होली है ? और संतों के पद जो किसी 'राग' के नाम से मिलते हैं, उनमें किसी-न-किसी परम्परा एवं वैशिष्ट्य का निर्वाह मिलता है। जब कि यहां 'ज्ञान आनन्द उदय सागर' के पदों को जो नाम दिया गया है, लगता नहीं कि उस राग का उनमें किसी रूप में निर्वाह किया गया है। भाव तथा भाषा के लिए पूर्वोक्त पद को बानगी के लिए लिया जा सकता है।

हंस चेतावनी अथवा परमानन्द विलास

हंस चेतावनी परमानन्द जी की दूसरी रचना है जिसका प्रकाशन उनकी मृत्यु के बाद सन् 1958 में हुआ। 'हंस चेतावनी' के भी दो भाग हैं—प्रथम भाग में तीन प्रवचन संकलित हैं जिनके विषय में इसके प्रकाश प्रीतानन्द ने उल्लेख किया है कि ये प्रवचन आनन्द स्वरूप उर्फ साहिब जी दयालबाग आगरा वालों के हैं जो 'सत्संग' से उद्धृत हैं। ये तीनों प्रवचन पोथी के 58 पृष्ठों से आए हैं। जिनके शीर्षक हैं—'सत्संग', 'क्या हम हिन्दू हैं' तथा 'हम हिन्दू और हिन्दुओं की सन्तान हैं।'

'हंस चेतावनी' के शेष पद्य भाग को भी दो खण्डों में विभाजित कर रखा है। प्रथम खण्ड में पद अथवा शब्द हैं जिनकी संख्या 40 पद के आसपास है। ये केवल कहने के ही शब्द हैं। एक-एक शब्द में 40-55 तक साखियाँ अथवा चौपाइयाँ हैं। जिनको शब्द अथवा पद की संज्ञा दी जा सकती है वे तो केवल दस-बारह ही हैं। शेष तो उपदेशात्मक साखी संग्रह हैं अथवा इनके मत का व्याख्यान करने वाले पद्य बद्ध कथन हैं। उदाहरण के लिए एक पद पृ० 60-62 पर द्रष्टव्य है जिसमें 50 चौपाइयाँ हैं। इसके दूसरे खण्ड में लगभग 300 साखियाँ एवं चौपाइयाँ हैं। इस खण्ड में साखी अथवा दोहा के रूप में इनके उपदेश ही हैं। बाणी के प्रकाशन में सूझ-बूझ का अभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। ऊपर शब्द शीर्षक दे दिया और उसके अन्तर्गत 50 साखियाँ दे दी हैं जिनमें विषय सम्बन्धी एकरूपता भी नहीं है। इसी प्रकार चौपाई शीर्षक के अन्तर्गत 28 चौपाइयाँ दी गई हैं किन्तु विषय सम्बन्धी कोई संकेत नहीं दिया है। दोहा शीर्षक के अन्तर्गत 120 दोहे दिए गए हैं बाणी के प्रकाशक ही नहीं रचयिता ने भी कहीं विषय की एकरूपता एवं व्यवस्था का प्रमाण

---

1. परमानन्द ज्ञान आनन्द उदय सागर, पृ० 57-5

नहीं दिया है। बाणी के ठीक से सम्पादन की आवश्यकता है। इस ग्रंथ के बीच में परमानन्द जी के शिष्य मोहरसिंह के तीन भजन आए हैं जिनका उल्लेख आगे किया जायेगा। अन्त में एक 'वार्तिक चेतावनी' दे रखी है जिसमें भविष्य को उज्ज्वल बतलाया गया है।

श्री सुधानन्द

श्री सुधानन्द का जन्म भादों शुक्ला अष्टमी सम्वत् 1939 वि० में हुआ। इनका जन्म स्थान पैंतावास कलाँ, तहसील दादरी, जिला भिवानी (पहले महेन्द्रगढ़) में स्थित है। आपकी माता का नाम कुन्दनी तथा पिता जीगराम (?) थे। सुधानन्द जी जाति के चमार थे। माता पिता व्यवसाय से कृषक थे। इनका घरेलू नाम सूधन था। कहा जाता है कि सुधानन्द जी व्यवसाय से राज थे। युवावस्था में कुछ हिकमत (दवाई-बूटी) भी करते थे। मृतात्माओं को वशवर्ती करने वाली सेवन विद्या में भी इनकी अच्छी गति बतलाई जाती है।[1] नकचौंटी ग्राम के मुखिया तथा श्री परमानन्द जी के शिष्य श्री अमर सिंह की प्रेरणा से वे परमानन्द जी के संपर्क में आए। परमानन्द जी ने इन को अपने भेष में दीक्षित कर लिया। तदुपरान्त इन्होंने सेवन विद्या से किनारा कर लिया। इनकी गति से आश्वस्त होकर इनके गुरु ने इन्हें 'उपदेश' देने का हुक्म दे दिया। इन्होंने बनियानी, अचीना, पांडवान, जींद तथा देहली आदि स्थानों पर सत्संग किए तथा अनेक शिष्य बनाए अचीना तथा वनियानी ग्राम में इन्होंने बड़े-बड़े भण्डारों का आयोजन भी किया। अन्त में वे नकचौंटी आश्रम में रहने लगे। बीमार होने पर इनके लड़के इन्हें अपने ग्राम पैंतावास लिवा ले गए तथा वहीं 26 फरवरी, 1961 ई० को आपका देहान्त हो गया। आपके शिष्यों में रतीराम, शेरसिंह, सिंहराम, चरणदास तथा धर्मचन्द इत्यादि प्रसिद्ध हैं।

सुधानन्द के नाम से केवल 3 पद ही पाए जाते हैं जो उनके 'जीवन-चरित्र' में प्रकाशित हैं। इनमें से दो पद इनके गुरु परमानन्द कृत 'हँस चेतावनी' के कवर पर भी छपे हैं। उनका एक पद यहाँ प्रस्तुत है—

बाणी

गगन की कोई साधुजन सैल करे ।। टेक ।।
सहंस कवल दल सुरत शब्द में जगमग ज्योति करे ।। 1 ।।
गगनमंडल अर्ध मुख कुइया, गुरुमुख साधुन भर भर
पिया निगुरा प्यासा मरे ।। 2 ।।

---

1. जीवनचरित्र, सुधानन्द जी, पृ० 2

सुन्न महल में बिजली चमके अमृत बूँद झरे ।। 3 ।।
महासुन्न में विषमी घाटी वहां सत्गुरु से काज सरे ।। 4 ।।
भंवर गुफा में बंसी बाजै, वहां एक चक्र फिरे ।। 5 ।।
सत्गुरु आगे साहिब स्वामी वहाँ अमृत के कुंड भरे ।। 6 ।।
परमानन्द अगम घर बासी, सुधानन्द चरणों तरे ।। 7 ।।[1]

पद की गवाही यदि सही मानें तो लगता है कि इन्होंने गगनमंडल की सैल की है। वैसे पंथ वालों की राय सुधानन्द जी के विषय में अच्छी नहीं है। जो हो परमानन्दी परम्परा में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

मोहर सिंह

परमानन्द के शिष्यों में श्री मोहर सिंह का स्थान भी महत्वपूर्ण बतलाते हैं। ये दिल्ली के निवासी थे तथा जाति से ब्राह्मण थे। ये बड़े सेवापरायण बतलाए जाते हैं। पढ़े लिखे भी थे। इनके नाम से श्री परमानन्द कृत 'हँस चेतावनी' में दो भजन प्रकाशित हैं। पहला भजन प्रश्न के रूप में है तथा दूसरे भजन में उसका उत्तर दिया गया है। दोनों पद उल्टबाँसी जैसे हैं।

श्री मगनानन्द जी

ये भी परमानन्द के प्रमुख एवं प्रसिद्ध शिष्यों में से हैं। जाति से हरिजन हैं। ग्राम निग्गाणा जिला भिवानी में इनका प्रमुख आश्रम है। इनकी भी बाणीं है जो अभी अप्रकाशित है। श्री मगनानन्द जी आज़ कल अपने पंथ की श्रीवृद्धि में जोर-शोर से संलग्न हैं। इनके शिष्यों की बड़ी मंडली है। इनकी सेवा में उपस्थित भी हुआ था किन्तु इन्होंने अपनी बाणी नहीं दिखाई। उनका कहना है कि बाणी अभी अधूरी है।

श्री प्रीतानन्द जी

प्रीतानन्द रमते राम हैं पंथ के प्रथम गुरु परमानन्द जी की बाणी का प्रकाशन इन्होंने ही करवाया है। इनके पते पर (दिल्ली-कडेखाँ बाग) गया भी किन्तु इनके दर्शन नहीं हो पाए। इनके भी कुछ पद इत्यादि बतलाए जाते हैं।

श्री रामानन्द उर्फ श्री करुणानन्द

श्री रामानन्द जी नकचौंटी आश्रम के वर्तमान महन्त हैं। ये नकचौंटी ग्राम के ही निवासी हैं। इनका जन्म अषाढ़ बदी षष्टी सम्वत् 1990 वि० का है। इनका

---

1. जीवचरित्र, सुधानन्दी, पृ० 8

कहना है कि 12 वर्ष की अवस्था में श्री परमानन्द जी से उपदेश ले लिया था तथा तभी से यहाँ आश्रम में गुरु की शरण में आ गए थे। इनकी निम्नोद्धृत तीन साखियाँ परमान्द कृत 'ज्ञान आनन्द उदय सागर' में प्रकाशित की गई हैं—

'सतगुरु वक्त दयाल के वचन सुनो धर ध्यान।
नाम आनन्द निज आप सर्व विश्व प्रधान॥
उमड़ धार आनन्द से उतरी दया उमगाय।
संत रूप अवतार धर आनन्द रूप दिखाय॥
रामानन्द की बेनती सुनो आनन्द विधाता।
अपना कर मेटो सकल काल माया की धाता॥[1]

इनकी बाणी भी अभी निर्माणाधीन है।

परमानन्दी पंथ में साधना का स्वरूप

जैसा प्रारम्भ में उल्लेख किया गया है परमानन्दी पंथ का मूल स्रोत राधास्वामी पंथ ही है। परमानन्द जी राधास्वामी जी के शिष्य थे, किन्तु ,आगे' चलकर इन्होंने अपनी अलग ही धारा बहा दी। राधास्वामी पन्थ की साधना-पद्धति सुरत-शब्द योग अथवा सुतर-शब्द-साधना है। परमानन्द जी की इस नई शाखा में, 'साधना' सम्बन्धी अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है। परमानन्दी साधना पद्धति का नामकरण आनन्द योग[2] किया गया मिलता है।

आनन्द योग—राधास्वामी पंथ में साधना का प्रतिष्ठित एवं स्वीकृत स्वरूप सुरत-शब्द योग ही है। राय शालिग्राम उर्फ राधास्वामी जी ने राधा (सुरति) स्वामी (शब्द) का मेला करवाने वाला साधन 'नाम' को बताया। इस नाम की उन द्वारा जो व्याख्या की गई, परमानन्द जी ने अपनी ओर से एक मोड़ और दे दिया। राधास्वामी मतावलम्बी उस नाम को जिसका स्वरूप ध्वन्यात्मक है 'सत्तनाम' की संज्ञा देते हैं जबकि परमानन्द जी उसे 'आनन्द' की संज्ञा से अभिहित करते-करवाते हैं। इस प्रकार राधास्वामी जी वाली 'सत्तनाम' की सीढ़ी इनके यहाँ 'आनन्द' की सीढ़ी बन गया। परमानन्द जी ने नाम या सत्तनाम का एक बार भी उल्लेख न करके 'आनन्द' का ही शतशः उल्लेख किया है। इनके यहाँ 'आनन्द' नाम सत्तनाम का पर्याय बन गया है—

'सतगुरु वक्त दयाल के, वचन सुन धर ध्यान।
सत्तनाम आनन्द है, सर्वो सर्व प्रधान॥[3]

---

1. ज्ञान आनन्द उदय सागर, पृ० 54
2. 'आनन्द योग द्वारा बस मुक्ति आ रही।'—वही, पृ० 87, पद 63
3. परमानन्द, हंस चेतावनी, पृ० 59

राधास्वामियों में जहाँ संत सत्तपुरुष अथवा सत्तनाम का विग्रह स्वरूप होते हैं वहाँ परमानन्द ने संतों को आनन्द धार से उतरे आनन्द रूप ही कहा है—

उमंग धार आनन्द से, उतरी दया उमगाय।
संत रूप औतार धर, आनन्द रूप दिखाय॥[1]

इससे यही प्रतीत होता है कि परमानन्द जी ने 'सत्तनाम' को 'आनन्द' नाम दे दिया है और अब तक चली आ रही 'सत्यनाम' अथवा सत्तनाम स्मरण-आश्रित साधना को 'आनन्द योग' अथवा 'आनन्द पद्धति' से सम्बोधित करके थोड़ी नई उद्‌भावना की है। यही आनन्द योग ही इनकी साधना पद्धति है।

श्रेष्ठता का दावा

परमानन्द पंथ के अनुयायियों का दावा है कि यह आनन्द योग केवल अब तक की विदित पद्धति (सुरत-शब्द) का समशील ही नहीं वरन् श्रेष्ठ भी है। अब तक की पद्धति में साधक की गति 'मीन' गति रही अर्थात् बड़ी धीमी गति से साधक अपनी अगम बाट को तै करते रहे हैं। किन्तु इस 'आनन्द' गति वालों का कहना है कि—'सतगुरु कबीर' साहब आदि से लेकर हजूर साहब के समय तक मीन मार्ग चल रहा था। अब आपके द्वारा 'कपि' मार्ग और 'विहंग' मार्ग शुरू हो गया :'[2] यह तो शिष्यों का कहना है। स्वयं परमानन्द भी अपनी हंस चेतावनी में इसकी घोषणा करते प्रतीत होते हैं—

'मीन मार्ग यहाँ तक चला, हुए संत सब चुप्प।
साहब कबीर हजूर भी सैन-बैन कर गुप्प॥
विहंग मार्ग की सैन कर गुप्त रूप गए गाय।
मौज अनुसार समां भविष्य का सैन में गए बताय॥
हजूर पिता स्व वाणी में कर हंस मण्डल व्यान।
कहा यहाँ सब चुप हुएमैं हूँ चुप्प कराने॥[3]

अर्थात् अब तक के सभी संत (कबीर से हजूर साहब तक) मीन का ही उपदेश देते रहे हैं और इन सभी की पहुँच हंस मण्डल तक है आगे के स्थानों का परिचय कोई भी नहीं दे पाया। अब परमानन्द के आगमन पर संत मार्ग की गति ही बदल गई—

समा गया हजूर का हजूर पिता गए धाम।
मार्ग विहंग अब आ गया करो सबही प्रणाम॥[4]

---

1. परमानन्द, हंस चेतावनी, पृ० 59
2. वही, पृ० 10
3. वही, पृ० 108
4. वही, पृ० 109

परमानन्द तथा उनके शिष्य पता नहीं किस बूते पर यह घोषणा कर रहे हैं कि 'विहंगम मार्ग' अब परमानन्द से ही शुरू हुआ है जबकि संतों की साधना ही विहंगम चाल। हरदेदास कबीर पंथी जो इसके समसामयिक रहे हैं, उनका कहना है कि—

'चाल विहंगम चालकर, जब पहुँचे निज ठाम'।।'[1]

पता नहीं ऐसी कौन सी क्रान्तिकारी इनकी उद्भावना है कि सारे ही संत इनसे छोटे पड़ गए। ये मीन, कपि तथा विहंगम—सभी सुरति की अपने आन्तरिक मार्ग पर अग्रसर होने के समय, स्थान तथा स्थिति के अनुरूप उसकी (सुरति) गति के द्योतक शब्द हैं। कहीं मीन की तरह सामान्य धारा के विरुद्ध उलटा चलना पड़ता है। कहीं कपि (बन्दर) के समान एक स्थान से दूसरे स्थान (पड़ाव) पर कूदना पड़ता है और आगे के लोकों में विहग (विहंगम) की तरह लाखों योजन यात्रा उड़ान भरकर करनी होती है। इस प्रकार की बाणी प्रायः हर संत की बाणी में मिल जाएगी। मुझे तो परमानन्द तथा परमानन्दिनी की इस प्रकार की घोषणा कोरी अज्ञानजन्य लगती है। शेष, साधकों के समझने की चीज है।

आनन्द का स्वरूप—यह 'आनन्द' योग अथवा आनन्द की छौंक अब तक के संतों की रहनी एवं साधना-पद्धति में थोड़ा नया शब्द है। परमानन्द पंथ के संस्थापक को साक्षी से इसके स्वरूप को निम्नवत् समझा जा सकता है—

परमानन्द जी मानते हैं कि सत्तनाम आनन्द है, यह सभी में प्रधान है, संत इत्यादि आनन्द की उमंग का ही स्वरूप होते हैं।[2] आनन्द नाम निज नाम है।[3] जब आनन्द की ध्वनि अन्तर में प्रकट होती है तो तिल का द्वार टूट जाता है।[4] आनन्द की ध्वनि गगन में गरज रही है जिसे सुनकर सुरत प्रतिपल प्रसन्न हो रही है।[5] उस शहंशाह स्वामी का धाम आनन्द धाम है।[6] आनन्द नाम की धार से सकल पाखण्ड नष्ट हो जाते हैं।[7] यह आनन्द नाम कल्याणकारी है, यही वास्तविक स्वामी का नाम है।[8] हे गुरु महाराज ! आनन्द नाम का दान कर जीवों की रक्षा करो।[9] उपर्युक्त रूप में ही परमानन्द ने अपनी वाणी में 'आनन्द' का उल्लेख

---

1. हरदेदास, हृदय प्रकाश, पृ० 35; 146
2. हंस चेतावनी, पृ० 59
3. आनन्द नाम निज नाम का, निज भेद बतावें। —हंस चेतावनी, पृ० 68
4. आनन्द ध्वन अन्तर में पर घटे तोड़ जो तिल का द्वाररी। —वही, पृ० 69
5. वही, पृ० 70
6. वही, पृ० 73
7. वही, पृ० 90
8. वही, पृ० 96
9. वही, पृ० 97

किया है।

निष्कर्ष यही निकलता है कि इनका 'आनन्द' राधास्वामी संतों के 'नाम' अथवा 'सत्तनाम' से भिन्न नहीं है जिसका स्मरण उनकी साधना का एक आवश्यक अंग है। संतों का सत्यधाम या सत्यलोक इनका आनन्दधाम हो गया है। इनके यहां आनन्द नाम का स्मरण कराया जाता है। इसके साथ ही अनहद ध्वनि का नाम भी इनके यहाँ आनन्द ही है जिसके सहारे सुरति तिल को तोड़कर अपने स्वामी से मिलती है। आनन्द नाम का जाप एवं आनन्द ध्वनि का श्रवण परमानन्दी भेष में आवश्यक है। वह अनहद ध्वनि 'आनन्द' ही की सुनाई पड़ती है अथवा कोई और केवल साधक ही इसकी समीक्षा कर सकते हैं।

प्रीतानन्द एवं परेकानन्द

परमानन्द जी ने ही 'आनंद' नाम की नवीन उद्भावना की हो ऐसा नहीं है। इनके कुछ शिष्यों में भी इस दिशा में नवीन उद्भावनाओं का प्रकाशन किया है। सुना है कि प्रीतानंद साधु, जिसने परमानंद जी की बाणी (हंस चेतावनी) का प्रकाशन करवाया है, के अनुसार शब्द ध्वनि, 'प्रीतानंद, प्रीतानंद' सुनाई पड़ती है। एक विश्वस्त सत्संगी ने बताया है कि ये प्रीतानंद अपने शिष्यों से 'प्रीतानंद', 'प्रीतानंद' का जाप करवाते हैं। इनके अनुसार 'प्रीतानंद' ही निज नाम है जिसका स्मरण आवश्यक है। इन प्रीतानंद के अतिरिक्त नकचौंटी आश्रम के वर्तमान गुरु अथवा महंत श्री रामानंद उर्फ करुणानंद जी—'आनंद' तथा प्रीतानंद से अलग 'परेकानंद' का उपदेश देते हैं। नकचौंटी आश्रम के मुख्य कक्ष में ही दीवार पर एक काष्ट-पट्टिका पर ये शब्द लिखे हुए मिलते हैं—'परम स्नेही दयाल श्री करुणा-नन्द जी के अनुसार आन्तरिक ध्वनि, निरंतर शब्द पुकार, प्रचलित धारा, 'परेका नन्द' है।' इन करुणानन्द जी से बातचीत करने पर इन्होंने फरमाया कि 'गुरु महाराज' को 'आनंद' शब्द की पुकार सुनाई दी थी हमें वही पुकार 'परेकानंद', 'परेकानंद' जैसी सुनाई देती है। पूर्ण सच्चाई तो कोई साधक ही प्रकट कर सकता है किन्तु मुझे सामान्यतया यह विचित्र अराजकता ही प्रतीत होती है। समस्त निर्गुण साहित्य में इस प्रकार की 'शब्द ध्वनि' के विषय में कोई गवाही नहीं मिलती। 'शब्द' का अस्तित्व सभी में है और उसमें एकरूपता भी है। अब यहाँ आकर हर व्यक्ति के साथ उसकी ध्वनि बदलने लगी। मुझे यह सब प्रपंच ही लगता है।

राधास्वामी सत्संग से अलगाव

परमानंद ने राय शालिग्राम से उपदेश लिया, इस तथ्य का उल्लेख सप्रमाण पहले किया जा चुका है। फिर क्या कारण है कि परमानन्द ने अपनी बाणी में राधास्वामी का गुरु रूप में एक बार भी उल्लेख नहीं किया? कुछ रहस्य जरूर है।

इसका स्पष्टीकरण करते हुए परमानन्द जी के शिष्य प्रीतानन्द ने इनके संक्षिप्त जीवन-चरित्र में कहा है कि.'एक दिन आप ध्यान में बैठे थे, जब हजूर महाराज एक सुन्दरबालक के रूप में सोने का ताज पहने कमरे के रोशनदान में से नीचे उतरे और अन्तरागत प्रेरणा हुई कि, जो हजूर साहब थे, सोई ये हैं। इनमें और उनमें कुछ भेद नहीं है।'''और इसके बाद अपने वक्त का सतगुरु शहनशाह पिता को माना'''।'[1] ध्यान में जो दिखाई दिये उन्हीं को शहनशाह पिता (गुरु) माना और जो वास्तविक विग्रहवान उपदेश देने वाले थे उनको गुरु रूप में मानने में क्या हर्ज था ? जो हो अपनी बाणी में उन्होंने गुरु के स्थान पर शहनशाह पिता का ही उल्लेख किया है।

कहा जाता है कि बिना हुक्म 'नाम' देने की परमानन्द जी की आगरे वालों द्वारा चोरी पकड़ी गई तो अपने को बिल्कुल ही उनसे अलग सिद्ध करने के लिए इन्होंने 'शहनशाह पिता' तथा 'आनन्द' नाम से शिष्यों को दीक्षित करना शुरू कर दिया। यह शहनशाह पिता का नाम लेना' आनन्द', 'प्रीतानन्द' तथा 'परेकानन्द' इत्यादि का झमेला केवल आगरे वालों की मार से बचने का ही उपक्रम मात्र है। सच्चाई क्या है इसे परमात्मा जानें ! वैसे वर्तमान महंत रामानन्द जी ने इन बातों पर प्रकाश डालना नहीं चाहा। उन्होंने यह कहकर कि 'सब कुछ बाणी में मिल जाएगा' बात समाप्त कर दी।

परमानन्दी भेष की रहनी

परमानन्दी पन्थ में भेदभाव के लिए कोई स्थान नहीं है। इनके मत से—

'सभी तुम्हारे भ्रात हैं सभी तुम्हारे मीत।
सभी अंश परम पुरुष के रखो न भेद मन चीत॥'[2]

अर्थात् सभी एक परम पुरुष की संतान हैं। अपने अनुभव ज्ञान का ज्यादा से ज्यादा प्रचार एवं प्रसार करना आवश्यक है। अज्ञानी तथा अनजान की पीर का हरण शहनशाह पिता का हुक्म है—

जोन इलाका खत्ता मिलै वहीं पहुँच जाओ वीर।
राह रीत सत्त भेद दे हरो अजानों की पीर॥[3]

हृदय में नम्रता तथा शहनशाह पिता की मौज का सहारा तथा उन पर पूर्ण निर्भरता एवं आत्म समर्पण का भाव रखते हुए अपने को केवल निमित्त मात्र ही समझना इनकी रहनी की विशेषता है। 'हंस चेतावनी' में कहा गया है—

---

1. हंस चेतावनी, पृ० 9-10
2. वही, पृ० 117
3. वही, पृ० 117

घट घट नमुना तुम बनो अन्तर मौज मेहर हाथ।
करें शहनशाह जो बने वही सबन निज तात॥
चरखे मशीन सम हो रहो ज्यों फेर फिरो मीत।'[1]

संसार में अपना व्यवहार जिह्वा के समान रखो जो सारा रस लेकर भी उनसे अप्रभावित रहती है।[2] परमानन्द जी ने अपने भेष वालों के लिए सत्ता समर्थन का तथा राज्य के कायदे कानून मानने का भी निर्देश किया है, क्योंकि इसी में सुख है।[3] इनकी वेशभूषा में कोई वैशिष्ट्य नहीं है। इनके यहाँ 'आनन्द' कहकर एक दूसरे का अभिवादन किया जाता है।

पंथ का प्रभाव-क्षेत्र तथा संभावनाएँ

परमानन्दी पंथ का प्रभावक्षेत्र अधिक नहीं है। नकचौंटी ही इनका प्रमुख ठिकाना है। इसके आसपास के दो एक ग्रामों के कुछ थोड़े से लोग इनके सत्संगी हैं जिनमें नकचौंटी तथा पैंतावास उल्लेखनीय हैं। दादरी के पास अचीना ग्राम में भी इनके सत्संगी हैं। पांडवान तथा बनियानी में भी इनका प्रभाव है। निगाणे में आजकल भगनानन्द जी का सत्संग खूब चल रहा है। इसके अतिरिक्त जींद तथा दिल्ली में भी इसके कुछ सत्संगी बतलाए जाते हैं। इस पंथ की सम्भावना भविष्य में कुछ अधिक लोकप्रिय होने की नहीं लगती। इनके ठिकानों पर जाने से तथा इनके साधकों से मिलने पर ऐसा कुछ लगा नहीं कि इनका प्रभाव क्षेत्र आगे कुछ बढ़ पाएगा।

इनका साहित्य देखने से कोई और विशेषता ऐसी नहीं लगी जिसका उल्लेख आवश्यक हो। ब्रह्म, जीव, जगत, माया, आदि से सम्बन्धित जो छिटपुट उल्लेख इनकी बाणी यत्र-तत्र आए हैं, उनमें कोई नवीनता नहीं है।

परमानन्दी पन्थ : उपलब्ध साहित्य

(1) श्री परमानन्द कृत 'हंस चेतावनी' अथवा 'परमान्द विलास'; प्रकाशक —साधु प्रीतानन्द, बाग कड़े खां, देहली, मुद्रक : सम्राट प्रेस, पहाड़ी धीरज, देहली, सन् 1958, प्राप्ति स्थान—चन्दूलाल गुप्ता, 7/21; बी-रोहतक रोड़, देहली, तथा परमानन्द आश्रम, नकचौंटी (दादरी), पृ० सं० 126 (व्यक्तिगत संगह)

---

1. हंस चेतावनी, पृ० 116
2. वही, पृ० 122
3. वही, पृ० 123

(2) श्री परमानन्द कृत 'परमानन्द ज्ञान आनन्द उदय सागर'; प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान—बाबा गंगा प्रसाद जी, 16/9066, गणेश लाईन, क्लॉथ मिल, दिल्ली, मुद्रक—वही, सन् 1954; पृ० सं० 92 (व्यक्तिगत संग्रह)

(3) 'जीवनचरित्र—स्वामी सुधानन्द जी महाराज' प्रकाशक तथा प्राप्ति-स्थान—धर्मचन्द किशनचन्द लोहिया, रेलवे रोड़, रोहतक, मुद्रक—मस्ताना आर्ट प्रेस, रोहतक, पृ० सं० 8 (व्यक्तिगत संग्रह)

अध्याय 12

हरियाणा के सिक्ख-धर्म के सम्प्रदाय

सम्प्रदायों का निर्माण

वैसे तो आदिगुरु नानक देव जी के समय से सिक्ख धर्म में अलगाव आरम्भ हो गया था जब उनके पुत्र श्रीचन्द ने अपना अलग ही 'उदासी सम्प्रदाय' बना लिया था। इसी प्रकार अपने पिता चौथे गुरु रामदास की गद्दी न प्राप्त कर सकने पर प्रिथीचन्द ने भी अपना एक 'मीना पन्थ' बना लिया था। गुरु अमरदास के शिष्य किसी 'हंदल' नामक जाट ने 'हंदली मत' अलग ही बना लिया। इसी प्रकार गुरु हरराय के पुत्र रामराय ने 'रामैय्या पन्थ' का प्रवर्तन किया था। अब तक का अलगाव अथवा पन्थ-निर्माण इतना उग्र नहीं था जितना कि गुरु गोबिन्द सिंह जी की मृत्यु के पश्चात वीर बन्दा बहादुर के समय 'सत्तखालसा' तथा 'बंदई खालसा' (जो 'खालसा' के विभाजन से बने) इत्यादि पन्थों में देखा जाता है। इस प्रकार सिक्ख धर्म विभिन्न पन्थों में बंटकर छिन्न-भिन्न होने लगा। सम्वत् 1947 वि० के लगभग उसके कुछ अनुयायियों के हृदय में सुधार की भावना जागृत हुई। इस प्रकार नई-नई संस्थाएँ स्थापित की गईं जिससे कुछ सुधारक सम्प्रदायों की सृष्टि हो गई है।[1] अब सिक्ख धर्म की स्थिति भी हिन्दू धर्म के समान ही हो गई है। आजकल 'सिक्ख' शब्द के साथ जब तक कोई अन्य विशेषण नहीं लगाया जाता उसकी पहचान नहीं हो सकती। अतः अब यदि सिक्ख धर्म का परिचय देना हो तो उसके सारे सम्प्रदायों या पन्थों का परिचय देना होगा। सिक्ख धर्म तथा इसके सम्प्रदायों के सम्बन्ध में पर्याप्त साहित्य का निर्माण हो चुका है। अनेक देशी-

---

1. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० 423-24 (आचार्य परशुराम चतुर्वेदी)

विदेशी विद्वानों ने इस धर्म के प्रत्येक पक्ष पर बड़े विस्तार से प्रकाश डाला है। अतः यहाँ इस धर्म अथवा इसके विभिन्न सम्प्रदायों का परिचय-पिष्ट-पेक्षण आवश्यक नहीं है। केवल कोई नया तथ्य अथवा हरियाणा में इनका उपलब्ध साहित्य ही मेरा अभीष्ट है।

1. उदासी सम्प्रदाय

इसके प्रवर्तक श्रीचन्द की साँसारिकता के प्रति उदासीनता ही इस सम्प्रदाय के नामकरण का कारण बतलाई जाती है। जान मालकम के अनुसार श्रीचन्द के पुत्र धर्मचन्द ने उदासी सम्प्रदाय को स्थापित किया।[1] बहुत से उदासी गुरु-नानक को ही अपना आदि आचार्य मानते हैं। गुरु ग्रंथ साहिब की पूजा का विधान भी इनके यहाँ है। इनकी रहनी प्रायः नाथ पन्थी अवधूतों जैसी ही है। इसमें नाथों की भाँति भस्म तथा विभूति के प्रति बड़ी श्रद्धा है तथा नाथों के ही समान 'धूणी' जगाते हैं। इनका वेष प्रायः गैरिक होता है। ये विवाहित तथा अविवाहित दोनों रूपों में ही पाए जाते हैं। इन्होंने सगुणवादी हिन्दुओं की बहुत सी बातों को अपना लिया है। अब इनके पन्थ का स्वरूप प्रायः निर्गुण तथा सगुण का समन्वित रूप है जबकि प्रारम्भ में ये निर्गुण मताश्रित ही थे। इनमें सन्तों की सहज साधना के साथ नाथों का हठयोग साथ-साथ लक्षित होता है। उदासियों की चार प्रमुख शाखाएँ बतलाई जाती हैं—फूल साहिब वाली बहादुरपुर शाखा, बाबा हसन की चरनकौल शाखा; अलमस्त साहिब की पुरी शाखा तथा गोबिन्द साहिब की शिकारपुर सिंध शाखा। इनका मुख्य गुरुद्वारा देहरा में है तथा पूर्वी 'भारत में इनकी 370 गद्दियाँ बतलाई जाती हैं। पंजाब की सीमा पर हरियाणा स्थित 'रतिया' नामक स्थान पर इनकी एक प्रसिद्ध गद्दी है जिसे ये 'सर्जनहारा' की गद्दी कहते हैं। इस 'सर्जनहारा' गद्दी के वर्तमान महन्त चेतनदास की कुछ अमुद्रित 'वाणी' मुझे देखने को मिली है।

महन्त चेतनदास

इनका जन्म जिला मेरठ फफूँडा कदीम नामक ग्राम में श्री हरवंसलाल के घर फाल्गुन शुक्ला दूज सम्वत 1987 वि० में हुआ था। ये जाति के राजपूत हैं। इनकी माता का नाम ज्वाली देवी है। ये 23 वर्ष की आयु में साधु हो गए थे। और 20 वर्ष के इस गद्दी. पर विद्यमान हैं। इनके गुरु त्रिवेणीदास थे। इन्होंने अपने डेरे में एक धर्मार्थ औषधालय खोल रखा है। गऊशाला निर्माणाधीन है। इस डेरे के नाम 180 एकड़ भूमि है। चेतनदास ने अपने पूर्ववर्ती गुरुओं के नाम इस प्रकार बताए हैं—इनके गुरु त्रिवेणीदास तथा इनसे पहले क्रमशः नत्थूदास, रामदास, धर्मदास, ब्रह्मज्ञान जी, प्रेमदास, पूर्णदास, मेहरदास, हीरादास, नारायणदास इत्यादि।

संवत् 1884 वि० में इनकी प्रसिद्धि सुनकर कैथल नरेश भाई उदयसिंह ने इनको अपने पास बुलवा लिया। शेष सारा जीवन भाई सन्तोषसिंह ने यहीं कैथल में ही सुखपूर्वक व्यतीत किया। सम्वत् 1900 वि० में कार्तिक बदी एकादशी के दिन इनका देहान्त हो गया। इनके वंशज अभी भी कैथल में रहते बताए जाते हैं। भाई संतोषसिंह ज्ञानी सम्प्रदाय के अन्तर्गत आते हैं, जिसका आरम्भ स्वयं दशम गुरु द्वारा किया गया था। इनको बहुश्रुत, बहुज्ञ एवं बहुदर्शी विद्वान बताया जाता है। विद्वता के साथ ही वे अध्यवसायी, परिश्रमी, उदार, विनम्र, निर्भीक, न्यायप्रिय, समदर्शी, त्यागशील एवं परोपकारी व्यक्ति थे। वे युग द्रष्टा एवं युग स्रष्टा कलाकार थे। अपनी अद्वितीय मेधा, प्रखर काव्यप्रतिभा एवं अद्भुत कल्पना शक्ति के बल पर इन्होंने कई काव्य-कृतियों का प्रणयन किया।

रचनाएँ

कालक्रमानुसार इनकी रचनाएँ इस प्रकार बतलाई जाती हैं—

(1) नामकोश, भाषानुवाद (संवत् 1880),
(2) गुरु नानक प्रकाश (संवत् 1880),
(3) जपुजी साहब पर 'गरब गंजनी' टीका (सम्वत् 1886)
(4) 'गुरु प्रताप सूर्य' (संवत् 1890)
(5) आत्म पुराण।
(6) वाल्मीकी रामायण (संस्कृत अनुवाद) सम्वत् 1891।

इन सभी रचनाओं की भाषा ब्रज तथा लिपि गुरुमुखी है।

नामकोश

'नामकोश' संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रंथ 'अमरकोश' का भाषानुवाद है यह इनकी पहली रचना है। संस्कृत भाषा और उसके विस्तृत शब्द भण्डार का ज्ञान प्राप्त करवाना ही इस ग्रंथ का लक्ष्य है।

गुरुनानक प्रकाश

गुरु नानक के जीवन पर आश्रित 9700 छन्दों का एक उत्कृष्ट महाकाव्य है इसकी कथा का आधार 'महिमा प्रकाश' एवं गुरु नानक सम्बन्धी जीवन साखियाँ हैं। इसके पूर्वार्ध में 73 तथा उत्तरार्ध में 57 अध्याय हैं। गुरुनानक को एक अवतारी पुरुष के रूप में चित्रित किया है तथा पौराणिक भावना ग्रंथ के आरम्भ से अन्त तक व्याप्त है। प्रमुख छन्द दोहा-चौपाई है। इसमें ऐसे सांस्कृतिक भावात्मक एवं सामाजिक तत्वों का प्रतिपादन किया गया है जो मानव मात्र के

लिए उपयोगी एवं आनन्ददायक हैं। सारी रचना अद्भुत जीवनदायिनी शक्ति एवं लोकमंगल की भावना से सन्निहित है।[1]

गरब गंजनी (जपुजी-टीका)

कैथल नरेश भाई उदयसिंह के अनुरोध पर भाई संतोष सिंह ने गुरुनानक कृत 'जपुजी' की टीका की जिसे उन्होंने 'गरबगंजनी' नाम दिया। जैसाकि शीर्षक से प्रकट है : इस रचना के पठन-पाठन से मनुष्य का अहंकार नष्ट हो जाता है। इसकी कई काव्यात्मक एवं साहित्यिक विशेषताओं को देखते हुए डा० गोयल इसे हिन्दी की पहली आलोचनात्मक पुस्तक मानते हैं।

वाल्मीकि रामायण (भाषानुवाद)

संस्कृत से ब्रजभाषा में वाल्मीकि रामायण का बहुत ही सरस भाषानुवाद है। कहते हैं कि कैथल नरेश उदयसिंह ने इस रचना से प्रसन्न होकर भाई संतोषसिंह को 'मोरथली' ग्राम भेंट में दिया था। इसके पश्चात् इनकी 'आत्मपुराण' (भाषानुवाद) रचना भी बड़ी उत्कृष्ट बतलाई जाती है। सभी रचनाओं का अपना वैशिष्ट्य है किन्तु कवि की अमर कृति 'गुरु प्रताप सूरज' ही है।

गुरु प्रताप सूरज

इस बृहदाकार प्रबन्ध काव्य में 51829 छन्द हैं। यह कथा प्रधान ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्य है। इसमें कुल मिलाकर 20 अध्याय, 1151 अंशु तथा 51289 छन्द हैं। संपूर्ण कथानक सूर्य की गति के आधार पर—12 राशियों, 6 ऋतुओं एवं दो आयनों में विभक्त है। ग्रंथ के दो भाग हैं ; पहले भाग में आदि गुरु नानक का जीवन चरित्र है तथा दूसरे भाग में शेष नौ गुरुओं तथा बन्दा वैरागी का चरित वर्णित है। कथ्य एवं शिल्प दोनों ही दृष्टियों से यह एक उत्कृष्ट कृति है। इसमें सांस्कृतिक चेतना राष्ट्रीय जागरण, सामाजिक उन्नयन की भावना आरम्भ से अंत तक व्याप्त है। काव्यत्व की दृष्टि से यह एक उत्तम कलाकृति है। और उस युग के साहित्य में ही नहीं भारत के समस्त साहित्य में यह गौरवपूर्ण स्थान की अधिकारिणी है।[2] गुरुमुखी लिपि में होने के कारण इस उत्कृष्ट काव्य-निधि के आस्वादन से बहुत सारे हिन्दी भाषी शिक्षित भी लाभान्वित नहीं हो सके हैं। इस कृति का नागरी लिपि में प्रकाशन एक साहित्यिक एवं सांस्कृतिक आवश्यकता है।

---

1. डा० जयभगवान गोयल, सप्तसिंधु हरियाणा साहित्य विशेषांक, 1968, पृ० 104
2. वही, पृ० 115

3. नामधारी अथवा कूका सम्प्रदाय

नामधारी सम्प्रदाय का प्रवर्तन बाबा रामसिंह ने किया था। इनका जन्म सम्वत् 1872 बसंत पंचमी के दिन बाबा जस्सासिंह के घर लुधियाना से 16 मील दूर भैणीसाहिब में हुआ। इनके बाबा बढ़ई का काम करते थे। बीस वर्ष की आयु में महाराजा रणजीतसिंह की सेना में रामसिंह भर्ती हो गए। वहीं पेशावर के क्षेत्र में 'हजरो' के स्थान पर अपने 25-30 सैनिक साथियों के साथ इन्होंने गुरु बालक सिंह के दर्शन किए। बाबा बालकसिंह ने रामसिंह को उपदेश दिया तथा सिक्ख धर्म का प्रचार एवं प्रसार करने का आदेश भी दिया। सेना की नौकरी छोड़कर रामसिंह जी घर आ गए और कृषि-कार्य करने लगे तथा अपने आसपास लोगों को अपने कर्त्तव्य के प्रति सचेत करने लगे। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसार ने गुरु रामसिंह के आन्दोलन के विषय में 1935 ई० मार्च में प्रकाशित 'सतयुग' नाम की पत्रिका में इस प्रकार उल्लेख किया है—'गुरु रामसिंह का विश्वास था कि राजनैतिक स्वतन्त्रता धर्म का ही अंग है। नामधारी संगठन काफी मजबूत हो गया था। हमारी समझ में महात्मागांधी द्वारा 'बहिष्कार' तथा 'असहयोग' आंदोलन जो चलाए गए हैं वे 50 वर्ष पूर्व गुरु रामसिंह द्वारा नाम-धारी समाज के लिए अनिवार्य रूप से लागू किए गए आदेश थे।' राजेन्द्र प्रसाद जी ने गुरु रामसिंह के असहयोग आन्दोलन का स्वरूप स्पष्ट करते हुए आगे लिखा है कि—गुरु रामसिंह ने अँग्रेजी के साथ पूरी कठोरता से बहिष्कार की नीति का पालन किया और इसके लिए मुख्यतः निम्नलिखित बहिष्कारों का आचरण किया-कराया—'सरकारी नौकरी का बहिष्कार, अंग्रेजों द्वारा खोली गई शैक्षणिक संस्थाओं का बहिष्कार अंग्रेजों के न्यायालयों का बहिष्कार, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार तथा आत्मा की आवाज के विरुद्ध हर सरकारी नियम तथा कानून का बहिष्कार।'[1] इससे गुरु रामसिंह जी के नामधारी सम्प्रदाय का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। ये पक्के देश भक्त थे। इनकी गतिविधियों से सशंकित होकर अँग्रेजों ने गुरु रामसिंह को जनवरी, 1872 ई० में कैद कर लिया तथा रंगून भेज दिया। वहाँ 1885 ई० में उनकी मृत्यु हो गई बतलाई जाती है। किंतु नामधारियों का विश्वास है कि गुरु जी सन् 1885 के बाद भी कई वर्ष तक जीवित रहे।

निर्देशक नियम

सम्वत् 1974 बैशाख प्रतिपदा के दिन बाबा लाभसिंह, बाबा नैनासिंह, काहन सिंह, सुन्दर सिंह 'नाम-दान' के समय उनको दिए गए उपदेश बाबा राम-सिंह अथवा नामधारी सम्प्रदाय के सिद्धांतों को समझने में सहायक हो सकते हैं, जो इस प्रकार हैं—

---

1. सरदार नाहर सिंह, नामधारी, पृ० 3-4

(1) जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य—जीवित गुरु की सहायता से भगवान की उपासना करना है। (2) गुरु का महत्व मानवीय इतिहास में अक्षुण्ण रहेगा। (3) वर्तमान युग में तलवार (शक्ति) से नहीं वरन् पवित्रता से शासन होगा। (4) किसी भी राष्ट्र की शक्ति उसके आपसी प्रेम और एकता में है। (5) 'हवन' तथा 'यज्ञ' राष्ट्र को समृद्ध बनाते हैं। (6) उच्च चरित्र, सादा भोजन तथा विचारों की पवित्रता समाज के नैतिक स्तर को ऊंचा उठाते हैं। (7) मन, वचन, तथा कर्म से किसी भी प्राणी को हानि पहुंचाना पाप है। (8) निर्बल की सहायता ही परमात्मा की सच्ची सेवा है। (9) आतिथ्य सत्कार मानव का प्रमुख कर्त्तव्य है। (10) गौ-रक्षा तथा इनका उचित पालन-पोषण गुरु मत का उच्च आदर्श है। (11) माँस-मदिरा का सेवन करना पाप है। (12) बैलों को बधिया नहीं करवाना चाहिए। (13) लड़कियों का मारना, विक्रय तथा विवाह में आदान-प्रदान बुरा है। (14) ऋण का भुगतान अवश्य किया जाना चाहिए। (15) दहेज देना तथा लेना बुरा है। (16) पन्द्रह वर्ष से कम लड़की तथा अठारह वर्ष से कम लड़के का विवाह नहीं करना चाहिए। (i 7) अपने बच्चों को अँग्रेजों द्वारा चलाए गए स्कूलों में मत भेजो। इससे बच्चे विदेशी संस्कृति से प्रभावित हो जाते हैं और परिमाणतः दासता की जंजीरें और भी दृढ़ हो जाती हैं। (18) विदेशी वस्तुओं का उपयोग मत करो। इससे भारतीय उद्योग को हानि पहुंचती है। (19) खादी का उपयोग हमारी मजदूर जनता से अभाव दूर करने में सहायता करता है। (20) केवल सतगुरु तथा परमात्मा के आदेश का पालन ही श्रेयस्कर है। (21) आपसी विवाद अपने ही न्यायालयों में हल किए जाएँ। (22) संसार के महान् पुरुषों का सम्मान किया जाए—उनकी राष्ट्रीयता, धर्म तथा जाति कोई हो। (23) प्रत्येक सिक्ख की भरसक सहायता करो—वह गुरु का प्रतिनिधि है। (24) राष्ट्र का सम्मान व्यक्तिगत सम्मान से बढ़कर समझना चाहिए। (25) 'गुरुवाणी' को ही ईश्वरीय-विधान समझना चाहिए तथा इसका अधिकाधिक आदर करना चाहिए।

इन उपदेशों-आदेशों के अतिरिक्त भी उनकी कुछ शिक्षाएँ उपलब्ध हैं। जिन दिनों बाबा रामसिंह जी को अँग्रेजों ने रंगून में कैद कर रखा था, उन दिनों अर्थात 1872 से 1880 के दौरान बाबा रामसिंह ने कुछ पत्र लिखे हैं जो सिक्खों द्वारा गुप्त रूप से अपने गन्तव्य तक पहुँचाए गए थे। उन पत्रों से उनके कुछ मूल उपदेश निकाले हुए हैं जो इस प्रकार हैं—

(1) कम्म खिमादा बहुत है बड़ा।
(2) भुक्खे नू रोटी कपड़ा जोड़ा किसे भेख दा होवे भांवे निंदा भी करदा होवे पर लोड़ मान देख के उसनूं भी देना।
(3) भांवे किसे भेखदा होवे किसे नूं फिक्का नहीं बोलना।
(4) बण्ड छकना (बाँट के खाओ)।

एक भविष्यवाणी भी रामसिंह जी ने कर रखी है—'एक दिन ऐसा आएगा इस देश में शासक और शासित दोनों ही गेहूं की तरह पीसे जाएंगे। ऐसा न भी हो तो दशा इससे भी बुरी होगी। 'खालसे' सन्तों की रक्षा करने के लिए पश्चिम से कोई मुस्लिम देवदूत आएगा।'[1]

उपर्युक्त आदेशों से नामधारी सम्प्रदाय का सैद्धान्तिक पक्ष स्पष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त विवाह को ये 'आनन्द' संस्कार कहते हैं तथा 13 रुपये से अधिक राशि खर्च नहीं करते हैं। नामधारी लोग 108 मनकों वाली ऊन की माला धारण करते हैं। उपासना के समय भावावेश में आकर नाचने तक लगते हैं तथा गुरु के नाम की कूक लगाते हैं—इससे इनको 'कूका' भी कहते हैं।

नामधारियों का स्वरूप केवल धार्मिक ही नहीं है। इनका सामाजिक तथा राजनैतिक पक्ष भी विशिष्ट रहा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले इन्होंने अपनी स्वदेशी तथा राष्ट्रीय कट्टरता के लिए बड़े कष्ट झेले हैं। इनका सामाजिक रहन-सहन भी कई बातों में आदर्श है। सिरसा से आगे 'श्री जीवननगर' है जो विशुद्ध नामधारियों की बस्ती है और हर प्रकार से आत्म निर्भर है। इनकी अपनी शिक्षण संस्था है, अपना प्रैस है, अपना ही डाकखाना है तथा हर प्रकार से ये लोग आत्म-निर्भर हैं। गऊ-पालन पर इनका विशेष आग्रह है। ये भैंस तथा घोड़े भी पालते हैं।

'सतनाम' पर आग्रह के कारण इनको 'नामधारी' कहते हैं। ये अपने को दशम गुरु का सच्चा प्रतिनिधि मानते हैं तथा गुरुवाणी में विश्वास रखने वाले सिक्खों के विपरीत जीवित गुरु में श्रद्धा इनका अलग से वैशिष्ट्य है। गुरु रामसिंह जी इनके 12वें गुरु थे। इनके पश्चात् गुरु हरिसिंह जी ने कार्यभार संभाला तथा उनके बाद 1906 में गुरु प्रतापसिंह ने गद्दी संभाली। आजकल इनकी गद्दी पर श्री जगजीत सिंह जी आसीन हैं। श्री जीवन नगर इनका प्रमुख तथा आदर्श स्थान है जो देखने योग्य है और हर प्रकार की सूचना इनके विषय में यहाँ से प्राप्त की जा सकती है। सिक्ख-धर्म के सम्प्रदायों में 'नामधारी सम्प्रदाय' अपनी उत्कट राष्ट्रीयता तथा सादगी के लिए प्रसिद्ध है। यह सम्प्रदाय निरन्तर प्रगति पथ पर अग्रसर हो रहा है।

4. सहजधारी तथा केशधारी

नामधारियों की ही भाँति सिक्खों में सहजधारी तथा केशधारी भी होते हैं।

---

1. 'सो होऊ तो आटा सने राजयाँ परजयाँ दा। नई दलयाँ तो जरूर होऊ। होर आपने सन्त खालसे की रक्षा के वास्ते पच्छिम दिशा तों मुसलमान बन्दा आवेगा।' मास्टर बलवन्त सिंह—श्री सतगुरु रामसिंह जी, पृ० 25

जो केश धारण करते हैं वे केशधारी कहलाते हैं। अधिकांश सिक्ख केशधारी होते हैं। किन्तु सिक्ख धर्म के अनुयायी लाखों की संख्या में ऐसे भी हैं जो केश धारण नहीं करते और नानक तथा उनके मत को मानते हैं। अन्य गुरुओं तथा 'गुरु ग्रंथ साहिब' का सम्मान भी करते पाये जाते हैं। अतः इनको 'सहजधारी' कहते हैं। नामधारी सम्प्रदाय में 'केशधारी' तथा 'सहजधारी' दोनों प्रकार के ही सिक्ख सम्मिलित हैं।[1]

5. सुथराशाही सम्प्रदाय

कहते हैं कि किसी सुथराशाह ने इस सम्प्रदाय की स्थापना की थी। लोगों की मान्यता है कि ये बड़े गन्दे ढंग से रहते थे। अतः इनके पिता ने इनको त्याग दिया। गुरु हरगोबिन्द ने इनको 'सुथरा' व 'स्वच्छ' कहकर अपना लिया था। इनका सुतार (बढ़ई) वंश में पैदा होनी भी इनके मत को 'सुथराशाही' कहने का कारण बताया जाता है।[2] कई और मत भी इस सम्प्रदाय के नामकरण के लिए पाये जाते हैं। सर्वसाधारण में इनके प्रति श्रद्धा बहुत कम पाई जाती है। सुथराशाही दो लोहे के डण्डे बजाकर भिक्षा माँगते हैं। दीन-दुनिया से ये लोग एकदम अन्यमनस्क होते हैं जैसा कि इस कहावत से प्रकट होता है—'केहू मुये केहू जिये, सुथरा घोरि बतासा पीये'[3] सुथराशाही बड़े विरल से हैं। अधिकतर पंजाब तथा बंगाल में पाये जाते हैं। हरियाणा में इनके दर्शन नहीं होते और न इनका कोई साहित्य मिलता है।

6. सेवापन्थी सम्प्रदाय

किसी कन्हैया नामक व्यक्ति को इस सेवा-पन्थ का प्रवर्तक माना जाता है। ये गुरु गोबिन्द सिंह जी के समकालीन थे। आनन्दपुर दुर्ग की चढ़ाई के समय इन्होंने शत्रु-मित्र दोनों पक्षों को पानी पिलाने की सेवा की थी। गुरु गोबिन्द सिंह ने इनकी बड़ी प्रशंसा की है। कन्हैया के एक शिष्य सेवा राय हुए हैं। अमृतसर में इनके अनुयायी अड्डणशाही वा अदलशाही भी कहलाते हैं। ये अपनी सेवा परायणता तथा सहृदयता के लिए प्रसिद्ध हैं। ये ईमानदारी से परिश्रम करके पेट पालते हैं। सफेद टोपी, सफेद पगड़ी, सफेद कच्छ वा धोती पहनते हैं। महन्त का अभिषेक करते समय एक झाड़ू तथा एक कटोरा भेंट करते हैं। ये बड़े निरीह भक्त किस्म

---

1. मास्टर बलवन्त सिंह, श्री सत्गुरु रामसिंह जी, पृ० 16
2. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० 427
3. वही, पृ० 428

के सिक्ख हैं।[1] हरियाणा में इनका कोई साहित्य प्राप्त नहीं होता।

7. अकाली सम्प्रदाय

निर्मला तथा निहंग कहलाने वाले सिक्खों को कभी-कभी 'सिंहधारी' भी कहा जाता है। निहंग का शब्दार्थ 'निश्चित वा निर्भीक समझा जाता है। इन लोगों के अन्य नाम 'अकाली' और 'शहीदी' भी हैं।[2] ये लोग खालसा सम्प्रदाय के पक्के अनुयायी होते हैं। इनकी धार्मिक प्रवृत्ति राजनैतिक तथा सामाजिक प्रवृत्ति से अधिक प्रभावित रहती है। इनका वेष नीलवर्ण का होता है। कहते हैं कि यह नीला वेष मानसिंह नामक अपने विश्वस्त सेवक को स्वयं गुरुगोविन्द सिंह जी ने दिया था। अकालियों को नीला वेष इसीलिए प्यारा है। वाद में इन्हीं मानसिंह ने अकाली सम्प्रदाय की स्थापना की। ये आपस में बड़े सहायक होते हैं। नशा इत्यादि से परहेज करते हैं। इनके अनुसार सम्यक जीवन का सिद्धांत ही श्रेयस्कर है। धर्म, समाज, राजनीति, नैतिकता आदि सभी इनके यहाँ समन्वित महत्व रखते हैं। ये सपने को एक अलग ही जाति मानने में गौरव का अनुभव करते हैं। विशुद्ध सिक्ख-धर्म की मान्यताओं को ही ये लोग बड़ी कट्टरता से अपनाते हुए पाए जाते हैं। ये परमात्मा को 'अकाल पुरुष' की संज्ञा देते हैं। अमृतसर में अकाल तख्त इनकी सर्वाधिक प्रतिष्ठित जगह है। आनन्दपुर साहिब भी इनका बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। ये धार्मिक से अधिक योद्धा हैं। सिक्खों में अपने को श्रेष्ठ मानते हैं। आजकल इन्हीं का बोलबाला है। प्रायः हर कस्बे तथा नगर में इनके गुरुद्वारे पाए जातें हैं। बाणी के नाम पर इनके पास बस गुरु ग्रंथ साहिब ही है।

8. भगतपंथी सम्प्रदाय

इनको सिक्ख धर्म के उपासक बतलाया जाता है।[3] इनके यहाँ दिन में 6 बार प्रार्थना अनिवार्य है। विवाह आदि पर भी 'गुरु ग्रंथ साहिब' का पाठ किया जाता है। हरियाणा में इनका प्रचार कम ही है इनका अपना कोई बाणी-साहित्य भी नहीं मिलता।

9. गुलाबदासी सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के संचालक गुलाबदास पहले उदासी थे, किन्तु कसूर के हीरादास के प्रभाव में पड़कर इन्होंने उदासी परम्परा को छोड़ दिया। इनकी रचना

---

1. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० 428
2. वही, पृ० 429
3. वहीं, पृ० 430 से उद्धृत।

'उपदेश विलास' नाम से प्रसिद्ध है। इनके मत का मुख्य उद्देश्य आनन्द है जिस कारण इनके अनुयायी बाल नहीं रखते, ऐश्वर्य भोगते हैं। ईश्वर की भावनाओं में भी विशेष आस्था नहीं रखते...इनका प्रभाव क्षेत्र लाहौर, जालन्धर, अमृतसर, फिरोजपुर, अम्बाला तथा करनाल में है।[1] गुलाबदासियों की प्रमुख गद्दी लाहौर (पाकिस्तान) के निकट चटियाँ वाला में थी किन्तु अब इनकी प्रमुख गद्दी हरियाणा में सिरसा के निकट टीटू खेड़ा में है। सैद्धान्तिक दृष्टि से ये वेदान्ती हैं। इनका ब्रह्म जीव, माया तथा जगत् का विवेचन वेदान्त के अनुरूप ही है। ये ज्ञान प्राप्त साधक को स्वयं प्रकाशी मानते हैं। प्रारम्भ में इनका सम्बन्ध निर्गुण परम्परा से लगता है जहाँ गुरु-शिष्य संवाद में शब्द सुरत की चर्चा है—शब्द गुरु है सुर्त को चेली सुर्त बगोए। सोहं शब्द स्वतंत्रे निश दिन हदय होए।[2] परवर्ती सन्तों में केवल ज्ञान ही प्रधान रह गया है। गुलाबदास के पश्चात इस सम्प्रदाय के महंतों के नाम इस प्रकार हैं—श्री हरगोबिन्द, श्री तेज बहादुर, श्री आनन्द बहादुर तथा अन्तिम और वर्तमान महंत श्री जगजीत बहादुर हैं। पहले चार संतों की गद्दी 'चेट्ठियाँ वाला' (लाहौर के निकट) रही है अब इनकी प्रमुख गद्दी हरियाणा में सिरसा के निकट टीटू खेड़ा है। शेष गद्दियाँ जहाँ भी हैं इससे छोटी हैं। इसके कई महंत स्वतन्त्र हो गए हैं जिनमें से कुछ इनकी श्रेष्ठता मानते हैं। वैसे इन गुलाबदासी साधुओं का प्रचार-प्रसार बहुत दूर-दूर तक है।

गुलाबदासियों का साहित्य 'उपदेश विलास' नाम से मिलता है। अब इसको 'गुलाब सागर' नाम से पुनः प्रकाशित किया गया है। इसमें सम्प्रदाय के संस्थापक गुलाब दास के अतिरिक्त अन्य कई संतों की वाणियाँ भी संकलित हैं। ग्रंथ में संकलित वाणियों के रचयिताओं में से कोई भी हरियाणवी नहीं है।

10. निरंकारी सम्प्रदाय

पेशावर निवासी भाई देयालदास ने निरंकारी सम्प्रदाय को सम्वत् 1892 विक्रमी में प्रवर्तित किया। इनके पश्चात् इनके पुत्र भाई भारा वा दरबारसिंह ने उत्तराधिकार संभाला।[3] आजकल बाबा हरदेव सिंह की अध्यक्षता में निरंकारी मत बड़ी प्रगति पर है। देश ही नहीं विदेश में भी इसका बड़ा प्रभाव है। अन्य निर्गुणमार्गी सम्प्रदायों की तरह इनके यहाँ भी गुरु की अनिवार्यता और सर्वोच्च महत्ता स्वीकृत है। ये लोग ब्रह्म को निरंकार संज्ञा से अभिहित करते हैं अतः निरंकारी कहलाते हैं। धार्मिकता के साथ-साथ सांसारिक समृद्धि भी इनके लिए काम्य

---

1. उत्तरी भारत की संत परम्परा, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, पृ० 431
2. गुलाब सागर, पृ० 3
3. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० 431

है। जाति भेद इनमें नहीं है। कई प्रकार की परोपकारी संस्थाएं ये चलाते हैं। इन्होंने कई स्थानों पर औषधालय, विद्यालय तथा महाविद्यालय चला रखे हैं। इनकी बिरादरी अब लाखों में है। हर बड़े नगर में इनके भवन पाए जाते हैं जहाँ दैनिक, साप्ताहिक तथा मासिक सत्संग 'संगत' की जाती है। कोई भी इनके मत में दीक्षित हो सकता है। इनके यहाँ किसी धर्म, जाति इत्यादि का कोई बन्धन नहीं। अन्य सिक्खों से अलग हटकर अब ये लोग अपने कुछ नये आचार-विचार बनाने लगे हैं। वैशाखी के अवसर पर कुछ हिंसक वारदातों के कारण अमृतसर अकाल तख्त की ओर से एक 'हुक्मनामा' 10-6-78 को जारी करके निरंकारियों का सिक्ख धर्म से बहिष्कार कर दिया गया है।

ऊपर के विवरणों से स्पष्ट है कि सिक्ख धर्म का प्रचार-प्रसार अत्यन्त व्यापक है। लेकिन इसी के साथ यह भी स्पष्ट है कि इतने विस्तार के बावजूद सिक्ख सम्प्रदायों ने निर्गुण-साहित्य में कोई वृद्धि नहीं की। संसार की प्रगति की दौड़ में सिक्ख भी अब अपने धर्म या सम्प्रदायों को स्वरूपतः 'मजहब' के ही तौल पर तेजी से लाते जा रहे हैं। इनकी साधना जो व्यक्तिगत होती थी अब केवल सामूहिक औपचारिकताओं में परिवर्तित होती जा रही है। जो हो सिक्ख धर्म अपने विभिन्न सम्प्रदायों के माध्यम से अब एक विश्व धर्म बन चुका है। वैसे हरियाणा में सिक्खों का हरियाणवी सन्त-साहित्य को समृद्ध करने में कोई योग नहीं है।

हरियाणा का नाँगी सम्प्रदाय

नाँगी सम्प्रदाय के प्रवर्तक सन्त डेढ़राज बताए जाते हैं। इनका जन्म नारनौल (महेन्द्रगढ़) जिले के धारूस गाँव में सम्वत् 1828 में हुआ था। इनके पिता का नाम 'पूरन' था जो ब्राह्मण थे। अभाव के कारण 13-14 वर्ष की आयु में ही डेढ़राज घर छोड़कर आगरा चले गए जहाँ दीवान धर्मदास के यहाँ इन्होंने नौकरी कर ली। यहीं इनकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति प्रबल हुई बताई जाती है। रोज साहब का उद्धरण देते हुए आचार्य चतुर्वेदी का कहना है कि ये धर्मदास की पत्नी नानकी के साथ देशभ्रमण के लिए निकले थे। ये दोनों पहले पहल बंगाल की ओर गए और इधर से लौटकर सम्वत् 1850 में 'कनाड़' के आसपास अपने मत का प्रचार करने लगे।' रोज साहब इनके बीच पति-पत्नी का सम्बन्ध भी अनुमान करते हैं। वे कहते हैं कि संप्रदाय का नाम उक्त स्त्री के नाम के आधार पर सर्वप्रथम 'नानकी पंथ' पड़ा था जो आगे चलकर 'नाँगी पंथ' बन गया।[1] चतुर्वेदी जी ने आचार्य क्षितिमोहन सेन महोदय का मत उद्धृत करते हुए कहा है कि इनका विवाह किसी वैश्यकुल में होना बतलाया जाता है। आचार्य सेन का मत है कि नानकी धर्मदास

---

1. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, पृ० 787

वैश्य की पुत्री हों तो यह सम्भव कहा जा सकता है और इस मत का प्रवर्तन दोनों के संयुक्त प्रयास के फलस्वरूप हुआ हो।

पंथ का प्रचार

डेढ़राज ने अपने मत का प्रचार अपनी जन्मभूमि से ही आरम्भ किया। विरोध के कारण इन्हें बड़े कष्ट झेलने पड़े। खेतड़ी प्रदेश के छुरिणा ग्राम में भी इनका रहना बताया जाता है। अन्तिम दिनों में इनका कार्यक्षेत्र हरियाणा में गुड़-गाँव जिले से नारनौल तक बताया जाता है। 81 वर्ष की आयु में इनका देहान्त छुरिणा में ही हुआ। इनके शिष्य इस स्थान को बहुत पवित्र मानते हैं। श्री ढेड़-राज के पुत्र का नाम चन्द्र तथा इनके प्रमुख शिष्य का नाम गंगाराम बतलाते हैं। इनके शिष्यों में इनके भाई भगीरथदास का नाम भी लिया जाता है।[1]

इनके तीन ग्रंथ बतलाए जाते हैं। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने हरियाणा के गुड़गाँव ज़िले के किसी भिवाना नामक स्थान को संत डेढ़राज का प्रमुख केन्द्र बताया है किन्तु प्रयास करने और काफी भटकने पर भी मुझे भिवाना नाम का कोई स्थान गुड़गाँव जिले में नहीं मिला। इसी तरह संत डेढ़राज-कृत तीन ग्रंथों की सूचना भी आचार्य चतुर्वेदी ने दी है किन्तु मुझे इनकी 'बाणी' के कहीं दर्शन नहीं हुए। संत डेढ़राज और उनके 'नाँगी सम्प्रदाय' विषय में आचार्य चतुर्वेदी ने जो सूचनाएं दी हैं उनके अतिरिक्त मेरे पास कहने को कुछ नहीं है।

हरियाणा का शिवनारायणी सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय की कुछ गद्दियाँ अम्बाला ज़िले में बतलाई जाती हैं किन्तु वहाँ किसी उल्लेखनीय हरियाणवी संत अथवा उसकी 'बाणी' इत्यादि का होना नहीं बतलाया जाता है। वैसे भी इनकी संख्या अथवा प्रभाव इस क्षेत्र में नगण्य है।

हरियाणा का निरंजनी सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय की गद्दी नारनौल में है। इस गद्दी के वर्तमान महंत श्री श्याम सुन्दरदास जी के कथनानुसार किसी हरियाणवी संत की वाणी इनके यहाँ नहीं है। इसका प्रभाव क्षेत्र मुख्यतः राजस्थान है।

सच्चा सौदा

सच्चा सौदा क्या है? इसका स्पष्टीकरण सच्चा-सौदा के प्रत्येक प्रकाशन के आरम्भ में किया गया मिलता है। इनके अनुसार 'सच्चा सौदा' कोई नया मजहब,

---

1. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, पृ० 780

धर्म (रिलीजन), फिरका, सम्प्रदाय या नई लहर नहीं बल्कि यहाँ हर मजहब तथा हर जाति से प्यार किया जाता है। सच्चा सौदा केवल एक 'नाम' ही है, और कोई भी वस्तु दुनिया में सच्ची तथा स्थिर नहीं है। इसलिए बाकी सब सौदे झूठे हैं। इस दरबार में केवल नाम ही जपा तथा जपाया जाता है अर्थात् नाम का सौदा करना बतलाते हैं। गुरु बाणी में लिखा है—

'सच्चा सउदा हरि नामु है सच्चा वापारा राम'

"सच्चा सौदा' वालों की मान्यता है कि नाम ही वह सौदा है जो जीव के अन्त समय साथ आता है तथा उसका दरगाह में मुख उज्जवल होता है। 'डेरा सच्चा सौदा' एक रूहानी कालेज (स्पिरिच्युल कालेज) भी है, यहाँ पर प्रेम और नाम के साथ जुड़ने का असली पाठ पढ़ाया जाता है। इसलिए इस दरबार का नाम 'सच्चा सौदा रखा गया है।[1]

'सच्चा सौदा' का नामकरण, इसका स्वरूप तथा उद्देश्य उपर्युक्त घोषणा से पर्याप्त स्पष्ट हो जाता है। इसका प्रवर्तन अथवा स्थापना सन्त शहनशाह 'मस्ताना जी' द्वारा किया गया था।

मस्ताना जी गाँव कोटड़ा, तहसील गंधेय, रियासत कुलेत (बिलोचिस्तान) के रहने वाले थे। इनके पिता का 'नाम श्री पिल्लामल तथा माता का नाम तुलसां बाई था। ये जाति के खत्री थे। इनका जन्म कार्तिक पूर्णिमा सम्वत् 1928 वि० में हुआ था। कहा जाता हैं कि इनका जन्म किसी साधु के वरदान के परिणाम-स्वरूप हुआ था। इनका वचपन का नाम खेमामल बताया जाता है। पिता व्यवसाय से हलवाई थे। पिता की अनुपस्थिति में ये दुकान से साधु-महात्माओं को मिठाई बाँट देते थे। बचपन से ही साधु-संगति में इनकी रुचि बतलाई जाती है।

गुरु

कहा जाता है कि भगवद् प्राप्ति के लिए उन्होंने अनेक तीर्थ-यात्राएँ की थीं। इन्होंने अपने घर में सत्यनारायण मन्दिर बनवाकर उसमें सोने की मूर्ति स्थापित की थी। बाद में एक साधु की प्रेरणा से इन्होंने यह जड़ पूजा छोड़ दी तथा सच्चे गुरु की तलाश में निकल पड़े। कई प्रकार के साधुओं के पास घूमते-फिरते अन्त में आप ब्यास के डेरे में बाबा सावणसिंह के पास आए और इनसे 'नाम' लिया।

डेरा सच्चा सौदा की स्थापना

सावणसिंह जी से नाम लेने के कुछ वर्षों बाद तक मस्ताना जी घर आते जाते रहे। अन्त में सन् 1948 के आस-पास घर-बार त्याग दिया तथा बाबा सावणसिंह

---

1. श्री सतनामसिंह, सच्च खण्ड की सड़क, भाग—पहला।

जी की प्रेरणा से सिरसा के बाहर बेगू रोड पर 'डेरा सच्चा सौदा' की स्थापना की। कहा जाता है कि मस्ताना जी अपने पास आने वाले सत्संगियों को खूब सोना, चाँदी, रुपए तथा वस्त्र इत्यादि बाँटते थे। बारह वर्ष तक इन्होंने दूर-दूर तक के लाखों लोगों को अपना सत्संगी बना लिया था और सच्चा सौदा दूर-दूर प्रसिद्ध कर दिया था।

अन्त में आपने अपना कार्य श्री सतनाम सिंह को सौंपकर 18 अप्रैल, 1960 को शरीर त्याग दिया।[1]

मस्ताना जी की वाणी के विषय में प्रकाश डालते हुए, मेरे आत्मीय श्री रघुवीर सिंह (प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, नेशनल कालिज, सिरसा) का कहना है कि 'मस्ताना जी' ने न कोई वाणी लिखी है न लिखवाई है। किन्तु इनके शिष्यों एवं सत्संगियों ने समय-समय पर मस्ताना जी द्वारा कहे गए प्रवचनों का संकलन (हस्त लिखित) 'लालबही' के नाम से कर रखा है, जो शीघ्र ही प्रकाश्य है। इसी 'लाल बही' को आधार मानकर कुछ पंथिक रचनाएं प्रकाशित भी की जा चुकी हैं। उल्लेखनीय है कि श्री रघुवीर सिंह 'सच्चा सौदा' में दीक्षित भी हैं। इन्हीं के कथनानुसार मस्ताना जी पूजापाठ, तीर्थव्रत, माला, कीर्तन, आदि बाह्याडम्बरों का कड़े शब्दों में खण्डन किया करते थे। वे स्पष्ट घोषणा करते थे कि 'पीपल पूजोगो पीपल बनोगे, पत्थर पूजोगे पत्थर बनोगे; सिमरन न करने वाला बख्शा नहीं जाएगा, बकरी वागुं खल्ल छिल्ली जावेगी; मन का स्वामी काल है जो साधक के मार्ग में नाना प्रकार के जाल फैलाता है—काल का मुकाबला केवल सतगुरु मेहर से ही है।

व्यावहारिक जीवन में मस्ताना जी के प्रेमियों के लिए तीन बातों का पालन करना आवश्यक था—

(1) शराब और माँस से परहेज करना,
(2) पर-स्त्री से सदैव दूर रहना,
(3) अपनी कमाई की रोटी खाना। उल्लेखनीय है कि साधक डेरे में उगाई गई सब्जी अथवा लकड़ियाँ बेचकर अपने लिए अन्न का प्रबन्ध करते हैं। नारी उनकी दृष्टि में, 'चिट्टा शेर' थी जिसका मुकाबला करना सहल नहीं। डेरा सच्चा सौदा सिरसा की दीवारों पर 'कर्म-भोग-फल' को मस्ताना जी के उपदेशों के अनुसार पशु-पक्षियों के चित्रों के माध्यम से प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया गया है।

---

1. श्री सतनामसिंह, सच्च खण्ड की सड़क, पृ० (ठ)

बाबा सतनाम सिंह

सतनाम सिंह जी का जन्म माघ बदी नौंवीं सम्वत् 1975 वि० में हुआ था। आपके पिता का नाम सरदार वरियाम सिंह तथा माता का नाम आस कौर है। आपका जन्म स्थान जलाल आणा ज़िला सिरसा (हरियाणा) में स्थित है। इनका बचपन का नाम हरबन्स सिंह बताया जाता है। इनके पिता इनके बचपन में ही परलोक सिधार गए थे। माता जी आपको सदा ही उत्तम कार्यों के लिए प्रेरित करती रहती थीं। बताया जाता है कि बाबा जी ने मस्ताना जी के पास आने से पहले कई साधुओं की संगति की थी किन्तु अन्त में 7 साल के निरन्तर सत्संग के पश्चात् मस्ताना जी से इन्होंने नाम लिया था। मस्ताना जी ने इनको खूब निरख-परखकर अपना उत्तराधिकारी बना दिया। मस्ताना जी की मृत्यु के बाद डेरा सच्चा सौदा आपकी देख-रेख में निरन्तर प्रगति कर रहा है।

सतनामसिंह जी ने कई सौ पदों (भजनों) की रचना की है। प्राय: सभी भजन चेतावनी परक हैं। कुछ भजनों की टेक मात्र यहाँ उदाहरण स्वरूप दी जाती है—

बाणी

1. जे बन्दिया सच्चखण्ड तूं देखणा-माँस शराब नूँ छड़ दे; 2. इस जग नाल करके प्यार; 3. लैके दिल दे विच प्यार; 4. दुनियाँ में आने वाले; 5. इह जन्म अमोलक सी; 6. जे सुख पाणा चाहें बन्दे; 7. वेला बीतदा जाँदा नी जिन्दडिये; 8. पंच चोराँ तो डर दा मारा; इत्यादि।

शब्दों की उक्त टेक सतनाम सिंह जी की 'सच्च खण्ड की सड़क' नामक पुस्तक से ली गई है जिसमें 20 शब्द संकलित हैं। सभी शब्दों को सामूहिक रूप से कीर्तन की शैली में गाया जाता है। कीर्तन के समय जिन भक्तों में ज्यादा मस्ती आ जाती है वे गायन के साथ-साथ नृत्य भी करते हैं। इनकी बाणी के स्तर, भाषा तथा विषय इत्यादि को समझने के लिए ऊपर दी गई—शब्दों की टेक पर्याप्त है।

शब्दों का व्याख्या—सतनाम सिंह जी की बाणी का सराहनीय पक्ष है। एक-एक शब्द की व्याख्या—एक-एक प्रवचन बन जाती है। शब्द के विषय को समझाने के लिए अन्य सन्तों की बाणी का इन व्याख्याओं में भरपूर उपयोग किया गया है। अपनी बात की पुष्टि के लिए नानक, कबीर, फरीद, रविदास तथा अन्य कई सन्तों की वाणियों के उद्धरण स्थान-स्थान पर दिए हुए हैं, जो विषय को प्रभावशाली एवं रोचक बना देते हैं। प्राय: सारी बाणी अथवा इनके साहित्य का स्वरूप प्रचारात्मक है। भावनाओं का क्षणिक उद्वेलन ही इन शब्दों और इनकी व्याख्याओं से होता है। साधक की प्रामाणिक अनुभूति की अभिव्यक्ति इनके शब्दों में नहीं के बराबर है जो निर्गुण सन्तों की बाणी की एक प्रमुख विशेषता है। इससे कुछ

स्तर भी उथला-उथला सा ही रह जाता है।

अब तक सतनाम सिंह ने सात आठ पुस्तकों का प्रकाशन करवा लिया है। कुछ के शीर्षक इस प्रकार हैं—

'सच्च खण्ड की सड़क', (दो खण्डों में) तथा 'सतलोक का सन्देश', हिन्दी में प्रकाशित ग्रन्थ हैं। 'पारस दी बट्टी', 'कर अमल तर भवजल', 'सच्च खण्ड का सन्देशा' तथा 'बन्दे तों रब', पंजाबी भाषा में प्रकाशित हो चुकी हैं। और भी कई प्रचारात्मक पुस्तिकाएँ इनके अपने प्रेस से बराबर निकलती रहती हैं।

सच्चे सौदे में साधना का स्वरूप

इस पन्थ की साधना के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए डेरा सच्चा सौदा के प्रबन्धक श्री फकीरचन्द जी का कहना है कि 'कर्म-काण्डों में फंसे हुए तथा जाति, मजहब के बंधनों में एक-दूसरे को ईर्ष्या-द्वेष की अग्नि में सड़ता देखकर शहनशाह मस्ताना जी वाली दो जहान, ने सबको आपस में प्रेम करना सिखाया तथा आसान रास्ते (जोकि सुरत शब्द का साधन है) पर लगाया। असली धुन्यात्मक सच्चे नाम का भेद बताया जो कि सच्च खण्ड को जल्दी पहुँचने का आसान तरीका है। अर्थात् सीधी सड़क ही बना दी। स्त्री, पुरुष, बच्चा, बूढ़ा, जवान सब इस साधन को कर कर सकते हैं। कलियुग में कोई भी अन्य साधन इतना आसान नहीं है।...यही मालिक को मिलने के लिए जरनैली सड़क है जिस राह पर चलकर कोई रुकावट नहीं पड़ती।...जो सन्त-महात्माओं की संगत करता हुआ सन्तों के बचनों पर अमल करेगा—गुरुमन्त्र द्वारा सुरत शब्द का अभ्यास करके अपने देश सच्च खण्ड पहुँच जाएगा।'[1] 'सच्च खण्ड की सड़क' नामक इस पुस्तक में सच्चा सौदा का परिचय देते हुए बताया गया है कि 'इसमें नाम का जाप करते हुए सुरत शब्द साधन द्वारा यहाँ सच्चखण्ड की प्राप्ति कराई जाती है। वास्तव में इनकी साधना-पद्धति वही है जो राधा स्वामी पन्थ में प्रचलित है। यह इनकी बहादुरी है कि राधास्वामियों की ब्यास-गद्दी से अपना अलगाव दिखाने के लिए साधना के मूल स्वरूप में परमानन्दियों की तरह सच्चा सौदा वालों ने किसी प्रकार के हेर-फेर का दावा नहीं किया है।

ब्यास-गद्दी से अलगाव

ब्यास-गद्दी से सतनाम सिंह जी के अलगाव का कारण कोई सैद्धान्तिक मतभेद नहीं है। जैसा ऊपर उल्लेख किया गया है, सच्चा सौदा वालों की जो साधना-पद्धति है, वही (सूरत शब्द साधना) व्यास वालों की भी है। ऐसा भी नहीं लगता

---

1. श्री सतनामसिंह, सच्च खण्ड की सड़क, पृ० 8

कि हजूर महाराज से सावणसिंह जी तक सतनाम सिंह जी के आध्यात्मिक पूर्वज कोई झूठा सौदा देते रहे हों और अब सच्चे सौदे में कोई अलग से खरापन आ गया हो। अलगाव के पीछे केवल व्यक्तित्व वैशिष्ट्य की सहज सी प्रतिस्पर्धा वाली भावना काम करती प्रतीत होती है। और कोई सैद्धान्तिक अलगाव यहाँ प्रतीत नहीं होता। हाँ, आगे चलकर भले ही 'सच्चा सौदा' कोई और अधिक सच्चा या वखरा अर्थ देने लग जाए जो अब केवल एक अलग पहचान-मात्र है तो बात और है। वैसे व्यास वालों से इनके सत्संग का रंग-ढंग कुछ अलग स्वरूप धारण करता जा रहा है। 'सच्चा सौदा' के सत्संग का स्वरूप कुछ ज्यादा कीर्तनियाँ तथा रंगीला सा है जबकि व्यास वाले कुछ अधिक संयत एवं सूफियाना लगते हैं। शेष कोई भेद वाली बात नहीं है। दोनों पर ही सामन्ती प्रसार-प्रचारवादी हावी है।

सच्चा सौदा में मासिक सत्संग की व्यवस्था है जो हर मास के अन्तिम शनिवार की रात से शुरू होकर रविवार के पूरे दिन और पूरी रात तक चलता है। मस्ताना जी की जन्मतिथि तथा पुण्यतिथि के अवसर पर हर वर्ष बहुत बड़े भण्डारे का आयोजन किया जाता है। इसके अतिरिक्त सिरसा वाले डेरे से बाहर भी सत्संग का आयोजन किया जाता है जिसका समय पहले ही दरबार सिरसा में निश्चित किया जाता है ताकि सत्संगियों को सूचित किया जा सके।

डेरा सच्चा सौदा बहुत बड़े संस्थान का स्वरूप ग्रहण कर चुका है। इसका प्रभाव क्षेत्र बड़ा विस्तृत होता जा रहा है। इसके वर्तमान स्वरूप से सहज ही अनुमान लग जाता है कि भविष्य में इस सत्संग का धार्मिक क्षेत्र में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान होगा। गंगानगर तथा फेफाना (राजस्थान), गंगुवा, डावड़ा, जगमालवाली, राणियाँ, रामपुरा, किंकरावली, नेजिया तथा सिरसा—'सच्चा सौदा' के प्रमुख ठिकाने हैं।

हरियाणा का बिशनोई-सम्प्रदाय

हरियाणा राज्य की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग बिशनोई-सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं। नवनिर्मित ज़िला सिरसा तथा ज़िला हिसार में बिशनोई लोगों की ही अधिक संख्या है। अतः इसकी चर्चा भी अनिवार्य हो जाती है। हरियाणवी निर्गुण-साहित्य में बिशनोई समाज का योगदान अथवा अवदान शून्य के बराबर है। डा० हीरालाल माहेश्वरी ने अपने शोध प्रबन्ध—'बिशनोई पन्थ' में सैंकड़ों बिशनोई सन्तों की वाणी का परिचय दिया है किन्तु हरियाणा मूल का उनमें एक भी सन्त नहीं मिला। सिरसा तथा हिसार के बिशनोई मन्दिर के प्रबन्धकों से मिलने पर ऐसा ही आभास हुआ कि अध्यात्मक अथवा साधना से बिशनोई समाज का सम्बन्ध प्रायः शून्य है। केवल प्रातः संध्या की आरती के अतिरिक्त कोई साम्प्रदायिक अथवा धार्मिक लक्षण दृष्टिगोचर नहीं हुए। बातचीत से पता चला

कि इनके उनतीस नियम ही बिशनोईयों (बीस+नौ) के लिए सामाजिक, नैतिक तथा धार्मिक पथ-प्रदर्शक का काम करते हैं।

आचार्य चतुर्वेदी का कहना है कि—"यदि बिशनोई सम्प्रदाय 'वैष्णव-सम्प्रदाय' का समानार्थक न भी रहा हो और 'बिशनोई' शब्द का अर्थ, उसके अपने 29 नियमों के अनुसार 'बीस और नव' से बनी उस संख्या की ओर संकेत करता हो उस दशा में भी, हमें यहाँ 'विष्णु' का प्रयोग निरर्थक नहीं जान पड़ता, न कबीर द्वारा प्रस्तुत किए गए वातावरण में अपने मत की मूल धारणाएँ निश्चित करने वालों में सन्त जम्मो जी का नाम इस दृष्टि से लेना कदाचित किसी प्रकार अनुचित ही ठहराया जा सकता है।[1] यहाँ आचार्य जी ने डा० हीरालाल माहेश्वरी के मत को उद्धृत करके इनके 'वैष्णव' होने के साथ-साथ निर्गुण परम्परा में भी इनके महत्व को स्वीकारा है। भले ही वैष्णव प्रभाव से 'बिशनोई' पन्थ का नामकरण हुआ हो, इनके 'बीस और नव' नियम की इस दृष्टि से कम महत्वपूर्ण नहीं लगते। वरन् अब तो 'बिशनोई' के स्थान पर 'बिशनोई' का ही अधिक प्रयोग होता है। जो इसके नामकरण में 29 नियमों को ही अधिक महत्व देता प्रतीत होता है। आचार्य चतुर्वेदी के अनुसार बिशनोइयों के 29 नियम परवर्ती भी हो सकते हैं।[2] जो हो, किन्तु इस सम्प्रदाय में इन उनतीस नियमों को पर्याप्त महत्व दिया जाता है। 'शब्द-बाणी जन्म सागर' नामक रचना में इन 29 नियमों को जम्मो जी द्वारा ही निर्धारित[3] किया बताया जाता है। बिशनोई समाज के उक्त 29 नियम निम्न-वत् हैं—

(1) सदा प्रातःकाल स्नान करो। (2) उपासना केवल विष्णु भगवान की करो। (3) प्रातःकाल और संध्याकाल दोनों समय संध्या करो। (4) नित्य प्रति प्रातः अग्निहोम (हवन) करना। (5) शील-व्रत धारण करना अर्थात् अपना आचार स्वच्छ रखना। (6) सन्तोष अर्थात् आवश्यकतानुसार पुरुषार्थ करना और हानि लाभ में हर्ष शोक न करना। (7) बाह्याभ्यान्तर (बाहर-भीतर) सदा शुचि अर्थात् पवित्र रहना। (8) बाणी का संयम करना अर्थात् निन्दा स्तुति सहन करके सदा अपने धर्म पर रहना। (9) बुरे और दुराचारियों की संगति से दूर रहना। (10) इन्द्रियों का दमन करना। (11) अमावस्या का व्रत व अमावस्या तिथि में अवश्य अग्निहोम करना। (12) क्षमा दया को हमेशा हृदय में स्थान देना। (13) हिंसा न करना और जीव रक्षा के करने व कराने में सदा समुद्यत रहना। (14) चोरी को मन, वचन और देह से सर्वदा त्याग करना। (15) निन्दा चुगली किसी की न

---

1. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० 335
2. वही, पृ० 335
3. शब्दवाणी, जन्मसागर, पृ० 60-66

करना। (16) झूठ न बोलना। (17) वाद-विवाद का त्याग करना। (18) सूतक अशौच 30 दिन तक मानना और गृहस्थ कार्यों से स्त्री को अलग रखना। (19) मासिक धर्म के समय स्त्री 5 दिन तक गृहस्थ कार्यों से अलग रहे। (20) ईंधन देख-भाल तथा ठीक कर जलाना। (21) जल और दूध छानकर प्रयोग करना। (22) किसी हरे वृक्ष को न काटना। (23) बैल बधिया न करना। (24) गोशाला बनाना (25) अपने हाथ का बना भोजन करना। (26) माँस भक्षण न करना, (27) मद्य अर्थात् शराब न पीना, इससे दूर रहना। (28) अफीम, भाँग तथा तम्बाकू के प्रयोग से दूर रहना। (29) नीला वस्त्र धारणा न करना।[1]

बिश्नोई समाज

उपर्युक्त 29 नियमों में से शायद कुछ का पालन ही बिशनोई समाज में आजकल किया जाता होगा। अब 'धर्म सम्प्रदाय' के स्थान पर यह 'जाति' बन गया है। धार्मिक औपचारिकताएं शायद ही कोई निभाता होगा। साध सम्प्रदाय के समान ही इनका भी धार्मिक से अधिक सामाजिक कक्ष ही प्रबल हो गया है। इनका धर्म अब अध्यात्मिकता से दूर केवल विशेषण मात्र बनकर रह गया है।

बिशनोई समाज कृषि-प्रधान समाज है। कढ़ी इनका अत्यन्त प्रिय भोज्य है। शरीर से ये लोग बलिष्ठ होते हैं। स्वभाव से बड़े उद्धत और उदार होते हैं। इनकी अतिथि सेवा प्रसिद्ध है। शिक्षा के क्षेत्र में प्राय: पिछड़े हुए हैं। अब तो ये भी जाग रहे हैं।

हरियाणा में ज़िला सिरसा तथा ज़िला हिसार ही इनके प्रभाव क्षेत्र हैं। इन दोनों ज़िलों में इनकी संख्या किसी भी अन्य 'जाति' से अधिक है।

हरियाणा का सिक्ख धर्म एवं अन्य सन्त सम्प्रदाय : उपलब्ध साहित्य

(1) श्री महन्त चेतनदास-कृत 'चेतन प्रकाश सागर', (हस्तलिखित), पृ० सं० 50 प्राप्तिस्थान—रतिया स्थित सर्जनहारा डेरा, महन्त चेतनदास (व्यक्तिगत संग्रह)।

(2) भाई सन्तोषसिंह कृत 'गुरु प्रताप सूरज', रचनाकाल—सम्वत् 1880

(3) वही, 'अमरकोष' (भाषानुवाद), सम्वत् 1880

(4) वही, 'गरब गंजनी टीका' (जुपुजी साहिब), सम्वत् 1886

---

1. बिश्नोई युवा परिषद्, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित।

(5) वही, 'आत्मपुराण'

(6) वही, 'गुरुनानक प्रताप सूरज', रचनाकाल 1890 वि०

(7) वही, 'बाल्मीकि रामायण (भाषानुवाद), सम्वत् 1891

(8) मास्टर बलवन्त सिंह-कृत 'श्री सतगुरु रामसिंह जी (अंग्रेज़ी), प्रकाशक तथा प्राप्ति स्थान: मास्टर बलवन्त सिंह, भैणी साहब (पंजाब); जीवननगर (हरियाणा), मुद्रक—आक्सफोर्ड एवं कैमब्रेज प्रेस, लाहौर, सन् 1943, पृ० 32 (व्यक्तिगत संग्रह)।

(9) श्री गुलाबदास-कृत 'गुलाबसागर' अथवा 'उपदेश विलास', प्रकाशक एवं प्राप्तिस्थान : श्री परमानन्द जी, पुराना बाजार, रोहतक, मुद्रक—राणा प्रताप प्रेस, किलारोड, रोहतक, पृ० सं० 200

(10) श्री डेढ़राज-कृत 'बाणी' (हस्तलिखित),

(11) श्री मस्ताना जी कृत 'लाल बही', (हस्तलिखित), प्राप्तिस्थान—डेरा सच्चा सौदा, सिरसा (हरियाणा),

(12) श्री सतनाम सिंह-कृत 'सच्च खण्ड की सड़क' (पहला भाग), प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान : डेरा सच्चा सौदा, सिरसा, मुद्रक—परमार्थ उपदेश प्रिंटिंग प्रेस, डेरा सच्चा सौदा, सिरसा। दूसरा संस्करण—1976 ई०, पृष्ठ सं० 268 (व्यक्तिगत संग्रह)।

(13) श्री सतनामसिंह-कृत 'सच्चा खण्ड की सड़क' (दूसरा भाग), प्रकाशक, प्राप्ति स्थान एवं मुद्रक—उपर्युक्तानुसार, जून, 1972, प्रथम संस्करण, पृष्ठ सं० 358 (व्यक्तिगत संग्रह)।

(14) श्री सतनाम सिंह-कृत 'सतलोक का सन्देश,' प्रकाशक, मुद्रक एवं प्राप्ति स्थान—वही, जनवरी, 1976, पृष्ठ सं० 80 (व्यक्तिगत संग्रह)।

(15) श्री सतनाम सिंह-कृत 'सच्च खण्ड का सन्देशा', प्रकाशक, मुद्रक एवं प्राप्ति स्थान—वही, जनवरी, 1976, पृष्ठ सं० 80 (व्यक्तिगत संग्रह)।

(16) श्री सतनाम सिंह कृत 'पारस की बट्टी' (पंजाबी), प्रकाशक, मुद्रक एवं प्राप्तिस्थान—वही;

(17) श्री सतनाम सिंह-कृत 'कर अमल तर भवजल' (पंजाबी) प्रकाशक, मुद्रक एवं प्राप्तिस्थान—वही;

(18) श्री सतनामसिंह-कृत 'बन्दे तो रब्ब' (पंजाबी), प्रकाशक, मुद्रक एवं प्राप्ति स्थान—वही,

(19) शब्द वाणी (जम्मसागर), प्रकाशक एवं प्राप्तिस्थान—स्वामी ज्ञान प्रकाशक, बिशनोई मन्दिर, ऋषिकेष, मुद्रक—नारायण प्रेस, ऋषिकेष, सम्वत् 2031, पृ० 358 (गुटका), (व्यक्तिगत संग्रह)।

तृतीय खण्ड

तत्त्वचिंतन

प्रथम अध्याय	:	हरियाणा सन्तों की भक्ति का स्वरूप
द्वितीय अध्याय	:	हरियाणा सन्तों की ब्रह्म-कल्पना
तृतीय अध्याय	:	हरियाणा सन्तों की माया सम्बन्धी धारणा
चतुर्थ अध्याय	:	हरियाणा सन्तों की जीव एवं जगत सम्बन्धी धारणा

अध्याय 1

हरियाणवी सन्तों की भक्ति का स्वरूप

शोध-प्रबन्ध के तीसरे खण्ड में हरियाणवी सन्तों के तत्त्वचिन्तन सम्बन्धी विविध पहलुओं पर प्रकाश डालेंगे, जिसमें 'भक्ति का स्वरूप,' 'ब्रह्म सम्बन्धी कल्पना', 'माया सम्बन्धी धारणा' तथा 'जीव-जगत् सम्बन्धी' इनके दृष्टिकोण का उल्लेख किया जाएगा। यहाँ पर प्रयुक्त 'हरियाणवी' विशेषण से सन्तों की किसी 'सैद्धान्तिक वैशिष्ट्य' वाली अन्य कोटि से तात्पर्य नहीं है। यहाँ पर 'हरियाणवी-सन्त' वही पूर्व पारिभाषित एवं पारिभाषिक रूप में ही लिया जा रहा है। 'हरियाणवी सन्तों को यहाँ प्रदेश-विशेष से सम्बन्धित सन्तों अर्थात् इस शोध-प्रबन्ध में उल्लिखित सन्तों को ही मानना चाहिए।

भारतीय धर्म-साधना में परमार्थ-लाभ के लिए 'ज्ञान', 'योग' और 'भक्ति' तीन मार्ग बतलाए गए हैं। तीनों ही मार्ग अपने-अपने स्थान पर श्रेष्ठ हैं। सन्त स्वभाव से सारग्रही तथा समन्वयवादी रहे हैं। जहाँ इन्होंने सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्ष में समन्वय का परिचय दिया है वहाँ साधना के क्षेत्र में भी इन्होंने समन्वित दृष्टिकोण अपनाया है। सन्तों की भक्ति—जो 'सुरत शब्द योग', 'सुरत शब्द साधना' 'सुरत शब्द मार्ग', 'सन्त मार्ग', 'सहजयोग' तथा 'सहज मार्ग' का ही पर्याय है—वह ज्ञान, योग एवं भक्ति का समन्वित रूप ही है। इस समन्वय में भी सन्त-साधना की अपेक्षा भावना को ही अधिक महत्व देते हैं और योग के प्रति आस्थाशील होकर भी वे मूलतः भक्त हैं।'[1] अतः यहाँ हम हरियाणवी सन्तों की

---

1. डा० राजदेव सिंह, सन्तों का भक्तियोग, उन्मनी के प्रकाश में, 1968 ई०, पृ० 9

इस भाव-भक्ति का स्वरूप उन्हीं की बाणियों द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं।

राम-भक्ति रहित सभी धर्म पाखण्ड हैं। नग्न होकर तपस्या आदि भी भक्ति बिना दण्ड स्वरूप ही है। रामभक्ति रहित दान इत्यादि शुभ कार्य भी व्यर्थ है। रामभक्ति रहित, तीर्थ, पूजा आदि भी सब व्याधि हैं। आसन लगाना (योगादि) भी भक्ति बिना केवल नटबाजी ही है। रामभक्ति बिना सभी भेष अकाज करने वाले ही हैं। रामभक्ति के बिना सभी सांसारिक सम्पत्ति व्यर्थ है। यह बुद्धि तथा सुन्दर शरीर भी भक्ति बिना किस काम का? रामभक्ति रहित मनुष्य पशु के समान है जिसे नरक की यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। सभी बातों का सार यही है कि हरिनाम का भजन करो। इसके बिना सभी धन धाम थोथे हैं। उत्तम नर वही हैं जो राम-जाप में लीन रहते हैं।[1] भक्ति के बिना काशी में करवत लेने से भी कुछ नहीं बनेगा। नाना प्रकार की वासनाएँ, भ्रम तथा सन्देहादि का भक्ति के बिना नाश नहीं होता।[2] भक्ति के ही प्रताप में दत्त, गोरख, शुकदेव तथा व्यास इत्यादि की तीनों लोकों में प्रसिद्धि है।[3] यह नाम का सुमरन ही स्वयं निर्मल है तथा शरीर को निर्मल करने वाला है। और सभी ज्ञान (साधनाएँ) छोटे हैं। महत्व है तो केवल कबीर ज्ञान का अर्थात् उनकी भक्ति ही सबसे उत्तम साधन है परमार्थ लाभ का।[4]

सन्तों की भक्ति में नाम स्मरण अथवा सुमरन का बड़ा महत्व है। इस नाम-जाप की श्रेष्ठता का सभी सन्त बड़े आग्रह से समर्थन करते हैं। जिसने इस नाम का स्मरण किया वही भवसागर से पार हो गया। हरि का नाम भवतारक जहाज है अतः इसका हृदय में धारण करना आवश्यक है।[5] काल की चोट अर्थात् मृत्यु से बचने के लिए सुमिरन आवश्यक है। इसी से वह सिरजनहार प्रसन्न होता है।[6]

---

1. मुक्तिमार्ग, श्री स्वामी रामरूप जी द्वारा रचित, राग मंगल, पृ० 225-26
2. गरीब बिना भक्ति क्या होते हैं, भावें काशी करवत लेहू।
   मिटे नही मन बासना, बहुविध भ्रम सन्देह ।।
   —ग्रंथ साहिब, श्री गरीबदास जी की बाणी, पृ० 12 ; 104
3. वही, पृ० 8 ; 31
4. गरीब ऐसा निर्मल नाम है, निर्मल करे शरीर।
   और ज्ञान मंडलीक हैं, चकवे ज्ञान कबीर।। —वही, पृ० 9 ; 38
5. 'जिन सुमिरन सोई भया, भवसागर पार।
   हरि का नाम जहाज है, रामरूप उरधार ।। शुक्तिमार्ग पृ० 72 ; 2
6. बचे काल की चोट सूँ, लगे न यम की मार।
   रामरूप सुमिरन किए, रीझैं सिरजन हार।। —वही, पृ० 72 ; 40

जिस प्रकार जल द्वारा शरीर का मैल दूर होता है, नाम सुमिरन से इस जीव की पीड़ा धुल जाती है।[1] यह श्रेष्ठ नाम स्वयं निर्मल है तथा जो इसका जाप करता है वह भी निर्मल हो जाता है। निश्चय ही इस नाम से सांसारिक मैल (मायावी आवरण) धो डालना चाहिए।[2] नाम ही नियम है, तप है तथा व्रत है यही नाम योग है, यज्ञ है तथा दान भी है। इसी नाम से वह जगतपति कृपानिधान प्रसन्न होता है।[3] यही नाम सभी फलों का देने वाला है यही मुक्ति का स्थान है। तुच्छ से महान बनाने वाला यही नाम ही है।[4] यदि आप हरि को प्रसन्न करना चाहते हैं तो नाम का आश्रय लें। इसी को चित्त में धारण करें, यही चारों वेदों का सार-तत्व है।[5] यदि किसी को हरि दर्शन की इच्छा है तो उसे नाम का ही जाप करना चाहिए। बस सभी साधनों अथवा साधनाओं से अधिक नाम को ही महत्व दिया जाए—करने का यही काम है।[6] यह हरिनाम ही मूल मन्त्र है तथा सभी मंत्रों का सिरमौर है। चारों वेदों में इस जैसा उत्तम कोई मन्त्र नहीं है।[7] यह हरिनाम चारों वेदों का टीका है, षटशास्त्रों का सार है। यह नाम ही अघमोचन है।[8] इस राम नाम के सीधे व्यापार में अपार नफा है। जो नाम-सौदे को छोड़कर विषयों में भटकता है उसके लिए चौरासी लाख योनियों का चक्कर निश्चित है इस विषय के बस में होकर ही मूर्ख मृत्यु को प्राप्त होते हैं। धिक्कार है ऐसे जन्म को जो मुक्ति लाभ न चाहकर सांसारिक धन-धान्य के संग्रह में लगे रहते हैं। ऐसे मनुष्य व्यर्थ में ही जन्म लेते हैं।[9]

नाम स्मरण करने वाले की तीनों लोक ऐसे ही वन्दना करते हैं जैस प्रजा

---

1. मुक्तिमार्ग, पृ० 73 ; 6
2. वही, पृ० 73 ; 8
3. वही, पृ० 71 ; 10
4. वही, पृ० 73 ; 11
5. वही, पृ० 73 ; 12
6. वही, पृ० 73 ; 13
7. मूलमन्त्र हरिनाम है, सब मन्त्रन शिरमौर।
   या सम चारों वेद में, रामरूप नहीं और ।।
   —मुक्ति मार्ग, पृ० 73 ; 140
8. टीका चारों वेद का, षट शास्त्रन का सार।
   रामरूप सो नाम है, पाप मिटावन हार।। —वही, पृ० 74 ; 15
9. वही, पृ० 75, कुं० 1

राजा की ।[1] भृंग की संगत से कीट भी भृंग ही बन जाता है—ऐसे ही राम-राम कहते-कहते (स्मरण से) राम के ही समान बन जाता है तथा अहंकार विगलित हो जाता है। अतः उस नाम से ही लौ लगाओ ।[2] तीन लोक में स्वाँस के समान कोई धन नहीं है। ऐसे अमूल्य धन को बिना स्मरण के व्यर्थ ही नहीं खोना चाहिए ।[3] साँस वही सफल समझना चाहिए जो स्मरण में बीतता है। धिक्कार है ऐसी घड़ी जो बिना स्मरण के ही बीत जाती है ।[4] इस संसार में माया रूपी भूसी को त्याग कर नाम रूपी कण को ग्रहण कर लेना चाहिए। क्योंकि यही नाम-कण ही प्राण का आहार है ।[5] मुक्ति नाम से ही होगी तथा अमर भी नाम स्मरण से ही होगा। अतः भाई इसी का जाप करो और हाँ, सभी ऋद्धि-सिद्धि भी नाम में ही निवास करती हैं ।[6] तीनों लोकों का शोधन करके यदि कोई वस्तु निकाली जाएगी तो वह नाम स्मरण होगी। क्योंकि आठ सिद्धियाँ तथा नौ निद्धियाँ इस नाम के पीछे-पीछे डोलती रहती हैं ।[7] सुमरण (नाम का स्मरण) के समान तीनों लोकों में कोई वस्तु[8] महत्वपूर्ण नहीं है। इसी नाम स्मरण ने करोड़ों पापी पार कर दिए यह तथ्य विश्व विदित है। जिसने नाम रूपी दृढ़ महल में शरण ले ली वही इस संसार की आग से बच गया। और तो सभी स्थान-नगर इस अग्नि में भस्मीभूत हो जाते हैं। नाम[9]

---

1. नाम लिहारी सन्त कूँ, बन्दै तीनों लोक।
   रामरूप ज्यों भूप कूँ, प्रजा देवै ठोक ।। —वही, पृ० 76 ; 42
2. राम कहत रामै भया, मैं मैं गई नसाय।
   कीट भृंग ज्यों हो गया, रामरूप लौ लाय ।। —वही, पृ० 72 ; 43
3. वही, पृ० 77 ; 46
4. सोई सुकृत स्वाँस है, नाम सुमिरते जाय।
   रामरूप ध्रक सो घड़ी, बिन हरिनाम बिहाय ।। —वही, पृ० 77 ; 47
5. कूकस माया त्यागकर, राम नाम कण लेय।
   रामरूप या प्राण कूँ, नित अहार तू देय ।। —वही, पृ० 79 ; 66
6. मुक्ति होयणी नाम सूँ, अमर नाम सूँ होय।
   ऋद्धि-सिद्धि सब नाम में, रामरूप जप सोय ।। —वही, पृ० 83 ;112
7. तीन लोक माँहि शोध करि, सुमरण काढ्या सार।
   अठ सिधि नौं निधि हरिदास लटकत डोले लार ।।
   —श्री हरिदास जी वाणी, पृ० 23 ; 1
8. तीन लोक में हरिदास, सुमरण सरभर नाँहि।
   कोटि पतित पावन किए, प्रगट प्रजा माँहि ।। —वही, पृ० 23 ; 2
9. सुमरण महल लदाव का, पावक करै न जोर।
   आसपास तें हरिदास, नगर जराया और ।। —वही, पृ० 23 ; 5

स्मरण से ही सिद्ध बन जाते हैं इसी से साधु बन जाते हैं तथा इसी नाम से घोर अपराध (पातक) भी कट जाते हैं।[1] हरिनाम को मन में दृढ़ भाव से लिख लेना चाहिए। क्योंकि इस नाम से वह दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है जिससे हरि के दर्शन सम्भव हो जाते हैं।[2] जो भक्त होते हैं वे कामादि विषयों से अलिप्त रहकर भक्ति करते हैं और परमपद प्राप्त करते हैं।[3] जिसका मैं स्मरण करता हूं वह मुझ में, तुझ में, सभी में भरपूर है।[4] जब यह स्मरण प्रगाढ़ हो जाता है तो मन, तथा तन सुरत (आत्मा) सभी स्मरण परायण हो जाते हैं—सारा अस्तित्व ही स्मरणमय हो उठता है और जीव पीव की अभेद अवस्था आ जाती है।[5] ऐसी स्थिति में रोम-रोम स्मरण रत हो जाता है और स्मरण अनायास तथा सहज हो जाता है। अधिक क्या कहना तन मन सभी कुछ उसकी सुमरणी (माला) का रूप ले लेता है। ऐसा स्मरण विरले ही करते हैं।[6] जब भक्त का रोम-रोम हर-हर करने लग जाता है तभी भजन की उत्तम स्थिति समझनी चाहिए। इस प्रकार का भजन बिना जिह्वा के सुरत से ही अपने आप चलने लगता है—बिना उच्चारण के अर्थात् अजपा जाप की स्थिति आ जाती है। तभी भक्तकृत कार्य होता है।[7] सच्चा सुमिरन उसी को समझना चाहिए जिसमें स्मरण करने वाला और जिसका स्मरण करता है तदरूप हो जाए।[8] और ऐसी स्थिति में सुरत, स्मरण, नाम यहाँ तक कि वह राम भी अलग नहीं रह जाता है—पूर्ण तदरूपता आ जाती है सारे अस्तित्व की।[9] यह स्मरण अति गोपनीय व्यापार होना चाहिए। किसी को इसका आभास नहीं होना चाहिए। यह केवल भक्त और भगवान के बीच ही रहे। इसका लेशमात्र भी

---

1. सुमरण सेति सिध भये, सुमरण सेतिसाध।
   सुमरण सेति हरिदास, प्रबल कटें पराध॥
   —श्री हरिदास जी की वाणी, पृ० 23 ; 13
2. नितानन्द निज नाम कूँ, लिख राखो मन माँहि।
   जिन नैना हर देखियाँ, वे नैना खुल जाहिं॥
   —स्वामी नितानन्द कृत सत्यसिद्धान्त पृ० 16 ; 3
3. वही, पृ० 16 ; 9
4. स्वामी नितानन्द कृत 'सत्य-सिद्धान्त-प्रकाश', पृ० 20 ; 51
5. वही, पृ० 20 ; 52
6. वही, पृ० 20 ; 54
7. रोम-रोम हर हर कहे, ऐसा भजन अपार।
   नितानन्द भज सुरत से, बिन मुख शब्द उचार॥ —वही, पृ० 21 ; 55
8. वही, पृ० 21 ; 62
9. सुरत रही, रटना रही, और रह गया राम।
   नितानन्द वह कित गया, जिसको कहते नाम॥ —वही, पृ० 21 ; 63

प्रदर्शन नहीं होना चाहिए ।[1]

प्रेम रहित स्मरण भी किसी काम का नहीं । यह भक्ति भाव सम्बलित होनी चाहिए । शब्द दरियाव में प्रेम प्रीत से नहाने से ही भजन सफल होता है । मुख से तो सभी नाम रटते हैं किन्तु भाव सहित हृदय से भजन करने वाला कोई विरला हरिजन होता है और वही पराभक्ति को प्राप्त कर दिव्य प्रकाश को उपलब्ध होता है ।[2] केवल भेष धारण करने से पीव नहीं मिलता, इसके लिए प्रेम अनिवार्य है । प्रेम से वह शीघ्र ही रीझ जाता है ।[3] प्रेम के बिना सभी साधन व्यर्थ है । प्रेम बिना सभी साधना व्यर्थ है । प्रेम बिना उसके, हरि के देश में प्रवेश मुश्किल ही है ।[4] भाव की प्रगाढ़ अवस्था तभी समझनी चाहिए जब देह तम्बूरा बन जाती है, सारे रोम तार हो जाते हैं तथा प्रेम ही इस तम्बूरे को बजाने वाला बन जाता है ।[5]

सन्तों की भक्ति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए तथा शांडिलीय भक्तिसूत्र का हवाला देते हुए डा० राजदेव सिंह का कहना है कि 'सन्तों की भक्ति या प्रीति भी भगवान के प्रति परानुरक्ति ही है ।'[6] हरियाणवी सन्तों के भक्ति सम्बन्धी उद्‌गारों में इस प्रेमभक्ति अथवा परानुरक्ति का उज्ज्वलतम रूप हमें देखने को मिलता है । इस प्रेम भक्ति की बड़ी उल्टी रीति है । गोपी दही बेचने जा रही और पुकार कृष्ण की लगा रही है ।[7] प्रेम भक्ति की विचित्रता देखिए जिसमें आशिक मासूक बन जाता है ।[8] केवल भक्त ही नहीं भगवान भी भक्त के लिए तड़प रहा

---

1. जब लग जगत दिखाइए, तब लग मिले न पीव ।
   नितानन्द यूँ सुमरिए, पिव जाणे कै जीव ।।
   —सत्य सिद्धान्त प्रकाश, पृ० 23 ; 85
2. समै मनुष्य रटना रटै, हृदय कोई हरिदास ।
   पराभक्ति तासों परे, करे नूर प्रकाश ।। —वही, पृ० 29 ; 243
3. वही, पृ० 31 ; 23
4. व्रत नेम जप तप करै, जो सिद्ध द्रवेस ।
   नितानन्द एक प्रेम बिन, दुरलभ हरका देस ।। —वही, पृ० 31 ; 34
5. देह तमूरा हो रही, समय रोम भये तार ।
   नितानन्द अचरज लख्या, प्रेम बजावनहार ।। —वही, पृ० 32 ; 27
6. डा० राजदेवसिंह, सन्त-साहित्य पुनर्मूल्यांकन, 1973 पृ० 255
7. प्रेम भक्ति की हरिदास, उल्टी गति हैरान ।
   दधि बेचन गोपी गई, बेचत डोले कान्ह ।।
   —हरिदास, वाणी, पृ० 30 ; 5
8. प्रेमभक्ति की हरिदास अति गति उल्टी चाल ।
   आसिक तैं मासूक हवै, देखवै दीनदयाल ।। —वही, पृ० 30 ; 6

है ।[1] जो प्रेम भक्ति में रंग गया उसके लिए अन्य सब प्रकार की भक्ति व्यर्थ हो जाती है। प्रेम भक्ति विहग है जबकि दूसरी भक्ति चींटी के समान है। इसी के आश्रय से भक्त हरिरूपी ऊँचे फल का आस्वादन कर सकता है ।[2] जिस घट में यह प्रेमभक्ति प्रकट होती है वहाँ कोई पाप नहीं ठहर सकता है ऐसे ही जैसे नदीं-नीर सभी खरपतवार को जला डालता है ।[3]

इस प्रेमाभक्ति को तीव्रता प्रदान करने वाला विरह है। सन्तों को विरह अति प्रिय है क्योंकि उनका पीव इसी माध्यम से पाया जा सकता है। विरह से विरहिन (भक्त) अनुनय करती है कि तुम मेरे हृदय में ही निवास करो। इसे अपना ही घर समझो और कहीं मत जाओ ।[4] हे विरह। मेरे पास जो तुझे अच्छी चीज़ लगती है वह ले लो। किन्तु मुझे मेरे हरि प्रीतम से मिला दो ।[5] बिरहन को बाहर सुख है न घर सुख है। अपने पीव मिलन को वह निरन्तर उदास रहती है, पीड़ा में कसकती रहती है ।[6] विरहन हेला देकर समझा रही है कि यह इश्क अथवा प्रेम प्रीत का चक्कर बुरी बला है। यहाँ तो पतंगे की तरह जलकर राख हो गए और हरि दीपक —निष्ठुर प्रेमी—को पता तक नहीं है। हम तो चक्केर की तरह अंगार निगल रहे हैं—हरिश्चन्द्र को खबर ही नहीं। हमारे प्रेम से क्या बनता है ? हमने तो मीन की तरह तड़फ-तड़फ कर प्राण दे दिए हैं और उस हरि जल के यहाँ कोई दाद न फरियाद। बड़ा निष्ठुर है वह हरि—बादर। यहाँ तो रटते रटते कलेजे में छेद पड़ गए हैं और उसकी बूँद तक को खबर नहीं। यह इकतरफा प्रीति कब तक चलेगी। यदि हमारी मृत्यु से ही आप प्रसन्न होते हैं तो आप हमारे कमल-प्राण, जल के अभाव

---

1. प्रेम भक्ति में बह गई और भक्ति बरबाद।
   तप तीर्थ व्रत हरिदास, किसके आये याद ।। —हरिदास वाणी, पृ० 31; 15
2. वही, पृ० 31; 18
3. बिरहा सूँ कहे हरिदास, यह आपण घर जाणि।
   और ठौर बूझे मत, उर आसन करि आणा ।।—वही, पृ० 31; 21
4. बिरहाँ सूँ कहे हरिदास, जो देखे सोलहे।
   मेरा मेरे नाथ का, तू मेला कर देह ।।—वही, पृ, 31; 23
5. वही, पृ० 32; 31
6. वही, पृ० 32; 33

तथा सूर्य की तपन से मुरझा चले हैं।[1] यदि प्रीतम कहीं दूर बसे हों तो उनको पाती लिखी जा सकती है। किन्तु इस छलिया से कैसे पार पाएँ जो हरजां भरपूर है और दर्शन नहीं देता।[2] हरि प्रीतम के कारण बन बन भटकती फिरती हूँ। उस महबूब को देखे बिना मन में बड़ी बैचेनी है। जब तक उससे मिलन नहीं होता, चैन असम्भव है। विरह ज्वाला में जल रही हूँ। उनके दर्शन बिना व्याकुलता अति सघन होती जा रही है। एक पल भी चैन नहीं है। प्रिय के वियोग में मेरा यौवन व्यर्थ ही बीता जा रहा है। मन को शान्ति देने के लिए पोथी-कथा एवं पुराण भी बड़ी निष्ठा से सुने। किन्तु अशांति ज्यों की त्यों बनी हुई है, रात दिन जली जा रही हूँ। तीर, तलवार एवं भाले के घाव को तो सहन किया जा सकता है। पर इश्क का घाव सहना कठिन है, जिसमें क्षण भर के लिए भी चैन नहीं है। चारों और बौराई हुई देख रही हूँ, कब प्रीतम दर्शन देते हैं। धन्य है वे सुहागिन जो अपने प्रीतम के साथ हैं। मेरी तो उनके वियोग में भूख, प्यास एवं नींद भाग गई है। पीव के लिए तड़फ रही हूँ। सूख कर पीली पड़ गई हूं। अब तो दया करो। दर्शन देकर शीघ्र ही मेरी पीर मिटा दो।[3] हे प्रिया मुझे तो तुम्हारे दर्शन की प्यास है। निरन्तर उचक-उचककर राह देख रही हूँ। पता नहीं कब दर्शन दोगे। हमें तो यहाँ तुम्हारे वियोग में विरह सता रहा है, तुम सुख से रह रहे हो। हमें तो यही आशा थी कि तुम्हारे दर्शन हो जाएँगे। किन्तु तुमने बड़ा विश्वासघात किया है। वहाँ से सन्देश भेज रहे हो कि आऊंगा। किन्तु पता नहीं कब आओगे। मुझे तो तुम्हारे दर्शन होने पर ही

---

1. इशक न कीजै हरिदास, प्रीति न करियो प्यार।
   हरी दीपक देखे नहीं प्राणपतंग भयो छार॥
   देखो प्रीति चकोर की, प्रगट मिलें अंगार।
   हरिचन्दा भया हरिदास, खबर न बूझे सार॥
   इश्क न बूझया हरिदास, प्रीति गई बरबाद।
   मीन तलफ कर मर गई, जल न दिया न दादि॥
   पी पी करे पपीहरा, पड्या कलेजे छेक।
   हरि बादर भयो हरिदास, बून्द नटेरे एक॥
   एक ओर की हरिदास, प्रीति कहाँ ठहराई।
   जल सूक्या सूरज तप्या कमल गया-कुम्हलाई॥

   हरिदास, वाणी, पृ० 32, सा० 34; 380
2. प्रीतम को पतियाँ लिखों जो प्रीतम ह्वै दूर।
   नजर न आवै हरिदास, सकल रह्या भरपूर॥

   —वही, पृ० 32; 40
3. स्वामी रामरूप जी द्वारा रचित 'मुक्ति मार्ग', पृ० 246

चैन आएगा। अब घर आ जाओ तो देर नहीं है। आखिर हूँ तो तुम्हारी ही दासी। यह जो मेरे गले तुम्हारे प्रेम की फाँसी लगी है, कुछ उसी का लिहाज रखो।[1]

उस रमैया प्रेमी के दर्शन की प्यास है, कोई बताए वह कहाँ है? यदि कोई मुझे उनसे मिला दे तो मैं उसकी दासी तक बनने को तैयार हूँ। हे सखि। यदि मुझे कहीं मेरे प्रीतम मिल जाएँ तो मैं उनको अपनी आँखों में बसा लूँगी। एक पैर के सहारे खड़ी निरन्तर मैं उनकी सेवा बजाने को तत्पर रहूँगी—बस किसी तरह वे एक बार मेरे पास आ जावें। अब तो केवल उसी से लगन लगी है और कुछ भी अच्छा नहीं लगता। सभी शृंगारादि उनके वियोग में छूट गए हैं, पल-पल उन्हीं का ध्यान रहता है। इस विरह-वेदना की तो केवल उनके दर्शन ही दवा है। कब वे दर्शन देते हैं—कब शाँति मिले। यदि वे मिलें तो दूध-पानी की तरह उनकी ज्योति में समा जाऊँगी। एक पलक का उनका विछोह भी असाह्य है। वे मिलें तभी सब कष्टों का निवारण होगा।[2] विरह में शरीर पीला पड़ गया है, वाणी ठंडी पड़ गई है और आँखों में निरन्तर उदासी छाई रहती है। प्राण रात-दिन तड़फ रहे हैं।[3] मैं मीन हूँ तुम नीर हो। प्रिय! तुम बिन जीना असम्भव है। दया करो। मेरा तन विरह में दहक रहा है।[4] तन की सुधी बिसर गई है, बुद्धि बौरा गई है। और कुछ नहीं तो पुरानी प्रीत का ही ख्याल करो। अब भी समय है, दर्शन दो।[5] विरह दाहक होते

---

1. पिया तुमरे दर्शन की प्यासी हो।।
   पैंडा ऊभी पंथ निहाराँ, कब मिल हो अबनासी हो।।
   विरह बिछोह सतावन हमको, आप भये सुखबासी हो।।
   हम जाने हरि ओड़ निभावैं, देखे बड़े विश्वासी हो।।
   शब्द सन्देश सुबाय कह्यो है, न जानूँ कब आसी हो।
   मन मोहन की मूरत देखूं, तब ही दुख सब जासी हो।।
   अजहूँ समझ घर आओ पियारे, तुम ठाकुर हो हम दासी हो।
   नितानन्द महबूब गुमानी, पड़ी प्रेम की फांसी हो।।
   —स्वामी नितानन्द कृत, सत्य सिद्धान्त प्रकाश, पृ० 455
2. स्वामी नितानन्द, सत्य सिद्धांत प्रकाश, पृ० 407-8, पद 67
3. तन पीरा सीरा वचन, और उनमने नैन।
   जिन को जक तक लग रही, नितानन्द दिन रैन फैन।।—वही, पृ० 34; 52
4. बिना मिले जीऊँ नहीं, मैं मीनी तुम बीर।
   नितानन्द पद दया करे, तुम बिन तपै शरीर।। —वही, पृ० 37; 83
5. रही न सुध सरीर में, दई बुधि बौराय।
   प्रीत पुरानी समझकर, मिलो सबेरा आय।। —वही, पृ० 37; 85

हुए भी बुराई योग्य नहीं है। क्योंकि इसके बिना 'अभी महारस भोग' प्राप्त ही नहीं किया जा सकता।[1] लो बिरह का बादल बरस गया। बिरहन तन मन से प्रक्षालित हो शुद्ध हो गई। प्रीतम प्रसन्न हो गए। बीच का पर्दा हट गया। बिरहन निःशंक हो गई।[2] अपने प्रीतम के चरण स्पर्श पर बिरहन सुखी हुई।[3]

सन्तों और सगुण भक्तों की भक्ति का प्रमुख विभेदक तत्व, संतों का सुरत-शब्द 'योग' है। वास्तव में 'सूरत शब्द योग' संतों की भक्ति का ही पर्याय है। भाव सहित नाम जाप तथा प्रेम-पगे-विरहोद्‌गार निर्गुण तथा सगुण दोनों ही प्रकार के भक्तों में समान रूप से पाए जाते हैं। किन्तु 'सुरत निरत' के आश्रय से शब्द-सिंधु का मंथन करना तथा शब्द के मूल-स्रोत तक पहुंचने में 'लाल-सुन्न' से अलील सुन्न तक आठ सुन्नों (शून्यों) का अनुसंधान कर 'नूर-तेज की गोदी' तक पहुंचना—संतों की भक्ति का अपना वैशिष्ट्य है।[4] इस सुरत-शब्द की विहंगम यात्रा का वर्णन हर कृति संत की बाणी में किया गया मिलता है। सन्त नितानन्द जी[5] इस अधर-धार

---

1. बिरहा बुरा न जानिये, बिरह बड़ाई जोग।
   बिना बिरह कहाँ पाइ ये, अभी महारस भोग।।
   —सत्य सिद्धांत प्रकाश, पृ० 47; 192
2. बरसा बादल बिरह का, कटे काल कलंक।
   नितानन्द परदा खुला, बिरहन हुई निशंक।। —वही, पृ० 47; 187
3. वही, पृ० 47; 198
4. सद्‌गुरु श्री जैतराम जी महाराज की वाणी, ग्रंथ साहिब, पृ० 34-36
5. सोई जन मस्ताना, मस्ताना, जिन पाया पद निर्बाना।।
   मगन होय चढ़ गए गगन में, अधर धार धर ध्याना।।
   लगन लाय बिसराय बिस्व को, अनहद शब्द पिछाना।। 1।।
   मानसरोवर मथ्या जुगत कर, मन उनमन ठहराना।
   मोती मुक्त उज्जल अनुभव की, करै हंस अस्नाना।। 2।।
   लक्ष कलाले चन्द्र प्रकाश, सहस्र कला से भाना।
   जगमग लगी महल के भीतर, देखे दरश दिवाना।। 3।।
   परम सुन्य में परचा हुआ, चेतन चरण समाना।
   निर्गुण सेज तेज की नगरी, दे अवगत अस्थाना।। 4।।
   वर्ष पदम दामनी दमकैं, हर हीरों की खाना।
   गम से दूर अगम से आगे, अद्‌भुत अजब ठिकाना।। 5।।
   खिल गया कमल नवल वर पाया, नित प्रति अमृत पाया।
   अमरकंद भवबंध न व्यापै, जिस घट भरम भगाना।। 6।।
   पाँच पचीस पुरी तज भाजी, जीत जिया मैदाना।
   नितानंद महबूब गुमानी, अब निश्चय कर जाना।। 7।।
   —स्वामी नितानन्द, सत्य सिद्धान्त प्रकाश, पृ० 460

की यात्रा का बड़े मनोयोग से इस प्रकार विवरण देते हैं—कि जो प्रेम भाव से अधर धार से ध्यान लगाकर, विश्व को विस्मृत करके 'शब्द' को पहचान लेते हैं वही वास्तव में मस्त संत कहलाते हैं। जो युक्ति से मानसरोवर का मंथन कर अपने अनुभव के मोती प्राप्त कर लेते हैं—उन्हीं का हंस (सुरत) मानसरोवर में स्नान कर मस्त हो जाता है। मानसरोवर के मंथन से दिव्य प्रकाश की प्राप्ति होती है। जहाँ चन्द्रमा अपनी लक्ष कलाओं सहित तथा सूर्य सहस्त्र कलाओं सहित जग-मगाते प्रतीत होते हैं। ऊपर जिस महल में सन्त पहुंचते है वह स्थान दिव्य प्रकाश से जगर मगर कर रहा है तथा सन्त जन वहाँ अपने साहिब के दर्शनकर मस्त हो जाते हैं। इस परमशून्य के महल में जहाँ साहिब से परिचय हुआ है, वह अवगत स्थान अथवा निर्गुण सेज ज्योति-स्वरूपा है। उस अगम अद्भुत ठिकाने पर निरंतर बिजली की चमक में नाना प्रकार के माणिक-मोतियों के भण्डार दृष्टि-गोचर होते हैं। इस विधि से जिस के भ्रम नष्ट हो जाते हैं उसे उस नवल-वर की प्राप्ति हो जाती है। उसका कमल (सहस्त्रदल-कमल) खिल जाता है अमृत पान कर अमर हो जाता है तथा सब भव-बंधन समाप्त हो जाते हैं। नितानंद ने भी इसी युक्ति से अपने पाँच शत्रुओं तथा पच्चीस प्रकृतियों को वश में कर मैदान मार लिया है। इनके एक अन्य पद में भी सुरत के जागने तथा मगन होकर गगन में चढ़कर अनहद बंब बजाने का विवरण मिलता है।[1] संत रामसिंह 'अरमान' की साक्षी इस प्रकार है—'भाइयों सुनो। शब्द योग बड़ा अद्भुत साधन है। जब साधक गुरु की दया से तथा साध के सत्संग से अपनी सुरत उलटकर ध्यान धरते हैं तो वहां मुक्ति भी छोटी पड़ जाती है। इस मार्ग में लाखों चन्द्रमा तथा करोड़ों सूर्यों का प्रकाश दिखता है, यह करनी का मार्ग है, वाद विवाद में बचकर में अपने भीतर का सूक्ष्म वेद पढ़ना है। इसीलिए यह अद्भुत निर्बानी पद है।[2]

---

1. सत्य सिद्धान्त प्रकाश, स्वामी नितानंद कृत, पृ० 461 ; 165
2. शब्द योग है अद्भुत साधन, सुन लो भाई बानी।
   वेद शास्त्र घट में बसते, घट की अजब कहानी ।। 1 ।।
   सुरत उलट कर चढ़ गगन में, ध्यान धरे जब ध्यानी।
   गुरु की दया और साध की संगत मुक्ति भरे वहाँ पानी ।। 2 ।।
   लक्षकला ले चन्द्र प्रकाश; कोटि कला ले माना।
   वाचक भेद नहीं वाका जाने, छोड़ों खैंचा तानी ।। 3 ।।
   क्या कहूं कहने की नाहीं; आपे में आप समानी।
   वाद विवाद नहीं कुछ प्यारे, जिन देखी तिन जानी ।। 4 ।।
   सूक्ष्म वेद पढ़ों घट भीतर, न्यारी है राम कहानी।
   रामसिंह गुरु शिवव्रतलाल हैं, यह पद है निर्बानी ।। 5 ।।
   —मास्टर रामसिंह 'अरमान', अरमान सागर, पृ० 120, पद 50

सन्त हरदेदास बाबलीवाले अपनी सुरत (सुरति) को समझाते हुए कहते हैं कि—'हे मेरी सुरत रूपी मछली सुनो। तुम्हें यम की मार से बचने की युक्ति बतलाता हूं। शब्द सिन्धु में गोता लगाकर निर्गुण महल देखो। उल्टी संसार की ओर न मुड़कर शब्द में समाओ। अपने हंस-स्वभाव को पहचानो। विषय वासनाओं से बचकर नाम के मोती चुगो। तुझे तो उल्टे मार्ग से होकर अपने शून्य शिखर-स्थित महल में पहुंचना है, वही तेरा मूल-स्रोत है। मेरा कहना मानकर सांसारिक विषयों से बचकर चलो तेरा आवागमन का चक्कर मिट जाएगा।[1] संत हरिदास का कहना कि—'भक्त जब हरि प्रेम में विरह के आंसू बहाते हैं तो वे गंगा जल से पवित्र होते हैं जिनमें स्नान कर भक्त शुद्ध हो जाते हैं। हृदय कमल का अमृत-स्रोत वह चलता है। पलकों से प्रेम के आँसू झरने लगते हैं जिससे सारे पाप कर्म धुल जाते हैं तथा भक्त कर्म-फल से मुक्त हो जाता है। जब त्रिकुटी में मन, पवन तथा सुरति की तारी लगती है तो स्थिरता आ जाती है। यह काया ही कुरुक्षेत्र के समान महातीर्थ बन जाती है। इस प्रकार हरि रूपी तीर्थ का माहात्म्य प्राप्त हो जाता है तथा फिर जन्म लेकर संसार में नहीं आना पड़ता।[2]

---

1. सुन सुरत मछलिया है, जम जामिल से तने बचाऊँ।।
शब्द सिंघ में गोता लाले, निर्गुण महल दिखाऊँ।
उलटी कदे ना मुड़कर झाँके, शब्दैं माँही समाऊँ।।
काग-पणे की बाँण छोड़दे, हंसा तोह बणाऊँ।
विषै मास कूँ त्याग-पियारी, मोती तोहे चुगाऊँ।।
सुनं सिषर में घर है तेरा, उल्टी बाट चलाऊँ।
जहाँ सेती तू पड़ी बावरी, तहाँ ही ले चढ़ाऊँ।।
हरदेदास तूं मान पियारी, तोको बोह समझाऊँ।
काम, क्रोध का संग छाड़ दे, जामन मरन मिटाऊँ।।

—हरदेदास, हृदय प्रकाश, पृ० 371, पद 24

2. हरिजन नैन नीर भई गंगा।
प्रीति सहित विरही जन झूलैं तहाँ परवाले अंगा।।
उर में कवल कुलाबा खूल्या, छूटे पलक फुहारे।
कर्म कलंक झड़ैं सब कुसमल, गलत भए गुण सारे।।
मनअर पवन सुरति भई सामिल, त्रिवेणी तट फूले।
पाँचों भई पच्चीसों अस्थिर, विषय वासना भूले।।
भगति हेत उपदेश दाँव देहि, कुरुक्षेत्र भई काया।
हरिदास हरितीर्थ परस्या, बहुरिन पूठा आया।।

—हरिदास वाणी, पृ० 93; पद 5

संतों का सुरति-शब्द-योग योग-क्रियाओं का आश्रय भी लेता है। संत रामरूप एक पद में संयम धारण करके प्राण अपान वायु की सन्धि का उल्लेख करते हुए योगियों की मूचरी, चाचरी, खेचरी, अगोचरी, तथा उनमनी मुद्राओं का साधन कर सुरति शब्द की गाँठ लगाकर दशम द्वार पहुंचने का उपदेश देते हैं। झूठी मुद्रा का त्यागकर इन पाँचों मुद्राओं के धारण करने से तथा ज्ञान की जटा बढ़ाने से ही जीव ब्रह्म की दुई (द्वैत) मिटती है।[1] संत जैतराम भी जीव-ब्रह्म के ऐक्य के लिए स्वाँस की साधना अर्थात् प्राणायाम को आवश्यक मानते हैं।[2] 'प्राणायाम' तथा 'प्राणायाम के भेद'[3] से भी सुरति शब्द साधना का योग पर होना ही प्रकट होता है। इन दोनों शीर्षकों के अन्तर्गत जैतराम जी की बाणी में विस्तृत रूप से विचार किया गया है। संत गरीबदास भी सुरत-शब्द साधना को योग से समन्वित करते हुए प्रतीत होते हैं जब वे सुरत निरत के अधर पंथ में पग धरने के साथ उलटखेचरी (मुद्रा) लगाने

---

1. गगन मण्डल में अलख जगावरे।
जब जोगी जानूँ मैं तोकूँ, सुन सिखर पर जा मंठ छाव रे।।
पहले संजम साध जुगत तूँ, प्रान अपसन की सन्ध मिलावरे।।
भूचरी, मुद्रा जासूँ कहिए, कमल कमध पर पव चढाव रे।।
चाचरी मुद्रा नैन मंझारी, दिष्ट नासिका पै ठहराव रे।।
अचरज कौतुक बहु दरसावै, रिद्धि सिद्धि लखि कर ले चावरे।।
खेचरी मुद्रा रसन बढ़ावै, भंवर गुफा में जाप फिरावरे।।
अमृत उतरे पीव मगन हो, जोति खुले जहाँ दर्शन पावरे।।
अगोचरी मुद्रा श्रवण बासा, शब्द-सुरति की गाँठ लगाव रे।।
परम हंस अनहद कूँ जानो, अनहद मिल अनहद हो जावरे।।
उन्मनी मुद्रा दशमें द्वारे, लगे समाधि सकल बिसराव रे।।
सिद्ध साधक दोऊ करनी त्यागें, रहे न कोई दूँजा भाव रे।।
पाँचों मुद्रा ये तुम पहिरो, झूठी मुद्रा खोल बगावरे।।
ज्ञान जटा शिर ऊपर राखो, मुक्ति पंथ को मन से धावरे।।
या साधन कूँ कर हित सेती, जीव ब्रह्म की दुई मिटावरे।।
रामरूप चरणदास कहते हैं, तब जोगेश्वर साँच कहाव रे।।
—स्वामी रामरूप कृत मुक्तिमार्ग, पृ० 256 ; 57 ; पद 79

2. स्वाँस संभालो रैन दिन, जो तुझ मिलना पीव।
स्वाँस संभाले ब्रह्म है; बिना संभाले जीव।।
—ग्रंथ साहिब, श्री जैतराम जी की बाणी, पृ० 36 ; दोहा-1

3. वही, पृ० 320

तथा कलश कुंभा (कुंभक प्राणायाम) भरने की बात करते हैं।[1] इनकी बाणी में अनेक स्थनों पर इस प्रकार के योग-परक विवरण मिलते हैं। संतों की भक्ति में सबसे महत्वपूर्ण स्थान गुरु को दिया जाता है। गुरु तो गोबिन्द से भी बड़े हैं। क्योंकि गोबिंद ने तो आत्मा को भव-बन्धन में डाल दिया, जबकि गुरु इस जीव को मुक्त करने वाले हैं।[2] सत्गुरु-शब्द का सन्देश सुनकर सभी भ्रम तथा दुःख द्वन्द्व समाप्त हो जाते हैं और सहज ही साँई के देश में प्रवेश हो जाता है।[3] इस संसार-सागर में सतगुरु जहाज के समान तारक हैं। इनकी संगति बिना मान-मर्यादा वश व्यर्थ ही यहाँ डूब जाते।[4] गुरु पहचान कर ही धारण करना चाहिए। संसार में कामी, क्रोधी तथा लोभी गुरु तो अनेक मिल जाएंगे। वास्तव में गुरु तो वही है जो अमरपुरी पहुँचा दें।[5] सतगुरु के सत्संग से तन-मन पूर्णतया बदल जाते हैं। उनके दर्शन से कीट भृंग बन जाता है।[6] भक्ति भाव के सातत्य के लिए सत्संग अनिवार्य है। तथ्य तो यह है कि सत्संग ही भवसागर पार करने की एक-मात्र नाव है। मुक्ति का अन्य मार्ग नहीं है और आप कितने ही उपाय करें।[7] इसी से सुख मिलता है। भक्ति एवं ज्ञान का प्रकाश भी सत्संगति द्वारा ही पाया जा सकता है।

---

1. सुरत निरत का पन्थ, अधर में पग धरना।
तन मन सीस चढ़ाय, सही जीवित मरना॥
उलट खेचरी लाय, कलश कुँभा करना।
चित्त चाँचरि दिल मांहि, दरस दूलह करना॥
कहने की नहीं बात, जहूर अजर जरना।
अकल अर्पिडी प्राण, पिंड किसका भरना॥
मंगल बिद्या सुन्न सैल, उलट पहुमी परना।
सुरत निरत मन पौन, भजन कीजै करना॥
गरीबदास गलतान, पुरुषसाहिब बरना॥
—ग्रं० सा०, श्री गरीबदास जी की बाणी पृ० 806

2. नितानन्द गोबिन्द से सत्गुरु हैं अधिकार।
गोबिंद बाँध्या जीवड़ा, गुरु छुड़ावनहार॥
—स्वामी नितानन्द कृत सत्य सिद्धान्त प्रकाश, पृ० 7 ; 73

3. वही, पृ० 10 ; 100
4. वही, पृ० 10 ; 103
5. वही, पृ० 11 ; 113
6. वही, पृ० 11 ; 119
7. वही, पृ० 209 ; 33

सत्संग के बिना आज तक किसी का उद्धार हुआ नहीं।[1] सत्संग के महत्व को जतलाने वाले उद्‌गार प्रायः सभी सन्तों की बाणी में उपलब्ध हैं जिससे संतों की भक्ति में सत्संगति का माहात्म्य स्पष्ट हो जाता है।

सन्तों की इस प्रेम-साधना के आदर्श प्रेमी युगल नहीं हैं। इसके आदर्श हैं शूर और शती।[2] सती के समान ही सन्त भी अपने साईं में एकनिष्ठ होते हैं। तन-मन-धन सब को न्यौछावर कर उस एक परमपुरुष से लग रहो। साँई (भरतार) के हुक्म को शिरोधार्य करो।[3] मेरा तो एक ही साहब है। मुझे अन्य किसी से कुछ वास्ता नहीं है। यदि मैं अपने साँई को छोड़कर किसी अन्य के प्रति निष्ठा दिखलाता हूँ तो चौरासी का चक्कर तैयार है।[4] सती सी दृढ़ निष्ठा होने पर साँई रीझता है। इसी से सन्तों के लिए सती मैले वेश में भी वन्दनीय है जो बिना आभूषणों के ही हर रूपी हीरे के कारण ही जग में सम्मान पाती है।[5] इस नाम के प्रति निष्ठा के ही कारण कलि काल में पवित्रता और वैष्णव दो ही वन्दनीय हैं।[6] पतिव्रता और संतजन ये दोनों ही खांडे की धार पर चलने वाले हैं। दोनों का ही मार्ग बड़ा कठिन है। अपने पीव मिलन को ये शरीर का लालच नहीं करते।[7] जैसे पतिव्रता की एकनिष्ठ प्रीत अपने पति से लगी रहती है उसी एक निष्ठ एवं गोपनीय भाव से सन्त भी अपने साँई की प्रीत में रचे-पचे रहते हैं।[8]

पतिव्रता की दृढ़निष्ठा जैसा ही सन्तों को आकर्षित करने वाला दूसरा गुण, शूर का शौर्य है। जिस प्रकार सच्चा शूर रणक्षेत्र में सिर-धड़ की बाजी लगाता है, उसी प्रकार सन्तों को भी काल-कटक से झूझने के लिए कोई कम शौर्य की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसी से सन्तों को शूर अपना सबसे अधिक सगा प्रतीत होता है।

---

1. सतसंगत सुख देत है, भक्ति ज्ञान प्रकास।
   नितानन्द वे क्यों तिरैं। जहाँ न हरके दास॥
   —वही, पृ० 210; 41
2. डा० राजदेव सिंह, सन्त-साहित्य : पुर्नमूल्यांकन, पृ० 266
3. स्वामी नितानन्द, सत्य सिद्धांत प्रकाश, पृ० 91; 13
4. वही, पृ० 91; 12
5. पतिव्रता मैले बसन, नहीं अभूषण अंग।
   सब जग में जगमग करे, हर हीरा के संग॥—वही, पृ० 93; 33
6. प्रतिव्रता और बेशनूं, कलि में उत्तम कोम।—वही, पृ० 94
7. पतिव्रता और संतजन, धरे धाम पर पाँव।
   तन का लालच त्यागकर, मिलें निरंजन राव॥—वही, पृ० 95; 53
8. पतिव्रता की पति सों, सदा निरन्तर प्रीति।
   कहि न जनावे और को, यह सन्तन की रीति॥—वही, पृ०, 97; 83

शूर वही सराहनीय है जो अपने साँई के काम (भक्ति हेतु) से लड़ता है और काम, क्रोधादि शत्रुओं को जीतकर निरंजन-धाम को प्राप्त करता है।[1] जिस प्रकार शूर संग्राम में पीठ नहीं देता उसी प्रकार साधना-संग्राम में यदि भक्त का सिर भी जाता है तो जाय।[2] इस संसार में हरि-भक्ति करना खड़क की धार पर चलने जैसा ही दुष्कर कार्य है। केवल शूर-साधक ही इसमें पूरे उतरते हैं।[3] रण-क्षेत्र में बम्ब बज रहे हैं, नभ में घनघोर गर्जना हो रही है—अस्त्र-शस्त्र टकराने के कारण। ऐसे में कोई साधक-शूर ही सम्मुख वार झेलते हैं। विषयी चोर तो पलायन कर जाते हैं।[4] प्राणों की बाजी लगाने वाले, सम्मुख बार झेलने वाले शूर-साधक ही अपने धनी को रिझा पाते हैं। सिर-धड़ की बाजी लगाने वाले ही सच्चे शूर होते हैं।[5] वही शूर-साधक ही साहब के महल का आनन्द ले पाते हैं जो प्रसन्न भाव से अपना सिर सौंपते हैं। वही अमोल वस्तु को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।[6]

सन्तों की भक्ति का स्वरूप स्पष्ट करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है कि श्रवण-कीर्तन आदि प्रकार भी उपलक्ष्य भर ही हैं। भक्ति के लिए केवल एक ही बात आवश्यक है—अनन्य भाव से भगवान की शरणागति, अहैतुक प्रेम, बिना शर्त आत्म-समर्पण।[7] इसी सन्दर्भ में डा० राजदेव सिंह का कहना है कि दास्य सन्तों का महा भाव है। अन्य भाव उसी के अनुगत और अनुवर्ती हैं।[8] हरियाणवी संतों में भी यह दास्य भाव चरम परिणति के रूप में प्राप्त होता है। खसम निरंजन राय के प्रेम की डोरी गले में पड़ी हुई है। उसके प्रसाद का टुकड़ा

---

1. शूरा सोई सराहिए, लड़ै धनी के काम।
   कामक्रोध को जीतकर, मिलें निरंजन धाम।।—वही, पृ० 291; 4
2. चढ़े शूर संग्राम को, धरै न पीछे पाय।
   नितानंद हरपंथ में, जो सिर जाय तो जाय।।—वही, पृ० 292; 7
3. भक्ति दहेली राम की, दुर्लभ इस जग माँहि।
   नितानन्द धारा खड़ग, शूरा लम्ब लम्ब जाँहि।।—वही, पृ० 292; 14
4. वही, पृ० 294; 38
5. वही, पृ० 296; 55
6. शूरा साहब के महल, निशि दिनि करे कलोल।
   मगन हुवै सिरे सौंपकर, पाई वस्तु अमोल।।—वही, पृ० 297; 64
7. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर : पृ० 147
8. डा० राजदेव सिंह, सन्त-साहित्य : पुनर्मूल्यांकन, पृ० 273

पाने के लिए उसके आगे पूँछ हिलाते रहते हैं (पालतू कुत्ते की तरह)।[1] तुम दाता एवं करुना सिंधु हो। मैं याचक हूँ। भक्ति की भीख दो।[2] मुझे अपने कृतित्व पर जरा भी भरोसा नहीं है। अपार अवगुण हैं। हे समर्थ स्वामी! मुझ पर कृपा करो।[3] हम कभी भी कुछ नहीं कर पाए हैं और अब भी हमें अपनी करनी पर भरोसा नहीं है। हे निरंजन राय! आप ही एक मात्र कर्त्ता हैं।[4] केवल तुम्हारे चरण-कमल का ही सहारा है। मेरा और कोई आश्रय नहीं है। तुम ही सम्भालो और भवसागर से पार लगाओ।[5] दैन्य, दास्य एवं आत्म समर्पण के भाव प्रायः सभी सन्तों की बाणी में प्रचुरता से उपलब्ध हैं।

सन्त-साहित्य के अध्येता से यह बात छिपी हुई नहीं है कि सन्त प्रायः गृहस्थ हुए हैं। जीव की विवशता तथा जगत की वास्तविकता के ये सभी भुक्तभोगी रहे हैं। इसीलिए ये कथनी से करनी पर अधिक बल देते हैं। विचार से आचार इनके लिए अधिक महत्वपूर्ण है। जीवन के प्रति इनका समन्वित सा दृष्टिकोण रहा है। ये केवल 'ठाले-बैठे' भजन करने में विश्वास नहीं करते। सभी सन्त (एक-आध अपवाद को छोड़कर) श्रम-धर्म के प्रति आग्रहशील रहे हैं। शुद्ध आचरण (शील) के पक्के पक्षधर हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, निंदा, अविश्वास, झूठ, हिंसा, कुसंगति, कृतघ्नता आदि बाधक तत्वों पर पूरे 'अंग' (प्रकरण) अपनी 'बाणियों' में सन्तों ने लिख डाले हैं। इन सभी से बचने के लिए सन्तों ने पूरी कोशिश की है जो इनकी आचार-निष्ठता का पक्का प्रमाण है। सन्तों की दृष्टि में साधक को आचार-विचार, कथनी-करनी, तन-मन तथा बाहर-भीतर से शुद्ध होना चाहिए—तभी वह साँई रीझता है।

---

1. पावे टूक प्रशाद का, आवें पूछ हिलाय।
   गल में डोरी प्रेम की खसम निरंजन राय॥—स्वामी नितानन्द, सत्य सिद्धांत प्रकाश पृ० 94; 47
2. तुम दाता हम मंगता। दया सिन्धु दातार।
   भक्ति भीख निज दास को, दीजै बारंबार॥—वही, पृ० 329; 6
3. करणी का किरका नहीं, अवगुण बहुत अपार।
   नितानन्द को बख्श लो, समरथ सरजनहार॥—वही, पृ० 329; 11
4. हम कुछ कदे न कर सके, अब कुछ किया न जाय।
   करन करावन एक तुम, पुरुष निरंजन राय॥—वही, पृ० 331; 27
5. चरण कमल के आसरे, और नहीं आधार।
   नितानन्द भवसिंध से, पकड़ उतारो पार॥—वही, पृ० 333; 55

अध्याय 2

हरियाणवी सन्तों की ब्रह्म-कल्पना

'सन्तों' को उनका पारिभाषिक एवं विशिष्ट स्वरूप दिलवाने में उनकी 'ब्रह्म' सम्बन्धी कल्पना का बड़ा हाथ है। 'निर्गुण-मार्गी, निर्गुणी, निर्गुणिया' तथा 'निर्गुण मतावलम्बी' के रूप में इनका वैशिष्ट्य इनकी ब्रह्म सम्बन्धी धारणा ही है। सन्त निर्गुण ब्रह्म के मानने वाले हैं। उनका निज कंत निर्गुण है।[1] उनका वार, पार, आदि, मध्य तथा अन्त नहीं है। जिसका निर्गुण, निर्मल तथा शुद्ध स्वरूप है वही पूर्ण ब्रह्म समझना चाहिए।[2] जो उसे देखता है वह उसके विषय में मौन हो जाता है, कुछ कहता नहीं, कहने वाले के लिए वह अदेख है तथा सुनने वाले को वह सूझता नहीं—इसे अलेख नाम से जानते हैं। वह पीव पुरातन पुरुष है।[3] उसके पेट पीठ तथा कोई द्वार (इन्द्रिय) भी नहीं है। वह हल्का भी नहीं है, भारी भी नहीं है। वह पुरुष भी नहीं है, नारी भी नहीं, वह न हिन्दू है न तुर्क है। उसका मूल्य

---

1. निर्गुण निज कन्ता रे।
   गरीब बार पार उहाँ नहीं है, आदि अन्त नहीं मध्य।
   —ग्रन्थ साहिब, श्री गरीबदास जी की वाणी, पृ० 389; 850
2. पूर्ण-ब्रह्म विचारिए, निर्गुण निर्मल शुद्ध ।।—वही, पृ० 149; 115
3. वही, पृ० 149; 117

(मोल) भी है और वह अमोल भी है। उसकी गति बड़ी विचित्र है।[1] वह दीन= बेदीन है, वह प्रवीण परमपुरुष अविनाशी है तथा उनका आसन स्थिर है।[2]

उस निर्गुण ब्रह्म-विशेष्य के अनन्त विशेषण हैं। वह अजर, अमर, अस्थिर, धीर, अगाध, अनाहद, अडोल, अबोल, अथाह, अनील, अयोनि, अशून्य, अजीत, अपार, आधार, उच्चार, विचार, अलेख, अदेख, अभेष, नेस, नामून, बेचून, बेजून, शौकीन, सुभान, सुजान, अजान, अजोख, अथक, अभक, निशक, अलख, निरोष, अजात, बेजात, सुजीव, सुनाथ, अनाथ, हिरम्भ, असभ्य, अचम्भ, अकाल, अजाल, निराल, विशाल, निसंक, निबंध. निअंछ, अनूप, अरूप, अभूप, अभंग, अदत, अकथ, अपथ, सुकथ, विसंग, विनोद, अशोध, अमोघ, अचाह है। उसका नाम, गाम, ठाम कोई नहीं। उसका न कोई ज्ञान है न ध्यान है, न मान है न विहान है, न दुःख द्वन्द्व है। वह दयाल, रसाल, निहाल, दलाल, उमर, अतीत, नकील अकील, उजील, खुरजी, वनजी, निरजी, निर्भय, उद्दीन, बे-दीन, खुदीन, सुबीन इत्यादि सब कुछ हैं।[3]

वह ऊँ शब्द स्वरूपी अनादि, अगाध, तत्व है जिससे सारी सृष्टि का जन्म हुआ। वह निश्चय-निराकार, निर्गुण, अपार तथा निरपेक्ष आकाश निवासी तत्व है। वह रूप, रेख, धूप तथा छाया से रहित है। वह थान (स्थान) मान, ज्ञान, तथा ध्यान से रहित है। वह लेखक तथा वक्ता भी नहीं है। न वह वेद पुराण ही अपने पास रखता है। वह ताल, ख्याल, माला तथा मेले से भी रहित है। न वह जन्मता है न मरता है। न वह गुरु है न चेला। वह काया, छाया, माया तथा मूल रहित है। वह शाख, वृक्ष, पत्र तथा फूल भी नहीं है। न वह वृद्ध है न बालक। वह विशाल है न पीत है। वह प्रीतम निश्चल तथा निराकार रहता है। उसे किसी कर्म, भ्रम, शंका तथा भय से भी कुछ लेना-देना नहीं है। उसका लेखा-अलेख है, करनी-भरनी से परे है। वह जीव अथवा सीव (शिव) भी नहीं हैं। काल-जाल, योनि-भय, तथा यम-यन्त्रणा से रहित है। वह देवी, दुर्गा, भैरों, भूत, मसानी,

---

1. गरीब पुरुष पुरातन पीव है, पीठ, पेट नहीं द्वार।
   हल्का कहूँ तो मौं नहीं, भारी कहें न मार॥
   पुरुष कहूँ तो नारि है, नारि कहूँ तो पुरुष।
   हिन्दू कहों तो यों नहीं, तुर्क कहूं नहीं तर्क॥
   गरीब मोल कहे अमोल है, अमोल कहें से मोल।
   सब गति में हैरान हैं, सतगुरु पड़दा खोल॥
   —श्री गरीबदास जी की वाणी, ग्रन्थ साहिब' पृ० 148; साखी 94-96
2. वही, पृ० 148; 97
3. वही पृ० 428-29, साखी 34-47

भवानी, प्रानी तथा दूता—कुछ भी नहीं है। वह धाम, द्वारा, भंडारा, पसारा तथा जाती (जाति) से रहित है। वह देव भी नहीं है जो सेवा, पूजा, पाती का इच्छुक हो। वह शेष, महेश, गणेश तथा गोरा भी नहीं है। हंस, कंस, कँवल तथा भौंरा कुछ भी नहीं है। ब्रह्म, वेद, विष्णु तथा बाणी भी वह नहीं है। वह निर्गुण बिनानी निरालम्ब रहता है। वह कच्छ, मच्छ, धौल, धरणी, पाताल, मृत तथा स्वर्ग भी नहीं है। वह नाद, बिन्द, पवन, दानी भी नहीं है। वह अचल तत्व तो निरालम्वन है। कर्म, धर्म, पाप, पुण्य, शून्य, बसती भी वह नहीं है। वह अचल तत्व तो स्थिर है, न हल्का है न भारी है। नाद, तूर, मुरली, शंख, भी वह नहीं है। वह अभय तत्व अगेह है पर अजब देश का निवासी भी है। वह खट्टा, मीठा, फीका, खारी, हिन्दू, तुर्क, पुरुष और नारी कुछ भी नहीं है। न खाता है, न पीता है। न सोता है, न जागता है। वह अचल तत्व निरन्तर निर-आश राम में रत्त है। वह निराकार देव न हारता है, न जीतता है। न लेता है, न देता है और न ही किसी का केवट है। उसकी सेली, सींगी, मुद्रा तथा कान करूवा, करूवा, भेष एवं बाना भी कोई नहीं है। पुष्प-गंध जैसा सूक्ष्म तत्व है। न वह बैठता है, न उठता है न ही राम चलता है। कुरान, पुराण, साखी, चरचा, मारन, तारन तथा प्राण-परचा सभी से रहित है स्वाँति, सीपी, हंस, मोती वह कुछ भी नहीं है। वह तो अगम नूर की झलकती हुई अजह ज्योति है। वह निराकार, निर्गुण सदा ही निराला है। न ही शून्य है, न शक्ति और न प्रेम का प्याला ही है। सभी के साथ रहता है और सभी से न्यारा भी है। न उसका कोई आदि है और न अंत है। वह तो अनूप अपार तत्व है। वह न कहीं आता है न जाता है न ही ध्याता है। उसे ऐसा ही निरालम्ब सोहं तत्व जानो। वह तो गैबी नूर है, असंख कोटि जिसकी किरणें हैं। न वह नाचता है, न काछता है, न कोई उसका भेष है, न वर्ण है। धीर, गम्भीर भी नहीं है, इच्छा और अचाही भी वह नहीं है। न वह किसी की माता है, न पिता है। भाई-बन्धु भी वह किसी का नहीं है।'''गुरु द्वारा दिए गए भेद से उस अजर तत्व में नजर में ही पा लिया।[1]

सन्त नितानन्द जी ब्रह्म सम्बन्धी अपनी धारणा व्यक्त करते हुए कहते हैं कि—उस निरंजन देव का सुमरन करना चाहिए जो सभी देवों के देव हैं। उस अलख के भेद को सूर, नर, देवी, देव कोई नहीं जान पाया। वह ज्योति रूप भगवान प्राणों के दाता पुरुष हैं। वह पूर्ण हैं, परमनिधान है, ज्ञान-विज्ञान के विधाता हैं। नाम रूपी कँवल में निवास करते हैं, वे आदि नारायण स्वामी हैं। सभी जीवों के प्राण हैं, सकल घट अन्तर्यामी हैं। वह अलख, ईश, जगदीश—सकल जलथल में

---

1. श्री गरीबदास की वाणी, ग्रंथ साहिब, पृ० 429, विज्ञान स्तोत्र, साखी 1-31 द्रष्टव्य।

पूरित है। ब्रह्म व्यापक एवं अगाध है। न निकट है न दूर है। सनकादिक, सुखदेव, नारद, मुनि, ज्ञानी, तथा सभी भवनों के प्राणी रात दिन उसका ध्यान धरते हैं। ब्रह्म, शंकर, शेष तथा रूद्र नित्य उसका ध्यान लगाते हैं। फिर भी वह गुणातीत गोबिन्द त्रिगुण-दृष्टि से परे ही रह जाता है। धरती, जल, अग्नि, पवन, गगन, प्रकाश, रवि, चन्द्र, तथा तारागण उसके दास हैं सिद्ध समाधि लगाकर तथा तपीश्वर, मुनीश्वर, ऋषि ध्यान लगाकर भी उसका रहस्य नहीं पा सकते। चारों ही वेद अपार अपार कहकर उसका परिचय देते हैं। वे चकित हैं, उस अवगत, अधर अधार का क्या कहकर परिचय दें।[1]

ब्रह्म के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए नितानन्द जी आगे लिखते हैं कि—जिस प्रकार आकाश में सब कुछ समाया है और सभी में आकाश समाया है, इसी प्रकार वह ब्रह्म सभी के घट में विलास करता है और सभी उसमें विलसते हैं। वह चैतन्य ज्योति स्वरूप ब्रह्म शून्य में रहकर जड़ माया का संचालन करता है। यह जगत ब्रह्म-तरु की छाया उसी प्रकार है जैसे जल से तरंग उपजती है। वह दृष्टि मुष्टि से दूर है, उस तक मन, बुद्धि की पहुँच नहीं है। वह सभी में विराजता है और सब उसी में निवास करते हैं। वह अशरीरी है, रूप, रेख तथा रंग उसका कोई नहीं है। कोई भी उसको चरम-चक्षुओं से देखने में समर्थ नहीं है—दिव्य-दृष्टि चाहिए।[2] वह सदा एक रस रहता है, अचल तथा अनन्त है। जगत-प्रवाह से भिन्न सदा सत-चित् व्यवहार करता है अनेकों रूप धारण करता है। सिन्धु में जैसे अनेक तरंगे उठती-गिरती रहती हैं, वह शान्त ही रहता है। सिन्धु में नीर-तरंग की तरह सभी जड़-चेतना का प्रेरक है। पर कर्म-फल से अतीत है। सारी सृष्टि उसके चैतन्त तत्व से ही चेतन है। ऐसे ही जैसे दीपक से मन्दिर प्रकाशित रहता है। जिस प्रकार रवि-किरणों से पंकज विकसित हो जाते हैं इसी प्रकार उसी के दम से सब चेतन हैं। वह स्वयं अडिग, अडोल है, जगत कर्म-वश गतिमान है। उसी का चैतन्य सकल पिंड, ब्रह्माण्ड में समाया हुआ है। फिर भी सदैव, तीनों कालों में अनमिल रहता है (अलिप्त है)। इस भेद को वह जान सकता है जो उनमें समा गया हो।[3]

यद्यपि वह अलिप्त है। फिर भी सारी सृष्टि का कर्त्ता है। वही सब का सृजनहार है, भरण-पोषण करता है और संहार भी वही करता है। सब कहीं वह आप ही आप विद्यमान है और कोई है ही नहीं। वह निर्लेप गुणातीत स्वयं ही नाना

---

1. स्वामी नितानन्द, सत्य सिद्धान्त प्रकाश, पृ० 338, ब्रह्मस्तोत्र सा० 1-90 द्रष्टव्य।
2. वही, पृ० 339, साखी 10-13 द्रष्टव्य
3. वही, पृ० 339-40; 14-20 द्रष्टव्य

रूप धारण करके सगुण बन जाता है। सभी रंग उसी के हैं, वह बहुरंगी होने के साथ-साथ निःरंग भी हैं। सभी के साथ अनमिल सा होकर मिला हुआ है। जो कुछ स्थूल, सूक्ष्म, आकार नजर आता है, उसको प्रकट करने वाला वह अवगत करतार ही है।[1]

सन्तों के ब्रह्म का स्वरूप करते हुए डा० राजदेव सिंह का कथन है कि—'साफ है कि सन्तों का राम न. ज्ञानियों का अद्वैत ब्रह्म है, न भक्तों का सगुण ब्रह्म। वह इन दोनों के बीच का है। वह अद्वैत सत्ता है लेकिन, प्रेम का अविषय नहीं है। दया-माया से हीन नहीं है।[2] भक्त उसको जिस रूप में उससे नाता जोड़ना चाहता है, वह उसी रूप में दर्शन देता है। जो उसे पिता समझ कर उसकी भक्ति करते हैं, उनको वह हरि पिता के रूप में स्नेह देता है।[3] 'जो उसे अपना सजातीय समझकर भजन करते हैं वह उन्हें अपनी जाति में मिला लेता है। जो सखा भाव से भजते हैं। वह उन्हें अपना पक्का सखा बना लेता है और कभी अपने से अलग नहीं करता।[4] वह सबकी चिन्ता करता है। जितने भी जीव उसने पैदा किए हैं, सभी का भरण-पोषण वह करता है। हाथी को मन (40 सैर) तथा चींटीं को कन (कण) देता है। उस गुसाई को सभी का ख्याल रहता है।[5]

बास्तविकता तो यह है कि सभी में उसी गुसाई का ही आत्मा के रूप में प्रकाश है। सब कहीं हैं। जो भी जीवन धारण करते हैं, सब समान है। साई भी किसी से न्यारा नहीं है। आत्मा और परमात्मा में, जीव तथा ब्रह्म में कोई अंतर नहीं है।[6] जड़ चेतन में भी कोई भेद नहीं है। क्योंकि पिण्ड ब्रह्माण्ड में, सभी में वह समाया हुआ है।[7] जल-बुदबुदा अथवा जल-ओला की तरह, मृतिका और उससे बने अनेक पात्रों की तरह तथा स्वर्ण और उससे बने आभूषणों की तरह—

---

1. स्वामी निरानन्द, सत्यसिद्धान्त प्रकाश, पृ० 340-41; 21-28 सा० द्रष्टव्य
2. डा० राजदेव सिंह, सन्त साहित्य : पुर्नमूल्यांकन, पृ० 120
3. सत्य सिद्धान्त प्रकाश, पृ० 343; 58
4. वही, पृ० 343; 59-60 सा०
5. कुँजर को मन देत, और कन कीड़ी ताई।
   सब ही की सुध लेत, नहीं बिसरे सो गुसाई॥
   —सत्य सिद्धान्त प्रकाश, पृ० 342; 39
6. जो जिए धरे विमोहि, ओही में भेद न कोई।
   परमात्मा सु मिल, आत्मा कदे न होई॥ —वही, पृ० 344; 62
7. चेतन सब ही भाँति, और जडहू नहीं न्यारा।
   सब कुछ रह्या समाय, पिण्ड ब्रह्माण्ड पसारा॥ —वही, पृ० 344, 65

सभी में सार वस्तु तो एक ही है भाव रूप का भेद मात्र है।[1] सारी सृष्टि में ब्रह्म नाना रूप—नाम धारण कर खेल रहा है। सकल में उसी की माया खेल रही है। ब्रह्म ही अपनी माया के नाना रूप धारण कर खेल रहा है। रूप बनते बिगड़ते—रहते हैं जल-बुदुबुदों की तरह। अन्त में हरि रूपी सिन्धु एकाकी एवं स्थिर ही रहता है।[2]

उस पूर्ण ब्रह्म को देखने के लिए पूर्ण दृष्टि चाहिए। अद्वैत को द्वैत-दृष्टि कैसे देख सकती है? अज्ञान वश संसार भ्रम में पड़ा हुआ है। जिस प्रकार दृष्टि रोग से गगन में दो दो चन्द्रमा दिखाई देते हैं इसी प्रकार अज्ञान के कारण आत्म परमात्मा को हम दो करके देखते हैं। जब नयन निर्दोष हो जाते हैं तो हर स्थान पर परमात्मा के दर्शन होने लगते हैं।[3] अज्ञान-तिमिर दूर होने पर सब एक ही दिखाई पड़ने लगता है द्वैत मिट जाता है। सारी सृष्टि एक हो जाती है, पाला गलने पर नीर ही नीर हो जाता है।[4] ऐसे सर्वव्यापी परमात्म का वर्णन कैसे किया जाए। उसके विस्तार का वर्णन कोई कितना ही चौकस एवं सजग होकर करे, वह फिर भी छूट जाता है। बुद्धि, मन और बाणी उसका वर्णन करने में असमर्थ है।[5] रोम-रोम रसना बनकर ब्रह्म विषयक अपने अनुभव का गायन करने लगे तो भी पार नहीं पाया जा सकता। हरि के गुण अगम अपार हैं।[6] इससे भी आगे—यदि

---

1. जलहि बुदबुदा होय, नीर पाला बन जावै।
   नाम रूप मिट जाय, नीर का नीर कहावै॥
   जथा मृतिका माँहि, भये भाजन बहुतेरे।
   चपटा सखा गोल, नाम धर किए धने रे॥
   जथा कनक से किए, बहुत आमर्ण अपारा।
   सो कंच न तिहुँ काल, ना बहु न्यारा न्यारा॥
   —वही, पृ० 344; 66, 67, 69
2. वही, पृ० 344; 70
3. जथा दृष्टि के रोग, गगन में दो ससि देखै।
   नैन हुए निर्दोष, सर्व परमातम लेखै॥
   —सत्य सिद्धान्त प्रकाश, पृ० 344; 87
4. मिटै तिमर अज्ञान, बहुर दूजा नहीं कोई।
   एकम एक सर्वंग, नीर पाला गलि होई॥ —वही, पृ० 346;89
5. कहा करे विस्तार, बुद्धि, मन बचन न लागे।
   जो कुछ कथे संभार, वस्तु आगे ते आगे॥ —वही पृ० 347; 94
6. रोम रोम में रसन लाय, अनभव नित गाथै।
   हर गुण अगर अपार, पार तेऊ नहीं पावै॥ —वही, पृ 347; 98

एक-एक रोम में कोटि-कोटि मुख लग जावे और एक-एक मुख में कोटि जिह्वाएँ लग जाए और संयुक्त रूप से इतनी सारी वाणी भी हरि-गुण-कथन में लग जाए—तो भी उसके गुणों का अन्त नहीं हो सकता—इसलिए तो वह अनन्त है।[1]

सन्तों की ब्रह्म सम्बन्धी धारणा निर्गुण-सगुण से परे—शब्द स्नेही अथवा 'शब्द स्वरूपी' के रूप में एकाधिक स्थलों पर उनकी वाणियों में प्राप्त होती है। इसी विशिष्ट-स्वरूप की ओर सन्त गरीबदास संकेत करते हुए कहते हैं कि—वह साहिब गगन में गलतान रहने वाला, निर्गुण-सगुण दोनों से न्यारा है। यदि उसे निर्गुण कहें तो यह गुणमयी सृष्टि का कर्त्ता कौन है? यदि उसे सगुण कहें तो घाटे की बात है। वह तो शब्दातीत, अमोल निर्गुण-सगुण दोनों से अलग रह जाता है। ब्रह्मज्ञानी मन-माया को निर्गुण समझते हैं। तथा यह काया का खोल (शरीर) उनकी दृष्टि में सगुण माना जाता है। यह निर्गुण-सगुण दोनों ही धोखा है। कितने ही सुर, नर, मुनि इत्यादि निर्गुण का ध्यान धरने से उलझे रह जाते हैं। कुछ कथा-कीर्तन, गायन इत्यादि से सगुण को प्रसन्न करने की चेष्टा करते हैं। इन दोनों में ही (निर्गुण-सगुण) लाभ नहीं। मैं तो मूल-मंत्र का रहस्य बतलाता हूं। भक्ति उसी की की जाए जिसने निर्गुण-सगुण दोनों बनाए हैं और उन दोनों का कर्त्ता इनसे न्यारा 'शब्द स्नेही' ब्रह्म है।[2] गरीबदास जी का इस सम्बन्ध में आगे कहना है कि—यदि मैं उस (ब्रह्म) को निर्गुण कहता हूं तो वह सही गुणवंता प्रकट होता है क्योंकि यह गगन उसका तम्बू है, सूर्य चन्द्रमा उसके दीपक हैं तथा तारागण उसकी चम्पा-सी खिली फुलवारी है। वह सत्य समर्थ अनुरागी है।[3]

निर्गुण-सगुण में अभेद की पुष्टि करते हुए तथा भक्त वात्सल्य बतलाते हुए संत जैतराम का कहना है कि वही ब्रह्म निर्गुण से सगुण रूप धारणकर लिया करता

---

1. रूम रूम मुख कोड़कर, मुख मुख जीभ करोड़।
   नितानन्द हर गुण कथे, कदे न आवै ओड।। —वही, पृ 347; 99
2. निर्गुण सगुण दुहु से न्यारा, गगन मण्डल गलतानं।
   निर्गुण कहुँ तो गुणं किस कीन्हे, सगुण कहुँ तो हानं।।
   निर्गुण सर्गुण से है न्यारा, शब्द अतीत अमोलं।
   निर्गुण मन माया ब्रह्मज्ञानी, सर्गुण काया खोलं।।
   केते सुर नर मुनि जन अटके, धर निर्गुण का ध्यानं।
   कथा कीर्तन गावन ध्यावन, निर्गुण सर्गुण हानं।।
   मूलमन्त्र का भेद लखाऊँ, जिन निर्गुण सर्गुण कीना।।
   दोहों से न्यारा शब्द स्नेही, सो किने विरले चीना।।
   —ग्रंथ साहिब, श्री गरीबदास की बाणी, पृ० 410-11, सा० 47-50
3. वही, पृ० 411, सा० 1-2

है जब उसे भक्ति की वृद्धि करनी होती है। भक्तों का उद्धार करने के लिए वही निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप धारण कर यहाँ अवतरित हो जाते हैं।[1] ऐसे ही भक्तों के उद्धारक राम, कृष्ण, तथा अन्य देवी देवता भी संतों की उसी श्रद्धा के पात्र हैं जो वे निर्गुण ब्रह्म के प्रति दिखलाते हैं। इसी प्रसंग में डा० राजदेव सिंह का कहना है कि—'संत जब ज्ञान का उपदेश कर रहे होते हैं, तो वे राम-राम या निर्गुण राम की बात करते हैं। दाशरथि राम की या किसी भी देवी-देवता की भगवता से उन्हें जो असहमति है, वह ज्ञान के क्षेत्र में। भक्ति के प्रसंग में वे द्वैत-अद्वैत से ऊपर उठ जाते हैं। और राम या किसी भी देवी-देवता को ठीक उसी भावात्मक गहराई से, और ठीक उसी शब्दावली में पुकारते हैं जैसे सगुण भक्त उन्हें पुकारते हैं। अद्वैत किसी भक्ति की इसी उदात्त भूमिका पर पहुंचकर उनके अनाम और अरूप ब्रह्म पर नाम और रूप का आरोप स्वयं हो जाता है।'[2] अद्वैत भक्ति की इसी उदात्त भूमिका पर पहुँच कर ही सन्त जैतराम 'रामचन्द्र की कीरति'[3] लिखते हैं तथा संत गरीबदास के राम भी 'श्वेत छत्र, पीताम्बर तथा गले में वैजयंती माला' पहने हुए दिखाई देते हैं।[4]

संत 'सदगुरु' को ब्रह्म का ही समशील मानते हैं। संत गरीबदास का कहना है कि सतगुरु सतगुरु क्या टेर लगा रखी है। उस शब्दातीत सतगुरु को पहचानो, पहचानो, जो गुण इन्द्रिय की रीति से परे है। सतगुरु तथा साहिब का स्वरूप एक ही है। जो इनको दो करके जानते हैं वे भ्रम में हैं। यह सतगुरु शून्य-स्नेही शब्द है। अर्थात 'शब्द' ही सदगुरु है। इस परब्रह्म सतगुरु साहिब से भेंट करो। इस शरीर को सद्गुरु मत समझो। इन्हीं सद्गुरु का योगजीत कहो, मनीन्द्र कहो, चाहे

---

1. ग्रंथ साहिब, श्री जैतराम जी की वाणी, पृ० 254
2. डा० राजदेव सिंह, संत साहित्य : पुनर्मूल्यांकन, पृ० 136
3. ग्रंथ साहिब, श्री जैतराम की बाणी, पृ० 257
4. राम हमारे आए राजा, राम हमारे आए ।।
   तारक मंत्र सूक्ष्म छाके, अनहद नाद बजाए ।।
   मात पिता कुल बंधु न कोई, ना किने जननी जाए ।।
   मुरली अधर मधुर ध्वनि बाजे, नाच-नाच पद गाए ।।
   श्वेत छत्र सिर मुकुट बिराजे, पीताम्बर पहराए ।।
   गले बैजयंती माला जाके, शीश मुकुट राम राए ।।
   घूँघर वाले केश बिराजै, कानों कुण्डल माए ।।
   —ग्रंथ साहिब, श्री गरीबदास जी की बाणी, पृ० 744

कबीर कहो ।[1] साध अथवा सन्त को भी साहिब के बराबर मानते हुए गरीबदास का कहना है कि सतगुरु साहिब और साध—ये तीनों भी एक जैसे ही मानो। अर्थात् साहिब, सतगुरु तथा संत इन तीनों में कोई अन्तर नहीं है। ये तीनों ही अविचल एवं अनादि हैं।[2] नितानन्द तो सतगुरु को गोबिन्द से भी अधिक (बड़ा) बताते हैं। उनका कहना है कि—गोबिन्द से सत गुरु बड़े हैं। क्योंकि गोबिन्द ने तो इस जीवात्मा को पैदा कर बंधन में डाल दिया है और सतगुरु ने उसके बन्धन काट कर मुक्त कर दिया।[3]

हरियाणवी संतों की ब्रह्म सम्बन्धी धारणा को संक्षेप में कहें तो कहना होगा कि संतों का ब्रह्म निर्गुण है किन्तु अद्वैतवादी ज्ञानियों से भिन्न। वह सगुण भी बन जाता है—भक्तों से नानाविध सम्बन्ध भी जोड़ लेता है। वह निर्गुण-सगुण दोनों से परे है। वह 'शब्द स्वरूपी' है। सद्गुरु एवं ब्रह्म समशील है। संत भी उसी का विग्रहवान स्वरूप है—इत्यादि।

---

1. गरीब सतगुरु सतगुरु क्या कहे, शब्द अतीत पिछान।
रोम रोम में तेज है, कोटि सूर शशि भान।।
गरीब सतगुरु सतगुरु क्या कहे, सतगुरु शब्द अतीत।
सतगुरु कोई जानिए, जहाँ गुण इन्द्री नहीं रीत।।
गरीब सतगुरु साहिब एक हैं, दूजा भ्रम विरोध।
सुन स्नेही शब्द है, अभ्यंतर में खोज।।
गरीब यो सतगुरु साहिब सही, माटी का गुण मेट।
सुरत-निरत से परख ले, पार ब्रह्म कुं भेंद।।
गरीब योगजीत करनाम हैं, मनीन्द्र कहो कबीर।।
बारह पन्थ चलाइयाँ, डिगे बंधावै धीर।।
—ग्रं० सं०, श्री गरीबदास की बाणी, पृ० 149; 104-8

2. गरीब साहिब से सतगुरु भए, सतगुरु से भए साध।
ये तीनो अंग एक हैं, अविचल, आदि अनादि।।
—वही, पृ० 519;3

3. नितानन्द गोबिन्द से, सतगुरु हैं अधिकार।
गोबिन्द बांध्या जीवड़ा, गुरु छुड़ावनहार।।
—स्वामी नितानन्द, सत्य सिद्धान्त प्रकाश, पृ० 7 ; 73

अध्याय 3

हरियाणवी संतों की माया सम्बन्धी धारणा

संतों की माया का विवेचन करते हुए डा० राजदेव सिंह का कहना है कि—'संत-साहित्य में माया की चर्चा पद पद पर मिलती है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि वेदान्त स्वीकृत अर्थ में संतों ने माया का प्रयोग किया ही नहीं है। पर इतना अवश्य है कि संतों की माया सम्बन्धी धारणा बौद्धों के दुःख-समुदाय में स्वीकृत तृष्णा की समशील ही अधिक है। निर्वाण, जीवनमुक्ति या भक्ति के मार्ग में यह तृष्णा सबसे बड़ी बाधा है। अतः संतों ने काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, यश, मान,—एक शब्द में कहना हो तो कहा जा सकता है कि तृष्णामात्र को अस्वीकार किया है। सन्त-साहित्य में प्राप्य माया के लगभग 95 प्रतिशत प्रयोग विषयासक्ति या विषयतृष्णा को ही माया मानने-मनवाने का आग्रह करते हैं।[1] संत प्रायः अपढ़ या अपढ़ जैसे ही व्यवहारवादी हुए हैं। तत्वचिंतन अथवा कोरा सैद्धान्तिक दर्शन उनकी चिंतना का विषय कभी नहीं रहा। उनकी सारी चिन्तना अथवा चिंता जीवन के व्यावहारिक पक्ष को ले कर रही है। यही कारण है कि उपर्युक्त 'तृष्णा' (माया) को प्रसंगानुसार अनेक नाम दिए हैं, जैसे—नटनी, मोहिनी, कनक, कामिनी, छलावा, मृगजल, दलदल, सुख-स्वप्न, ठकुरानी, चेरी, लौंडी, दुस्तर-दरियाव, मानसमारनी, आदमखोरी, ठगनी, पापनी, हराम, बैरन, बटमारी, मीठी खाँड, चुड़ैल, चंचल, चोरटी, तृष्णा, गुण की बादली, अवगु-घटा, करंक, अथाहजल, नागन, भांडणी, विषयसमुद्र, धरणीधरा, निर्गुणबेलड़ी, भरम मटकी, जोगिन, महमंती, कऊबाबीट, प्रपंचनी, त्रिगुणताल, इत्यादि। इस तृष्णा

---

1. डा० राजदेव सिंह, संत-साहित्य : पुनर्मूल्यांकन, पृ० 180

का जो बाधक अथवा मारक रूप व्यवहार में सामने आया—प्रसंगानुसार उसका नाम रख दिया। इसीलिए सन्तों का चिन्तन व्यावहारिक होने के कारण इतना विचलनशील है।

डा० सिंह के संत-साहित्य में माया विषयक(विषयतृष्णा) 95 प्रतिशत प्रयोग सम्बन्ध पूर्वोक्त कथन में 90 प्रतिशत प्रयोग केवल 'काम' या 'कामसक्ति' सम्बन्धी मिलते हैं। इस काम का प्रमुख आलम्बन (उपकरण) नारी अथवा कामिनी है। संतों का अग्रतम आलोचक स्वरूप नारी (कामिनी) सम्बन्धी कटुक्तियों में ही मिलता है जिसके लिए इन्हें आलोचना का भाजन होना पड़ा है। यह नारी नहीं है, विषभरी नागिन है, जिसने तीनों लोकों में सभी को डस लिया है। केवल हरि-शरण में ही इससे बचाव हो सकता है।[1] यह कामिनी काली नागिन है जो 'नैन' बैन' 'कुच' आदि कई मुखों से डसती है।[2] जिस (रजस्वला) के देखने मात्र से सर्प अंधा हो जाता है उसके अंग से नित्य ही लगे रहने वाले बेचारे पुरुष की कौन गति।[3] यह नारी नरक-कुण्ड है जिसके नवों द्वारों से मल बहता है। उत्तम पुरुष इसका त्याग कर देते हैं, 'डेढ' तथा 'चमार' ही इससे चिपके रहते हैं।'[4] इस छैल छबीली सुन्दरी ने अपनी रूप-मोहिनी के बल से संसार को भग-कुण्ड में डुबो दिया है।[5] देखने में यह सुन्दर लगती है और खाने (भोगने) में मीठी खाँड-सी प्रतीत होती है किन्तु जब परिणाम सामने आता है तो प्राणी के हाथ केवल पश्चाताप ही लगता है।[6]

यह सुन्दरी सिंह से अधिक बलवान् है। इसने प्रेम-प्रीत से अपने दो मुखी

---

1. नारी नागन विषभरी, डसै सिंहु पुरमाँहि।
   बिना शरण हरिचरण की, कहीं उबारा नाँहि।।
   —सत्य सिद्धान्त प्रकाश, पृ० 173, साखी 5
2. कामिन काली नागिनी, कई मुखों से खाय।
   नैन, वैन, कुच से डसै, ऐसी बुरी बलाय।। —वही, पृ० 173;7
3. जाको नैन निहार के, सर्प अंधला होय।
   नितानंद नित अंग लगे, क्यों कर जीवै कोय।। — वही, पृ० 174;8
4. नारि नरक का कुंड है बहे मैल नव द्वार।
   नितानंद उत्तम तजें, चिपटे डेढ़ चमार।। —वही, पृ० 175;25
5. छैल छबीली सोहनी, मिली मोहनी होय।
   नितानंद भग कुंड में, दुनिया दई डुबोय।। —वही, पृ० 175;28
6. खाते मीठी खाँड सी, देखन माँहि सुहाय।
   गुण प्रकाशे आपणा, जब प्राणी पछताय।।
   —सत्य सिद्धान्त प्रकाश, पृ० 175;29

(मुख तथा भग) से सारे ब्रह्मान्ड को ग्रस लिया है।[1] सभी भग-मुख में बिन्दु (वीर्य) का अपव्यय कर रहे हैं। यह तो अमृत से अरण्ड की सिंचाई जैसी ही मूर्खता है जो हरि-मिलन में बड़ी बाधक है।[2] अरे, इस कनफटी वाघिन से सावधान! जिसने नवों खण्डों को ग्रस लिया है। जीवित रहते यह जीवन को लूटती है और मृत्यु-उपरान्त कर्म-दंड के रूप में भी लूटती है।[3] यह तो नरक की नदी है जिसने सारे जग को डुबो दिया है। जल का डूबा हुआ तो बच भी सकता है किन्तु भग-डूबे का कोई त्राण नहीं।[4] ये तो रम्भा, अप्सरा तथा उर्वशी तक सभी विष से भरी हुई हैं। सभी में वही विषय-विकार भरे हैं।[5] यह नारी नहीं, खांड लिपटी फौलाद की छुरी है। जो इसे खाएगा उसी का पेट फाड़ देगी। इससे बचो।[6] ये तो अपनी और पराई सभी बराबर हैं। जहर क्या अपना क्या और का? ये तो अपनी या पराई नरक ले जाने का सामान है। किसी के साथ लगो नरक की राह तैयार है।[7]

कामिनी के प्रतिसंसार की मोहकता का वर्णन करते हुए सन्त नितानन्द का कथन है कि देखने में यह नारी कमल-पुष्प-सी आर्कषक है। सारा संसार भंवरा बन कर इसके चक्कर काटता-काटतामर जाता है पर समझ नहीं आता।[8] सामान्य मनुष्य की तो बात क्या है, इसे तो ऋषि-मुनि देवता इत्यादि ने भी इस पर क्षुब्ध होकर

---

1. सबल सुन्दरी सिंह ते, दो मुख रही पसार।
   नितानंद सम मण्ड को, विगल गई कर प्यार।।
   —सत्य सिद्धान्त प्रकाश, पृ० 178;57
2. भग मुख विंद बहाय कर, दिया अमर पद खोय।
   अमृत सींचे अरण्ड में, नितानंद सम कोय।। —वही, पृ० 178;58
3. फटे कान की बाघनी, निगल गई सौ खण्ड।
   जीवत लूटे जन्म को, मुए लगावै दण्ड।। —वही, पृ० 178;61
4. नारी नदी नरक्क की, सब जग दिया वहाय।
   जल का बूड़ा नीकसै, भग का बूड़ा मर जाय।। —वही, पृ० 179;64
5. क्या रम्भा, क्या अप्सरा, कहा उर्वसी नार।
   नितानंद विष की भरी, सभ में वही विकार।। —वही, पृ० 178;65
6. नारी छुरी फौलाद की राखी खाण्ड लपेट।
   नितानन्द जो खाएगा, उसके पाड़े पेट।। —वही, पृ० 179;71
7. क्या अपना क्या और का, जहर नली जे खाय।
   नार पराई आपनी, नारक माँहि ले जाय।। —वही, पृ० 179; 92
8. कमल फूल सी कामनी, भंवर भया संसार।
   भरम भरम कर मर गया, समझ न किया विचार।। —वही, पृ० 180; 74

सिर चढ़ा रखा है। तीन लोक में इसकी ही ठकुराई है।[1] नाना-विध शृंगार का अपना रूप-मोहिनी से पंडित, मुँडित दर्शनी (कनफटे साधु) इत्यादि सभी को छलती है और मारती है।[2] यह तो मरकर भी चुड़ैल बन भीतर घुस जाती है। सो उस रास्ते से भी मत गुजरों जहाँ यह जलाई गई है।[3] भग भोगी कुम्हार के गधे के समान ही—भारी बोझ से लदे मर जाते हैं। ये विषय-रोग से ग्रस्त रहते हैं।[4] कामी तो नरक का कीट बन जाता है। जो भग-गंदगी में ही मस्त रहता है और रामरूपी अमृत रस से वंचित रह जाता है।[5] कामी पुरुष अनेक चिन्ताओं का शिकार बन जाता है, हरि-भजन कर ही नहीं सकता। सभी का उद्धार हो सकता है किंतु कामी का नहीं। कामी तो पतित-शिरोमणि है, उसका उद्धार असम्भव है। वह भजन तो कर ही नहीं सकता। काम सबसे बड़ा अवगुण है।[6] इसीलिए इस कामिनी का मन, वचन तथा कर्म से त्याग करो। तम्हें नरक-त्रास से निस्तार मिल जाएगा—जन्म-मरण के चक्कर से बच जाओगे।[7] क्योंकि यह भग-वती ही चौरासी का द्वार है। अतः इसकी संगति से बचो।[8] क्योंकि गोरख, भरथरी, कबीर आदि की साक्षी भी यही कहती है कि जिस घट में काम—टिका है, उसमें साहिब का निवास नहीं हो सकता।[9] अतः अपने नाद-बिन्दु को स्थिर करो, सच्चे ज्ञान को धारण करो।

---

1. ऋषि-मुनि सुर देवता, मिल सीस चढ़ाई।
   तीन लोक पग लग रहे, सब के मन भाई।। सत्यसिद्धांत प्रकाश, पृ० 180;81
2. छबि दिखाय छलती फिरै, बहु बरन बनाई।
   पंडित मुंडित दर्शनी, सभ दिए खपाई।। —वही, पृ० 180; 84
3. जहाँ कामिनी कूँकिये, ना चलिए उस गैल।
   नितानन्द बड़ जाएगी, भीतर होय चुडैल।। —वही, पृ० 181; 90
4. भग भोगी रोगी भए, सिर धर भारी भार।
   लदती लदती मर रह्या, जैसे गधा कुम्हार।। —वही पृ० 181; 94
5. काम कीड़ा नरक का, पड़ा गन्दगी माँहि।
   राम अमीरस छोड़कर, भग में गोता खाँहि।।
   —वही, पृष्ठ 182; 102
6. वही, पृ० 183; 197
7. मन कर्म वचन त्रिया तजै, करे न गर्भ निवास।
   नितानन्द देखे नहीं, नरक कुंड की त्रास।। —वही, पृ० 185; 137
8. नितानन्द यह भगवती, चौरासी का द्वार।
   चौरासी से तो बचे, नारी संग विसार।। —वही, पृ० 186; 140
9. नितानन्द साहब ना मिलै, जो घट ठहरै काम।
   साखी गोरख भरथरी, और कबीरा राम।। —वही, पृ० 186; 141

तभी घट-घट खुलेंगे और भगवत्प्राप्ति हो जाएगी।[1] सो गुरु ज्ञानाश्रित हो अपने को बचाओ। क्योंकि इस जग में भग-नदी बड़ी वेगवती है, सभी को बहा ले जाती है।[2] यह कामान्ध नर समझता तो है नहीं। भैंसे की तरह इस काम-कसाई के दरवाजे पर बन्धा रहता है। कसाई की निरन्तर लटकती रहती तलवार इस गंवार को दिखती ही नहीं।[3] अरे भाई—इस कल-मुँही कुंडली ने सारा संसार लिया है। यह बड़ी विकराल भांडणी है। सभी पर भारी पड़ती है।[4] अतः इस साक्षात्काल स्वरूपिणी से तो सतगुरु बचा सकते हैं। राम की शरण लो यदि इससे बचना है तो।[5]

सन्त कामिनी के साथ ही कनक को भी माया का महत्वपूर्ण उपकरण मानते हैं। कहीं-कहीं सन्त कनक-कामिनी दोनों का संयुक्त रूप से भी निषेध करते हुए दिखते हैं। नितानन्द जी का कथन है कि—कनक और कामिनी की सबके गले फाँसी लगी है। इनसे बचना बड़ा कठिन है। सारा संसार कनक-कामिनी की दो धाराओं में बहा जा रहा है। इनसे कोई बिरला ही पार पाता है। ये दोनों ही हरि-पन्थ में बड़े बाधक हैं।[6] हरि-मिलन में कनक और कामिनी बड़ी तलवार के रूप में आड़े आते हैं। इन दोनों को जीतकर ही उस महल में पहुँचा जा सकता है।[7] कहीं कनक के रूप में तो कहीं कामिनी, कहीं भोजन है तो कहीं भाव में विद्यमान है, कहीं गुरु है तो कहीं चेला बन जाती है, सब इसी का विस्तार है।[8] इसकी महिमा अपार है। यह कनक कामिनी के रूप में साक्षात् काल है। जिसने भी इससे प्रेम

---

1. नाद बिंद स्थिर करे गहे ज्ञान विज्ञान।
   नितानन्द घट पट खुले, ताहि मिलै भगवान॥
   —सत्य सिद्धान्त प्रकाश, पृ० 186; 142
2. जग में भग भारी नदी, सम जग दिया बहाय।
   नितानन्द गुरु ज्ञान से, आपा ल्योह बचाय॥ —वही, पृ० 187; 256
3. सत्य सिद्धान्त प्रकाश, पृ० 187; 161
4. वही, पृ० 188; 162
5. परघट काल स्वरुपिणी, कीन्हा जग काला।
   नितानन्द भज राम को, सतगुरु रखवाला॥ —वही, पृ० 188;163
6. वही, पृ० 180; 77, 78, 80
7. कनक कामिनी बीच में, बहुत बड़ी शमसेर।
   कतल किया अध बीच में, राम मिल की बेर॥ —वही, पृ० 197; 152
8. गरीब कहीं कनक कहीं कामनी, कहीं भोजन कहीं भाव।
   कहीं गुरु चेला हो रही, कीना बहुत पसाव॥—ग्रं०सं०, गरीबदास जी की बाणी, पृ० 87; 55

किया वही खाया गया। सिद्ध-साधक सभी इससे त्रस्त हैं।[1] इस माया से कोई बचे भी तो कैसे। सब कहीं तो यही है। जो कुछ भी ब्रह्मा से उद्भूत है—सारी दृश्यमान सृष्टि उस अवगति पुरुष रूपी अक्षय वृक्ष की छाया है, तीनों देव उसकी शाखायें हैं।[2] जो भी उस अवगति से पैदा हुआ है वह सब माया ही है। यह माया ही चित्र-गुप्त तथा धर्मराय के रूप में इस सृष्टि की अधिष्ठात्री है।[3] इससे बाहर जाने में कौन समर्थ है। जो भी शरीरधारी हैं वे सभी मायाबेल के ही फूल हैं। एक कबीर ही ऐसे हुए हैं, जिन्हें इससे अतीत कहा जा सकता है।[4] यह माया सहस्रधारा है, त्रिगुण-ताल (सरोवर) है, सभी लहर तरंगे इसी की हैं, सारी सृष्टि इसी की है, इससे भिन्न कुछ नहीं।[5]

माया का आस्वादन तो किसी सुन्दरी के स्वप्न-संभोग जैसा है जो झूठ-झूठं में क्षरित करवा के चलती बनती है। फिर भी मूढ़ नर सचेत नहीं होता।[6] यह बड़ी छली है। बगल में फँदा रखती हैं और हाथ में नाना प्रलोभनों के लड्डू रखती है। सभी प्राणी इसने अपने फँदे में फाँस रखे हैं।[7] मान-सम्मान की पोट (गाँठ) प्राणी[8] हैं। इन भोगों से ही चौरासी के चक्कर में पड़ जाते हैं प्राणी। कितना जटिल-जाल

---

1. गरीब माया की महिमा कहुँ, कनक कामनी काल।
बिअ चंपी सोखा लिए, सिद्ध साधक बेहाल।।
—ग्रं० सं०, श्री गरीबदास जी की बाणी, पृ० 97; 58

2. ब्रह्मा सेती उपज्या, जेता है कलि माँहि।
तिहुँ देवा शाखा भये, अक्षय वृक्ष की छांहि।। —वही, पृ० 96; 38

3. गरीब चित्रगुप्त माया बनी, माया हे धर्मराय।
जो अवगति से उपज्या, सब माया के माँहि।। —वही, पृ० 96; 39

4. गरीब ये माया के फूल हैं, जे ते धरैं शरीर।
इस बिलों लाग्या नहीं' अदली अदल कबीर।। —वही, पृ० 96; 34

5. गरीब माया सहस्रधार है, माया त्रिगुण ताल।
माया के ही लौर हैं, माया ही की झाल।।—वही पृ० 99; 96

6. जैसे सुपनै रैन के, मिलै निवेली नार।
गन्दा कर चलती रहै, जागै नहीं गंवार।।
—सत्य सिद्धाँत प्रकाश, पृ० 150; 9

7. फाँसी राखै बगल में, लाडू राखै हाथ।
सब प्राणी फन्दे पड़े, इस माया के साथ।।—वही, पृ० 150; 11

8. मान चोट सिर पर धरी, गह ले चली नरक्क।
दलदल माया मोहकी, सब ही जीव गरक्क —वही, पृ० 150; 14

है ।[1] सभी इसके खाद्य हैं, इससे बचाव मुश्किल है । जैसे मनुष्य घी-खाँड को बड़ी रुचि से खाता है, जैसे घी-खाँड ममुष्य के भक्ष्य हैं उसी प्रकार इस 'मानस मारनी', 'आदम-खोरी राँड' के सभी प्राणी भक्ष्य हैं ।[2] यह महा ठगनी जगह जगह अपने 5 ठगों (काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार)को हरदम साथ लिए सभी को ठगती फिरती है । जो इसके लोभ-लड्डू पर मुग्ध हो जाते हैं उन्हें मार डालती है ।[3] इसका भरोसा मत करना, यह चंचला है। सदा किसी की बनके नहीं रहती । यह तो मृग तृष्णा नीर है जो झूठ ही झिलमिलता है । यह हाथ आने वाली नहीं ।[4] यह बड़ी हराम है, हरिविमुख कर देती है । शरीर में नाना विकार उत्पन्न कर हरि-भजन में लगने ही नहीं देती ।[5] बुद्धि को मैला कर भक्ति-मुक्ति में बड़ी बाधक बन जाती है । जगत-जंजाल से मुक्त होने ही नहीं देती । यह बड़ा कुसंग है ।[6] इस चंचल चोरटी से चित्त की चोरी करवाकर यह नर अन्त समय खाली ही मर जाता है । इसके जन्म, कर्म सभी को माया खा जाती है ।[7] यह आशा-तृष्णा रूपी माया पापिनी बड़ा कलंक है । राजा-रंक सभी को दोजख में डालती है ।[8] पाँच तत्व और तीन गुणों की सृष्टि में सभी इसके आधीन हैं । दुःख, सुख, नाधना, जाप, धर्म, ज्ञान, तीर्थ, व्रत्त, संयम— सभी कुछ माया के लिए ही किया जाता है । ये सभी माया के ही फल-फूल है, इसी के भोग हैं ।[9]

---

1. माया से काया भई, काया से सब भोग ।
   भोगों सै सम को लग्या, जन्म-मरण का रोग ।।
   —सत्य सिद्धान्त प्रकाश, पृ० 151;19
2. माया मानस मारनी, आदम खोरी राँड ।
   नितानन्द सभ जग भख्या, यथा मनुष्य की खाँड ।। —वही, पृ० 153; 45
3. ठाँव ठाँव ठगनी फिरै, लिए पाँच ठग लार ।
   लाहू लोभ दिखायकर, लिए मुगद नर नार ।। —वही, पृ० 153; 45
4. सदा बहू के रहे, सदा न भोगे कोय ।
   मृग तृष्णा के नीर ज्यों, झूठा झिलमिल होय ।। —वही, पृ० 153; 48
5. साहब से बेमुख करै, माया बड़ी हराम ।
   कुमत उपावै देह में भजन न दैवैं राम ।। —वही, पृ० 154; 51
6. माया मति मैली करै, भक्त मुक्त में भंग ।
   छुटन न दैवै जगत से, माया बड़ा कुसंग ।। —वही, पृ० 154; 55
7. माया चंचल चोरटी, लूटै चित्त चुराय ।
   जन्म कर्म सम खोयकर, नर रीता उठ जाय ।। —वही, पृ० 157; 88
8. आसा तृष्णा पापनी, माया बड़ा कलंक ।
   इस पैंडे दोजग गए, क्या राजा रंक ।। —वही, पृ० 158; 103
9. वही, पृ० 160; साखी 115-120

माया भी दो प्रकार की है—एक झीनी अथवा सूक्ष्म, दूसरी मोटी अथवा स्थूल। दृश्यमान बाधक तत्व सभी मोटी माया के अन्तर्गत आते हैं। झीनी माया वासना, कामना, अथवा तृष्णा स्वरूपी होती है जो आन्तरिक होती है। यत्र, तत्र, सर्वत्र माया का ही साम्राज्य है। कोई इससे बचेगा कैसे।[1] मोटी माया से यदि कोई बच जाए तो उसे झीनी दबोच लेती है। योगी, यति, सिद्ध तथा साधक सभी को इस झीनी माया ने भ्रम में डाल रखा है।[2] योग धारण कर मोटी माया से तो बच जाते हैं। किन्तु उनके सिद्धाँत झीनी माया के रूप में उन्हें मार डालते हैं।[3] यह माया तिमिर-वृक्ष है जिसकी भ्रम, विकारादि शाखाएँ हैं। इसके जन्म-मरण दो विषैले फल लगते हैं—इसके भोगने वाले अन्धे हैं।[4] इस माया से तो सन्त भी पार नहीं पा सके, सामान्य जन की तो बात ही क्या है। उनको भी मान-सम्मान के चक्कर में डालकर हरि-विमुख कर देती है।[5] धन, ममता, कनक, कामिनी तथा सभी रसों का त्याग हो सकता है किन्तु 'मान' तो फिर भी बच रहता है, जो बड़ा घातक है।[6] यह मान-सम्मान मानव के अहंकार का पोषण करता है और सूक्ष्म माया का ही एक प्रबल उपकरण है। सो इस मान का काला मुँह कर गधे पर चढ़ा-कर इसे निकालना चाहिए। इस मान-बड़ाई को कुएँ में डाल, निर्भय होकर हरि-भक्ति करो।[7] इस माया का फँदा तो बेड़ियों से भी अधिक सशक्त है। बिना हरि-कृपा के इससे ब्रह्म तथा इन्द्र तक भी नहीं बच सकते।[8] कितना मूर्ख है मानव। इस

---

1. मोटी माया प्रकट है, झीनी घट के माँहि।
   जित तित माया बिस्तरी, नितानन्द कहाँ जाँहि।
   —सत्य सिद्धाँत प्रकाश पृ० 160; 121

2. मोटी माया से छूटै, आगै झीनी खाय।
   सिद्ध साधक जोगी जती, झीनी दिए भुलाय॥ —वही, पृ० 160; 122

3. मोटी माया तज गए, जोग धारण धार।
   नितानन्द सिद्धाँत में, लिए दूसरी भार॥ —वही, पृ० 160; 123

4. माया तरवर तिमिर का, साखा भरम विकार।
   जन्म करन फल विष भरा, अन्धे भोगन हार॥ —वही, पृ० 161; 13

5. भव जल बूड़े सन्तजन, कहा बचै जग पीव।
   मान बड़ाई चित्त चढ़ी, तज परमेश्वर पीव॥ —वही, पृ० 161; 132

6. माया ममता परहरी, कनक कामिनी त्याग।
   नितानन्द सम रस तजै, मुए मान से लाग॥ —वही, पृ० 161; 134

7. नितानन्द इस मान को, काढ़ो गधे चढ़ाय।
   पटक बड़ाई कूप में, निर्भय हरिगुण गाय॥ —वही, पृ० 162; 138

8. बेड़ी से गाढ़ा खरा, इस माया का फंद।
   बिना कृपा छूटै नहीं, क्या ब्रह्मा क्या इंद॥ —वही, पृ० 162; 141

माया रूपी आहि-करंक) पिंजर) को कुत्ते की तरह निचोड़ रहा है। इसी के वश होकर अपने सच्चे साहिब तक को भूला देता है।[1] माया-जाल अथाह है। कोई हरिजन ही इसका पार पा सकता है। यह चौमुखी नागिन है। जन्म भी देती है और संहार भी करती है। यदि गुरु सहायक हों तो ही बचाव हो।[2] शाश्वत लोगों की तो यह स्वामिनी है, साध संतों की दासी है। शाश्वतों के लिए मांडाणी (निर्लज्ज, विकराल) किन्तु सन्तों के लिए सुखद है।[3] माया स्वयं पुकार-पुकार कर कह रही है कि हे सन्तो, तुम्हारे लिए तो हरि-मिलन में साधक ही रहूँगी, भले ही और प्राणियों का संहार करती हूँ।[4] जो इससे बचना चाहे उसे सन्तों की शरण लेनी चाहिए।

हरियाणा संतों की बाणी में माया सम्बन्धी व्यावहारिक प्रयोगों के साथ संत जैतराम की बाणी में माया का वेदान्त सम्मत शास्त्रीय स्वरूप भी देखने को मिलता है।[5] इन्हीं की बाणी में 'माया' और देवताओं का संवाद' शीर्षक से आए प्रकरण में भी माया के शास्त्रीय स्वरूप का सिद्धान्त किया गया है।[6] संत गरीबदास की बाणी के 'माया-महिमा' नामक प्रकरण में माया की शास्त्रीय शब्दावली में महिमा गायी गई है।[7] अन्ततः यही कहना संगत लगता है कि हरियाणवी संतों की बाणियों में माया के शास्त्रीय पक्ष की अपेक्षा व्यावहारिक पक्ष का उल्लेख ही अधिक मिलता है।

---

1. माया आदि करंक है, जग स्वप्न निचौड़ै।
   इस करंक के कारणे, साहब से तौड़ै॥
   —सत्य सिद्धान्त प्रकाश, पृ० 163; 151
2. माया नागन चौमुखी, जन्मे और खाई।
   नितानन्द जन ऊबरैं, गुरु करे सहाई॥ —वही, पृ० 164; 167
3. सांकट के सिर पर रहे, साधन के पाई।
   सांकट के सेती भांडणी, संतन सुख दाई॥ —वही, पृ० 165, 170
4. माया कहे पुकार कर, सुनो संतो निष्काम।
   सम जी मारूं बांधकर, तुम्हें मिलाऊं राम॥ —वही, पृ० 162; 146
5. प्रकृति भई पुरुष से ऐसे रच्या जान।
   प्रकृति अबला सुन्दरी संख लोचनी जान।
   नटनी खेल पसारियाँ हैरानी हैरान॥
   —ग्रन्थ साहिब, श्री जैतराम जी की बाणी, पृ० 192
6. वही, पृ० 192-205 द्रष्टव्य।
7. ग्र० सं०, श्री गरीबदास जी की बाणी, पृ० 366

अध्याय 4

हरियाणवी संतों की जीव, जगत् सम्बन्धी धारणा

हरियाणा सन्तों का 'जीव'

जैसा कि हरियाणवी सन्तों की माया सम्बन्धी धारणा के स्पष्टीकरण में पहले उल्लेख कर चुके हैं कि सन्तों को दार्शनिक की अपेक्षा व्यवहारवादी कहना अधिक संगत है, वही बात हरियाणवी संतों के सन्दर्भ में उनकी जीव तथा जगत् सम्बन्धी धारणा के विषय में भी लागू होती है। इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए डा० राजदेव सिंह का कहना है कि—"दार्शनिक दृष्टि से सन्त अद्वैतवादी थे और धार्मिक दृष्टि से व्यवहारवादी। स्वभावतः वे जीव के विषय में दो तरह से बातें करते हैं-एक जीव को ईश्वर मानकर तथा दूसरी जीव को संसारी मानकर। राम और माया के विषय में भी जब वे शुद्ध दार्शनिक की तरह बोलते हैं तब अद्वैत-वादी होते हैं। लेकिन जब आचार की धरती पर उतरते हैं तो उनका राम संत बन जाता है और माया तृष्णा का रूप ले लेती है। दर्शन की धार्मिक परिणति की यही प्रक्रिया है। और चूंकि संत दार्शनिक कम, धार्मिक अधिक हैं, कथनी की अपेक्षा करनी को अधिक महत्व देते हैं। अतः राम, माया, जीव और जगत् किसी के सम्बन्ध में दार्शनिक की अपेक्षा व्यवहारवादी की तरह ही अधिक बोलते हैं।[1] संत निश्चलदास को छोड़कर शेष हरियाणवी संतों का बाणियों में दार्शनिक मुद्रा बहुत कम दिखाई पड़ती है।

---

1. डा० राजदेव सिंह, संत-साहित्य : पुनर्मूल्यांकन, पृ० 197

सन्त रामरूप जी जीव और ब्रह्म को तत्वत: एक ही मानते हैं। जीव और ब्रह्म के अभेदत्व को प्रकट करते हुए उनका कहना है कि गुरु-प्रदत्त ज्ञान से अपने को जानने पर, मोह ममता छोड़ निर्मल बुद्धि होने पर, मान त्यागने पर अज्ञान नष्ट हो जाता है तथा ज्ञान प्रकट हो जाता है। बीच का भ्रम, द्वैत समाप्त होने पर अपने स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। निष्काम भाव से निर्वाह करने पर जीव-मति समाप्त हो जाती है, जीव ब्रह्म ही हो जाता है ऐसे ही जैसे एक तरंग पानी की दूसरी तरंग से मिलने पर—एकमेक होने पर पानी ही पानी रह जाता है। जीव ब्रह्म का द्वैत समाप्त हो जाता है।'[1]

सन्त जैतराम जी जीव को 'स्वांस' विदेह पुरुष, प्राण, पंथी, आत्मा, आत्मदेव, द्वादस देवा, द्वादस, हंस, वैराग्यनघ, अमोली हीरा इत्यादि नामों से उल्लिखित करते हैं। जैतरामजी का कहना है कि 'यह स्वांस ही ब्रह्म है, इसी की सुरति निरंत साधन से खोज करो, इसी से स्नेह करो—यही तुम्हारा सच्चा स्वरूप है।[2] जैतराम जी का आगे कहना है कि इस द्वादस[3] के स्वरूप की पहचान करो-इसी सूक्ष्म डोरी में तुम्हारा स्वरूप छिपा है-इसी की खोज करो।[4] यह द्वादस अमोल रत्न है, महंगा नग है। हम देवल में इसका निवास है। भेदी से इसका भेद पूछो। अन्त

---

1. साधो जीव सू ब्रह्म हो जाय ऐसे।
गुरु दियो ज्ञान लियो आप कू जान ही भेड़ गति छोड़ भयो सिंह जैसे॥
मोह ममता गई बुद्धि निर्मल भई, हुवो प्रकाश तम अंध जाई।
मिटो अहंकार जब मान छूटे सबै, गई तब रात दिया दिन दिखाई॥
भरम भया ना रहा, त्रास जन का गया, दुई इच्छा नहीं रही कोई।
बीच ही बीच में भूल लागी हुती, सम्भल सोई भया पहल होई॥
रहै जगमाँहि व्यापै कछू नाहिं ही, पाप अरू पुण्य दोऊ लगैं नाहीं॥
आप कूं थाप था थाप कूं सर्वथा, सो रहा नांहि वाके जु माहीं।
जीव मति उठ गई ब्रह्म एकै सही, लहर आपै हुई निरा पानी।
दास रामरूप रणजीत गुरु एक ही, दूसरा नाँहि कोई रहा आनी॥
श्री रामरूप द्वारा कृत मुक्ति मार्ग, पृ० 286; पद 133

2. स्वाँस ब्रह्म है पुरिबबदेहा, स्वाँस ब्रह्म से जोड़ स्नेहा।
सुरति निरत से करो विचारा, सोई स्वाँसा रूप तुम्हारा॥
श्री जैतराम की बाणी, पृ० 22, 16

3. सामान्य अवस्था में स्वाँस नासिका से द्वादश अंगुल बाहर तक जाने से इसे द्वादस कहते हैं।

4. द्वादस रूप पिछानो भाई, सूक्ष्म डोरा रहा समाय।
ग्रंथ साहिब, श्री जैतराम जी की बाणी, पृ० 22; 19

युगों से तुम अपने इस स्वरूप से बिछड़े हुए हो। सतगुरु रूपी दलाल यह सौदा करवा सकते हैं।[1] प्राणरूपी पक्षी इस शरीर-वृक्ष में बसेरा करता आ रहा है अपनी गगन-उड़ान को भूलकर भवसागर के वृक्षों में बार-बार चक्कर लगा रहा है। अनन्त युगों से अपने मूल स्थान से बिछड़ा हुआ है।[2] जैतराम जी 'जीव' को शिष्य एवं ब्रह्म को गुरु रूप में प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि यह जीव (आत्मा) शिष्य है ब्रह्म (परमात्मा) गुरु है। आत्मा और परमात्मा को शिष्य तथा गुरु रूप में जानना ही सच्चा अध्यात्म ज्ञान है। इस तन-तरूवर में ही यदि यह हंस खोज करे तो इसे अपना परमात्म (निजवंश) प्राप्त हो सकता है।[3] इसी सन्दर्भ में उनका आगे कहना है कि वह ब्रह्म भी आत्मरूप ही है जो घट-घट में समाया हुआ है। इसका कोई बाना (रूप, वेश) नहीं है और शरीर रूपी वृक्ष में ही समाया हुआ है। वही ब्रह्म ही तुम्हारा अपना वास्तविक स्वरूप है। उसकी अपने आप ही पहचान करो। वह सब में समाया है, उसको वही खोजने वाला है तो कौन गुरु कौन चेला किस की खोज? जैसे घट घट में शून्य का बास है, तथा काष्ठ में अग्नि का निवास है इसी प्रकार वह 'निरबानी' आत्म सभी में विद्यमान है। वह निर्लिप्त तत्व है। वही तुम्हारा सच्चा रूप है, उसी को देखो पहचानो।[4] आत्मा तथा परमात्मा का अभेदत्व प्रकट हुए जैतराम जी का कहना है कि जिस प्रकार सिन्धु और बुदबुद में तत्वतः कोई भेद नहीं है इसी प्रकार आत्मा और परमात्मा में अभेदत्व है। आत्मा और परमात्मा को एक ही जानो। जो परमात्मा है वही आत्मा, जो आत्मा है वही परमात्मा है।[5] प्रश्न उठता है कि जब परमात्मा और आत्मा एक ही हैं तो यह भेद अलगाव, दूरी अथवा विछोह कैसे हुआ? कैसे यह हंस अपने उच्चासन से च्युत हो गया? इसका उत्तर देते हुए जैतराम जी का कहना है कि आत्मा स्वरूप 'आनन्द' है, आत्म आनन्द का सम्बन्धी है, आनन्द बुद्धि का सम्बन्धी है तथा बुद्धि मन की

---

1. ग्रंथ साहब श्री जैतराम जी की बाणी, पृ० 24
2. वही, पृ० 28; चौ० 10-13
3. आत्म दास गुरु प्रमात्म। निरख परखियो ज्ञान अध्यात्म ।।
   तन तरवर का भेद पिछानो। आत्म प्रमात्म को जाना ।।
   तन तरवर को खोजो हँसा। प्रमात्म आत्म का बँसा ।।
   वही, पृ० 28; 14-16
4. वही, पृ० 28; 17-22
5. सिंध्र बुदबुदा लहर उठाइ। सिंध बुद्ध बुद्ध भेद न कोई ।।
   आत्म परमात्म इक जानौं। दूजा भेद भरम सब भानो ।।
   सो आत्म सोई परमात्म। सौ परमात्म सोई आत्म ।।
   ग्रंथ साहिब, श्री जैतराम जी की बाणी, पृ० 29; 7-9

सम्बन्धी क्या दासी है। इस प्रकार आत्मा का सम्बन्ध मन से हो गया और शरीर इन आनन्द, बुद्धि, तथा मन का आश्रयस्थल है ही। इस प्रक्रिया से यह आत्मा इस शरीर से सम्पृक्त हो गई। किन्तु इसके स्वरूप में कोई अन्तर नहीं आता है, यह निर्लिप्त तत्व है।[1] आत्म-परमात्मा के इस भेद को गरीबदास जी दार्शनिक मुद्रा में स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि आत्मा और परमात्मा वास्तव में एक ही वस्तु हैं। दोनों का एक ही स्वरूप है, दोनों एक ही ज्योति अथवा प्रकाश हैं। केवल बीच में कर्म का पर्दा है। इसी से इनको दूर कह देते हैं—एक दूसरे से अलग।[2] जीव तथा ब्रह्म के स्वरूप तथा सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए गरीबदास जी कहना है कि आत्म पूर्ण ब्रह्म है तो परमात्मा परब्रह्म है। अपने कल्प-स्वभाव के कारण इसे (जीव, आत्मा) कर्मों की लाग लग गई ऐसे ही जैसे शिव, विष्णु को भी कर्म-बन्धन में पड़कर बार-बार जन्म धारण करना पड़ा है।[3] इस आत्म और परमात्म का हँस, परमहँस तथा शिष्य और गुरु जैसा सम्बन्ध है। दोनों ही अविनाशी तत्व हैं तथा अपने अपने स्वरूप में लीन हैं।[4]

सुरति तथा आत्मा (जीव, जीवात्मा) दो भिन्न वस्तुएँ हैं। सुरति तथा निरत तो इस आत्मा के परमात्मा तक पहुँचने के दो साधन हैं। ये तो जीवात्मा की दो शक्तियाँ हैं—इनकी गति तथा दृष्टि—जिनसे यह (आत्मा) अपने परमात्म पीव तक पहुँचती भी है, उसे (परमात्म) तथा उस तक की सारी यात्रा को दृष्टिगत भी करती हैं। सन्तों का साधनागत आन्तरिक यात्रा का मनोयोग पूर्ण विवरण इसका प्रमाण है। किन्तु सुरति, रूह तथा जीवात्मा को एक ही मानकर पर्यायवाची के रूप में हजूर महाराज शिवदयाल जी द्वारा किया गया उल्लेख मिलता है जो अस्पष्ट है। उनका कहना है कि 'सुरत यानी जीवात्मा या रूह जो खास सत्तपुरुष

---

1. ग्रंथ साहब जैतराम की बाणी, पृ० 29; 10-12
2. गरीब आत्म और परमात्मा, एक नूर जहूर।
   बिचकर झांई कर्म की, तातें कहिए दूर॥
   वही, पृ० 201 (श्रीगरीबदास की बाणी)
3. गरीब आत्म पूर्णब्रह्म है, परमात्म परब्रह्म।
   कल्परूप कलि में पड्या, या से लगे करम॥
   गरीब कर्म लगे शिव विष्णु के, भ्रमैं तीनों देव।
   ब्रह्मा युग छत्तीस लग, कछु न पाया भेद॥ वही, पृ० 201; 133-34
4. गरीब आत्मा तत्व तो हंस है, परमात्म परमहंस।
   गुरु चेला गलतान हैं, दहूँ का नहीं विध्वंस॥
   —ग्रंथ साहिब, श्री गरीबदास जी की बाणी, पृ० 135; 7

राधास्वामी का अंश है···।'[1] जहाँ सन्त शिवदयाल ने सुरत (सुरति) एवं जीवात्मा (रूह) को एक ही मान लिया है वहाँ जैतरामजी ने सुरति तथा आत्मा (हंस) का रंग तक बतलाकर इनके विभेद वैशिष्ट्य को रेखांकित किया है। जैतरामजी का कहना है कि "एक समय हम सुरत के विमान पर बैठे हुए अगर पंथ के गैलें, सुरत का विमान चलाया था। सुरत के विमान का रंग बरन जरद है हमारे हंस का बरन सेत है।···'[2] यहाँ जैतराम जी ने सुरति का पति एवं आत्मा (हंस) का रंग श्वेत बतलाकर दोनों को स्पष्ट रूप से अलगाया है। इसी प्रकार की अस्पष्टता और भी कई स्थानों पर निर्गुण साहित्य में मिल सकती है।

सन्त नितानन्द का कहना है कि यह जीव इस शरीर रूपी सराय में अतिथि के रूप में टिका हुआ है। एक रात का ही (जीवन) यहाँ इस सराय में बसेरा है। प्रातः होते ही तो चल पड़ना है।[3] इस शरीर-नगर में जीव मेहमान बनकर आया है। इस नगर का तमाशा देखकर यही फँसकर रह गया है। अपने वास्तविक घर को भूलकर यहीं भटक गया।[4] इस शरीर रूपी पिंजरे में प्राण पक्षी बैठा हुआ है। पिंजरे के नौ द्वार खुले हुए हैं, पता नहीं किस समय यह प्राण-पक्षी पिंजरा छोड़ उड़ जाए।[5] जीव की मोहग्रस्त स्थिति का उल्लेख करते हुए नितानंदजी का कहना है कि यह रमता जोगी नगर-नगर की सैर करता फिरता है। इस जादूगरी (संसार) की भूल-भुलैया में पड़कर मनुष्य से बैल बन जाता है। चोरों से इसने दोस्ती कर ली है, अपने मालिक का इसे ध्यान ही नहीं अज्ञान में बहता फिरता है।[6] सन्त जीतादास जीव के वास्तविक स्वरूप तथा इसकी मोह-निद्रा का उल्लेख

---

1. सार बचन राधास्वामी (छन्द बन्द) भूमिका,—घ
2. ग्रन्थ साहिब, श्री जैतराम जी की बाणी, पृ० 149
3. जीव मुसाफिर आइयाँ, तन सराय के माँहि।
   नितानन्द इक रैन बस, फजर राह लग जाँहि॥
   —स्वामी नितानन्द, सत्य सिद्धान्त प्रकाश, पृ० 99; 2
4. देह नगर में रहा, जीव बटाऊ आय।
   देख तमासा फँस गया, अब कैसे घर जाय॥ —वही, पृ० 106; 73
5. नितानन्द तन पींजरा, खुले रहे नौ द्वार।
   ना जानूँ कद उड़ चलै, पक्षी प्रान हमार॥ —वही, पृ० 107; 86
6. यह जोगी करता फिरै, नगर नगर की सैल।
   पड़ा कामरू देश में, हुआ मनुष्य से बैल॥
   नितानंद यह अंध नर, धरै ना हरका ध्यान।
   चोरों से चितलाय कर, बहया फिरे अज्ञान॥ —वही, पृ० 111; 136

इस प्रकार करते हैं कि—"हे जींव तू युगों से इस मोह नींद में सो रहा है। क्या तू अब भी नहीं जागेगा ? अब तो इस कुमति नींद से जाग ! तुझे सतगुरु जगाने आए हैं। उनके सम्पर्क में अपने पारस स्वरूप को प्राप्त करो। ये माया का जंग (आवरण) तेरे ऊपर चढ़ गया है सतगुरु संगति से इसे दूर करो और अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानो।[1] हंस स्वरूपी जीव को चेतावनी देते हुए नितानन्द जी कहते हैं कि यह मनुष्य-जन्म का अमूल्य अवसर यूँ ही व्यर्थ में मत नष्ट करो। हे हंसा ! तेरा जीवन रूपी ताल दिन-दिन सूख रहा है। अपने हरि को याद करो। फिर ऐसा सुअवसर नहीं मिलेगा।[2]

सन्तों ने जीव के पारमार्थिक अथवा ब्रह्मस्वरूप का वर्णन बहुत ही कम किया है। उनकी मुख्य चिन्ता भ्रान्त तथा मायालिप्त जीव को लेकर ही है। इसी से सन्तों की बाणी में जीव के व्यावहारिक स्वरूप सर्वशः प्राप्त होता है। बात चाहे ब्रह्म की हो या माया की चाहे जगत की वस्तु स्थिति का निरूपण अथवा वर्णन हो सन्तों की चर्चा का केन्द्र यही संसारी जीव होता है। 'चेतावनी का अंग', 'भरम विधूसन को अंग', 'सुमर चेतावनी को अंग', 'मन का अंग', 'माया का अंग', 'कामिनी का अंग', 'साच का अंग', 'कुसंग का अंग', 'सत्संग का अंग', 'देखादेखी का अंग', 'विचार का अंग', 'विश्वास को अंग', 'कंकताई का अंग', 'काल को अंग', 'मांसाहार निषेध का अंग', 'निन्दक का अंग', 'कृतघ्न नर का अंग', इत्यादि तथा सन्तों के अधिकांश शब्द (पद)—इस सांसारिक माया-ग्रस्त जीव की वस्तु स्थिति स्पष्ट करने तथा इसको उद्‌बोधित, प्रेरित करके इसके उदाहरणार्थ ही कहे-लिखे गए हैं। हरियाणवी सन्त भी इसके अपवाद नहीं हैं। सन्तों के आगमन का प्रयोजन ही 'हंस' 'उबारन' होता है तो उनके कथ्य का केन्द्रबिन्दु भी इस 'हंस' का होना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है।

हरियाणवी सन्तों की जगत् सम्बन्धी धारणा

जिस प्रकार 'जीव' को लेकर सन्तों का दृष्टिकोण व्यवहारवादी है, उसी प्रकार 'जगत' का भी दार्शनिक और व्यवहारिक स्वरूप उनकी बाणी में अधिक मिलता है। सन्त रामरूप के अनुसार यह जगत भयावह सागर है, बुद्धिमान को इसमें फँसना नहीं चाहिए। इस सागर में पाल (मेड) मन है, स्पर्श इसका टापू

---

1. श्री ग्रंथ साहिब, प्रकाशक—दरबार घीसा सन्त, खेकड़ा, सम्वत् 2015
पृ० 245 ; पद 579

2. हंसा हर कूँ याद कर, दिन-दिन सूखे ताल।
फेर न मिलना होयगा, सुमर गोपाल गोपाल ।।
स्वामी नितानन्द, सत्य सिद्धान्त प्रकाश, पृ० 14 ; 11

(द्वीप) है, रसनारस बड़ा मच्छ है, इसकी गन्ध रूपी कीच में जीव फँसे हुए हैं। शब्द रूपी नीर भरा है, रूप का भंवर है इस भयावह सागर में जो वैकुण्ठ की राह में बड़ा बाधक है।[1]

रामरूपजी का आगे कहना है कि जिस प्रकार पक्षी वृक्ष पर रात बसेरा करता है, इसी प्रकार क्षण-स्थायी जग का जीवन है। यहाँ का सुख बादल की छाया के समान क्षणिक है। यहाँ तो जन्म से मृत्यु पर्यन्त दुःख ही दुःख है। यदि यहाँ सुख जैसी कोई चीज होती तो इस जगत के राज्य को छोड़कर सम्राट जंगल में क्यों जाते ?[2] इस जगत की भ्रामक स्थिति का दार्शनिक-सा ब्यौरा रामरूप जी इन शब्दों को देते हैं—'यह जगत शाश्वत नहीं है। जैसा दिखाई पड़ता है वैसा है नहीं अन्धेरे में पड़ी रस्सी से जैसे साँप होने का भ्रम हो जाता है, प्रकाश होते ही वस्तु स्थिति समझ में आ जाती है। सीप की श्वेतिमा को जैसे चाँदी समझ लेते हैं भ्रम से, इसी प्रकार इस जगत की भौतिक सत्ता, भ्रामक है वरन् है ही नहीं—सब चेतन का ही साम्राज्य है।[3] सन्त सिद्धराम को सारा जगत आत्म-रूप ही दिखाई

---

1. जगत समुन्दर भय का कहिये। बुद्धिमान कूं फँसा न चहिए॥
पात जु याकी मन कूँ जानो। सपरस या का टापू मानो॥
मच्छ बड़ा रसना का रस है। गन्ध कीच में जावे फँस है॥
शब्द नीर ता माँहि भरा है। रूप भँवर डर लगे खरा है॥
सो बैकुण्ठ राह के माँही। रोक रहा जाने दे नाँहिं॥
—स्वामी रामरूप कृत मुक्तिमार्ग, प० 175-76

2. जैसे पक्षी रैन बस, तरुवर ही के माँहि।
जग का जीवन जानिये, सुख बादर की छाँहि॥
ह्यां को जन्मत दुख ही दुख है। मरने तक कहुँ नैक न सुख है॥
जगतराज में जो सुख पाते। भूप छोड़ जंगल क्यों जाते॥
—वही, पृ० 183

3. आनन्द करो मगन मन मेरे जगत नहीं तिरकाला।
परमात्मा ही दर्शन लागो मिटो मर्म जंजाला॥
रसरी परी अँधेरे माहीं साँप भर्म सूँ माना॥
कर उजियारा लखी जेवरी सब डर तुर्त बिलाना॥
सीपी देख दूर सूँ चमकत रूपा तक के धावें॥
निकट जाय निरख जब चीन्हें झूठ जान फिर आवें॥
चरणदास गुरु निश्चय कहिया नहीं नहीं जग नाँही॥
रामरूप निर्मल ही चेतन जड़ता नाँ तिह माँही॥
—स्वामी रामरूप, मुक्तिमार्ग, पृ० 287, पद 134

देता है। नाना नाम रूप से केवल आत्म-तत्व ही विराजमान है। कहीं ब्रह्मा, कहीं विष्णु, कहीं महादेव, कहीं गृहस्थ तो कहीं वैरागी—इन सभी में उस आत्म सत्ता का विग्रहवान होना इसी प्रकार है जैसे एक कंचन और इससे बने आभूषणों में कोई भेद नहीं ऐसे ही इधर-उधर, बाहर-भीतर जो भी कोई दिखाई देता है वह वही आत्म-तत्व ही है—अन्यथा कुछ नहीं है।[1]

कुछ इसी तरह की सम्बन्धी विवरण रामरूप जी के शब्दों में इस प्रकार प्राप्त होता है, कि मैंने बड़ी समझ से खोज की किन्तु जगत नाम की मुझे कोई चीज थोड़ी मात्रा में भी नहीं मिली। ऐसे ही जैसे कदली के पात उतारते जाइए,—कहीं पेड़ नजर नहीं आएगा। ऐसे ही 'पाले' की बड़ी खोजबीन की पर कहीं पाला मिला ही नहीं (पानी ही मिला)! इसी प्रकार संसार नाम की कोई वस्तु नहीं है, सत्ता है तो केवल उस रसिया ब्रह्म की। जैसे फेन बुदबुद तथा तरंग में एक पानी ही विद्यमान है, जैसे एक कंचन के अनेक आभूषण बना देना ऐसे ही इस जगत में आत्म-तत्व ही नाना नाम रूपों में दृष्टिगत हो रहा है। जैसे हींग और कपूर की गन्ध किसी भी तरह अलग नहीं की जा सकती ऐसे ही वह अद्वैत शुद्ध चेतन सत्य की सत्ता का ही बोलबाला है—दूसरा कोई (तत्व अथवा वस्तु) है ही नहीं।[2] सन्त जैतराम का कहना है कि यह संसार तो धा अंकुआँ है जिसमें पानी भी नहीं है। अन्धे (अज्ञानी) इसमें गिर-गिर पड़ते हैं और प्यासे मर जाते हैं। यहाँ तृष्णा की अनबुझ प्यास लगी है, पानी भी जरा नहीं है। अन्ततः युग इसी प्रकार जलते-जलते बीत गए हैं तृष्णा तो जरा भी शान्त नहीं हुई। अतः यह संसार-कूप मिथ्या प्रपंच है।[3]

---

1. स्वामी रामरूप मुक्ति मार्ग, पृ० 357, पद 50 (शब्द बावनी)
2. बहु खोजा मैं ज्ञान समझकर जगत नेक नहीं पाया।
   ज्यों कदली के पात उतारत पेड़ दृष्टि नहीं आया॥
   पाला देखा बहुत सोधकर कहूं न पाया पाला।
   ऐसे ही संसार नहीं है एक ही ब्रह्म रसाला॥
   जैसे फैंन-तरंग बुदबुदा जलसूँ नाहीं न्यारा।
   त्यों ही आतम माँहि जगत यो कंचन मुहन प्रकारा॥
   अरु ज्यो हींग कंपूर देखले बास जुदी नहीं कोई।
   चेतन अद्वै शुद्ध सत्य में रामरूप नहीं दोई॥
   —मुक्तिमार्ग, पृ० 288, पद 135
3. यह जग अन्धा कूप है नीर नहीं तिस माँही।
   अन्धे गिर-गिर पड़त हैं नीर बिना मरि जाँहि॥
   तृष्णा दाह लगीं जहाँ नीर नहीं प्रवेश।
   तपत अगन तन में लगी कैसे मिटैं अन्देश॥
   अन्तकाल जुग हो गए तृषा मिटी न रिंच॥
   जैतराम गृह कूप है पाखण्ड और प्रपंच॥
   —ग्रन्थ साहिब, श्री जैतराम की बाणी, पृ० 455

संसार की सेमल पुष्प से तुलना करते हुए जैतरामजी कहते हैं कि यह संसार सेमल के समान है जहाँ कर्म-भ्रम की भूख लगी ही रहती है। इस सेमल तरू की छाया भी नहीं है, पक्षियाँ (जीवात्माओं का) आना-जाना युगों से लगा हुआ है। यहाँ ये पक्षी अपना कर्म-चबीना खाते हैं, भ्रम की कीच में फँसे हैं।[1] इस जगत की क्षण-भंगुरता की ओर दूलनदास (भीषमजी) का संकेत इस प्रकार है—'यह जगत तो नाशवान है यहाँ से चलने की बात करो। संसार की सत्ता तो मृग मरीचिका-जल के समान झूठी है, जल है ही नहीं—केवल लगता है। जैसे स्वप्न में माता-पिता (मृत) का मिलना, जिनकी भौतिक सत्ता है ही नहीं। यह तो बालू का मंदिर सा क्षण स्थायी है जो वर्षा की दो बूँद लगने पर ढह जाता है।[2] जगत् के मिथ्या एवं क्षणिक स्वरूप को और उजागर करते हुए दूलनदास जी कहते हैं कि इस जगत् की सत्ता स्वप्नवत् है। बादल की छाया है, तृण अग्नि है, बालू का मन्दिर है, सुत-वित्त आदि सांसारिक सम्पत्ति को ऐसे ही क्षण स्थायी जानो। सांसारिक सुख भी आभास-मात्र हैं। यह कदली का आभास देने वाला थोहर वृक्ष है। मृग-मरीचिका है—इससे बचो।[3]

---

1. ग्रंथ साहिब, श्री जैतरामजी की बाणी पृ० 499

2. कोई बात चलन की करो रे यह जग है सब नाशी।
ज्यूँ मृग त्रिसना को भासत है जल न दुख होत बिनासी।।
ज्यूँ सुपने में माता पिता मिल सी जाग्रत नाहीं मिलासी।
बालू के मन्दिर ज्यूँ जग जानो वर्षा लगे ढह पासी।।
० ० ०
दूलमदास नाम जपो जिन सो सुख सिंध मिलासी।।

—वही, पृ० 505

3. साधो भाई यह जग सुपन समाना।
बादल छाया तिरण अगनी ज्यूँ छिन में होई मिटाना।
बारू के मन्दिर ज्यूँ छिन नासत त्यूँ सब सुत बित जाना।।
मरकट अगनी ज्यूँ सीत न खोवे त्यूँ सुख जगत बखाना।
ज्यूँ मृग भरम तिस नहीं नासै भटकत मृग फिराना।।
केले वृक्ष ज्यूँ थोहर है जग झूठे सुख लिपटाना।
भोगत भोगत तिरपत नाहीं पथार ज्यूँ जल माना।।
० ० ०
दूलमदास कर प्रभू मेला, होवत अमन अमाना।।

—वही, पृ० 508

सन्त नितानन्द जी इस जगत की वास्तविकता बतलाते हुए कहते हैं कि यह जगतो सेमल-वृक्ष के समान है। मन रूपी तोता (सूवा) इस पर व्यर्थ में ही लुब्ध होकर दुख पाता है।[1] यह तो बाजीगर के खेल के समान ही थोड़ी देर का खेल है। यह तो क्षण स्थायी है, वे भ्रम में हैं जो इसे सच मान लेते हैं।[2] इस जगत की वास्तविकता तो मृग-मारीचिका नीर के समान ही है यहाँ से तो प्यासे ही उठ जाते हैं ये अज्ञानी, नगुरे लोग।[3] जगत की छद्म प्रवृत्ति की ओर संकेत करते हुए नितानन्द जी कहते हैं कि यह दुनिया बड़ी छली है, अपने प्रलोभनों से इसी प्रकार लूटती है जैसे ठग विष-मोदक खिलाकर लूट लेता है।[4] यहाँ का अमोद-प्रमोद भी सब झूठा है, यहाँ की धन-सम्पत्ति भी एक भ्रम-मात्र है ऐसे ही जैसे कोई बाँझ स्वप्न में पुत्र-जन्म पर प्रसन्न होती है। यहाँ क्या रंक क्या राजा सभी इस भूल-भलैया में ग्रस्त हैं।[5] इसमें जीव का अस्तित्व मृग के समान है। कालरूपी अहेरी सभी के पीछे लगा है तथा सभी का शिकार करता है—मुग्ध समझते ही नहीं।[6]

जीव तथा जगत् सम्बन्धी हरियाणवी सन्तों की ऐसी ही धारणा है।

---

1. यह जग ऐसा जान ले, जैसा संभल रूख।
   सूवैं सेवा लायकर, उलटा पाया दुख॥
   —सत्य सिद्धांत प्रकाश, पृ० 110; 117
2. बाजीगर बाजी रची, सब जग जानै साच।
   नितानंद उठ जायगा, पलक माँहि सब नाँच॥—वही, पृ० 111; 128
3. यह ऐसा संसार है, मृग तृष्णा का नीर।
   नितानन्द प्यासे रहें, अंधे नर बेपीर॥—वही, पृ० 111; 139
4. दगाबाज दुनिया सभै, लूटै लारै लाय।
   नितानंद ज्यों ठग ठगै, विष के लड्डू खुवाय॥—वही, पृ० 113; 154
5. जैसे स्वप्ने बाँझ ने, किया पुत्र जन चाव।
   ऐसा यह संसार है, कहाँ रंक कहाँ राव॥—वही, पृ० 114; 160
6. जीव मृगला जगत बन, काल अहेरी लार।
   नितानन्द चेते नहीं, मूरख मुगद गँवार॥—वही, पृ० 259; 9

परिशिष्ट

सहायक ग्रन्थ-सूची

(क) हिन्दी-ग्रन्थ

—रविदास, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली

—(डा०) ओम प्रकाश शर्मा, सन्त साहित्य की लौकिक पृष्ठभूमि, 1965

—ओमानन्द सरस्वती (स्वामी), हरियाणा के प्राचीन मुद्रांक, प्रकाशक—हरियाणा प्रांतीय पुरातत्व संग्रहालय, गुरुकुल झज्जर, सैनी प्रिंटर्ज़, पहाड़ी धीरज, दिल्ली, सम्वत् 2031 वि०

—गणेश दत्त गौड़, कुरु प्रदेश के लोकगीत,

—गोपीनाथ कविराज (डा०), भारतीय संस्कृति और साधना, बिहार राष्ट्र-भाषा-परिषद, पटना।

—गणपति चन्द्र गुप्त (डा०), हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, भारतेन्द्र भवन, चण्डीगढ़, प्रथम संस्करण।

—चन्द्रकांत बाली, पंजाब प्रांतीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली।

—जगदेव सिंह (डा०), हरियाणा : एक भाषाई और सांस्कृतिक इकाई ; (शोध-पत्र)

—जार्ज ग्रियर्सन (डा०), हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, अनुवादक—डा० किशोरीलाल गुप्त, 1961 संस्करण।

—देवीशंकर प्रभाकर, हरियाणा : एक सांस्कृतिक अध्ययन, उमेश प्रकाशन, दिल्ली 6।

—धीरेन्द्र ब्रह्मचारी (डा०), सन्त कवि दरिया : एक अनुशीलन, सन् 1958 संस्करण। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना,
—धर्मवीर भारती (डा०), सिद्ध साहित्य, प्रथम संस्करण, किताब महल, इलाहाबाद
—(डा०) धीरेन्द्र वर्मा, प्रधान सम्पादक—हिन्दी साहित्य कोश, भाग—1 तथा 2, ज्ञान मण्डल, वाराणसी, संस्करण 2015 वि० तथा 2020 वि० क्रमश:
—धर्मपाल मैनी (डा०), सन्तों के धार्मिक विश्वास, नवजोत पब्लिकेशन, सिंहल प्रिंटिंग प्रेस, सन् 1966
—नानक चन्द शर्मा (डा०), हरियाणवी भाषा का उद्गम एवं विकास, (शोधप्रबन्ध), 'विश्वज्योति प्रकाशन', होशियारपुर।
—परशुराम चतुर्वेदी (आचार्य), उत्तर भारत की सन्त परम्परा, सम्वत् 2021 संस्करण, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद।
—परशुराम चतुर्वेदी (आ०), मध्यकालीन प्रेमसाधना, 1952 ई०,
—प्रताप सिंह चौहान, सन्तमत में साधना सा स्वरूप, प्रत्यूष प्रकाशन, कानपुर, सन् 1961
—(डा०) प्रभाकर माचवे, हिन्दी ओर मराठी का निर्गुण सन्त-काव्य, सन् 1962
—पीताम्बरदत्त बड़थ्वलाल (डा०), हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, सम्वत् 2007, अनुवादक—आचार्य परशुराम चतुर्वेदी
—परशुराम चतुर्वेदी (आ०), सन्त काव्य, किताब महल, प्रयाग, सन् 1942
—परशुराम चतुर्वेदी (आ०), सन्त साहित्य की भूमिका, हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद, सम्वत् 2017
—परशुराम चतुर्वेदी (आ०) कबीर साहित्य की परख, प्रयाग, 2011 सम्वत्,
—पूर्णचन्द शर्मा (डा०), हरियाणा की लोकधर्मी नाट्य-परम्परा प्रकार हरियाणा साहित्य अकादमी चण्डीगढ़
—पृथ्वीसिंह, हमारा राजस्थान,
—बद्रीनारायण श्रीवास्तव, रामानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव, 1957 ई० संस्करण,
—भगवत व्रत मिश्र, सन्त दादू और उनका काव्य, सिकन्दर राउ दिनेश प्रकाशन; सन् 1968
—भगतराम, सन्त गरीबदास जी का चरित्र,

—भगवानदेव वीरभूमि हरियाणा, आचार्य प्रकाशन, हरियाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल झज्जर, सन् 1955
—भगवान देव (आ०) हरियाणा के वीर योद्धेय, —वही—
—मोती सिंह (डा०), निर्गुण साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, ना० प्र०स० वाराणसी
—मुंशीराम शर्मा (डा०), भक्ति का विकास, चौखम्बा-विद्याभवन, वाराणसी, 1958 ई०।
—मंगलदास (स्वामी), श्री दादू सम्प्रदाय का संक्षिप्त परिचय, श्री दादू महाविद्यालय रजत जयन्ती महोत्सव समिति, मोती डूंगरी, जयपुर, सम्वत् 2009 वि०
—महर्षि दयानन्द, सत्यार्थ प्रकाश, हरियाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल झज्जर,
—मोहनलाल, जुत्सी, कबीर साहब : हिन्दुस्तान अकादमी, प्रयाग, सन् 1939
—मनमोहन सहगल (डा०), गुरु ग्रंथ साहिब : एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण, भाषा विभाग—पंजाब, सन् 1971
—मनमोहन सहगल (डा०) सन्त काव्य का दार्शनिक विश्लेषण, सन् 1965 भारतेन्दु भवन, चण्डीगढ़।
—योगेन्द्रपाल (कविराज), क्षत्रिय जातियों का उत्थान एवं पतन तथा जाटों का उत्कर्ष,
—राजदेव सिंह (डा०), सन्तों का भक्तियोग, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, 1968 ई०,
—राजदेव सिंह (डा०) शब्द और अर्थ (सन्त साहित्य के सन्दर्भ में), सन् 1965 ई०,
राजदेव सिंह (डा०), आधुनिक कबीर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1971 ई०
—राजदेव सिंह (डा०), सन्तों की सहज साधना, वही, 1976 ई०
—राजदेव सिंह (डा०), सन्त साहित्य : पुनर्मूल्यांकन, 1973 ई० आर्य बुक डिपो, दिल्ली,
—रामखेलवान पाण्डेय (डा०), मध्यकालीन सन्त साहित्य, 1963 ई०,
—रामधारी सिंह दिनकर (डा०), संस्कृति के चार अध्याय, राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, 1956
—रामकुमार वर्मा (डा०), सन्त कबीर, प्रथम संस्करण

—धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी, संतमत : परम्परा और साहित्य, जन्मभूमि प्रेस, पटना,
—रामानन्द शास्त्री (सम्पादक), सन्त रविदास और उनका काव्य,
—रामचन्द्र शुक्ल, (आ०), जायसी ग्रन्थावली, ना० प्र० सभा० वाराणसी
—रामकुमार वर्मा (डा०), हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, सन् 1948
—राजाराम शास्त्री, हरियाणा की लोककथाएं,
—रामदास गौड़, हिन्दुत्व, काशी
—रणजीत सिंह (डा०), 19वीं शताब्दी में वेदान्त परम्परा और सन्त निश्चलदास जी की देन, (अप्रकाशित शोधप्रबन्ध)
—रामचन्द्र शुक्ल, (आ०) हिन्दी साहित्य का इतिहास, ना० प्र० सभा, वाराणसी
—राजदेव सिंह, संत साहित्य की भूमिका, आर्य बुक डिपो, दिल्ली, 1973
—राधास्वामी सार वचन, (छन्दबन्द), दयाल बाग, आगरा
—गांसा द तासी, हिन्दुवई साहित्य का इतिहास, अनुवादक—डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, प्रथम संस्करण, सन् 1953
—वासुदेव शर्मा (डा०), संत कवि दादू और उनका पन्थ, प्रथम संस्करण, 1969, सूर्य प्रकाशन, दिल्ली ।
—विश्वम्भरनाथ, उपाध्याय (डा०), हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि, साहित्यरत्न भण्डार, आगरा, 2012 सम्वत
—वही, हिन्दी साहित्य पर तान्त्रिक प्रभाव, आगरा, 1962
—विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (आ०), हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग 1 तथा 2, वाणी विताण प्रकाशन, पटना ।
—विष्णुदत्त राकेश, (डा०), उत्तरी भारत के निर्गुण पन्थ साहित्य का इतिहास, साहित्य भवन, लि०, इलाहाबाद, सन् 1975
—शान्तिलाल भारद्वाज, आधुनिक राजस्थानी साहित्य, रायल बुक एजेंसी, अजमेर, 2014 वि०
—शान्ति स्वरूप त्रिपाठी, शांकर अद्वैत वेदान्त का निर्गुण काव्य पर प्रभाव, रणजीत प्रिंटर्स एवं पब्लिशर्ज, दिल्ली ।
—शंकरलाल यादव, (डा०) हरियाणा प्रदेश का लोक-साहित्य, हिन्दुस्तान अकादमी, इलाहाबाद ।
—सच्चिदानन्द शर्मा (डा०), उदासी सम्प्रदाय और कवि सन्त रेन, सन् 1977
—(डा०) सुदर्शन सिंह मजीठिया, सन्त साहित्य, प्रथम संस्करण, 1962 ।

—सरनामसिंह शर्मा (डा०) कबीर : एक विवेचक, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली।
—सैयद सुलेमान नदवी, नाथ सम्प्रदाय : इतिहास, दर्शन और साधना प्रणाली, तथा कल्याणी मलिक
—सावित्री सिन्हा, अनुसन्धान की प्रक्रिया, हिन्दी समिति, दिल्ली वि० वि० प्रकाशन,
—सावित्री सिन्हा, अनुसन्धान का स्वरूप, वही,
—(डा०) सत्येन्द्र, अनुसन्धान, नन्दकिशोर एण्ड संज, वाराणसी।
—एस० एस० रंधावा एवं देवीशंकर प्रभाकर, हरियाणा के लोकगीत,
—हजारी प्रसाद द्विवेदी (आचार्य), मध्यकालीन धर्म साधना, 1970
—हजारी प्रसाद द्विवेदी (आचार्य), हिन्दी साहित्य (उसका उद्भव और विकास), 1969 ई०।
—हजारी प्रसाद द्विवेदी (आचार्य), कबीर : हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बन्बई।
—हजारी प्रसाद द्विवेदी (आचार्य), नाथ सम्प्रदाय, हिन्दुस्तान अकादमी, इलाहाबाद, 1950
—हजारी प्रसाद द्विवेदी(आचार्य), विचार और वितर्क, हिंदुस्तान अकादमी, इलाहाबाद, 2002
—हजारी प्रसाद द्विवेदी (आचार्य), हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई,
—हजारी प्रसाद द्विवेदी (आचार्य), सहज साधना, भोपाल, सम्वत् 2020 वि०,
—हरभजन सिंह (डा०), गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, दिल्ली, 1963
—हजारी प्रसाद द्विवेदी (आचार्य), सूर साहित्य, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, बम्बई,
—हरिशास्त्री, संत सरोज, महन्त गंगादास, जयपुर, सम्वत् 2002
—त्रिलोकीनारायण दीक्षित, हिन्दी सन्त साहित्य, 1963 ई०।
—त्रिलोकीनारायण दीक्षित, सन्त दर्शन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
—प० श्रीराम शर्मा, हरियाणा का इतिहास, सेवाश्रम रोहतक।

(ख) अँग्रेजी ग्रन्थ

—Agam Parshad Mathur; Radha Swami Faith—A Histoirical Study; Vikas Publishing House, Delhi; 1974.
—Dr. Budh Parkash; Haryana-Studjes in History & Culture;

—Dr. Devi Parsad Chattopadhya, : Indian Philosophy;
—Furquahar; Outlines of Religious Hindu Literature;
—Furquahar; Modern Religious Movements in India (J. N. York Eed. 1915)
—Gaszetteers of Distt. Gurgaon, Rohtak, Karnal, Jind, Amabala and Mohindergarh.
—George Weston Briggs; Gorakhnath & Kanphatha Yogis,: 1938.
—Dr. H. S. Wilson; Religious Sects of Hindu; 1862
—H. A. Rose; A glossary of the tribes & castes of the Panjab and the Frontiers Provinces, Vol. I. II & III.
—J. C. Ooman; Mysticks, Ascetics and Saints of India (Fissure)
—Journal of Royal Asiatic Society ;
—K. M. Sein; Medeival Mysticism of India; (Luzzac), 1930.
—Dr. K. C. Gupta, Shri Garib Dass-Haryana's saint of Humanities; Impacts, India, 1976.
—M. A. Macaulayr, The Sikh Religion, Six Vol. 1909.
—Dr. Mohan Singh; An Introduction to Panjabi Literature ;
—S. Nahar Singh, Nam Dhari's; Nandhari Sangat, Pahar Ganj Delhi.
—Lt. Ram Sarup Joon; Hoistory of Jats ; V & Po. Nuna Majra (Rohtak).
—Settlement Reports of Distt. Hissar, 1963-64
—Dr. Tara Chond; Influence of Islam in Hindu Culture, Indian Press, Allahabad.
—W. I. Allison, The Sadhs (Religious of India-Series) Calcutta, 1925

(ग) पत्र-पत्रिकाएँ

—हरियाणा चित्र
—विशाल भारत

—समालोचक
—सरस्वती संवाद
—सप्तसिन्धु
—विश्वभारतीय पत्रिका, शान्तिनिकेतन
—भारतीय साहित्य, आगरा
—हिन्दी अनुशीलन पत्रिका, प्रयाग विश्वविद्यालय,
—जनवाणी,
—जनसाहित्य
—ज्ञानोदय
—विशाल हरियाणा
—धर्मयुग (साप्ताहिक)
—सन्त समागम
—शब्द सार
—समता दर्पण (उर्दू)
—स्मारिका, कुरुक्षेत्र वि०
—वि०, 1977
—कल्याण (सन्त विशेषांक, तथा उपासना विशेषांक)
—साहित्य सन्देश
—नागरी प्रचारिणी पत्रिका
—सरस्वती (सम्मेलन पत्रिका)
—माडर्न रिव्यू
—सन्त
—आलोचना
—साप्ताहिक हिन्दुस्तान
—हरियाणा संवाद
—समता सन्देश
—दादू सेवक
—सत्संग